भानुप्रताप शुक्ल
चिन्तन

काल चिंतन

'काल चिंतन' में हिन्दी के जाने-माने पत्रकार और लेखक श्री भानुप्रताप शुक्ल के उन कुछ लेखों का संकलन है, जो उन्होंने 'पाञ्चजन्य' के अत्यधिक लोकप्रिय स्तंभ 'राष्ट्र-चिन्तन' में साप्ताहिक रूप से लिखे। इन सभी लेखों में भानुजी की वह तीखी लेखन-शक्ति देखी जा सकती है, जिसने सांस्कृतिक धरातल से उन सभी महती घटनाओं का विवेचन किया है, जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि पहलुओं से राष्ट्रीय काल-चक्र में समय-समय पर घटती रहीं। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का अभाव है, जिनमें पत्रकारीय लेखन संकलित हो सका हो। इस दृष्टि से भी 'काल-चिन्तन' अत्यधिक महत्वपूर्ण कृति है।
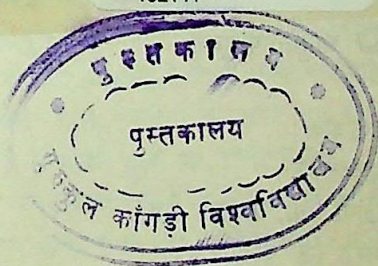
काल चिन्तन

भानुप्रताप शुक्ल

शब्दलोक, मेरठ

काल चिन्तन (भाग-3)

मूल्य : तीन सौ रुपये मात्र (प्रति भाग)
सम्पूर्ण सैट तीन भागों में : मूल्य 900 रुपये मात्र।

प्रकाशन वर्ष : 1995

प्रकाशक :
शब्दलोक
छीपी टैंक, कचहरी रोड,
मेरठ (उ. प्र.)

लेज़र कम्पोजिंग : मानस टाईपसैटर
IX/4753, पुराना सीलमपुर,
गांधी नगर, दिल्ली-31

मुद्रक : जितेन्द्र प्रिन्टर्स
बाबरपुर रोड, शाहदरा,
दिल्ली-110 032

KAL CHINTAN By Bhanupratap Shuk

साफ कहने और साफ सुनने वालों के लिए--यह कृति

स्वतंत्रता के बाद देश में हुए यांत्रिक विकास और वैज्ञानिक साधनों की उपलब्धि के साथ-साथ एक ऐसे कालखंड का प्रारंभ हुआ, जिसमें प्रचार-तंत्र को प्रमुखता मिली। .क्ति से लेकर वस्तु तक इस तंत्र के आधीन होते चले गए या कि तंत्र ने बुद्धि, विचार, चेतना, यश-अपयश सभी को वश में करना आरंभ किया। चूंकि समूचे तंत्र-विकास के पीछे का सारा चिंतन मात्र व्यवसायिक था, अतः स्वाभाविक ही था कि विचार, संस्कृति, राजनीति, व्यक्ति और गुणावगुण उस व्यवसायिक चिंतन के आधीन होते जाएं। परिणामतः अखबार आम जनता के लिए प्रतिबद्ध न होकर किसी पूंजीपति और उसे राजनीतिक शक्ति से प्रोत्साहन देने वाले राजनेता का अस्त्र बन गए। अस्त्रधारियों का मानस भी व्यवसायिकता से प्रभावित हुआ था, इसलिए कलम के सिपाही या कि राष्ट्र-पहरुए, लेखक-पत्रकार अपने शब्दास्त्रों को "बेहतरीन दामों" में खरीदने वालों के लिए विक्रय करने लगे। राष्ट्र-संवेदना के प्रति बौद्धिक क्षमता वाले विचारकों की निष्ठा जड़ होती चली गयी। स्थिति यहां तक आ पहुंची कि देश के हर क्षेत्र में जिस तरह "मिसालों" जैसे चुनिंदा देशभक्त रह गए, उसी तरह स्वतंत्रचेता लेखक-पत्रकार भी "मिसाल" मात्र रह गए।

ऐसी जड़ता, यांत्रिकीकरण और संवेदनहीनता के दौर में अच्छे नेतृत्व, आदर्श समाज सुधारक, श्रेष्ठ और राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत लेखकों—पत्रकारों, नेताओं और समाज सुधारकों का अकाल-सा पड़ गया। इस अकाल के दौर में पत्रकारीय-मिसाल को जब-जब नजरें खोजती हैं, तब-तब हिन्दी में दूर-दूर तक एक लम्बा-चौड़ा रेगिस्तान ही दीखता है।

. . . . . .और फिर प्रारंभ होती है — रेगिस्तान में किसी जलस्त्रोत की खोज-प्रक्रिया। इस प्रक्रिया में अगर हर क्षेत्र के गिने-चुने चेहरे दीखते हैं, तो पत्रकारिता के क्षेत्र में भी ऐसा ही होता है। ऐसे ही चेहरों में, एक चेहरे का नाम है—भानुप्रताप शुक्ल।

हिन्दी-पाठक भानुजी के नाम से अजाना नहीं है। विशेषकर इसलिए क्योंकि बिना लाग-लपेट के जो लोग हिन्दी में साफ-साफ बातें लिखने-कहने के आदी हैं— उनमें भानुजी अग्रगण्य हैं। निरंतर प्रकाशित होते रहे उनके लेख इसके साक्षात् प्रमाण

हैं। इन्हीं प्रमाण-पुष्पों के तिथिवार संकलन का नाम है — 'कालचिंतन'। तीन खण्डों में प्रकाशित यह कृति अब सुधी पाठक-जनों के हाथ है और जो लोग 'साफ कहने, साफ सुनने' में विश्वास रखते हैं और जिनके लिए भारत राष्ट्र, संस्कृति और मानवता के प्रति पूजा-आस्था है, उन्हें यह संकलन निस्संदेह रुचिकर लगेगा।

इस संकलन को सुन्दर साज-सज्जा के साथ प्रकाशित करके पाठकों तक पहुंचाने के लिए मैं इसके प्रकाशक श्री योगेन्द्र जी की आभारी हूँ।

—शोभा भारद्वाज

अनुक्रम

यह शत्रुता है, यह राष्ट्रद्रोह है

चुनाव सम्पन्न हो गए। किस प्रकार और किन परिस्थितियों में चुनाव परिणाम प्राप्त हुए हैं, यह सर्वविदित है। अब प्रश्न यह है कि चुनाव के पश्चात् क्या होगा ?

प्राप्त संकेत सुखद नहीं हैं। विश्व का माहौल भारत के अनुकूल नहीं है। भारत राजनीतिक अस्थिरता के जंगल में भटकने के लिए विवश हो सकता है। देश की अर्थव्यवस्था घायल है। राष्ट्रीय अस्मिता सामाजिक संताप और साम्प्रदायिक तनाव के कारण आतंकित है।

पश्चिमी बुद्धिजीवियों का रवैया

पहले विश्व का माहौल देखें। इक्कीस मई के पश्चात् उत्पन्न कांग्रेस की नेतृत्वविहीनता को पश्चिमी और अमरीकी बुद्धिजीवी भारत का नेतृत्वहीन हो जाना मान रहे हैं। । वे भारत को नेतृत्वहीन ही नहीं मानते, अपितु नया नेतृत्व प्रदान करने का प्रयास भी कर रहे हे हैं। वे एक नया नेतृत्व चाहते हैं जो पश्चिमी देशों, अमरीका और रूस के संकेत पर उठे-बैठे। रूसी खेमा अप्रत्यक्ष रूप से, अमरीकी-पश्चिमी बुद्धिजीवी प्रत्यक्ष रूप से प्रयासरत हैं। वे भारत को हिंसा-हत्या की आग में अन्तिम रूप से जल रहा बता रहे हैं। अमरीकी राजनीतिज्ञों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, इंग्लैंड के समाचारपत्रों, फ्रांस, और जर्मनी के चिन्तकों, रूस और विश्व के दूसरे देशों का इक्कीस मई के पश्चात् का निष्कर्ष समान है। वे सभी एक स्वर से बता रहे हैं कि भारत राजीव की हत्या का धक्का झेल नहीं पाएगा। अब भारत के लोकतन्त्र का उबर पाना कठिन है। देश साम्प्रदायिकता का शिकार हो जाएगा। भारत का 'अधकचरा' राष्ट्रीय मानस आत्मनाश की ओर बढ़ रहा हे। नेहरू-गांधी वंशावली के बाहर भारत का कोई भविष्य नहीं है। अमरीकी बुद्धिजीवी और 'नवभारत टाइम्स' जैसे समाचारपत्र बोल और लिख रहे हैं कि अब तो भारत को केवल राजीव पुत्री प्रियंका ही बचा सकती है। उसमें उसकी दादी इन्दिरा की प्रतिभा, गतिमानता और गुण विद्यमान हैं। वह अपने पिता राजीव के साथ चुनाव-प्रचार में जाती रही है। अर्थात चुनाव प्रचार में जाना राजनीति विज्ञ होना बताया जा रहा है।

इंग्लैड के बुद्धिजीवी, बी०बी०सी०, जर्मनी और फ्रांस के राजनीतिक, विश्लेषक

तथा रूस के सहयात्री देश, भारत में आतंकवादी हिन्दुत्व के अभ्युदय का हौवा खड़ा करके दुनिया को डरा रहे हैं कि वह भारत की ओर से मुंह मोड़ ले। बी०बी०सी० ने भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के विरुद्ध अभियान छेड़ रखा है। उसके मुख्य पत्रकार मार्क टुली राजीव की अंत्येष्टि के समय बोले गए वैदिक मंत्रों और हिन्दू कर्मकाण्ड से आतंकित हैं। वे उसे भारत की त्रासदी कहकर यहां के परंपरागत हिन्दू जीवन दर्शन' और कर्मकाण्ड को बदनाम करने का कोई मौका चूक नहीं रहे हैं। शेष सभी देशों की राय में भारत एक ऐसे यतीम बालक की तरह है, जिसका कोई अभिभावक ही नहीं है। उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति या दल दिखाई नहीं देता जो इस 'यतीम' को गोद में उठा ले। एक अमरीकी राजनयज्ञ ने भारत को एक ऐसी संतानहीन विधवा कहा है जिसका रुदन किसी को द्रवित नहीं करता, किन्तु जिसकी सुन्दरता का सुख लूटने के लिए हजारों-हजार लोग लालायित हैं। करोड़ों संतानों वाली भारत माता को विधवा और उसकी संतानों को यतीम बताकर भारतवासियों के मन में हीनता और भय का भाव जगाया जा रहा है।

और भारत की आन्तरिक स्थिति ? आन्तरिक स्थिति में अब 'अन्दर' जैसी कोई बात रही ही नहीं। जो कुछ है वह बाहर है। सड़क पर है, सबके सामने है। कांग्रेस राजवंश चाहे वह राजीव की इन्दिरा कांग्रेस के कांग्रेसी हों, चाहे कभी की कांग्रेस के कांग्रेसी, इन्दिरा कांग्रेस से धकिया दिए गए कांग्रेसी हों या रूठे जनता दल के कांग्रेसी हों या राष्ट्रीय मोर्चा के कांग्रेसी, की दृष्टि में भारत का भविष्य भी इन्दिरा कांग्रेस के भविष्य की ही तरह है। उनकी राय में भारत का भविष्य भी इक्कीस मई की रात दस बजकर बीस मिनट पर राजीव के साथ छितरा गया। भारत के अधिकांश बुद्धिजीवी और पत्रकार भी कांग्रेस की अस्थिरता, अनिश्चितता और संभ्रम को भारत राष्ट्र की अस्थिरता, अनिश्चितता और संभ्रम मान रहे हैं, किन्तु चिंतन के स्तर पर वे इतना अधिक चुक गए हैं कि कोई नया सोच, कोई नया मार्ग, कोई वैकल्पिकता उन्हें सूझती ही नहीं। गत लगभग पैंतालीस वर्षों से कांग्रेसी संस्कृति की यातना और संताप भोग रहे देश की ओर वे सहज और सरसरी तौर पर देखते हैं। देश-दशा की ओर देखने की उनकी यह दृष्टि और उनके समस्त निष्कर्ष उनके अपने बंजर जमीन की कटीली उपज हैं।

हम नहीं जानते कि किसी दल की पराजय और किसी एक व्यक्ति का अवसान देश के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह कैसे लगा देता है ? इस प्रकार के समस्त प्रश्न भारत के करोड़ों लोगों के विवेक की अवमानना करते हैं। जिस देश के बुद्धिजीवी अपने देशवासियों के विवेक का तिरस्कार करने में नहीं सकुचाते, और जो यथास्थितिवाद में ही देश का उज्जवल भविष्य देखते हैं, जिनकी 'प्रगतिशीलता' देश की दुर्गति की ओर से मुंह मोड़ लेती हो, उन्हें यदि देशवासी अपना 'केशव', मानने से अस्वीकार कर दें, तो यह कोई अनहोनी बात नहीं होगी। प्रकृति के प्रतिकूल प्रत्येक प्रक्रिया और

स्थापना का अंत अब तक इसी प्रकार होता आया है।

नया राजनीतिक स्वरूप

दसवीं लोकसभा और कुछ विधानसभाओं के मध्यावधि चुनाव में राजनीति का जो स्वरूप सामने आया है वह चिन्ताजनक ही नहीं, चिन्तन करने योग्य भी है। चुनाव समर में एक ओर थी, भारत की हजारों वर्ष की गर्वोज्ज्वल परंपरा, परिवर्तन की चाह, सर्वांगीण सकारात्मक विकल्प, दूसरी ओर थी, एक नकारात्मक गिरोहबंद राजनीति कि यदि हम न जीतते हों, तो उसे जिताएं जो भाजपा को हरा सके, इस मुहिम में कांग्रेसी कुनबा उससे जुड़े निकले समस्त दल और नेता, कम्युनिस्टों, समाजवादियों और सम्प्रदायवादियों के सभी गुट एवं गिरोह समान प्रेरणा और सम्पूर्ण शक्ति से शामिल थे। मुसलमानों ने कहा 'वोट उसे दें, जो भाजपा को हरा सके', जनता दल और उनके नेता बोले—कुछ भी हो, कुछ भी करना पड़े भाजपा न जीतने पाए, कम्युनिस्टों और समाजवादियों ने शोर मचाया कि कांग्रेस से मिल जाओ, कांग्रेस भले जीत जाए, कांग्रेस को समर्थन देकर भले ही सरकार बनानी या बनवानी पड़े, लेकिन भाजपा को न जीतने दिया जाए और यदि वह जीतकर सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरे तो उसे सरकार न बनाने दी जाए। समाप्त हो जाने के समान संकट के भय से त्रस्त ये सभी दल और नेता जल-प्लावन में बह रहे वृक्ष पर सांप, बिच्छू, कौवे, मेढक और बंदर की तरह एक साथ आ बैठे।

कंगाल देश

और देश की अर्थव्यवस्था या आर्थिक स्थिति ?

इस समय देश में अर्थव्यवस्था जैसी कोई वस्तु बची ही नहीं है। भारत केवल भिखारी है, एकदम दिवालिया है। गत पैंतालीस वर्षों मे जिस अर्थव्यवस्था के आधार पर अब तक की राजनीति, राजनीतिक दल और राजनेता आर्थिक आत्मनिर्भरता और भौतिक स्वर्ग का निर्माण करने का दावा करते आए थे, वह नकारा निकली। अर्थव्यवस्था के सरकारीकरण ने भारत को 'दांत खोदकर पेट भरने' की स्थिति में ला पटका। गांवों में एक कहावत है कि 'यदि किसी परिवार को अपना पालन-पोषण और दिन-प्रतिदिन का खर्च चलाने के लिए, अपना खेत और अपनी बहुओं के जेवर आदि बेचने या गिरवी रखना पड़े तो समझ लेना चाहिए कि वह परिवार अपने कुल का सम्मान ही नहीं, उसका भविष्य भी गिरवी रख या बेच रहा है।

भारत को सोना क्यों बेचना पड़ा ? भारत का भुगतान संतुलन क्यों बिगड़ा ? सोना बेचने के अतिरिक्त उसके सामने कोई रास्ता क्यों नहीं बचा ? भारत की आर्थिक प्रगति और मजबूत आर्थिक स्थिति की घोषणओं का क्या हुआ ? भारत का विदेशी मुद्राकोष क्यों कम हो गया ? अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और मित्र

देशों ने भारत की आवश्यकता के अनुरूप ऋण और अनुदान देने से मुंह क्यों मोड़ा ? विदेश स्थित भारतीय दूतावासों को गिरवी रखने की चर्चा क्यों चली ! अपने ग्यारह महीने के शासन में बिना किसी को बताए विश्वनाथ प्रताप सिंह और पांच वर्ष के शासन में राजीव ने गुपचुप एक लाख करोड़ रुपए का विदेशी ऋण क्यों लिया ? गत छः वर्षों में पहले राजीव सरकार के वित्तमंत्री के रूप में नब्बे हजार करोड़ रुपए और बाद में विश्वनाथ प्रताप सिंह की अपनी सरकार के वित्तमंत्री ने दस हजार करोड़ का विदेशी ऋण लिया है। यह एक लाख करोड़ रुपए का विदेशी ऋण विश्वनाथ प्रताप और राजीव ने इसे चुकता करने की व्यवस्था किए बिना देश पर थोपा है। भारतीय मुद्रा वैसे ही बहुत कमजोर है, विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष उसकी कीमत बाईस प्रतिशत और घटाने के लिए दबाव क्यों डाल रहा है ? भारत की सत्तर करोड़ रुपए की कुल विदेशी मुद्रा की आवश्यकता पूरी करने के लिए यदि कोई प्रबंध न किया गया तो कम से कम चालीस टन और सोना बेचने के लिए विवश होना पड़ सकता है। रिजर्व बैंक के सुरक्षित भण्डार में केवल तीन सौ टन सोना है। बीस टन गिरवी रखने के बाद जब्त किया गया दस टन सोना शेष है। यदि इस आर्थिक मरहमपट्‌टी से काम चल पाता तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं थी, किन्तु यह तो तात्कालिक संकट को हल करने के लिए करना पड़ेगा। यह स्थायी संकट समाधान नहीं है। स्थायी संकट है, देश पर मंडरा रहा अमरीकी और पश्चिमी देशों की आर्थिक गुलामी का बादल। इस विश्लेषण से 'पाञ्चजन्य' के पाठकों को न आश्चर्य होना चाहिए, न आहत। गत दो वर्षों मे इस स्तंभ में कई बार इस संकट का उल्लेख किया जा चुका है। आर्थिक गुलामी का यह आसन्न संकट राजनीतिक अस्थिरता से कई गुना गंभीर है। यह देश की राजनीतिक आजादी को भी निगल सकता है। भारत अमरीका और पश्चिमी देशों का ग्राहक राष्ट्र और बाजार बन सकता है। 'आर्थिक ब्रह्मास्त्र' चलाकर ये देश भारत को अपनी बंधुआ 'आसामी' बनाने का ही संभव प्रयास कर रहे है ?

समस्याएं कहां नहीं हैं ?

चुनाव के परिणाम चाहे जो भी हों, सत्ता में कोई भी आए, भारत का भविष्य इन समस्याओं के समाधान में ही निहित है। निश्चय ही वे लोग, वे दल और वे समीकरण इन समस्याओं को नहीं सुलझा सकेंगे, जो इनके मूल में हैं, जो इनके जन्मदाता हैं, जो इनके लिए कारणीभूत हैं, जिनके कारण विश्व के देश कांग्रेस के नेतृत्व के अंत को भारत के लोकतंत्र और भविष्य के अंत का आरंभ बता रहे हैं। और जो हिंसा और हत्या को केवल भारत की उपज मानते हैं। किन्तु क्या ये हत्याएं केवल भारत में ही होती हैं ? क्या जातीय और सांप्रदायिक समस्या केवल भारत में ही है ?

विस्तारभय से विश्व के तमाम देशों के इतिहास में न जाएं, केवल अमरीका का

ही इतिहास देखें। अमरीका के जन्म-काल से अब तक लगभग एक दर्जन अमरीकी राष्ट्रपतियों की हत्या का प्रयास किया गया है। 1835 में राष्ट्रपति एन्ड्रू जेक्शन पर कातिलाना हमला, 1865 में अमरीकी गृहयुद्ध में अमरीका की राष्ट्रीय अस्मिता एवं अखंडता के रक्षक अब्राहम लिंकन और 1881 में जेम्स गैरीफील्ड की हत्या, इसके बीस वर्ष बाद 1901 में विलियम मैकिनले का कत्ल, 1912 में थियोडोर रूजवेल्ट पर कातिलाना हमला, 1933 में फ्रैन्कलिन डेनालो रुजवेल्ट और बाद में उनके उत्तराधिकारी हेनरी ट्रूमेन पर पिस्तौल से प्रहार, 1964 में अमरीका के अपने समय के सबसे गतिशील साहसी और सक्षम राष्ट्रपति कनेडी की हत्या, राष्ट्रपति रेगन को गोली मारी जाने की घटनाएं अमरीका में ही घटी थीं। ये सभी राष्ट्रपति अमरीका के राष्ट्रपुरुष के समान थे। किन्तु किसी अमरीकी पश्चिमी बुद्धिजीवी, पत्रकार या राजनीतिक समीक्षक ने यह नहीं कहा कि अब अमरीका का कोई भविष्य नहीं रहा ?

आर्थिक संकट के दौर से रूस भी गुजरा था और चीन भी। आज भी वे आर्थिक तंगी में हैं। सोना रूस और ईरान ने भी बेचा और गिरवी रखा था, किन्तु किसी ने यह नहीं कहा कि अब इन देशों का कोई भविष्य नहीं है। राजनीतिक अस्थिरता पूर्वी यूरोपीय देशों और रूस, चीन आदि देशों में भी है और पहले भी थी। इंग्लैंड के आयरलैंड में आतंकवाद लगभग एक सदी से सतत चला आ रहा है, किन्तु इनकी राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक स्वास्थ्य पर, किसी ने कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया।

अमरीका, रूस और पश्चिम के बच्चा और नाबालिग राष्ट्र, जिनकी जिन्दगी के दिन अंगुलियों की पोरों पर गिने जा सकते हैं, अपने को हर प्रकार के संकट में सुरक्षित मानते हैं, किन्तु भारत में यदि उनकी पसंद का दल चुनाव हार जाता है या कोई नेता मर अथवा मार दिया जाता है, तो ये देश और इनकी थाप पर नाचने वाले बुद्धिजीवी एवं पत्रकार भारत की समाप्ति कर फातिहा पढ़ने लगते हैं।

भारत संकट में है, संकट गंभीर भी है। संकट एक ओर से नहीं, दशों-दिशाओं से है। संकट अंदर से भी है, बाहर से भी है, राजनीतिक भी है, आर्थिक भी है, सामाजिक भी है, संकट नेतृत्व का ही नहीं चरित्र और भावनात्मक भी है, संकट राष्ट्रीय अस्मिता को ही नहीं, व्यक्ति की गरिमा को भी है।

भारत पर यह संकट पहली बार नहीं आया है। हजारों वर्ष के ज्ञात-अज्ञात काल से भारत अनेक बार इससे भी गंभीर संकटों के दौर से गुजरा है। इसे अपनी आजादी तक से हाथ धोना पड़ा, फिर भी यह जीवित रहा, और संकटों पर विजय प्राप्त करता रहा है। रामायण और महाभारत का काल देख लें, पुराणों में वर्णित संकटों और संघर्षों की गाथाएं पढ़ लें, पश्चिमी बुद्धिजीवियों द्वारा मान्य इतिहास काल में सिकन्दर से लेकर ईस्ट इंडिया कंपनी और अंग्रेजों के शासन और आजादी के बाद से अब तक दर्ज इतिहास के पन्ने पलटें तो पाएंगे कि संपूर्ण संसार मिलकर भी भारत को मिटा नहीं पाया। भारत ग़ुलाम बना अपने कारण, अपनी हीनभावना के कारण, अपनी

ईर्ष्या-द्वेष के कारण, अपनी सुविधाभोगी प्रवृत्ति और असंतुलित संपत्ति के कारण। और हर संकट की घड़ी में भारत की भूमि पर किसी न किसी दैवतुल्य व्यक्ति का जन्म हुआ है।

यह ठीक है कि हमारी संपत्ति बिकने लगी है, यह भी सच है कि दुनिया में हमारा सम्मान घट रहा है, यह भी मान्य हैकि भारत के बिखर जाने का खतरा है, यह भी स्वीकार कर लेते हैं कि भारत के लोगों के नाम पर भारत के राजनीतिक दल और नेता नकारात्मक और छापा युद्ध लड़ रहे हैं। यह भी दिखाई दे रहा है कि विदेशी हस्तकों और स्वदेशी लोागों के तुच्छ स्वार्थ भारत की अस्मिता पर संयुक्त प्रहार कर रहे हैं, किन्तु यह भी सच है और यह सब सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट भी है कि भारत की जिजीविषा, उसकी जीवन शक्ति इस प्रहार के सामने अंगद की तरह ताल ठोक कर पैर जमाकर खड़ी है। यदि अंगद के पांव रावण तब हटा पाया होगा तो आज भी भारत की अस्मिता के पांव भी पश्चिमी और रूसी स्कूल के गुर्गे हटा लेंगे। लेकिन न तब ऐसा हुआ था, न अब ऐसा होगा। प्रस्तुत समय भारत के परिश्रम और पसीने को चुनौती दे रहा है। वर्तमान गंभीर परिस्थिति भारत के अन्तर्यामी का आवाहन कर रही है। भारत के अंतर्मन का जागरण भारतवासियों का पराक्रम, परिश्रम और पसीना ही भारत के प्रारब्ध गौरवमय और वैभवसंपन्न भविष्य का निर्माण करेगा।

भारत की एकता-अखंडता पर खतरा बनाए रखने—भारतीयों के मन में 'यतीमी' असमर्थता और हीनभावना के बीज बोते रहने, इसे स्थायी भूख, भय और बीमारी का शिकार बनाकर रखने में अमरीका, रूस, पश्चिमी देशों में तथा उनके विचार विद्यालय में दीक्षित भारत के बुद्धिजीवियों और राजनेताओं के तुच्छ स्वार्थ निहित हैं। विदेशियों का यह आचरण भारत के प्रति शत्रुता है, तो उनसे जुड़े भारतीयों का प्रयास राष्ट्रद्रोह है। शत्रुता और राष्ट्रद्रोह के इस भंवर में फंसे भारत को राष्ट्रभक्ति की शक्ति ही बाहर निकाल सकती है।

भारत के संकट का संदर्भ, उससे जुड़ी सोच और विदेशियों की समीक्षाओं हेतु स्पष्ट है। किसी चित्रपट के अन्तिम दृश्य की तरह सभी खलनायक एकत्र हो रहे हैं। अब 'दि एण्ड' समाप्त का दृश्य देखा जाना है। आवश्यकता है, इसको सुखान्त बनाने की। यह इसलिए भारत का अन्तर्यामी शोकांत का निषेध करता है। रक्तस्नात चुनाव परिणामों को केवल सीटों की संख्या की कसौटी पर न कसकर, उनकी ओर भारत के भविष्य के संदर्भ में देखा जाना चाहिए और इस प्रश्न का उत्तर 'आत्मदीप' बनकर स्वयं देना चाहिए कि यदि हत्या के कारण अमरीका नहीं मिटा या मिट पाता, यदि साम्राज्य की समाप्ति और सौ वर्षों से चल रहे आतंकवाद के बाद भी इंग्लैंड सुरक्षित है, यदि आर्थिक और राजनीतिक संकट से पीड़ित रूस के मिट जाने की बात कोई नहीं करता, तो इस प्रकार के प्रश्न-बाण भारत को ही क्यों मारे जाते हैं ? कांग्रेस

अपने ही बोझ के नीचे दबकर मरती हो तो मरे, कांग्रेसी या कोई और नेतृत्व अपने ही किए का फल भोगने के लिए विवश हो तो भोगे, किसी एक दल या व्यक्ति की नियति भारत राष्ट्र की नियति नहीं है। उसकी नियति उस चिरन्तन के साथ जुड़ी है जिसने इस धरती पर भारत की सृष्टि की है।

23 जून 1991

क्वार्टर फाइनल था यह चुनाव

तो चुनाव परिणाम आ गए। संसद में बहुमत भले ही स्पष्ट न हुआ हो, मतदाताओं का प्रतिशत भले ही किसी एक दल के पक्ष में न हो, किन्तु भारतीय राजनीति और लोकतंत्र के एक प्रमुख प्रश्न का उत्तर मिल गया। अब उसे किसी विकल्प की तलाश में भटकना नहीं पड़ेगा और ना ही मायूस होकर उसे यह कहने के लिए विवश होना पडेगा कि क्या करें, कोई ऐसा अखिल भारतीय दल नहीं है जिसे अपना समर्थन देकर राजनीतिक परिवर्तन करने की अपनी साध पूरी कर सके।

किन्तु इस सम्पूर्ण संदर्भ में केवल यही एक प्रश्न नहीं था। प्रश्न मुद्दों का भी था। प्रश्न अवसरवाद और आस्था का भी था। प्रश्न स्थिरता और अनिश्चितता का भी था।

गैर भाजपाई समीकरण

चुनाव परिदृश्य के तटस्थ निरीक्षण ने कई तथ्यों को उजागर किया है। चुनाव अभियान के अन्तिम दौर तक सब कुछ बदला-बदला सा हो गया था। सभी गैर कांग्रेसी किन्तु कांग्रेसी दल एवं सभी वामपंथी, अर्थात् साम्यवादी और सम्प्रदायवादी गुट अन्त तक मैदान छोड़ने की स्थिति में आ गए। साम्यवादियों, सम्प्रदायवादियों और कांग्रेसी संस्कृति वाले जनता दल तथा उससे जुड़े विभिन्न गुटों ने हर संभव प्रयास करके भाजपा को पराजित करने का निर्णय किया। सम्प्रदायवादियों अर्थात् मुस्लिमों और ईसाइयों का फैसला था कि उनके सम्प्रदाय और समुदाय के लोग वोट उसे दें जो भाजपा को हरा सके। राष्ट्रीय मोर्चे और वाममोर्चे ने प्रमुख मुद्दा स्वयं की जीत को नहीं, भाजपा की हार को बनाया। जनता दल और राष्ट्रीय मोर्चे के दूसरे सहयात्रियों ने इन्दिरा कांग्रेस की सफलता में अपनी सफलता मानी। वाममोर्चे के मार्क्सवादी गुट ने इंका की अदालत में याचिका दायर की कि कांग्रेस वामपंथियों के बारे में अपना तौर-तरीका बदले। इंका के अस्थायी अध्यक्ष श्री नरसिंह राव को लिखे नम्बूदिरीपाद के पत्र को पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री ने प्रकारान्तर से स्वीकृति प्रदान की। उन्हें अर्पित पत्र के विषय और संदर्भ-औचित्य और अनौचित्य पर नहीं, अवसर की उपयुक्तता और अनुपयुक्तता पर थे। वामपंथियों और जनता दल ने अपना मानस

और भविष्य कांग्रेस के भाग्य और भविष्य के साथ जोड़ दिया। भाजपा को पराजित करने के लिए इन सभी ने अपने वोट बैंक का समूचा खाता इंका के खाते में स्थानान्तरित कर दिया। और कांग्रेस अर्थात् राजीव की इन्दिरा कांग्रेस ? चुनाव अभियान और मतदान के प्रथम दौर तक इंका पूरी हताश हो चुकी थी। राजीव के नेतृत्व में इन्दिरा कांग्रेसी पहले से ही हारा हुआ युद्ध लड़ रहे थे। घर के अन्दर वे राजीव को कोसते थे, घर के बाहर उनको राष्ट्र नायक और 'भारत भाग्य विधाता' बताते थे। इंकाइयों की नजर अपने नेता पर कम, उसकी तिजोरी पर अधिक थी।

सहानुभूति की राजनीति

किन्तु 21 मई, 1991 की रात दस बजकर बीस मिनट पर हताश हो मैदान छोड़ चुके इंकाइयों में प्राण आ गया। राजीव की हत्याजन्य मौत ने उनका मनोबल बढ़ा दिया। चिता पर रोटी सेंकने के सुभाषित को शव पर रोटी सेंकने का आयाम प्रदान किया गया। इंकाइयों ने समस्त मानवीय और लौकिक मर्यादाएं तोड़ दीं। उनके मृत नेता का शव अभी पूरी तरह पहचाना भी नहीं गया था कि दिल्ली में उनके निवास पर 'हमारी नेता सोनिया गांधी' का नारा लगाया जाने लगा। हत्या की हुण्डी भुना कर अपनी पार्टी के पक्ष में सहानुभूति की लहर चलाने का हर संभव प्रयास किया गया। इस प्रयास में प्रतिहिंसा, प्रतिहत्या, लूट, आगजनी, विरोधी नेताओं का अपमान आदि शामिल था। इस सब का एक गंभीर और चिन्ताजनक पक्ष यह रहा कि इन्दिरा कांग्रसी राजीव की हत्या के बाद की गई हिंसा और हत्या की निन्दा न करके उसके कारण अराजकता उत्पन्न होने की आतुर प्रतीक्षा ही नहीं करते रहे अपितु अपने विरोधी दलों को राजीव की हत्या के कटघरे में खड़ा करने का भी प्रयास किया। किसी की मृत्यु या हत्या से मनोबल बढ़ जाना, मिचमिचाती आंखों में चमक आ जाना, राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण करने वाले इंकाइयों के चरित्र का यह पक्ष राजीव की हत्या, उनकी चिंता और भस्मि के प्रकाश में अतीव स्पष्ट रूप से उजागर हुआ। भावुक भारतीयों की भावनाओं का शोषण करने का परिणाम मतदान के दूसरे दौर में यत्र-तत्र दिखाई दिया।

स्पष्ट मुद्दों पर चुनाव

और भाजपा ?

सबसे अलग और अपना जमीन पर खड़ी भाजपा का चुनाव अभियान और चुनाव का मुद्दा स्पष्ट था और यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है। गत लगभग पैंतालिस वर्षों में हुए चुनावों में पहली बार इस चुनाव में मुद्दों और सिद्धान्तों पर चर्चा हुई। पहली बार राष्ट्रवाद, सम्प्रदायवाद, सेकुलरिटी, अल्पसंख्यकवाद, आर्थिक

नीतियों, सामाजिक न्याय और समरसता के मुद्दे मुखर होकर सामने आए। पहली बार कांग्रेसी कुनबे और कांग्रेसी संस्कृति से भिन्न किसी दल और नेता ने राष्ट्रीय राजनीति का एजेण्डा (कार्यसूची) निश्चित किया। कांग्रेसी कल्चर को पहली बार किसी राष्ट्रीय संस्कृति के मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ा और पहली बार 'कांग्रेस हटाओ-हराओ' का नारा लगाने तथा गैर कांग्रेसवाद को अपनी सत्ता राजनीति का मुख्य आधार मानने वाले लोगों और दलों ने 'भाजपा हटाओ-कांग्रेस बचाओ' का नारा ही नहीं लगाया, गंभीर प्रयास भी किया!

भाजपा ने जिस गंभीरता और दृढ़ निश्चय के साथ अपना चुनाव अभियान प्रारम्भ किया, वह स्तर और प्रभाव की दृष्टि से अद्वितीय और अद्भुत था। अपने इरादों को धरती से क्षितिज तक जिस प्रभावपूर्ण ढंग से रूपायित किया, अपने सिद्धान्तों और नीतियों को जिन शब्दों और जिस स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया, सचमुच ही वह मनोहारी था, उसमें मतदाताओं को मुग्ध कर देने की क्षमता थी। उसने भाजपा के समर्थकों में विश्वास जागृत किया तो उसके कारण भाजपा के विरोधी भयभीत हुए। किन्तु अपेक्षित परिणाम निकलने तक स्थिति बदल गई।

मैं राजीव की हत्या की बात नहीं कर रहा हूं। बात भाजपा की ही है। हुआ यह कि भाजपा के कार्यकर्त्ता अपने ही किए के प्रति मुग्ध हो गए। जो प्रचार अभियान भाजपा ने दूसरों को मोहित करने के लिए चलाया था, उस पर वे स्वयं मोहित हो गए। यह स्वयं सृष्टिकर्ता के अपनी ही सृष्टि पर मोहित हो जाने जैसी स्थिति थी। सृष्टिकर्ता का अपनी सृष्टि के प्रति मोहित हो जाने का अर्थ और परिणाम ठहराव को जन्म देता है। भाजपा के सृष्टिकर्ता अपनी ही कृति और अपने कार्यों पर मुग्ध होकर ठहर गए कि अब तो काम हो गया। दूसरों को सुनाने के लिए बनाए गए कैसेट वे स्वयं सुनने लगे, दूसरों को दिखाने के लिए बनाए गए वीडियो कैसेट वे स्वयं देखने लगे, दूसरों के लिए तैयार किए गए साहित्य वे स्वयं पढ़ने लगे। उन्होंने सोचा कि उनका सुनना, देखना और पढ़ना ही समाज का भी सुनना, देखना और पढ़ना है। भाजपा कार्यकर्ताओं ने यह सुनना, देखना और पढ़ना आदि अपनी ज्ञानवृद्धि करने के लिए किया होता तो इस पर टिप्पणी करने का कोई औचित्य नहीं था। ज्ञानवृद्धि हाशिए पर चली गई और मुग्धता मूढ़ता की सीमाएं छूने लगी। यदि अपने दायित्व और अवसर का विवेक नहीं रह जाता तो मुग्धता केवल मूढ़ता ही पैदा करती है और कुछ नहीं। और इस चुनाव में यही हुआ है। उसी का परिणाम मतदान का कम होना रहा। जिस परिणाम को सामने रखकर भाजपा ने मोहक और प्रभावकारी अभियान चलाया था, उसको प्राप्त न कर पाने का अनेक कारणों में एक कारण यह भी रहा।

राष्ट्र की मूल प्रेरणा पर हमला

इसी स्तम्भ में पहले लिखा गया है कि चुनाव परिणामों को केवल सीटों की

संख्या और जय-पराजय की कसौटी पर न कसा जाए। अब जबकि चुनाव परिणाम आ गए हैं, सीटों की संख्या, जय और पराजय स्पष्ट है तो भी वस्तुपरक विश्लेषण की आधारभूमि ये सब नहीं बन सकते और यदि इन सबको आधार बनाया जाएगा तो यह लहरों की ऊंचाई के आधार पर समुद्र की गहराई नापने जैसी बात होगी। समुद्र में लहर दिखती अवश्य है किन्तु लहर समुद्र का सत्य नहीं होती।

तो फिर सत्या क्या है ?

सत्य है भारत की जिजीविषा, भारत की मुख्यधारा, राष्ट्र की मूल प्रेरणा पर पश्चिमी अवध.रणाओं और अवसरवाद का संयुक्त एवं एकजुट आक्रमण। सत्य है 1991 के चुनावी महाभारत में भाजपा को समाप्त कर देने का संयुक्त अभियान। क्यों ? केवल इसलिए कि यह दल दूसरे दलों की राजनीतिक दादागिरी में आड़े आता है। केवल इसलिए कि यह दल पश्चिमी और थोथी राष्ट्रीय अवधारणा को उजागर करता है। केवल इसलिए कि यह दल राष्ट्रीय अस्मिता, साम्प्रदायिक सद्भाव और सामाजिक न्याय को वोट राजनीति का मुद्दा बनाने के विरुद्ध है। केवल इसलिए कि यह दल देशवासियों को थोक या फुटकर वोट नहीं, नागरिक मानता है। केवल इसलिए कि यह दल क्षेत्र, मजहब, सम्प्रदाय और जाति के आधार पर देश को तोड़ने का विराधी और संस्कृति को एक राष्ट्रभक्ति के धागे में बांधने का पक्षधर है। जिन्होंने अब तक देश को तोड़ा, जो आज भी देश को तोड़ने का जाना-अनजाना हर संभव प्रयास कर रहे हैं, जिनके राजनीतिक प्राण का हिरामन ताता अलगाववादी पिंजड़े में बंद है, उन सभी तत्वों और दलों के लिए भाजपा को अपने चक्रव्यूह में फंसा कर मार डालने के अतिरिक्त और कोई मार्ग था ही नहीं।

तो क्या भाजपा को मार पाए ये दल, नेता और तत्व ? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है। यदि कालजयी भारत राष्ट्र को कोई मार सकता है तो भाजपा को भी मारा जा सकता था। इसी कारण उचित-अनुचित हर संभव प्रयास करके भी भाजपा को मारा नहीं जा सका। चुनाव परिणाम इसके प्रमाण हैं। अब तक ये दल यह कहा करते थे कि भाजपा की जय-पराजय न केवल तालमेल करने या अलग-थलग होने पर आधारित है। अब तक दो की संख्या से आगे बढ़ कर छियासी की संख्या छूने को तालमेल और गैर कांग्रेसवाद को नकारात्मक परिणाम बताया जा रहा था। लेकिन अब? अब भाजपा एक राष्ट्रीय विकल्प के रूप में अपने ही बल पर सबल ध्रुव बनकर खड़ी है। उत्तर प्रदेश जैसे विशाल राज्य की जनता ने उसे अपना स्नेह दिया। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम हर दिशा में हर राज्य ने उसका समर्थन किया। कांग्रेस सहित सभी विपक्षी दल भयभीत हैं। सभी दल परेशान है। वे 'क्या करें, क्या न करें' की द्विविधापूर्ण स्थिति में हैं। सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी इंका नव नेतृत्व के प्रसव की पीड़ा झेलकर भी अपने भविष्य के प्रति निश्चिंत या आश्वस्त नहीं है। वाममार्गियों सहित राष्ट्रीय मोर्चा 'कर्त्तुम-कर्त्तुम अन्यथा कर्त्तुम' की मनःस्थिति में है।

इंका का समर्थन और विरोध दोनों में वे सांप-छछूंदर जैसी स्थिति में हैं।
इस खेमे में एक ही मानस और एक ही प्रश्न प्रमुखता से उभरा कि नेता बदले कि नीति ? प्रत्येक चुनाव परिणाम के साथ इनका अपने प्रति और दूसरों का इनके प्रति अविश्वास बढ़ा। कौन दल टूटेगा, किस सांसद का कितना मूल्य लगाया जा सकता है, आदि प्रश्नों ने जनता दल की ओर स्पष्ट संकेत किया। दल के अन्दर कांग्रेस से मिलकर या कांग्रेस में मिलकर सरकार बनाने की सलाह बलवती हुई। अजित सिंह, बीजू पटनायक और काम चलाऊ प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर आदि ने न्योता दिए जाने की प्रतीक्षा नहीं की, न्योता मांगा। विश्वनाथ प्रताप सिंह का संकेत इस संदर्भ में बहुत ही मुखर रहा। आर्थिक स्थिति का मंत्र जपते हुए वे लोग कब इंका के पतवारहीन नाविक की टूटी नाव पर आ बैठे, कब वे 'अपने घर' वापस चले जाएं, कोई कुछ नहीं कह सकता। वामपंथी मोर्चा की मनोभूमि में गठजोड़ का कंटीला अंकुर उगा। ज्योति और नम्बूदिरीपाद की इच्छा को सुरजीत ने घुमा फिरा कर उपजागर किया।

जब यह स्तम्भ पढ़ा जा रहा होगा तब तक स्थिति स्पष्ट हो जाने की संभावना है। अशोक होटल सहित कई पांच सितारा होटलों में राजनीतिक दलाल आ जमे हैं। यदि वे अपने प्रयास में सफल हो गए, तो इसका पहला शिकार होगा राष्ट्रीय मोर्चा अर्थात् जनता दल। जनता दल के सांसदों का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने 'इंका परिवार' में शामिल हो सकता है। इंका के साथ मिलकर भाजपा विरोधी मोर्चे का देर-सबेर प्रत्यक्ष गठन भी हो सकता है। इस सबके साथ-साथ होगा केन्द्र राज्य के बीच गंभीर संघर्ष का आरम्भ। उत्तर प्रदेश में भाजपा की सरकार के गठन के साथ ही दिल्ली-लखनऊ, दिल्ली-जयपुर, दिल्ली-भोपाल और दिल्ली-शिमला के बीच राजनीतिक स्नायु युद्ध प्रारम्भ होने की सम्भावनाओं को नकारा नहीं जा सकता। यह भी सम्भव है कि केन्द्र की नई सरकार इन चारों राज्यों सहित, बिहार; गुजरात और उड़ीसा की सरकारों को भंग कर दे।

इस देश की राजनीति जब तक अपने राष्ट्रीय मूल के साथ नहीं जुड़ेगी, जब तक अपनी प्राण वायु वह भारत के शाश्वत उपवन से प्राप्त नहीं करने लगेगी, तब तक श्रीराम मन्दिर और अयोध्या से जुड़े राष्ट्रसत्य का रसायन भारतीय राजनीति को स्थिर नहीं रहने देगा, तब तक सरकारें बनना और गिरना, चुनाव होते रहना और अपने ही राष्ट्र सत्य के विरुद्ध राष्ट्र के नाम पर अराष्ट्रीय कृत्य और अवसरवादी गठबन्धनों का होते रहना भविष्य का सहज सत्य है। वर्तमान की सुई का संकेत इसी ओर है। अलग-अलग झुण्डों और मंचों के बावजूद देश की राजनीति का ध्रुवीकरण अवश्यम्भावी है। इस ध्रुवीकरण का एक ध्रुव होगा भाजपा और दूसरा ध्रुव होगा समस्त सत्तावादी और अवसरवादी दलों के भानमती का कुनबा।

यह चुनाव भारतीय राजनीति के मैदान में खेला गया केवल क्वार्टर फाइनल था, सेमी फाइनल और फाइनल की तिथि और मास अभी निश्चित होना है। सेमी फाइनल

का समय भाजपा के डा० जोशी ने दो साल के बाद बताया है, जनता दल के बोम्मई ने एक साल, भाकपा के सुरजीत सिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया और इंका के साल्वे ने तीन से पांच साल कहा। यह संभावना एकान्त में नहीं सबके सामने दूरदर्शन पर 17 जून, 1991 की रात पौने ग्यारह बजे व्यक्त की गई है। देशवासी अपना बोध प्राप्त कर लें कि आगे क्या होने वाला है और पुनश्च हरिओम् की तैयारी करें।

30 जून 1991

भाजपा को मिले जनादेश का हेतु

मई-जून, 1991 के चुनावों का एक प्रत्यक्ष और सबल संकेत यह भी रहा कि राष्ट्रीय चेतना और प्रखर राष्ट्रवाद ही क्षेत्रीय, भाषाई, वर्गीय, जातीय, अल्पसंख्यकवाद, तुष्टीकरण व छद्‌म सेकुलरिटी, साम्प्रदायिक, मजहबी उन्माद, अलगाववाद और अर्थजन्य समस्याओं का समाधान करने की आधारभूमि बन सकता है। राष्ट्रवाद, (राष्ट्रभक्ति) ही राष्ट्रशक्ति होती है।

माता के स्नेह की तरह राष्ट्रभक्ति भी विधाता का दान है। राष्ट्रभक्ति को चुनाव और सत्ता राजनीति के जुए की बाजी पर विक्रंय करते रहने का ही परिणाम है आज का कंगाल भारत, आर्थिक गुलामी के संकट से ग्रस्त भारत, हीन भाव से भरा भारत का राष्ट्रीय समाज ।

विधाता के इस दान को, माता के हृदय को कई देशों और कई दलों ने 'बाहुबल' से पराजित करने के अनेक और अथक प्रयास किए। प्रलय और अंधड़ के क्षणों में पूर्वादल की तरह धरती से चिपट और लिपटकर इस मातृ स्नेह को पराजित हो गया मानकर ये सभी तत्व प्रसन्न हुए। अकारथ।

वे यह भूल गए कि राष्ट्र की भक्ति और माता का हृदय बाहुबल, धनबल और छलबल से नहीं हारता। इस धरती पर विधाता का अधिकार लेकर ही भारत राष्ट्र की शाश्वत अस्मिता की सृष्टि हुई है। भारत का राष्ट्रीय समाज यह अधिकार लेकर ही भारत माता की गोद में आया है। उसे जब अपने इस पैतृक और राष्ट्रीयदाय का, क्षणिक ही सही, बोध होता है तो वह अपने इस विधि प्रदत्त अधिकार के गौरव के साथ बिना सोचे-विचारे अपनी 'मां' की गोद में लेटकर अपना स्थान प्राप्त कर लेता है। अपने वंचित, उपेक्षित, पहचान के संकट से पीड़ित पुत्रों को खोजने के लिए मां अपनी बाहें पसारकर विश्वभर में दौड़ती है। असंख्य अभिजात्य पुत्रों की माता होते हुए भी अपने वंचित पुत्रों के लिए मां स्वयं के चित्त का उज्जवल दीप जलाकर विश्व के देवता की आरती करती है कि 'हे विधाता ! मेरे इन पुत्रों का उद्धार करो, असंख्य

संतानों को अपनी छाती से लगाकर रखने के बाद भी इन के विछोह के कारण मेरा चित्त पुत्रहीनता का अनुभव करता है। मेरा मन कुमाता होने के अपराध बोध से भरा रहता है। मेरे इन वंचित पुत्रों से कहो कि वे मुझे अपनी मां को, क्षमा कर दें। विधाता द्वारा प्रदत्त उनके अधिकार से वंचित करने के अपराध का एकमेव प्रायश्चित है मां की यह क्षमायाचना। यह क्षमा मेरे हृदय में भर्त्सना से भी अधिक तीव्र अग्नि प्रज्ज्वलित करे, मेरे पापों को दग्ध करके मुझे निर्मल करे और मेरे पुत्रों को एकात्म करके मेरी गोद में उन्हें साधिकार बिठा दे।

महाभारत ने कुन्ती-कर्ण सम्वाद के बहाने मां-पुत्र-सम्बन्धों के सदर्भ में जिस व्यथा, व्यवस्था, अपराध आत्मबोध और चित्त का चित्रण किया है वह केवल कुन्ती की नहीं भारत माता की भी चित्त भूमि है, वह केवल कर्ण के पहचान का ही संकट नहीं, भारत के राष्ट्रीय समाज की पहचान का भी संकट है। महर्षि व्यास से लेकर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और अन्य अनेक चिन्तक विधाता के इस दान की चर्चा समय-समय पर केवल इसलिए करते रहते हैं कि कर्ण के समान बिछड़े, पहचान के संकट से पीड़ित भारतमाता की संतानों को समय रहते उनका अधिकार प्राप्त हो जाए। यदि यह न हुआ और समय पर न हुआ तो आधुनिक महाभारत में भी एक ही रक्त और एक ही कोख से जन्मे न्याय-अन्याय का विवेक त्यागकर एक-दूसरे का प्राणहरण करने का कार्य करेंगे।

आज का भारत इसी दिशा में जा रहा है। विधाता के इसी दान पर डाका डालने का हर संभव प्रयास किया जा रहा है और कुरुवंश की रणभूमि पर 'कर्ण' लज्जित, नतशिर खड़ा है कि कोई तो कहे कि 'तू मेरा बेटा है, मेरा रक्तांश है, मेरे बीज का वृक्ष है।' उस बार कुन्ती का मौन कुरुवंश के लिए ही नहीं संपूर्ण भारत के लिए भी बहुत ही भारी और मंहगा पड़ा था। उस समय कुन्ती की बेहोशी की नहीं वाणी की आवश्यकता थी, अभू नहीं आवाज चाहिए थी कि 'कर्ण मेरा बेटा है।' और यदि तब ऐसा हुआ होता तो शायद महाभारत का युद्ध न होता, तब शायद धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म को कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में नहीं हस्तिनापुर की रंगभूमि पर ही अपनी परिभाषा प्राप्त हो गई होती

दो स्पष्ट धाराएं

गत मई-जून के चुनाव समर में उतरे दलों और नेताओं का पक्ष क्या था ? एक पक्ष वोट, जाति, पंथ, सम्प्रदाय और मजहब के वोट और उम्मीदवार गिनता रहा और दूसरा पक्ष राष्ट्र, राष्ट्रीय अस्मिता, मातृभूमि और उसकी सन्तानों को प्राप्त विधाता के दान का अहसास जगाता रहा। एक पक्ष ने जाति, पंथ, मजहब, सम्प्रदाय, अल्पसंख्यक—बहुसंख्यक के नाम पर भारत के राष्ट्रीय मन को विभाजित करने एवं तोड़ने का हर संभव प्रयास किया तो दूसरे ने सम्पूर्ण राष्ट्रजन को संस्कृति के सबल

सूत्र में ग्रंथित करके अपने पूर्वजों के पराक्रम, त्याग और तप के प्रकाश में उनकी पहचान प्राप्त कराने का प्रयत्न किया। एक ने 'रोटी' को सत्ता-राजनीति और केवल वोट से जोड़ा, दूसरे ने 'रोटी' को भारत की गौरवशाली परंपरा के प्रतीक 'राम' अर्थात् भारत राष्ट्र की भौतिक समृद्धि से जोड़ा। ये दोनों धाराएं स्पष्ट थीं।

भारत की राष्ट्रीय जीवनधारा में उठी उर्मियों और राष्ट्रभक्ति का परिणाम सामने आया। गत कई शताब्दियों से दबा, पिटा, पराजित, अपमानित, तिरस्कृत, हीनताग्रस्त भारतीय मन आत्मबोध की ओर मुड़ा। भारत के राष्ट्रीय समाज की चित्त भूमि पर उसकी आकांक्षाओं और स्वाभिमान का अंकुर उगा। उसका भयभीत मन भयमुक्त हुआ। उसको चुनौती देते रहने वालों को उसने चेतावनी दी कि अब बहुत हो चुका, जहां तक आए हो वहीं ठहर जाओ। अपने 'थोक बोटबल' के द्वारा भारत की राष्ट्रीय अस्मिता का सौदा करने वालों को सबल संकेत दिया कि मजहब, जाति सम्प्रदाय और अल्पसंख्यकता के दिन लद चुके, अब देशवासी भारत की भक्ति अर्थात 'राष्ट्र शक्ति' के सुप्रभात का स्वागत करने की तैयारी में है। इन ताकतों और तत्वों ने बहुत चाहा, राष्ट्रीय अस्मिता को मटियामेट करने का हर संभव ओर एकजुट प्रयास किया, किन्तु इस बार एक न चली।

मेरठ से देवरिया तक की अल्पसंख्यक अर्थात् मुस्लिम बहुल पट्टी (यह वही पट्टी है जिसे प्राप्त करके जिन्ना पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान को जोड़ना चाहते थे) के पाकिस्तान-परस्त अर्थात् अलगाववादी तत्वों का राष्ट्रीय तत्वों को परास्त न कर पाकर हतबल हो जाना एक शुभ संकेत है। इस संकेत में लोकमंगल और राष्ट्रीय आत्मबोध की सबल संभावनाएं निहित हैं कि कोई एक सम्प्रदाय, कोई एक समुदाय, कोई एक जाति, कोई एक दल, या कोई भी 'एकमेवता' अनन्तकाल तक राष्ट्रीय ऊर्जा को दबाकर और राष्ट्रीय मन को अपना बंधक बनाकर नहीं रख सकती।

राष्ट्रीय संताप का समाधान

अल्पसंख्यकवादियों और अल्पसंख्यकों ने मेरठ और मुरादाबाद से लेकर देवरिया तक के क्षेत्र में अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर श्रीराम की राष्ट्रीय धारा को सोखने और उसके पक्षधरों को पराजित करने की कोई कसर छोड़ी नहीं। सत्तालोभियों, जातिवादियों, हिंसकों और हत्यारों के साथ-साथ मिलकर भी इन्हें अपने कुटिल कर्म में सफलता नहीं मिली। भारत के राष्ट्रीय समाज को अपने सामाजिक, साम्प्रदायिक और राजनीतिक संताप का समाधान मिल गया कि राष्ट्रीय पहचान और राष्ट्रीय अस्मिता बोध अपराजेय शक्ति का स्रोत है। एकात्मता और समान रक्त-बोध में ही बिखरे और वंचित बंधुओं को बटोरने, सम्मान और समृद्धि में उनका समान अधिकार स्वीकार करने की क्षमता है। राष्ट्रीय सम्वेदना और मातृभूमि के स्नेह में पगा समाज ही वैभवशाली राष्ट्र और राष्ट्रोन्मुखी राजनीति का निमार्ण कर सकता है। राष्ट्र के शुभ

और मंगल की मांग है कि भारत के राजनीतिक विधाता इस देश के भूगोल, यहां की भावनाओं, यहां के इतिहास को टुकड़े-टुकड़े में नहीं, उनकी समग्रता में देखें।

भारत की जीवन यात्रा और संस्कृति को खण्ड-खण्ड में देखना काल की अखण्ड धारा और उसकी सतत् यात्रा को खंडित करने का व्यर्थ, असफल और अप्राकृतिक प्रयास है। यदि समय का कोई पड़ाव हो सकता है या हुआ हो, या वह कभी और कहीं ठहरा हो, ठहर सकता हो, कभी किसी के साथ चला हो, चलता हो, तो भारत की आत्मा भी ठहर सकती है, खंडित की जा सकती है, वह किसी संगी-साथी और सहयोगी की प्रतीक्षा कर सकती है। वायु और समय के समान ही भारत की जीवन यात्रा भी निःसंग है, शाश्वत है, सतत् है। खंडित दृष्टि वाले स्वार्थी तत्वों द्वारा की जा रही और की गई भारत के राष्ट्रीय जीवन की परिभाषा यथार्थहीन है। इसका यथार्थ है पत्ते न हिलें तो भी वायु की तरह सन्नाटे में भी सदैव विद्यमान रहना, आभास और अहसास न हो तो भी समय की तरह सतत् गतिमान रहना। यदि समय की कोई मंजिल हो सकती होती, यदि वायु का कोई संगी-साथी हो सकता होता तो भारत की जीवनयात्रा का पड़ाव भी किसी मीटर, दिनों, महीनों और वर्षों की दूरियों से नापा या स्थिर किया जा सकता था।

श्रीराम मन्दिर निर्माण का जनादेश

भारत की यात्रा का काल और लक्ष्य अनन्त है। यह सनातन भूमि पर, सनातन की कोख से जन्मा एक सनातन राष्ट्र है। समय ठहरेगा, तभी भारत भी ठहरेगा। पवन प्रतीक्षा करेगा तो भारत भी प्रतीक्षा करेगा। भारत आध्यात्मिक और भौतिक सृष्टि को विधाता का दान है। इस दान को भारत की सन्तानों ने साकार रूप में जिया है। श्रीराम , श्रीकृष्ण, गौतम, रामकृष्ण परमहंस, चैतन्य, विवेकानन्द, श्री अरविन्द, गांधी, हेडगेवार अनेक सन्तानों के जीवन के रूप में भारत की अन्तः सलिला भारत का अन्र्यामी प्रकट होता आया है। श्रीराम के साथ मन जुड़ता है तो सामाजिक, साम्प्रदायिक और जातीय जड़ताओं का स्वतः अन्त हो जाता है।

मई-जून के चुनाव में बहुतांश में यही हुआ है। राष्ट्रीय समाज के चित्त में रामभक्ति के रूप में राष्ट्रभक्ति का अंकुर उगा। उसने बड़े-बड़े कटीले झाड़-झंखारों को उखाड़ फेंका।

अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि पर मंदिर-निमार्ण करने का अनुष्ठान भारत माता का मंदिर-निमार्ण करने का अनुष्ठान है। अयोध्या में मंदिर-निर्माण विधाता का निर्देश है। भाजपा को मिले जनादेश का एकमेव हेतु है कि वह अयोध्या (उत्तर प्रदेश) में श्रीराम मंदिर का निर्माण करे और लोकसभा में विपक्ष में बैठकर राष्ट्रीय राजनीति का सबल ताना-बाना बनाए। प्रशासन ठीक करने, आर्थिक कठिनाइयों को समाप्त करने, बेरोजगारी मिटाने और स्थिर सरकार देने के लिए जनता ने उसे सत्ता नहीं सौंपी है।

इस जनादेश की प्राथमिकताएं पूर्व निश्चित हैं, पहले श्रीरामलला की प्राण-प्रतिष्ठा करो, पहले प्रदेश और देश को राम अर्थात् राष्ट्र से जोड़ो, फिर श्रीराम और रामराज्य की तर्ज पर रोटी (भौतिक समृद्धि) और इन्साफ अर्थात् सामाजिक न्याय की प्रक्रिया प्रारंभ करो।

छोटे मन में बड़ा कार्य संभव नहीं होता। राम सरीखी मर्यादा, श्रीराम जैसा मन और रामराज्य जैसी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था ही वंचितों को विधाता का दान, राष्ट्र का दाय और अधिकार प्रदान करा सकती है। सामाजिक अन्याय, अर्थसंकट, राजनीतिक दुराचरण का अन्त और सबको समान अवसर, सबकी समान सहभागिता, सबको समान रक्तबोध, सबको समान दाय, समान इतिहास से जोड़ने और उसकी समान आकांक्षाओं का आरम्भ बिन्दु भारत में यदि कोई है तो वह केवल श्रीराम हैं। देश के वंचित, निराश्रित, विस्थापित विलग हो गए, विचलित भूखे और भयभीत बंधुओं का केवल एक ही शरणास्थान है मातृभूमि की गोद। और यह अधिकार किसी नेता, दल और व्यवस्था का कृपादान नहीं, विधाता की देन है। कोई राज़बल, कोई सत्ताबल, कोई छल-कपट, न इसको जीत सकता है और न इसका अपहरण ही कर सकता है। इस सत्य को कोई छिपा भी नहीं सकता और यदि किसी ने इसे दबाने-छिपाने का प्रयास किय, जुए की बाजी पर बेचा गया तो एक न एक दिन, किसी न किसी क्षण उसे महाभारत की कुन्ती की तरह प्रत्यक्ष क्षमायाचना करके अपने किए के संताप की भट्टी में जलना होगा।

भूलें नहीं कर्णों (वंचितों) ने वंचित रहना स्वीकार किया है किन्तु मातृ स्नेह के धन के पूर्ण अंश को खंडित नहीं होने दिया।

वंचितों को उनकी पहचान प्राप्त होगी तो वे कर्ण की तरह कुन्ती (भारत माता) से कहेंगे—"ओ राजमाता सत्य हो या स्वप्न हो , आओ स्नेहमयी ! आओ अपना दक्षिण हस्त क्षणभर के लिए मेरे ललाट और गाल पर रख दो। लोगों के मुंह से सुना है कि मैं जननी द्वारा परित्यक्त हूं। स्वप्न में कितनी बार देखा है कि मेरी मां मुझे देखने आई है। रोकर, कातर स्वर से कई बार मैंने उससे कहा "हे मां, अवगुंठन उठाओ , मैं तुम्हारा मुख देखूं। वही स्वप्न क्या आज पाण्डव जननी का रूप धारण करके आया है ? मेरा चित्त हठात् पंच पाण्डवों की ओर भाई कहकर क्यों दौड़ रहा है? देवी ! बार-बार कहो कि मैं तुम्हारा पुत्र हूं। और यदि मैं तुम्हारा पुत्र हूं तो मुझे यह बताओ कि इस अज्ञात विश्व में कुल, शील, मान और मातृहीन अनादरपूर्वक मुझे दूर क्यों फेंक दिया था ? क्यों मातृकुल से वंचित किया। मुझे और अर्जुन को विच्छिन्न क्यों कर रखा था ? ओ मां ! मैं क्या करूं ?.... रहने दे, कुछ न बता, यह भी न बता कि तुम्हें देवता के धन (मातृ-स्नेह) का अपनी संतान से हरण क्यों करना पड़ा, मैं यह भी नहीं जानना चाहता कि तुम क्यों आज मुझे गोद में लौटाने आई हो? कुन्ती कहेगी, 'पुत्र! तुम्हारे द्वार पर इसलिए नहीं आई हूं कि तुम्हें छाती से लगाकर

सुख पाऊंगी। मैं तुम्हारा स्वत्व लौटाने आई हूं, हे पुत्र, सभी लांछनाओं को दूर कर। आओ वहां चलें जहां तुम्हारे पांचों भाई हैं।" किन्तु यह कार्य केवल श्रीराम ही कर सकते हैं कुन्ती नहीं। कुन्ती के मातृस्नेह और कर्ण को प्राप्त उसकी पहचान का परिणाम था पाण्डवों को विजय का वरदान। कर्ण अपने परिवार में तब आता जब कुन्ती ने समय पर उसको उसकी पहचान के लिए उसे अपना नाम दिया होता और यदि कुन्ती ने कर्ण को हस्तिनापुर की रंगभूमि पर भरी सभा में अपना नाम दे दिया होता तो मातृस्नेह में पगा भाव विभोर कर्ण अपना सत्य स्वीकार करने के बावजूद यह कहकर कौरवों की ओर से लड़ने न चला जाता कि 'हे जननी, जन्म की रात में जिस तरह तुमने नामहीन, गृहहीन, मातृहीन मुझे फेंक दिया था, आज भी उसी तरह निर्मम चित्त सी दीप्तिहीन, कीर्तिहीन पराजय के ऊपर मुझे त्याग दो और जाते-जाते मुझको यह आशीर्वाद देती जाओ कि जय के लोभ में, यश के लोभ में, राज्य के लोभ में मैं वीरों के सत्पथ से भ्रष्ट न हो पाऊं।'

श्रीराम ने समय पर, ठीक समय पर जीवन और पहचान के सत्य को स्वीकारा, ठीक समय पर व्यक्ति की गरिमा और अस्मिता को सम्मानित किया, ठीक समय पर वंचितों को मूलधारा में शामिल किया, ठीक समय पर उपेक्षितों को गले लगाया, ठीक समय पर अन्याय का अन्त और न्याय की स्थापना की। श्रीराम ने किसी भी क्षण किसी को भी अपमानित नहीं होने दिया, युद्ध के क्षण में भी समरभूमि में शत्रु की कुटिलता और क्रूरता के क्षण में भी अपना संयम नहीं छोड़ा। अपनी मर्यादा को नहीं तोड़ा। समय रहते, ठीक समय पर सबको सबकी पहचान प्रदान की। सभी को अपना नाम दिया कि कोई स्वयं वंशहीन, कुलहीन, शीलहीन मानकर हीन भावना से ग्रस्त न हो सके।

श्रीराम की इसी जीवनदृष्टि को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए भाजपा को जनादेश मिला है। यदि वह इसका कुछ अन्यथा लेगी तो 'अनर्थ' को आमंत्रण देगी और अपनी सृष्टि के सत्य की स्थापना करने के लिए विधाता किसी और माध्यम की खोज करेगा, राजनीतिक क्षेत्र में श्रीराम की प्रभुता ने भाजपा को जिस गंभीरतापूर्वक अपना माध्यम बनाया है भाजपा को भी उसी रूप में उसका प्रतिसाद देना होगा। सत्ता छिन जाने, हिंसा, हत्या और दंगों के भय से इस जनादेश को टालना या इस कार्य को करने में हील हवाल करना मिट जाने की सीमा तक महंगा पड़ सकता है।

7 जुलाई 1991

नेहरू नीति की स्वाभाविक शोकांतिका

नए केन्द्रीय वित्त मंत्री डा० मनमोहन सिंह ने सच-सच और साफ-साफ बोल दिया तो इंकाई कुनबे में तहलका मच गया कि यह क्यों कहा मनमोहन सिंह ने कि देश की अर्थव्यवस्था अतीव नाजुक स्थिति में है और यदि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण न मिला तो देश की आर्थिक आजादी खतरे में पड़ सकती है, आर्थिक क्षेत्र में भारत को हाशिए पर जाना पड़ सकता है और यह भी कि इंका के चुनाव घोषणा पत्र में सौ दिन में कीमतें कम कर देने का आश्वासन पूरा कर पाना संभव नहीं है।

यही है कांग्रेस और इंदिरा कांग्रेस की राजनीतिक सभ्यता और संस्कृति। देशवासियों को देश-दशा का वास्तविक ज्ञान न होने देना और अपनी असफलताओं के लिए किसी मासूम बलि के बकरे की तलाश करते रहना, किसी सर्वथा भिन्न दल और नेता को देश की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार कहकर स्वयं को दुर्दशा करने के दायित्व से मुक्त कर लेना कांग्रेस की राजनीति का मुख्य चरित्र है। डा० मनमोहन सिंह का कथन उस लोक-कथा की तरह है जिसमें कहा गया है कि किसी राजा ने अपने राज्य के कुशल बुनकर से कहा कि 'वह ऐसा वस्त्र बनाए जिसे वह पहने तो वस्त्र न दिखाई दे।' बुनकर ने वस्त्र तो नहीं बनाया, लेकिन एक निश्चित अवधि के बाद आया। दरबार मे उपस्थित हुआ और महामंत्री से निवेदन किया कि वह राजा के लिए वस्त्र लाया है, उनका निर्देश और आपकी आज्ञा हो तो उन्हें यह वस्त्र पहना दे। राजा साहब को संदेश दिया गया। स्नान करके वह अपने अन्तःपुर में बैठा। बुनकर ने राजा के नंगे शरीर पर वस्त्र पहनाने की क्रिया करते हुए हाथ घुमाया और कहा, 'महाराज, आपने वस्त्र धारण कर लिया, आपकी इच्छा के अनुरूप यह वस्त्र किसी को दिखाई नहीं देगा।'

राजा अति प्रसन्न हुआ। बुनकर को पुरस्कार देकर विदा किया। महामंत्री को आदेश दिया कि उस नए वस्त्र में उसकी शोभायात्रा की व्यवस्था की जाए। शोभा यात्रा निकली। आतुर प्रजा अपने राजा को उसके बहुचर्चित वस्त्र में देखने के लिए मार्ग के दोनों ओर खड़ी हो गई। सभी ने देखा कि राजा नंगा था, निर्वस्त्र था। उसकी

सवारी सामने से गुजरती तो नर-नारी सभी अपनी आंखें मूंद लेते। लज्जा से सभी परेशान थे, किन्तु सत्य का उद्घाटन करने का साहस कोई नहीं कर पा रहा था। यह कार्य किया एक मासूम बच्चे ने। अपने दादा के कंधे पर बैठा बालक तालियां पीटते हुए बोला, 'राजा नंगा है, राजा नंगा है !' दादा ने उसका मुंह दबाया, 'चुप ! लेकिन वह और जोर से चीखा। शोभा यात्रा थम गई। राजा ने अपना शरीर ध्यान से देखा। बहुत लज्जित हुआ। सवारी वापस लौट गई। दरबार जुड़ा। राजा ने महामंत्री सहित सभी से पूछा कि वह प्रजा के बीच नंगा घूम रहा था, उन सबने उसे वास्तविकता से परिचित क्यों नहीं कराया ? महामंत्री बोले, ' महाराज, आपको अपना शरीर देखने और उसकी वास्तविकता जानने के लिए भी यदि महामंत्री की आवश्यकता है तो मैं आपके दरबार का त्याग करता हूं। आपके दरबार में सच बोलना, मृत्यु को आमंत्रण देना है। यहां मूर्ख और उद्दण्ड, झूठे और पाखंडियों को सच बताने का कार्य कोई मासूम बालक ही कर सकता है, वयस्क और बुद्धिमान व्यक्ति नहीं।'

आश्वासन बेमानी था !

डा० मनमोहन सिंह यदि किसी राजनीतिक कुनबे में पले, बढ़े और पढ़े होते तो राजीव की इंदिरा कांग्रेस की राजनीतिक धोखाधड़ी से देशवासियों को अवगत न कराकर वे भी कहते कि सौ दिन में महंगाई दूर कर देंगे और तीन सौ पैंसठ दिन में एक करोड़ बेरोजगारों को रोजगार दे देंगे। वे दिवालिया देश को अर्थ-सम्पन्न बताते। न कीमतें कम करने वाला 'सौ दिन' और न एक करोड़ बेरोजगारों को रोजगार देने वाला 'तीन सौ पैंसठ दिन' कभी आता, न यह कार्य करना पड़ता।

सत्ता में आने के बाद सौ दिन में कीमतें कम करने का आश्वासन नवनिर्वाचित सांसदों द्वारा सदस्यता की शपथ लेने से पूर्व और सरकार का गठन होने के बाद केवल दस दिन के भीतर ही तोड़ दिया गया और देशवासियों को यह बता दिया गया कि महंगाई और बेरोजगारी मिटाने का आश्वासन बेमानी था। कहा गया कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण न मिला तो भारत का अर्थतंत्र पूरी तरह बिखर जाएगा और वह सड़क के किनारे खड़े भिखारी की तरह दुनिया के देशों अर्थात् राहगीरों के सामने हाथ फैलाए गिड़गिड़ाता रहेगा कि इन्सानियत के नाम पर दे दे बाबा !

और अन्ततोगत्वा हुआ वही, जो होना था। भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की शर्त मान कर भारतीय मुद्रा का लगभग 19 प्रतिशत अवमूल्यन करना पड़ा। जिसका सहज परिणाम होगा विदेशी और स्वदेशी ऋण की मूल राशि और देय ब्याज का सहज रूप में नौ प्रतिशत बढ़ जाना। कई सौ करोड़ रुपये के ऋण का भार नया कर्ज मिलने—लेने के पूर्व ही भारतवासियों के सिर पर चढ़ गया। नौ प्रतिशत अवमूल्यन के कारण छत्तीस प्रतिशत महंगाई में वृद्धि की संभावना बताई गई है। अब निर्यात सस्ता

और आयात महंगा हो जाएगा।

इस प्रकार की विषम स्थिति और प्रधानमंत्री का आकस्मिक आचरण ! उन्होंने बार-बार कहा कि वे नेहरू मार्ग पर अडिग हैं। नेहरू जी की नीतियों और योजनाओं को अपनाकर ही देश को आर्थिक और वैज्ञानिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। नेहरू जी के बताए मार्ग पर चलकर ही देश की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण रखा जा सकता है। किन्तु प्रधानमंत्री जी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देते कि गत 44 वर्षों में देश को इस दुर्दशा में लाया कौन ? अब तक देश जिस मार्ग पर चलता आया है, वह मार्ग कौन सा है ? किसका बनाया और बताया हुआ है ? देश की आर्थिक तंगी, मंहगाई, बेरोजगारी और अलगाववाद किस नीति के गर्भ से जन्मे और पले हैं ? क्या आज की यह दुर्दशा गत डेढ़ वर्ष के शासन का ही परिणाम है ? और यदि हां, तो क्या यह सच नहीं है कि गत डेढ़ वर्ष जिन्होंने शासन चलाया, ये सभी नेहरू जी की नीतियों और कार्यशैली के प्रति प्रतिबद्ध लोग थे ? उनकी राजनीतिक मां-कांग्रेस और पिता नेहरू जी ही थे ? क्या वह नेहरू जी ही नहीं थे, जिन्होंने पचास-साठ के दशक के अंत और आरंभ में सहकारी खेती की योजना को सिरे चढ़ा कर भारत के किसानों की आजादी समाप्त करने का प्रयास किया था ? सहकारी खेती के नाम पर कृषि का सरकारीकरण करने की उनकी योजना यदि सफल होने दी गई होती तो आज रूस की तरह भारत भी अन्न के दाने-दाने के लिए तरस रहा होता। धरती मां के साथ किसानों का भावात्मक और भौतिक लगाव समाप्त हो गया होता। उनका भूस्वामित्व समाप्त हो जाता और वे केवल सरकारी कर्मचारी बनकर रह जाते। सार्वजनिक (सरकारी) उद्योगों की तरह भारत की कृषि भूमि भी बंजर बन गई होती।

किन्तु धन्यवाद चौधरी चरण सिंह और तत्कालीन भारतीय जनसंघ के नेता पं० दीनदयाल उपाध्याय को कि वे नेहरू जी की इस देशघाती योजना के सामने बाधा बन गए। चरण सिंह ने नागपुर कांग्रेस अधिवेशन के मंच पर नेहरू जी के सामने नेहरू जी का विरोध करने का साहस किया। जनसंघ के नेता और कार्यकर्ता गांव-गांव घूमे। चरण सिंह किसान नेता बन गए और किसान एक बहुत बड़ी आपदा से बच गए।

नेहरू नीति का पालन और परिणाम

जिस-जिस क्षेत्र में और जहां-जहां नेहरू-नीति का पालन किया गया, वह क्षेत्र बंजर और दिवालिया हो गया। नेहरू जी ने रूस की तर्ज पर योजना आयोग का गठन किया। योजनाबद्ध तरीके से देश की गरीबी, आर्थिक विषमता, देशी-विदेशी कर्ज और घाटा बढ़ना क्या उसी का परिणाम नहीं है कि नेहरू नीति के वारिस नरसिंह राव को कहना पड़ा कि देशवासी अपने पेट पर पट्टी बांधकर आर्थिक संकट का सामना करें ? धन और साधनों के अभाव के कारण ही आठवीं योजना को अवकाश देने की बात चली। उसी कारण आठवीं योजना बनाने की बार-बार योजना बनानी पड़ी, परन्तु

अभी तक योजना बनी नहीं। इस बीच पांच योजनामंत्री (माधव सिंह सोलंकी, रामकृष्ण हेगड़े, मधु दण्डवते, मोहन धारिया और प्रणव मुखर्जी) आए, लेकिन बात दृष्टि पत्र से आगे नहीं बढ़ी। धन ही नहीं तो योजना बने कैसे ? क्या बेरोजगारी, महंगाई, कर्ज और सरकारी उद्योगों का घाटा नेहरू प्रणीत अर्थ संस्कृति की ही देन नहीं है ? भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन किस अर्थनीति के कारण करना पड़ा ?

और देश की एकता और अखंडता ?

देशवासी अभी भूले नहीं हैं लद्दाख के संदर्भ में कही गई नेहरू जी की यह बात कि 'वहां घास का एक तिनका भी नहीं उगता, तो उसके लिए चीन से लड़ने की क्या तुक है?' मातृभूमि और मां को उपयोगिता के तराजू पर तोलने की प्रथा क्या नेहरू जी ने ही नहीं प्रारम्भ की ? क्या अर्थ नीति का राजनीतिकरण करने की प्रक्रिया नेहरू जी के समय ही नहीं शुरू हुई थी ? क्या देश के भूगोल का मजहबी विभाजन नेहरू और कांग्रेस की ही विवशता का नतीजा नहीं है ? कश्मीर, पंजाब, असम, तमिलनाडु, आंध्र, झारखंड आदि की समस्याओं के मूल में किसकी नीति, दृष्टि और दर्शन है ? देश का भाषाई विभाजन किसने किया ? भारत के राष्ट्रीय जीवन दर्शन को प्रतिक्रियावाद, सांप्रदायिक, युद्ध पिपासु, अंधयुगीन, संकीर्ण बताकर छद्म सैद्धांतिकता की पश्चिमी संस्कृति की अंधी गली और सामाजिक प्रतिभा एवं प्रज्ञा को सरकारी बंधक बनाकर देश को 'समाजवादी' गड्ढे में किसने धकेला ? आर्थिक समृद्धि का समान वितरण न हो पाने और सबको समान अवसर न मिल पाने का कारण क्या है ? देशवासियों की आत्मनिर्भरता समाप्त करके उनमें सरकार की ओर देखते रहने की आदत किसने डाली? कृषि उत्पाद बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में सौंपने की योजना किस नीति के प्रकाश में बनी ? बहुराष्ट्रीय कंपनियों को देश का आर्थिक शोषण करने का आमंत्रण किसने दिया ? संस्कृति रक्षा के नाम पर उत्तर पूर्वांचल सहित देश के अन्य पिछड़े क्षेत्रों में ईसाइयों को धर्मान्तरण करने की छूट और देशवासियों के वहां आवागमन पर रोक किसने लगाई ? मजहब के आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता का अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक विभाजन किस नीति ने किया ?

प्रधानमंत्री और उनके साथी देश का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक यथार्थ स्वीकार नहीं करते। असफलता से चिपके रहने को ही वे अपनी सफलता मानते हैं। माहौल बनाया जा रहा है कि देश खतरे में है, इसलिए कोई कुछ न कहे, कुछ न करे। वे पिट गई नेहरू नीति को बंदर के मृत बच्चे की तरह अपनी छाती से चिपकाए हुए हैं। किन्तु उसकी मृत्यु और सड़ांध की चर्चा करने से रोकते हैं।

वर्तमान की आवश्यकताएं

देशवासी अपने देश के लिए कोई भी, किसी भी प्रकार का कष्ट कभी भी सहन

करने के लिए तैयार हैं। लेकिन उसके पहले भारतवासियों की राष्ट्रीय निष्ठा को चुनौती न देकर, उन्हें उनके इस प्रश्न का उत्तर दिया जाए कि देश की पैंतालीस करोड़ आबादी ने पहले से ही अपने पेट पर पट्टी बांध रखी है, उसे दोनों जून की रोटी नहीं मिल पा रही थी, अब शेष लोगों को अपने पेट पर पट्टी बांध लेने की नौबत क्यों आई ? उन्हें अपनी आर्थिक और राष्ट्रीय दुर्दशा की अनदेखी करने के लिए क्यों कहा जा रहा है ? देशवासी भूख सहन कर लेंगे, अपनी आंख मूंद लेंगे, लेकिन उन्हें यह विश्वास कैसे हो कि पेट पर पट्टी बांध लेने की सलाह देने वाले लोग भी अपना पेट भरते रहने और राजनीतिक छल का सिलसिला समाप्त कर देंगे ? वे अपनी आंखें मूंद सकते हैं, लेकिन उन्हें यह विश्वास तो होना ही चाहिए कि कोई आंख खोलकर यथार्थ को देख रहा है और 'काने को काना' बताकर उसका सामना कर रहा है। यदि पेट पर पट्टी बांधने और आंख मूंदने की सलाह देकर उसे किसी गहरे गड्ढे में धकेलने की साजिश की जा रही हो तो, वह पेट पर पट्टी क्यों बांधे और आंखें क्यो मूंदे ?

आवश्यकता पेट पर पट्टी बांध लेने और यथार्थ से डरकर आंख मूंद लेने की नहीं है। आवश्यकता है देश की क्षमता, उसके तप-त्याग, राष्ट्रीय ऊर्जा, कर्तव्य और समर्पण का आह्वान करने की। अपनी भूलों और चूकों से चिपके रहेंगे तो देश को आर्थिक दुर्दशा और आत्म सम्मान के अवमूल्यन के कारण उत्पन्न हीन भावना से मुक्त कर पाना संभव नहीं होगा। आवश्यकता है अपने पूर्वजों और श्रेष्ठ पुरुषों का स्मरण करने की, आवश्यकता है अपनी राष्ट्रीय परंपराओं से जुड़ने की, आवश्यकता है राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का अहसास करने की, आवश्यकता है आत्मबोध और राष्ट्रीय चारित्र्य की,आवश्यकता है संपूर्ण देश को एक जीवन्त इकाई मानने और राष्ट्र प्रेम को उपयोगितावाद की मारक प्रवृत्ति से मुक्त कराने की। आवश्यक है कि हम अपने देश को भूमि का टुकड़ा और देशवासियों को केवल मतदाता न मानकर उन्हें श्रीराम कृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, बंकिम चन्द्र और श्री अरविन्द आदि की जीवित जागृत देश माता मां भगवती और यहां के निवासियों को एक ही मां के कोख से जन्मी संतानें मानें और ये सभी अपने-अपने हित संबंध, अपने राष्ट्र के हित-संबंधों के साथ जोड़ें। आवश्यकता है यहां के समाज को आक्रमणकारी और आक्रांत की अविश्वास और भय की भावना से मुक्त करने की। देशवासियों को प्रतियोगिता के खरल में न घोंटकर उन्हें परस्परावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाकर, उनका आत्मसम्मान जगाकर ही भूख और भय से मुक्त भारत का निर्माण किया जाना संभव है। कर्ज लेने की प्रक्रिया, ब्याज चुकता करते रहने की प्रक्रिया को जन्म देती है ब्याज धीरे-धीरे मूल धन बनता जाता है और उसे चुकता करने के लिए कर्ज लेते रहना पड़ता है। एक दिन ऐसा आता है कि जब महाजन कर्ज देना अस्वीकार करके कर्जदार की संपत्ति और सामान कुर्क करा देता है जो बात किसी व्यक्ति और परिवार पर लागू

होती है, वही राष्ट्र और सरकार के संदर्भ में भी लागू होती है।

कर्ज के साथ ब्याज ही नहीं, शर्त भी जुड़ी होती है। कर्ज और अनुदान व्यक्ति, संस्था और देश को दया का पात्र बना देता है दया का पात्र बनने का अर्थ है दयनीय बन जाना। दयनीयता का अर्थ है किसी व्यक्ति और राष्ट्र की जन्मपत्री का बन्द हो जाना। इस समय भारत अपनी जीवन यात्रा और जन्मपत्री के इसी बिन्दु पर खड़ा है किन्तु अभी सब कुछ समाप्त नहीं हुआ है, बहुत कुछ शेष है। भूख और गरीबी में संतोष और कष्ट को भगवान का वरदान मानकर जीवन यापन करने वाले भारत के राष्ट्रीय समाज के अन्तर्यामी का छल-छद्म को छोड़कर आहवान किया जाना चाहिए। देशवासियों से कुछ छिपाया न जाए। उन्हें पैसे-पाई का हिसाब दिया जाए। उत्पादन और उपयोग की स्थिति स्पष्ट शब्दों में बताई जाए। हजारों वर्ष प्राचीन राष्ट्रीय यथार्थ के साथ अकपट भाव से उन्हें जोड़ा जाए। नेहरू मार्ग एकमेव अंतिम मार्ग नहीं है, विशेषकर तब-जब इसी कारण देश टूटा है, टूट रहा है, आर्थिक दीवालियापन राष्ट्र के अस्तित्व को निगल रहा है, चरित्र का संकट देश के पवित्र राष्ट्रीय चरित्र को भ्रष्ट कर रहा है, भाई-भतीजावाद, परिवारवाद और दलवाद को देश से अधिक महत्व मिल रहा है। विदेशी सहायता और ऋण के रक्तदान द्वारा देश की मर चुकी अर्थव्यवस्था का बिगड़ा हुआ शरीर साफ-साफ दिखाई दे रहा है, पूरा का पूरा शरीर नंगा है किन्तु उसे वस्त्राच्छादित बताते लाज नहीं आती। शरीर के भीतरी भाग में कैंसर है, मौत, किसी एक व्यक्ति की नहीं समूचे देश की मौत सामने खड़ी है किन्तु उसे आधुनिकतम वैज्ञानिक विकास की जीवन रेखा बताने की प्रवंचना की जा रही है।

भारत का राष्ट्रीय मन किसी भी 'एकमेवता' का निषेध करता है यह प्रयोग की भूमि है। भारत नए-नए मार्गों का निर्माण करते रहने की प्रयोगशाला है। यहां चाणक्य और चार्वाक साथ-साथ चलते हैं। यहां नास्तिक-आस्तिक का सह अस्तित्व है। यहां ईश्वरवादी-निरीश्वरवादी, अराजकतावादी सभी को रहने और प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है, किन्तु इस प्रयोगशाला को प्रदूषित करने, तोड़ने और केवल अपनी बात या अपना विचार थोपने की अनुमति नहीं है। प्रधानमंत्री नरसिंह राव और उनके दल के लोगों ने जो कुछ कहा है वह निर्वस्त्र और नंगे राजा के यथार्थ की ओर से आंख मूंद लेने जैसी बात है और डा० मनमोहन सिंह का कथन उस मासूम बच्चे की तरह है जो निर्भय और भयमुक्त भाव से भरी भीड़ में यह कह गया कि राजा नंगा है। देश डा० मनमोहन सिंह के प्रति आभारी होगा, किन्तु जो लोग यथार्थ पर पर्दा डाल रहे हैं, देशवासी उन पर लानत भेजें तो कोई आश्चर्य नहीं।

14 जुलाई 1991

छल-छद्म की जमीन पर खड़े ये लोग

ये पत्रकार हैं। इनका कार्य समाचार लिखना नहीं, समाचार गढ़ना है। ये अपने मालिक और सम्पादक का रुख देखकर समाचार गढ़ते हैं। इन्हें समाचार की सत्यता और शुद्धता से अधिक चिन्ता किसी दल या नेता की छवि बनाने या बिगाड़ने की होती है। ये निष्पक्ष (?) होते हैं, किन्तु किसी इस या उस दल और नेता के हिताहित के संदर्भ से पूरी तरह जुड़े होते हैं।

पार्श्वभूमि छिपा गए

यह स्थापना मेरी नहीं, एक पत्रकार की स्वीकृति है। ये पत्रकार हैं नवभारत टाइम्स के लखनऊ स्थिति संवाददाता श्री नरेन्द्र भदौरिया। दो जुलाई, 1991 के नवभारत टाइम्स में 'वाजपेयी उत्तर प्रदेश सरकार पर बरसे' शीर्षक से एक समाचार छपा। समाचार छपने के बाद भाजपा के श्री श्याम नन्दन सिंह श्री भदौरिया से मिले। पूछा – "इस समाचार का आधार क्या है ?" वे बोले – "वाजपेयी जी ने कार्यकर्ताओं के बीच बोला था।" श्याम नन्दन सिंह ने पूछा 'क्या आपने श्री वाजपेयी के स्वर और लहजे की ओर ध्यान दिया था ? श्री वाजपेयी ने जो कुछ कहा, भाजपा के चुनाव घोषणा पत्र में दर्ज है कि मंदिर बनाना सरकार का काम नहीं है, सरकार मंदिर निर्माण के मार्ग में आने वाली बाधाएं दूर करेगी। इसमें अवाक् रह जाने जैसी क्या बात थी ? एजाज रिजवी से उन्होंने विनोद के लहजे में पूछा था, 'आपने भी शपथ ग्रहण के समय 'जय श्री राम' का नारा लगाया था, अयोध्या भी गए थे, श्री राम लला का दर्शन भी किया था। मुसलमान राम को इस देश का महापुरूष मानें, यह ठीक है, किन्तु राम की पूजा करने के लिए हम मुसलमानों को विवश नहीं करेंगे। यदि रामभक्त मानकर मुसलमान आपका (रिजवी) हुक्का-पानी बन्द कर दें तो आप क्या करेंगे ? अपनी बिरादरी में आपकी मान्यता बनी रहेगी, तभी भाजपा के प्रति उनके मन की भ्रांतियां आप दूर कर सकेंगे। अपनी बिरादरी से कट जाएंगे, तो आप क्या करेंगे ?'

पत्रकारिक नैतिकता के खिलाफ

यही वह बिन्दु है जिसका प्रारम्भ में उल्लेख किया है। श्री भदौरिया ने श्री

वाजपेयी का भला करना चाहा था, किन्तु पासा उल्टा पड़ा। उनके समाचार ने वाजपेयी को सन्देहों के कटघरे में खड़ा कर दिया। देश का आम आदमी और भाजपा कार्यकर्ताओं को भी श्री वाजपेयी के इस 'कथित कथन' से चोट लगी। श्री भदौरिया ने वाजपेयी की छवि बिगाड़ दी, वे वाजपेयी को 'गणपति' बनाना चाहते थे, 'बन्दर' बना दिया। अच्छा हो पत्रकार और संवाददाता केवल समाचार लिखें, समाचार के बहाने टिप्पणी लिखने का प्रयोग समाचार पत्र की विश्वसनीयता को आघात पहुंचाता है। आज यही हो रहा है। समाचारों में समाचार कम, समाचार के बहाने कल्पनाएं और विचार अधिक लिखे जा रहे हैं। सम्पादक और टिप्पणीकार का कार्य संवाददाता करने लगे हैं। यह स्वस्थ पत्रकारिता की मान्यताओं के अनुकूल नहीं है।

श्रीराम मंदिर निर्माण और अयोध्या के संदर्भ में श्रीराम आन्दोलन विरोधी खेमा तरह-तरह के अप-प्रचार करके आन्दोलन को बदनाम करने का हर संभव प्रयास करता आया है। जनता दल, राष्ट्रीय मोर्चा, वाममार्गी मोर्चा, कांग्रेस, उससे जुड़े राजनीतिज्ञ एवं बुद्धिजीवी उत्तर प्रदेश के भाजपा मंत्रिमण्डल के साथ मुख्यमंत्री कल्याण सिंह और राष्ट्रीय अध्यक्ष डा० मुरली मनोहर जोशी का अयोध्या जाकर 'श्रीराम लला विराजमान' का दर्शन एवं श्रीराम जन्म स्थान पर मंदिर का निर्माण करने के मार्ग की बाधाओं को दूर करने का संकल्प दोहराए जाने को संविधान और सेकुलरिटी के विरूद्ध बताया गया।

क्या यह सच है ? क्या अपने देश के मर्यादा पुरूषोत्तम का दर्शन करना संविधान और सेकुलरिटी के विपरीत है? देश के सभी वर्गों और वर्णों के एकात्म होने का क्या संविधान में निषेध है ? क्या किसी मुसलमान का अपने नमाज, रोजा, कुरान, पैगम्बर, ईद,-बकरीद और दूसरे मजहबी कर्मकाण्डों के प्रति आस्था रखते हुए भारत की मूलधारा का प्रतिनिधत्व करने वाले पुरूषों और प्रतीकों के साथ स्वयं को स्वेच्छा से सम्बद्ध करना सेकुलरिटी को चोट पहुंचाना है ? प्रधानमंत्री बनने के बाद दिल्ली की जामा मस्जिद में जाकर इमाम की चरण वन्दना करने से सेकुलरिटी को बल मिलता है और श्रीराम का दर्शन करने से सेकुलरिटी समाप्त हो जाती है ? राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और दूसरे नेता कब्रिस्तानों, मजारों, मस्जिदों पर चादरें चढ़ाते, दण्डवत करते घूमते हैं तो 'धर्मनिरपेक्षता' को पुष्ट करना माना जाता है, यदि वे किसी हिन्दू देवता या संत के आश्रम में चले जाते हैं तो उससे साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है ?

यही है वह छद्म धर्मनिरपेक्षता, जिसे लेकर देश में बहस छिड़ी है।

क्या है सेकुलरिटी ?

कुछ लोगों के लिए श्रीराम सत्ता और वोट-राजनीति की रणनीति हो सकते हैं, लेकिन देश के आम आदमी की वे प्रेरणा हैं। वे लौकिक वैभव और पारलौकिक

चिरन्तन सुख का माध्यम हैं। वे भारत के लिए विधाता का दान नहीं, भारत के विधाता हैं। श्रीराम भारत राष्ट्र के वटवृक्ष हैं। उन्हीं से भारत का वंश पहचाना जाता है। यदि इस देश के समस्त निवासियों का एक मन और एक प्राण होकर श्रीराम को अपना प्रेरणा पुरूष मानना, जाति और मजहबनिरपेक्ष होकर उनका दर्शन करने जाना सेकुलरिटी विरोधी है तो फिर सेकुलर होना किसे कहेंगे ? यदि राष्ट्रीय धारा में घुल-मिल जाना राष्ट्रीयता नहीं है तो क्या मजहब को राष्ट्र मानकर, मजहब के आधार पर राजनीतिक सौदेबाजी करना राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकात्मता का परिचायक है, एक ही वृक्ष की शाखा, पत्तियों और फूलों का अपने मूल से कटकर अपनी अलग अस्मिता पर अभिमान करना राष्ट्रीयता और राष्ट्रभक्ति है ?

राम-आंदोलन का आयाम

श्रीराम आंदोलन और मंदिर-निर्माण का आयाम मूर्तिपूजा या किसी सम्प्रदाय तक सीमित नहीं है। श्रीराम सम्प्रदाय नहीं है, राम के आदर्शों पर आचरण करने के लिए सम्प्रदाय बने हैं। अयोध्या केवल एक शहर नहीं है, वह राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता की साकार परिभाषा और रामराज्य की आधारभूमि हैं। श्रीराम अपने समय के ही सत्य नहीं थे, वे समयनिरपेक्ष शाश्वत सत्य हैं। कदम-कदम पर उन्होंने सृष्टि और मानव मर्यादा के प्रतीक खड़े किए। निष्प्राणों को प्राणवान किया। जड़ को चेतन किया। वंचितों को बाहों में भर लिया। उपेक्षितों को गले लगाया। अपमानितों का आलिंगन किया। जनहित के लिए वह सब कुछ किया जो किसी श्रेष्ठ व्यक्ति, शासक और शास्ता को करना चाहिए।

जो दृष्टि अंधी है, जो दर्शन बंजर है, जिसने दुनिया के देशों को अस्तित्वहीनता के संकट में डाल दिया, जिसके कारण रूस और पूर्वी यूरोप के देश गृहयुद्ध की आग में जलने को विवश हैं, उसके संदर्भ में भारत को न देखा जाए। तबाह हो गए देशों और तबाह कर देने वाले दर्शनों की तबाही से बोध प्राप्त करें।

भारत सम्प्रदायों की जमीन नहीं, धर्म की भूमि है। यह हजारों सम्प्रदायों का देश है। भारत के 'महाकुंभ' में एक-दो और सम्प्रदायों को स्थान मिल जाना सहज और स्वाभाविक है। मुहम्मद और ईसा के सम्प्रदाय अपनी अलग मजहबी पहचान सुरक्षित रखते हुए भी प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में अपना खेमा गाड़कर भाषण प्रवचन और प्रचार कर सकते हैं। राम की भूमि पैगम्बरों का निषेध नहीं करती। जैसे भारत राज्यों का राष्ट्र है वैसे ही हिन्दू समाज सम्प्रदायों का महासंघ है। न भारत विभिन्न राष्ट्रों का राज्य है, न हिन्दू विभिन्न समुदायों का सम्प्रदाय।

संविधान विरोधी कार्य करते रहना वर्तमान भारत के राजनीतिक चरित्र का अभिन्न अंग है। संविधान के अनुच्छेद 18 का निर्देश है कि "राज्य सेना या विद्या सम्बन्धी सम्मान के सिवाय और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा। भारत का कोई

नागरिक किसी विदेशी राज्य की कोई उपाधि प्राप्त नहीं करेगा।"

श्रीराम मन्दिर निर्माण के संदर्भ में संविधान विरोधी शोर मचाने वाले लोग भारत रत्न, पद्म विभूषण और पद्मश्री जैसी उपाधियां देने के संविधान विरोधी कार्य पर चुप क्यों है ? जिन मोरारजी देसाई ने अपने प्रधानमंत्रित्व काल में भारत रत्न, पद्म विभूषण और पद्मश्री जैसी उपाधियों को समाप्त करके संविधानसम्मत कार्य किया था, उन्होंने 'निशान-ए-पाकिस्तान' स्वीकार करके संविधान की अवमानना की तो संविधान के झण्डावाहक केवल खुसफुस करके मौन क्यों हो गए ? अमरीका, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि लोकतांत्रिक देशों की सरकारें यह कार्य नहीं करतीं। योग्य और उत्तम पुरूषों को सम्मान और उपाधि प्रदान करने का कार्य वहां की सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएं करती हैं। स्वतंत्र भारत में यह कार्य विरोध के बावजूद नेहरू जी ने प्रारंभ किया था।

संविधान के आदर और अवमानना से जुड़ी बातें और भी हैं। अनुच्छेद 44 में देश के सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता का निर्माण करने का आश्वासन दिया गया है संविधान को लागू हुए चालीस वर्ष बीत गए, अभी तक यह धारा सूखी पड़ी है। संविधान की दुहाई देने वाले ये लोग मौन क्यों हैं ? ये लोग संविधान की इस धारा का सम्मान क्यों नहीं करते ? शाहबानों के मामले में इस धारा की धज्जियां उड़ाकर क्या संविधानसम्मत कार्य किया गया था ? गोवध पर प्रतिबंध लगाने का आश्वासन देने वाली 48वीं धारा भी तो भारतीय संविधान का ही अंग है, उसे अभी तक लागू क्यों नहीं किया गया? संविधान में यह घोषणा निहित है कि पन्द्रह वर्ष बाद अर्थात् 1965 तक हिन्दी को सम्पर्क भाषा का स्थान प्रदान कर दिया जाएगा, किन्तु उसके बाद के 26 वर्षों में भी हिन्दी को उसका संविधानप्रदत्त स्थान न मिलना, क्या संविधान का आदर करना है ? अपनी मातृभाषा में शिक्षित युवकों के लिए नागरिक सेवाओं का द्वार बन्द कर दिया जाना संविधान विरोधी होते हुए और संसद द्वारा 1968 तथा 1991 की जनवरी में भारतीय भाषाओं को नागरिक सेवा परीक्षा का माध्यम बनाने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किए जाने के बावजूद उसका क्रियान्वयन न किया जाना क्या संविधानसम्मत है ? 1960 में राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए आदेश के अन्तर्गत संसद के विधेयकों को सभी मान्य भारतीय भाषाओं में प्रसारित किया जाना था। इस प्रक्रिया का अभी तक प्रारंभ न होना किस संवैधानिकता का परिचायक है ? सर्वोच्च न्यायालय में राजभाषा का प्रयोग किए जाने सम्बन्धी कोई अधिनियम न बनाना क्या संविधान के निर्देश और भावना का उल्लंघन करना नहीं है ?

उदाहरण और भी हैं। स्पष्ट है कि संविधान, लोकतंत्र, सेकुलरिटी, राष्ट्रवाद, राष्ट्रभक्ति और साम्प्रदायिकता आदि को केवल सत्ता समीकरण ओर वोट-राजनीति के लाभालाभ की तुला पर तोला जाता है। इसी कारण राष्ट्रपति जी का संजय गांधी की समाधि पर जाना, उस पर फूल चढ़ाना संविधानसम्मत और श्रीराम का दर्शन करने

जाना संविधान-विरोधी होता है। इसी कारण मजार, मस्जिदें और गिरजाघर बनाना सेकुलरिटी तथा संविधान सापेक्ष और श्रीराम के जन्म स्थान पर श्रीराम मंदिर बनाने की प्रक्रिया में किसी सरकार द्वारा बाधाएं हटाने के प्रयास को साम्प्रदायिक और संविधान-विरोधी कहा जाता है। मुहम्मद पैगम्बर और ईसा मसीह के भक्तों का भारत की राष्ट्रीयता अर्थात् राम की धारा में शामिल होना भारत के छद्म सेकुलरी और सत्तालोलुप नेताओं की राजनीति को रास नहीं आता। इस कारण राम मन्दिर निर्माण उनके लिए साम्प्रदायिक और संविधान-विरोधी है। मुहम्मद पैगम्बर के जन्म दिन पर सार्वजनिक अवकाश की घोषणा तथा श्रीराम और श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव पर अवकाश न देना, उनके लिए 'सर्वधर्म समभाव' होता है।

वे इस्लाम के हरे झण्डे को भारत के भगवाध्वज के साथ सम्मिलित नहीं होने देना चाहते। क्यों ? केवल इसलिए कि भयमुक्त मुसलमान उनका थोक वोट न रहकर भारत का राष्ट्रभक्त नागरिक बन जाता है और इनकी राजनीति भारत के जागृत तथा भयमुक्त नागरिक का निषेध करती है। गरीबी, कंगाली, आतंक और अलगाववाद का संदर्भ और इनकी जन्मभूमि भी यही है। कश्मीर से केरल और द्वारिका से कामाख्या तक यही छल छद्म चल रहा है। कांग्रेस सहित जनता दल, राष्ट्रीय मोर्चा, वाममार्गी मोर्चा, लीगी, खालिस्तानी, जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट, अल्फा, नक्सलवादी आदि इस छल छद्म का झण्डा लिए खुलेआम घूम रहे हैं। ये सभी तत्व अलग-अलग तो दिखते हैं किन्तु भारत राष्ट्र और राष्ट्रीय अस्मिता पर संयुक्त रूप से एकजुट प्रहार करने से कभी बाज नहीं आते।

महत्व इस बात का ही नहीं है कि श्री वाजपेयी ने क्या कहा और किस लहजे में कहा, महत्व इस बात का भी है और ध्यान देने की बात यह है कि राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रभक्ति, भारत के राष्ट्रीय समाज, राष्ट्र की मुख्यधारा से जुड़ा शाश्वत और इतिहाससिद्ध सत्य कुछ लोगों का खलता क्यों है ? किसके हाथ का खिलौना बनकर वे यह खेल खेल रहे हैं ?

श्री वाजपेयी को माध्यम बनाकर छाया द्वन्द्व करने वाले लोग वास्तविक दंगल नहीं जीत सकते। छवि केवल 'छाया' होती है, वास्तविकता नहीं। किसी पत्रकार या बुद्धिजीवी का यह कार्य नहीं है कि वह अपनी कल्पना के अनुरूप किसी की छवि बनाए-बिगाड़े। जब सच्चाई से दो-चार होना पड़ता है तो केवल वास्तविकता ठहरती है, छवि (छाया) तिरोधान हो जाती है। यह केवल श्री वाजपेयी का ही नहीं, सर्वमान्य और सर्वानुभूत सत्य है।

जो लोग मंदिर, साम्प्रदायिकता, सेकुलरिटी, राष्ट्रवाद, भूख, भय, बीमारी के संदर्भ में सर्वश्री वाजपेयी, आडवाणी और डा० जोशी को दो अलग-अलग जमीन पर खड़ा दिखाना चाहते हैं, जो लोग वाजपेयी की उदार और आडवाणी-जोशी की कट्टरपंथी छवि बनाना और दिखाना चाहते हैं, वे सत्य की नहीं, छल की जमीन पर

खड़े हैं। वे यह भूल जाते हैं कि जो अयोध्या और श्रीराम का सत्य है, वही वाजपेयी, आडवाणी, जोशी और भारत राष्ट्र का भी सत्य है। 'तो सम को उदार जग माही' लिखकर तुलसी बाबा ने भी उसी सत्य की स्थापना की है। न उदारता के उपासकों का कठमुल्ला बनना संभव है और न मर्यादा पुरूषोत्तम की प्रेरणा से जुड़े समाज का साम्प्रदायिक और मर्यादाहीन होना। अपना अपराध राम आंदोलन के मत्थे मढ़कर गिरोहबन्द राजनेता और साम्प्रदायिक तत्व यदि स्वयं को अपराधमुक्त हुआ मान लेना चाहते हैं तो इस गलतफहमी में रहने के लिए वे स्वतंत्र हैं। सच्चाई का सामना उन्हें आज नहीं तो कल, करना ही होगा और इसका परिणाम भी, वही होगा जो सत्य और न्याय का अनादर करने का परिणाम अब तक होता आया है।

21 जुलाई 1991

घर में राम मन्दिर, बाहर बाबरी मस्जिद?

श्री राम आन्दोलन और अयोध्या प्रकरण भारत राष्ट्र की केवल अस्मिता, राष्ट्रीयता, राष्ट्रभक्ति, सिद्धान्तों और नीतियों के साथ ही नहीं, भारतीय राजनीति के वर्तमान चरित्र एवं राजनीतिक संस्कृति के साथ भी सम्बद्ध है। राजनेताओं और राजनीति का यथार्थ सभी ने, विदेशियों ने भी इस संदर्भ में साफ-साफ देखा और स्पष्ट शब्दों में सुना है।

भारत के सत्तावादी नेताओं की वोट लोभी राजनीति ने देशवासियों को जिस गलीज गड्ढे में धकेलने का प्रयास किया और अब भी जिस प्रकार के प्रयास किए जा रहे हैं, उसे पाखण्ड के अतिरिक्त और कुछ कहा नहीं जा सकता।

वैसे तो यह आन्दोलन साढ़े चार सौ वर्ष से भी अधिक पुराना है और श्रीराम जन्मभूमि की मुक्ति के लिए अब तक (तीस अक्तूबर और दो नवम्बर 1990 की घटनाओं सहित) हुए सतहत्तर युद्धों में लगभग चार लाख रामभक्त शहीद हो चुके हैं। किन्तु प्रस्तुत विषय का विवेचन करने के लिए इस मुक्ति आन्दोलन के इतिहास के इतने लम्बे दौर में जाने की जरूरत नहीं है। इसके लिए केवल 1984 से अब तक के घटनाक्रमों का संकेत मात्र ही पर्याप्त है।

सन् 1984 से 1986 के प्रारम्भ तक इस आन्दोलन को सभा-सम्मेलनों, प्रदर्शनों और रथयात्राओं तक ही सीमित माना गया। इन्दिरा गांधी ने इसे उपेक्षा और उदासीनता के मरूस्थल में सुखा देने का हर संभव प्रयास किया। श्री राम-जानकी रथ गाजियाबाद में रोक दिया गया। श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति और विश्व हिन्दू परिषद् तत्कालीन राष्ट्रीय शोक में शामिल हुई। इंदिरा जी की हत्या के बाद चुनाव कराए गए। श्रीराम आन्दोलन चुनाव के काल में स्थगित रहा। श्रीराम आन्दोलन को लेकर आन्दोलन से जुड़े किसी व्यक्ति ने चुनाव के दौरान एक शब्द भी नहीं बोला। इस राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आन्दोलन को राजनीति निरपेक्ष रखने का हर संभव प्रयास किया गया। किन्तु यह प्रयास एकपक्षीय था। कुछ राजनीतिक दल चुप रहे और अधिकांश दलों ने इस आन्दोलन पर हिंसा, हत्या, साम्प्रदायिकता, विभाजक, विघटनकारी और मुस्लिम विरोधी होने का आरोप लगाना प्रारम्भ कर दिया। राष्ट्रीय स्वाभिमान की स्थापना और पराजय के कलंक के परिमार्जन हेतु चलाए गए यज्ञरूप अभियान को

वोट राजनीति का बन्दी बनाया जाने लगा।

पहला चरण

राम आन्दोलन का पहला चरण था श्रीराम जन्मभूमि पर लगाए गए ताले को खोलकर श्रीराम लला विराजमान का मुक्त दर्शन कराने की अंतिम तिथि 1989 की शिवरात्रि का निश्चित किया जाना। महन्त रामचन्द्र दास परमहंस ने शिवरात्रि पर ताला न खुला तो आत्मदाह करने की घोषणा की। अयोध्या से लखनऊ आया रामरथ गांव-गांव घूमने लगा। राजनेता आरोप लगाने लगे कि न्यायालय के आदेश से लगा ताला तोड़ा गया तो प्रदेश और देश रक्त का तालाब बन जाएगा। मुसलमानों की मस्जिद हिन्दुओं को नहीं दी जा सकती। प्रकारान्तर से राजनेताओं ने हिंसा, हत्या, दंगा और अग्निकाण्ड का बीजारोपण किया कि रामरथ पर मुसलमान आक्रमण करें, दंगा हो और आन्दोलन दंगे की आग में जलकर रक्त की नदी में बह जाय। किन्तु यह कुटिल चाल सफल नहीं हुई। रामरथ का श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के साथ सभी ने, मुसलमानों ने भी, स्थान-स्थान पर स्वागत किया। जन ज्वार के बढ़ते दबाव ने तत्कालीन वीर बहादुर सरकार को ताला खोलने के लिए विवश कर दिया। मामला न्यायालय में ले जाया गया। न्यायधीश के यह पूछने पर कि श्रीराम जन्मभूमि का ताला किसके आदेश पर और क्यों लगाया गया, सरकार ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक फरवरी 1986 को सैंतीस साल से लगा अवैध ताला हटा लिया गया। न्यायालय के इस निर्णय के विरोध में बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी का जन्म हुआ। बाबरी कमेटी के जन्म की एकमात्र जमीन न्यायालय के निर्णय का विरोध ही थी, उसके पूर्व मुसलमान चुप थे। आजादी और भारत विभाजन के बाद पहली बार राजनीतिक मुसलमान किसी एक मंच पर एकत्र हुए।

तब श्री वीर बहादुर सिंह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। लखनऊ से लेकर दिल्ली तक की चिन्तन धारा एक ही थी कि मुसलमान नाराज न होने पाएं। कमरे में कहा जाता— "श्रीराम जन्मभूमि हिन्दुओं को ही मिलनी चाहिए।" बाहर बोला जाता— "मस्जिद हटाकर या गिराकर मंदिर बनाने की अनुमति नहीं दी जाएगी।" राम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति से कहा जाता— "आन्दोलन को और तेज करो।" बाबरी मस्जिद वालों को बताया जाता— "डटे रहो मस्जिद तुम्हारी ही है।"

कांग्रेस और इन्दिरा कांग्रेस, कम्युनिस्ट और कठमुल्ला राजनीति से जुड़े लोगों ने पहले तो मंदिर का औचित्य ही अस्वीकार कर दिया, बाद में जब जनता का दबाव बढ़ा तो बोले— "मंदिर बनाए जाने में किसी को कोई आपत्ति नहीं है, पास की किसी और जमीन पर बना लिया जाए।" जैसे अयोध्या और देश में राम मंदिरों का अभाव ऊथवा कमी हो कि एक मंदिर और बना लो!

वीर बहादुर सिंह हटे तो नारायण दत्त तिवारी मुख्यमंत्री हुए। राजीव ने मंदिर के

मामले का समाधान कार्य अपने गृहमंत्री बूटा सिंह को सौंपा बैठकों के अनेक दौर चले। कभी अलग-अलग, कभी साथ-साथ। कभी सरकारी स्तर पर, कभी गैर-सरकारी स्तर पर। बूटा सिंह श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति और विश्व हिन्दू परिषद् को वार्ता के लिए बुलाते तो कहते— "निस्संदेह वह राम मन्दिर है। श्रीराम के जन्मस्थान पर श्रीराम का मन्दिर बनना ही चाहिए। मैं रामभक्त पहले हूं, सिख बाद में।" बाबरी मस्जिद वालों से बात करते तो कहते— "बाबरी मस्जिद की रक्षा तो होनी चाहिए। क्या प्रमाण है कि श्रीराम वहीं पैदा हुए थे, जहां बाबर ने मस्जिद बनवाई थी?"

9 नवम्बर, 1989 शिलान्यास की तिथि घोषित की गई तो मामला और अधिक गंभीर हो गया। तब चुनाव सिर पर थे। मुसलमानों का वोट सामने नाचने लगा था। हिन्दुओं की सहायता भी चाहिए थी। राजीव और बूटा सिंह देवराहा बाबा सहित अनेक साधु-सन्तों के पास दौड़े कि शिलान्यास की तिथि टाल दी जाए। दोनों ने देवराहा बाबा के चरण अपने मस्तक पर धारण किए। बोले— "बचाइए बाबा, त्राहिमाम!" विश्वनाथ प्रताप सिंह ने भरपूर प्रयास किया कि शिलान्यास न हो। सभी दलों और संस्थाओं में निरपवाद रूप से ऐसे लोग थे जिन्हें राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतिष्ठा से अधिक महत्वपूर्ण लगा राजीव के खानदानी शासन का अन्त। बूटा सिंह ने बन्द कमरे में और देवराहा बाबा से उनके आश्रम में बार-बार निवेदन किया— "आप शिलान्यास की तिथि टाल दें। न्यायालय का निर्णय हमारी जेब में है। चुनाव के बाद श्रीराम जन्मभूमि हम विश्व हिन्दू परिषद् को सौंप देंगे।" और वहां से वापस आकर बाबरी मस्जिद के लोगों से कहा— "आप लोग अपना दबाव बनाए रखें। राजीव जी चाहते हैं कि मस्जिद आपको मिल जाए।" और फिर शिलान्यास की तिथि के दो दिन पूर्व उच्च न्यायालय का निर्णय कि जिस स्थान पर शिलान्यास होना है, वह भूमि विवादित है। बूटा सिंह और नारायण दत्त तिवारी ने कहा— "आपने जिस स्थान पर झण्डा गाड़ रखा है, उससे केवल एक फुट हटकर शिलान्यास कर लें तो मुसलमानों को मनाने में आसानी होगी और आपको मन्दिर बनाने की अनुमति भी मिल जाएगी। रामभक्तों के संकल्प का दबाव बढ़ा तो 'विवादित स्थल' को विवादमुक्त घोषित कर दिया गया। किन्तु शिलान्यास होते ही उसे पुनः-विवादित स्थल' कहा जाने लगा।"

1989 के चुनाव हुए। राजीव की कांग्रेस और बूटा सिंह भी चुनाव हार गए। न्यायालय का निर्णय उनकी जेब में ही पड़ा रह गया। मन्दिर-निर्माण करने की अनुमति देने अथवा रास्ता साफ करने का दायित्व विश्वनाथ प्रताप सिंह पर आ पड़ा।

विश्वनाथ प्रताप प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने अपनी ओर से चार महीने का सीमित समय मांगा कि इस अवधि में समस्या का समाधान निकाल लेंगे। चार महीने बीत गए। किन्तु इस अवधि में कोई सार्थक बैठक नहीं हुई। मुस्लिमों के मजहबी नेताओं से सम्पर्क करके उनका फतवा लेने की बात दोहराई जाती रही। हिन्दुओं के पक्ष में यह फतवा प्राप्त कर लेने का दावा बूटा सिंह भी करते रहे थे। किन्तु कोई भी फतवा

अभी तक प्रकाश में नहीं आया। विश्वनाथ प्रताप सिंह को दिए गए चार महीने बीते। 23-24 जून को हरिद्वार में 30 अक्तूबर, 1990 कारसेवा की तिथि निश्चित की गई। छः जून को चार महीने पूरे हुए थे। पांच महीने का समय और मिला। इस बीच विश्वनाथ प्रताप सिंह कमरे में कहते— "भाई वहां मस्जिद है ही कहां? वहां तो मंदिर है। वहां श्रीराम लला विराजमान हैं। श्रीराम की पूजा चल रही है। श्रीराम की मूर्त्ति किसी भी कीमत पर हटाई नहीं जा सकती।"

किन्तु विश्वनाथ प्रताप सिंह का यथार्थ यह नहीं, कुछ और था। उनका यथार्थ है घर में राम मन्दिर, बाहर बाबरी मस्जिद। घर में कुछ और, घाट पर कुछ और, संसद में कुछ और, सड़क पर कुछ और। कमरे में कहते— "आडवाणी जी आप कुछ दिन रूक जाइए, मैं भी कारसेवा करने आपके साथ अयोध्या चलूंगा।" बाहर बोलते— "बाबरी मस्जिद को हाथ नहीं लगाने दूंगा।" विश्वनाथ प्रताप और मुलायम सिंह के बीच मुसलमानों का नेता बनने की होड़ लग गई। मुलायम सिंह एकान्त में कहते— "यदि मुझसे बात की जाती तो मामला सुलझ जाता।" बाहर बोले— "किसी भी कीमत पर मंदिर नहीं बनने देंगे। हर कीमत पर मैं सेकुलरिटी और अल्पसंख्यकों की रक्षा करूंगा।" यह प्रतियोगिता जीतने के लिए ही विश्वनाथ प्रताप सिंह ने श्री आडवाणी को लालू प्रसाद से बिहार में गिरफ्तार करवाया कि मुसलमानों का पक्षधर होने का श्रेय मुलायम सिंह को न मिले। राजीव, बूटा सिंह, विश्वनाथ प्रताप और मुलायम सिंह आदि सभी राजनीतिक लोगों का एकान्तिक निष्कर्ष समान था कि 'मुसलमान-मुसलमान के रूप में थोक वोट का मालिक है, किन्तु हिन्दुओं का हिन्दू थोक वोट नहीं है। यदि हिन्दू, हिन्दू के रूप में सामूहिक मतदान करता होता तो वे मुसलमानों का पक्ष न लेते। मुसलमानों का पक्षधर बनना भारत की वोट-राजनीति की बाध्यता है। चुनाव जिताने और हराने की कुंजी केवल मुसलमानों के साथ है। हिन्दू जात-पात के आधार पर वोट देता है। हिन्दू-हिन्दू के रूप में थोक वोट डालने लगे तो ही भारत की चुनाव राजनीति मुस्लिम वोट के आतंक से मुक्त हो सकती है।" अर्थात् श्रीराम से जुड़े राष्ट्रीय आंदोलन को केवल वोट और सत्ता-राजनीति की लाभ-हानि की कसौटी पर कसा गया।

हर कोई एक-सा निकला

विश्वनाथ प्रताप को भी अपने किए का फल मिला। चुनाव के पूर्व, चुनाव के समय और चुनाव के पश्चात् उनकी मुद्दा-आधारित राजनीति, उनकी नकली और कपटी सेकुलरिटी, उनके जातिवादी सामाजिक न्याय की कलई उतर गई। उनका चरित्र शब्द पाखण्ड का पर्यायवाची बनकर सामने आया।

विश्वनाथ प्रताप गए तो राजीव की इंदिरा कांग्रेस की बैसाखी लगाकर चन्द्रशेखर भारत की राजनीति के शिखर पुरूष बने। उन्होंने समझौता वार्त्ता और सद्भावनापूर्वक

समस्या का समाधान निकालने का दावा किया। तब तक अयोध्या हत्याकाण्ड (नरसंहार) हो चुका था। मुलायम सिंह, विश्वनाथ प्रताप को छोड़कर चन्द्रशेखर के साथ आ चुके थे। मुलायम सिंह रामभक्तों की ही नहीं, न्याय की भी हत्या और न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन करने का कीर्त्तिमान स्थापित कर चुके थे।

महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री शरद पवार और राजस्थान के भैरों सिंह शेखावत की पहल पर दोनों पक्षों की बैठकें हुईं। बैठक का परिणाम किसी समाधान के रूप में नहीं, बैठक न होने के रूप में निकला। दोनों पक्षों का साथ-साथ बैठना बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया। इस 'महत्व' पर तत्कालीन केन्द्रीय गृहराज्य मंत्री सुबोध कान्त सहाय बार-बार बल देते रहे थे। किन्तु परदे की पीछे सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर जो कार्य किया जा रहा था, वह ध्यान देने योग्य है। प्रत्यक्ष में वार्त्ता और परोक्ष में भितरघात का दौर चला। गृह मंत्रालय के अधिकारियों को संतों, महामण्डलेश्वरों और शंकराचार्यों के पास भेजा गया कि वे आंदोलन से अलग हो जाएं। संतों में फूट पड़ जाए तो आंदोलन समाप्त हो जाए। यह कहा और कहलवाया गया की विश्व हिन्दू परिषद्, राम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति और श्रीराम कारसेवा समिति हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती। कुछ संतों से आंदोलन और परिषद् विरोधी वक्तव्य भी दिलाए गए। चन्द्रशेखर की सलाह से चन्द्रास्वामी देश के कोने-कोने में घूमे। धन बांटकर संतों का ईमान खरीदने का प्रयास किया। मकर संक्रान्ति पर प्रयाग में चन्द्रास्वामी ने संत सम्मेलन करना चाहा, राजीव को आमंत्रित किया। निमन्त्रण स्वीकार करके भी राजीव वहां नहीं गए। संतों ने सम्मेलन का ही नहीं, जो संत और महामण्डलेश्वर चन्द्रास्वामी के साथ जुड़े, उनका भी बहिष्कार किया। चन्द्रास्वामी की चाल विफल हुई।चन्द्रशेखर का मुखौटा भी उतर गया।

बन्द कमरे में सर्वोच्च न्यायालय से हिन्दुओं के पक्ष में राय दिलाने की पेशकश की गई, कमरे के बाहर गत चार दशक से चल रहे मुकदमे के निर्णय की प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया गया। न्यायालय में लम्बित मुकदमे का सार संक्षेप यह है कि सरकार इस मामले को लम्बे समय तक लटकाए रखना चाहती है। यदि ऐसा न होता तो मुकदमे के औचित्य के प्रारंभिक मुद्दे पर सर्वप्रथम निर्णय करने के लिए उसके महाधिवक्ता सहमत हुए होते। पूरे मसमले का निर्णय पहले और प्रारम्भिक मुद्दे पर विचार बाद में की प्रक्रिया भी राजनीतिक चरित्र और राजनीतिक संस्कृति की ओर ही संकेत करती है।

पहले कहा जाता था कि श्रीराम जन्मभूमि का मामला अयोध्या का स्थानीय मामला है। अयोध्या और फैजाबाद के जनप्रतिनिधि एवं स्थानीय लोग एक साथ बैठकर इसको सुलझा लें। यह सलाह राजीव जी की भी थी और विश्वनाथ प्रताप की भी। अब इसकी बात कोई नहीं करता। तब कहते थे कि अयोध्या की जनता राम आंदोलन के विरूद्ध है। यदि वह आंदोलन के पक्ष में होती तो कम्युनिस्टों और

कांग्रेसियों के उम्मीदवारों को न जिताती। अब जबकि वहां की जनता ने राम आंदोलन के समर्थकों को जिता दिया तो ये लोग अपनी स्थापना से पीछे हट गए। क्यों?

मथुरा और काशी की जनता का निर्णय भी कृष्ण और शिवभक्तों के पक्ष में गया है। उत्तर प्रदेश के मतदाताओं का जनादेश राम मन्दिर के पक्ष में है। जिस जनता ने अपनी प्रभुसत्ता संसद और विधानसभा को सौंपी है, उसी जनता का आदेश है कि अयोध्या में उसी स्थान पर श्रीराम लला का मंदिर बने, जिसे साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व तोड़कर मंदिर के खम्भों पर बाबर के नाम पर मस्जिदनुमा कुछ बनाने का असफल प्रयास किया गया था।

भारतीय राजनीतिज्ञों के प्रदूषित चरित्र और पाखण्डपूर्ण राजनीतिक संस्कृति की कथा बहुत बड़ी है। वर्त्तमान भारतीय राजनीति में 'राष्ट्र' और 'नीति' तत्व अनुपस्थित हैं, विधिसम्मत शासन (धर्मराज्य) को श्रीराम की तरह वनवास में भेज दिया गया है। राजनीति केवल 'राज' तक सीमित है और राजसिंहासन प्राप्त करने और उस पर बैठे रहने के लिए प्रत्येक प्रकार का पाखण्ड और दोगलापन उसका मूल चरित्र बन गया हैं। यही दोगलापन, राजनीतिक पाखण्ड और वोट राजनीति की विवशता भारत को 'एक राष्ट्र' मानने से मना करती है। यही विवशता 'एक जन' की अवधारणा का निषेध करती है। यही विचारधारा एक संस्कृति के सूत्र को आंचलिक, क्षेत्रीय और मजहबी टुकड़ों में तोड़ती है। यह विवशता गरीबों की गरीबी, भूखों की भूख, बीमारों की बीमारी, अशिक्षितों की अज्ञानता, आर्थिक गुलामी और विदेशी कर्ज को स्थायित्व प्रदान करने के औचित्य को प्रकारान्तर से तार्किक आधार प्रदान करती है। इसी ने एक समग्र और संपूर्ण समाज को जाति और मजहब के आधार पर बांटा है और इसी के कारण पंथनिरपेक्ष भारत राष्ट्र में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक का सोच जन्मा है। श्रीराम आंदोलन का एकात्म राष्ट्र सत्य इस पाखण्डपूर्ण राजनीतिक चरित्र और कुटिल आचरण के लिए यदि चुनौती के रूप में न उभरा होता तो ये सभी तत्व इस आंदोलन का स्वागत कर रहे होते। यदि 'थोक वोट' का दबाव न होता तो विश्वनाथ प्रताप सिंह यह दावा करते न घूमते कि उन्होंने बाबरी मस्जिद पर अपनी सरकार की कुर्बानी दे दी, यद्यपि वे अन्दर ही अन्दर अंतिम क्षण तक अपनी सरकार को बचाने का हर संभव प्रयास करते रहे थे और यदि दूसरे पक्ष अर्थात् रामभक्तों के थोक वोट का दवाब बढ़ा तो कल यही लोग अपनी सरकार ही नहीं, स्वयं अपनी भी कुर्बानी देने में सबसे आगे दिखाई दें तो कोई आश्चर्य नहीं।

श्रीराम आंदोलन के पूर्व देश दो खेमे में बंटा था। पहला खेमा उन लोगों का था जो यह कहते और मानते थे कि सब कुछ सरकार को करना चाहिए और सरकार जो कुछ कर रही है, वह ठीक है। यह खेमा सुविधाभोगी और सरकारपरस्तों का खेमा था, दूसरा खेमा उन लोगों का था जिनकी मान्यता यह है कि राज्य ने शोषण के

अतिरिक्त और कुछ नहीं किया, और सरकार जो कुछ कर रही है — वह सब गलत है — यह खेमा आतंकवादी बन गया। अयोध्या आंदोलन ने पहली बार राजनीति, राज्य और सरकार को सांस्कृतिक और राष्ट्रीय आयाम प्रदान किया है। इस प्रकार जुड़ा राष्ट्रीय समाज निःसन्देह रूप से सरकारपरस्त नहीं, राष्ट्रभक्त और अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति समर्पित है। यही वह दर्पण है जिसके सामने खड़े होते ही अब तक की विकृत और छद्म राजनीति का घिनौना स्वरूप साफ-साफ दिखाई देने लगा है।

28 जुलाई, 1991

शत्रु केवल शत्रु होता है

देश की पश्चिमी, उत्तरी और पूर्वी सीमा आतंकित भी है और असुरक्षित भी। आतंक और असुरक्षा घरेलू असंतुष्टों के कारण ही नहीं, बाहरी तत्वों और ताकतों के कारण भी है। भारत में भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक, बाहरी एवं आन्तरिक अस्थिरता और अराजकता उत्पन्न करके टुकड़े-टुकड़े करने का शत्रुतापूर्ण नियोजित प्रयास चल रहा है दक्षिण भारत में तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश, मध्य क्षेत्र में महाराष्ट्र एवं मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग ऊपरी तौर पर आतंकवाद और नक्सली हिंसा से पीड़ित हैं, किन्तु भीतरी बात कुछ और है। स्थिति यह है कि सरकार और समाज असुरक्षित है, जबकि आतंकवादी हिंसक तत्व सुरक्षित। कश्मीर, पंजाब, असम और आंध्र की सरकारें आतंकवादी हिंसकों की कृपा की मोहताज हैं। वे मुक्त हैं, सरकारें उनकी बन्दी हैं। समाज साहसहीन, पराजित मानसिकता से पीड़ित है। वह केवल सहन करता है, प्रतिकार नहीं करता। उसने हिंसा-हत्या, आतंकवाद और अपहरण के माहौल में रहना सीख लिया है। हत्याकाण्ड अब समाचार नहीं रहे, समाचार है किसी दिन हत्या, अपहरण और लूट का न होना।

यह परिस्थिति की गंभीरता का स्थूल एवं बाह्य स्वरूप है। पर्दे की पीछे के भीतरी संकेत बहुत ही चिंताजनक और घातक हैं। देश के साथ किया जा रहा भितरघात और अन्तर्राष्ट्रीय साजिश का स्वरूप स्पष्ट होते हुए भी, उस ओर ध्यान न देकर भारत में चल रहे आतंकवाद को केवल कुछ असंतुष्ट युवकों के आर्थिक अभाव और बेरोजगारी के साथ जोड़ा जा रहा है। इसे कुछ असामाजिक अपराधी तत्वों का कार्य बताकर संतुष्ट हो जाने को, परिस्थिति की गंभीरता को ढ़कने का प्रयास तो कहा जा सकता है, किन्तु यह स्थिति का सही-सही आकलन नहीं है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो आर्थिक तबाही की तरह हमें किसी दिन विघटन और विभाजन की ही नहीं, पाकिस्तान की तरह देश के कई संप्रभुतासम्पन्न स्वतंत्र राष्ट्रों में बंट जाने की तबाही भी झेलनी पड़ सकती है।

शिराओं में फैलता आतंक का जहर

कश्मीर भारत सरकार और भारतीय जनता की शर्तों पर नहीं, आतंकवादियों

और पाकिस्तानपरस्त तत्वों की शर्तों पर अपना जीवन जी रहा है वह तभी तक भारत का अंग है, जब तक जम्मू कश्मीर मुक्ति मोर्चा उसे पूरी तरह भारत से अलग कर देने की स्थिति में नहीं आ जाता। पंजाब तभी तक भारत की मुख्य भूमि के साथ जुड़ा है, जब तक 'खालिस्तानियों' को उनकी अपेक्षित सहायता नहीं मिल जाती। असम तब तक अशांत रहेगा जब तक आतंकवादियों को सत्ता नहीं मिल जाती।

उत्तर पूर्व के राज्यों की अधिकांश आबादी भारत के टुकड़े-टुकड़े होने की प्रतीक्षा में है। उन्हें राष्ट्रीय संस्कृति और विरासत से पूरी तरह काट देने का हर संभव प्रयास चल रहा है। आन्ध्र, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के नक्सली गरीबों के लिए गरीबी के नाम पर गरीबों की हत्या करके आतंक की आग भड़का रहे हैं। वनवासियों और उपेक्षितों के मन में प्रतिशोध की भावना जगाने के लिए वे वनवासियों की हत्या कर रहे हैं, किसानों को मार रहे हैं। जनप्रतिनिधियों और सरकारी अधिकारियों का अपहरण करके वे फिरौती मांगते हैं। हिंसकों और हत्यारों की रिहाई कराने के लिए महत्वपूर्ण व्यक्तियों को बंधक बना लेना आम बात हो गई है। अपने दांतों में तिनका दबा कर सरकारें आतंकवादियों के दरबार में उनकी दया की भीख मांग कर गिड़गिड़ा रही हैं। केन्द्र की नरसिंह राव सरकार की सलाह पर असम की सैकिया सरकार ने आतंकवादियों की आम रिहाई की। जबकि इसके बदले में सभी अपहृत देशी-विदशी नागरिकों और सरकारी अधिकारियों को आतंकवादियों ने मुक्त नहीं किया। श्रीलंका के तमिल चीते केवल राजीव की हत्या से संतुष्ट नहीं हैं। वे उन सभी तमिलों की हत्या का बदला लेने के लिए कृतसंकल्प हैं, भारतीय शांति सेना भेज कर राजीव ने जिनकी हत्या कराई थी। उनका कहना है कि पहले विद्रोह करने के लिए भारत सरकार ने उन्हें प्रशिक्षण और शस्त्र दिए, बाद में उन्हीं का दमन करने के लिए भारतीय सेना भेजकर उनके साथ विश्वासघात किया। राजीव-जयवर्धने समझौता उनके लिए श्रीलंका स्थित तमिलों का विनाश करने वाला दस्तावेज है।

बहुत दिनों से यह कहा जा रहा है और भारत सरकार मानती भी है कि कश्मीर, पंजाब और असम आदि क्षेत्रों में अशांति एवं आतंकवाद के पीछे विदेशी ताकतें खड़ी हैं। संसद और सड़क पर भी प्रधानमंत्री सहित अनेक लोग यह कह चुके हैं कि पंजाब और कश्मीर में पाकिस्तान प्रशिक्षित आतंकवादी भेजता है। सरकार ने इस सन्दर्भ में पाकिस्तान स्थित प्रशिक्षण शिविरों का ब्योरा भी प्रस्तुत किया है पाकिस्तानी और बंगलादेशी घुसपैठियों की घुसपैठ रोकने के लिए सीमाओं को 'मुहरबंद' कर देने की बात भी की जाती रही है। भारत की सीमा पर सुरक्षा पट्टी बनाने की आवश्यकता तो समझी जाती है, लेकिन सुरक्षा पट्टी बनाई नहीं जाती।

पाक का कश्मीर कार्ड

पाकिस्तान के रास्ते से सशस्त्र आतंकवादी हमले और बंगलादेश की ओर से

आबादी के आक्रमण के बीच फंसा है भारत। ऊपर से कोढ़ में खाज की तरह भारत के तथाकथित जनाधिकारवादी समय-समय पर ताल-बेताल गाते रहते हैं। विदेशी मंचों पर भारत की आन्तरिक समस्या, विशेषकर कश्मीर और पंजाब की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के जाल में फंसाने अर्थात् उसका अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने का खुला प्रयास किया जा रहा है। गत 13 जुलाई, 1991 को वाशिंगटन में आयोजित 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन' कश्मीर समस्या का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने की प्रक्रिया का ही एक कदम था। इस सम्मेलन में कश्मीर के तीन पक्ष बताए गए — पाकिस्तान, भारत और कश्मीरी जनता। अमरीका और रूस से निवेदन किया गया कि वे इन तीनों पक्षों से बात करके कश्मीरी जनता को 'आत्मनिर्णय' करने का अधिकार प्रदान कराएं। कश्मीर घाटी में जनमत संग्रह कराकर कश्मीर को स्वायत्तता प्रदान की जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव से अनुरोध किया गया कि वे निष्पक्ष जनमत संग्रह कराए जाने की आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करने की पहल करें। पंजाब के खालिस्तानियों की सहायता और स्वायत्त खालिस्तानी राज्य के समर्थन में कनाडा और अमरीका आदि देशों में हुए खालिस्तानी सम्मेलन, सभी की जानकारी में हैं। आश्चर्यजनक, किन्तु सत्य यह है कि इन सभी सम्मेलनों की अगुआई और आयोजन में पाकिस्तान का प्रमुख हाथ ही नहीं रहा, बल्कि उसने इसकी पहल भी की। पाकिस्तान 1971 में बंगला देश बनने और अपनी पराजय का बदला, भारत की सीमा पर बंगला देश की तरह खालिस्तान और स्वतंत्र कश्मीर राष्ट्र बनाकर, लेने के लिए कृतसंकल्प है।

और हम भारत के लोग ?

'हम भारत के लोगों' में 'एक लोग' नहीं, 'अनेक लोग' हैं। हम भारत के लोग अपनी राष्ट्रीय अस्मिता, अखण्डता और एकता-एकात्मता की अवधारणा के विषय में भी एकमत नहीं हैं। मानवाधिकार और जनाधिकार की हमारी अवधारणाएं मजहबी और क्षेत्रीय हिताहित, दलीय और सत्ता राजनीति की लाभ-हानि पर आधारित हैं। 'हम भारत के लोगों' का तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग प्रज्ञाहीन है। आतंकवाद एवं अलगाववाद पर काबू पाने और शत्रुओं की साजिशों का अन्त करने के प्रत्येक प्रयास को पलीता लगाते रहना इनका बौद्धिक कर्म ही नहीं, मजहब भी बन गया है। इन्हें आतंकवादियों के आतंक के कारण अपना घर छोड़कर विस्थापित हो गए लोगों की पीड़ा उनके जनाधिकारों का हनन दिखाई नहीं देता। किन्तु भारतीय सुरक्षा बलों द्वारा आतंकवादियों के दमन को वे जनाधिकारों के हनन के रूप में देखते हैं। राष्ट्रीय अखण्डता की रक्षा करने में संलग्न भारतीय सेना को बदनाम करते उन्हें लाज नहीं आती। वे नक्सली हिंसा को जनाधिकारों की रक्षा करने वाला क्रांतिकारी कार्य मानते हैं और हिंसकों-हत्यारों को दण्ड देने के कार्य को जनाधिकारों का हनन।

'हम भारत के लोगों' में केवल बुद्धिजीवी ही नहीं, और भी ऐसे लोग हैं, सच्चाई

पर पर्दा डालते रहना ही जिनका जीवनोद्देश्य है। इन 'भारत के लोगों' में राजनीतिज्ञों का स्थान प्रमुख है। जनाधिकारों और मानवधिकारों का निर्धारण और रक्षण 'भारत के ये लोग' जाति और मजहब के आधार पर करते हैं, 'जन' या 'लोग' के आधार पर नहीं। इनकी दृष्टि में कश्मीर मुस्लिम बहुल है तो वहां के मुसलमानों को विशेषाधिकार प्रदान करना, जनाधिकारों या मानवधिकरों की रक्षा करना है पंजाब में सिख अधिक हैं तो सिखों को बखुश करना या खुश रखना जनाधिकारों की रक्षा करना है। जाति और मजहब का संदर्भ यहीं नहीं समाप्त होता। यह संदर्भ बहुसंख्यकता से अल्पसंख्यकता की ओर बढ़ता है। बहुसंख्यकता और अल्पसंख्यकता, दोनों स्थितियों में मजहब और जाति तत्व समान रूप से उपस्थित रहता है इस एकपक्षीय जनाधिकार की अवधारणा का एकमेव शिकार है, भारत का पच्चासी प्रतिशत राष्ट्रीय समाज। भारत के इन लोगों और इन बुद्धिजीवियों की दृष्टि में यहां के हिन्दुओं का कोई अधिकार ही नहीं है। वे 'जन' ही नहीं है, तो जनाधिकारों का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उनके तई यहां जन अधिकार केवल उन्हें है जो हिन्दुएतर अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक है। यदि हिन्दू के रूप में कहीं कोई अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक है तो उसको जात-पांत और सम्प्रदाय में बांट कर मानवधिकारों को विभाजित कर देना 'भारत के इन लोगों' का 'सहज कर्म' है।

और शेष बचे भारत के लोग?

भारत के शेष लोग आत्महीनता, आत्मग्लानि और आत्मनिन्दा के रोग से ग्रसित हैं। उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान सुन्न हो गया है उन्हें अपने कर्तव्य का बोध ही नहीं है। भारत के ये लोग भारत के जन नहीं, केवल भीड़ हैं। ये राजनीतिक व्यवस्था के बन्दी हैं। परजीविता इनका स्वभाव बन गई है। यदि ऐसा न होता तो भारत के ये शेष लोग अपना शोषण, अपने साथ किए जा रहे छल-कपट की अनुमति या छूट न देते। यदि ऐसा न होता और भारत के इन शेष लोगों की राष्ट्र भक्ति जागृत एवं प्रबल होती तो बस से उतर कर आतंकवादियों और शत्रुओं की बन्दूकों के सामने पंक्तिबद्ध होकर मरने के लिए खड़े न हो जाते। यदि भारत के इन लोगों को अपनी राष्ट्रीय अस्मिता का अहसास कराया गया होता तो एकपक्षीय हत्या स्वीकार न करके इसराइल के पर्यटकों की तरह भारत के ये लोग भी आतंकवादियों पर टूट पड़ते। यदि भारत की संप्रभुता की शक्ति का दबाव होता तो भारत के 'दोराई स्वामियों' को यों आतंकवादियों की दया पर जीवन और मृत्यु की घड़ियां गिननी न पड़तीं। विधायक, सांसद, मंत्रीगण, अधिकारी और आम आदमी, आतंकवादी आतंक से बचकर चलने के लिए विवश न होता, तो या तो आंतकवाद होता ही नहीं और यदि होता भी तो भारत को तोड़ देने की सीमा तक अपनी जड़ें न जमा पाता। इसराइल और स्वीडन के अपहृत सैलानियों की तरह या तो भारत के ये लोग भी आतंकवादियों पर झपट पड़ते या फिर भारत के इन लोगों ने भी इसराइल की तरह सारी दुनिया को हिला दिया

होता। भारत की सशस्त्र सेना के सामने आतंकवादियों का इस तरह ताल ठोक कर खड़ा हो जाना और भारत के बुद्धिजीवियों एवं राजनीतिज्ञों का आतंकवादियों के दमन को मानवधिकारों का दमन मानने लग जाना और कुछ नहीं, केवल प्रबल राष्ट्रीय भावना और एकात्मता की कमजोरी एवं अभाव का परिणाम है।

कश्मीर, पंजाब, उत्तर पूर्वी क्षेत्र, आंध्र और तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों सहित संपूर्ण देश को यदि आतंकवादी अराजकता और अन्तराष्ट्रीय षड्यन्त्र सें मुक्त करके एक और एकात्म बनाकर रखना है तो देश को मजहब और जाति की दृष्टि से नहीं, एक और एकात्म राष्ट्र के रूप में देखना पहली शर्त होगी। इस देश की साम्प्रदायिकता नहीं, समाजिकता जागृत की जाय। इसकी समस्याओं का अलग-अलग और टुकड़े-टुकड़े में नहीं, समग्रता से विचार किया जाए। वोट और सत्ताराजनीति निरपेक्ष राजनीतिक, प्रशासनिक और सामाजिक पहल और उपाय में ही इन संकटों का समाधान निहित है। आंतकवादी और अपराधी केवल आंतकवादी और अपराधी होता है, हिन्दू और मुसलमान नहीं, शत्रु केवल शत्रु होता है। मजहब देखकर शत्रुता-मित्रता का निर्धारण करना एक घृणित और घातक राष्ट्रीय अपराध है। देश को तोड़ने के लिए उठे हाथों को मजहब और जातिनिरपेक्ष होकर तोड़ देने में हिचकिचाहट देश को निश्चित रूप से तोड़ देगी। यह अर्थ और बेरोजगारी से जुड़ा मामला नहीं है यदि उसका आधार बेरोजगारी और गरीबी होता तो देश के कई भाग जिनकी आबादी की बहुसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे ओर बेरोजगार है, अब तक भारत की भूमि पर या तो एक अलग देश बन गए होते या वहां प्रबल आन्दोलन आरम्भ हो गया होता। गरीब और बेराजगार को रोटी और रोजगार चाहिए, अलग देश और संप्रभुता समपन्न राष्ट्र नहीं। पाकिस्तान को गरीबों ने नहीं मांगा था और न गरीबी के कारण कश्मीरी राष्ट्र, खालिस्तान और स्वतंत्र असम की मांग की जा रही है।

4 अगस्त, 1991

गणित : संसद, व्यवस्था और कूड़ेदान का

कांग्रेस का मूल स्वभाव और उसकी राजनीतिक संस्कृति का सत्य है विघटन । एकता के आवरण में वह सदा से तोड़ने और बांटने का कार्य करती आई है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक स्वर्गीय श्री गुरुजी कांग्रेस को विभाजन विशेषज्ञों का कुनबा कहा करते थे। कांग्रेस ने आज तक कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिसके परिणामस्वरूप देशवासियों ने भौगोलिक और भावनात्मक स्तर पर एकता, एकात्मता का अनुभव किया हो। सरदार वल्लभ भाई पटेल सरीखे कुछ कांग्रेसी इस स्थापना के अपवाद थे। किन्तु कांग्रेस की मूल राजनीतिक धारा उन्हें सदा हाशिये पर फेंक देती रही। यह कारण था कि देश की लगभग छः सौ देशी रियासतों को भारत की राजनीतिक धारा में विलीन करने में सफल हो गये सरदार पटेल को जम्मू और कश्मीर राज्य का पूर्ण रूप से भारत में विलय न कराने देकर यह कार्य पण्डित नेहरू ने अपने हाथ में ले लिया था और उसे विदेश मंत्रालय का विषय बताकर भारत के घरेलू मामले को अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान कर उसे संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गये थे। वहां जनमत संग्रह कराने की मांग पर विचार कराने लगे थे। इसी कारण जम्मू कश्मीर आज भी भारत माता के कण्ठ में कांटे की तरह चुभता रहता है। भारतीय राष्ट्रीय धारा का सांस्कृतिक जल-कण होने के बावजूद वह यहां की सांविधानिक और प्रशासनिक धारा का अंग पूरी तरह नहीं बन सका।

अतएव सरदार पटेल जैसे कुछ इने-गिने अपवादित कांग्रेसियों के अतिरिक्त कांग्रेस नेतृत्व और कार्य शैली ने इस संपूर्ण देश को बंकिमचन्द्र की सुजलाम सुफलाम् मातृभूमि को एक, एकात्म और अखण्ड दृष्टि से कभी देखा ही नहीं। यहां के निवासियों को कभी एक जन या एक नागरिक माना ही नहीं। यहां की राष्ट्रीयता को उसके सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और वांङमयीन संदर्भ में पहचाना ही नहीं। कांग्रेस की राष्ट्रीयता का आधार राष्ट्रीयता के मान्य तत्व और तन्तु ही नहीं, मजहब और विशेषकर मुस्लिम तुष्टिकरण रहा है। कांग्रेसी संस्कृति हर वह कार्य करती है जिसके कारण भारत की नागरिकता विभाजित होती है और हिन्दू मुसलमान दो समानान्तर राष्ट्र के रूप में प्रतिद्वन्द्वी के नाते खड़े हो जाते हैं। पहले समस्या पैदा करना फिर

समस्या की गंभीरता की गुहार लगाना और फिर उसका समाधान करने के लिए दलगत भावना से ऊपर उठकर राजनीतिक आचरण करने का पाखण्डपूर्ण प्रलाप करते रहना ताकि देशवासियों को डराकर, उन्हें हांककर मतदान केन्द्र तक आसानी के साथ ले जा सके, कांग्रेस की सोची समझी और अनुभूत राजनीतिक रणनीति है। संकट और सुख, किसी भी घड़ी में जो इस रणनीति से चिपका दिखाई दे, वह असंदिग्ध रूप से कांग्रेसी ही होगा और कोई नहीं।

खिलाफत आंदोलन (1920) के समय उसके साथ-साथ ही कांग्रेस को तुष्टिकरण का रोग लग गया था। उसके बाद और साथ-साथ ही मुसलमानों में यह अहसास प्रबल रूप से जन्मा था कि उनकी सहायता के बिना भारत आजाद नहीं हो सकता और यदि ऐसा है तो क्यों न अपनी सहायता का मूल्य मांगा जाए। इसी में से कभी भारत का शासक होने का अहंकार और अंग्रेजों द्वारा उनसे शासन छीन लिए जाने का दुःख बोध भी जन्मा था। भारत का अंतिम शासक होने के कारण, अंग्रेजों की गुलामी से आजाद होने के बाद, भारत पर पुनः मुगलिया (मुस्लिम) शासन का सपना उनकी आंखों में तैरने लगा था और इसी का परिणाम था 15 अगस्त, 1947 को भारत के अखण्ड भूगोल को खण्डित करके बना पाकिस्तान। भारत की सीमा पर एक स्थायी समानान्तर मुस्लिम राष्ट्र की चुनौती मुस्लिम तुष्टीकरण को भारत की राष्ट्रीयता का आाधार मानने का ही दुष्परिणाम है।

मूल स्वभाव नहीं बदला

कांग्रेस कई बार टूटी, कांग्रेसी कई दलों में बंटे, कांग्रेसियों ने कई दल बनाए, किन्तु उनका यह मूल स्वभाव जस का तस रहा। भारत विभाजन से लेकर संविधान के निर्माण, शाहबानो के मामले, मिजोरम के चुनाव में ईसाईयों की संतुष्टि के लिए बाइबिल के आधार पर राज्य चलाने के आश्वासन, पंजाब में भिण्डरवाले को संत की श्रेणी में डालकर आतंकवाद के बीजारोपण, जम्मू कश्मीर को भारत से अलग रखकर उसके भारत राष्ट्र का अंग होने का मिथ्या आभास और 1991 के लोकसभा चुनाव के समय जारी किए गए चुनाव घोषणा पत्र में देश के पूजा स्थलों की यथास्थिति बनाए रखने के लिए 15 अगस्त 1947 को भेद रेखा मानने का कानून बनाने के आश्वासन तक में कांग्रेस की विभाजक संस्कृति की कुटिलता का सूत्र समान रूप से दिखाई देता है।

प्रश्न यह नहीं है कि लोकसभा में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के संकल्प पर हो रही बहस और मतदान तथा इंका के घोषणा पत्र एवं महामहिम राष्ट्रपति के अभिभाषण में उल्लिखित 15 अगस्त 1947 को भेद रेखा मानकर पूजा स्थलों की यथास्थिति बनाए रखने के अधिनियम के परिणामस्वरूप देश के हजारों पूजा स्थल विवाद और संघर्ष के समर भूमि बन जाएंगे, गांव-गांव और गली-गली में मोर्चे लग

जाएंगे, प्रश्न यह भी बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि आज का भारत 15 अगस्त 1947 के समय का भारत है कि नहीं ? महत्वपूर्ण है पुरातत्व विभाग के पूर्व निदेशक डाक्टर स्वराज्य प्रकाश गुप्त द्वारा उठाए गए ये प्रश्न कि 'पन्द्रह अगस्त 1947 को गोवा कहां था ? उसके मंदिरों और गिरजाघरों का क्या होगा ? हैदराबाद के स्मारकों का क्या होगा ? सिकन्दरा (आगरा) के पास एतमाद ख़ां के स्मारक और हरियाणा तथा पूर्वी पंजाब के उन गुरुद्वारों का क्या होगा जो देश के विभाजन के बाद मुस्लिमों द्वारा त्याग दी गई मस्जिदों पर बनाए गए हैं और जिन्हें कांग्रेसी सरकार ने स्वयं सिखों को सौंप दिया था, अलवर के एक प्राचीन स्मारक पर बनाए गए गुरुद्वारे का क्या होगा ? दिल्ली की कुदेशिया मस्जिद का क्या होगा ? यदि तथाकथित बाबरी मस्जिद में 1949 से पूजा आरंभ हुई थी तो कुदेशिया मस्जिद में जो कुछ हुआ था वह उससे भी भयानक था। 'बाबरी मस्जिद' संरक्षित स्मारक नहीं था, कुदेशिया मस्जिद राष्ट्रीय स्मारक अधिनियम 1952 के अन्तर्गत संरक्षित थी, किन्तु क्योंकि स्वर्गीय राष्ट्रपति फखरुद्दीन अहमद अली ने कभी बाल्यकाल में वहां नमाज पढ़ी थी, उसे आम तौर से खोल दिया गया तो क्या कुदेशिया मस्जिद स्मारक में नमाज बंद करा दी जाएगी ? पाकिस्तान बनने के बाद अनेक मुस्लिम मजारों का बिहारी मुसलमानों ने रूपांतरण कर दिया था, उनका क्या होगा ?' और इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कांग्रेसी मनोवृत्ति का । प्रश्न यह है कि कांग्रेसी केवल उसी स्थान पर क्यों टिकता है जहां विभाजन की दरार पड़ी होती है या विभाजक दरारें पड़ सकती हैं ?

15 अगस्त, 1947 की भेद रेखा

कांग्रेसी संस्कृति और सोच का यह प्रवाह कुछ अपवादों का उल्लेख या आदर करके अपनी उदारता दिखाने का प्रयास करता है। किन्तु इस उदारता के मूल में मुस्लिम और मजहबी तुष्टिकरण का उसका मूल चरित्र ही विद्यमान रहता है। नेहरू, इंदिरा, राजीव और नरसिंहराव की कांग्रेस और कांग्रेसी कहते हैं कि 15 अगस्त 1947 की भेद रेखा सोमनाथ और श्रीराम जन्मभूमि की बगल से खींची जाएगी। ये पूजा स्थान इसके अपवाद होंगे। क्यों ? क्या ये पूजा स्थान 15 अगस्त 1947 की समय रेखा से उस पार हैं ? वास्तविकता यह नहीं है ? वस्तुतः इस सारी विधायकी कसरत का मूलाधार केवल कुछ मुसलमानों और मुस्लिम लीगियों की खुशी खरीदने की वोट रणनीति है। महामहिम के अभिभाषण के माध्यम से दिए गए इस संकेत का एकमात्र अर्थ है काशी विश्वनाथ और मथुरा की कृष्ण भूमि से हिन्दुओं को वंचित रखना। श्रीराम जन्मभूमि को अपवाद इसलिए बनाया गया है कि रामभक्त अपने रक्त से उसकी अर्चना कर चुके हैं।

कांग्रेसी सोच यह है कि केवल इतने से उन्हें मुसलमानों का खोया हुआ थोक समर्थन वापस मिल जाएगा, हिन्दुओं अर्थात् देश की पच्चासी प्रतिशत जनसंख्या की

भावनाओं की कोई चिन्ता वे केवल इसलिए नहीं करते कि भारत की सांस्कृतिक धारा के सत्ता राजनीतिक निरपेक्ष होने के कारण हिन्दू हिन्दू के नाते थोक और सामूहिक मतदान नहीं करता। यदि हिन्दू मतदान केन्द्र पर मुसलमानों की तरह जाकर हिन्दू के नाते मतदान करने लग जाए तो कांग्रेसी पहला व्यक्ति होगा जो काशी विश्वनाथ और कृष्ण जन्मभूमि पर अपना प्राण न्यौछावर करने के लिए तत्पर होकर भारत के हिन्दू राष्ट्र होने का सत्य खुलेआम स्वीकार कर लेगा।

अब प्रश्न यह है कि यदि 15 अगस्त 1947 को भेद रेखा मानने वाला विधेयक पारित हाकर कानून बन गया तो देश और देशवासियों का क्या होगा ? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है । देशवासी दो शत्रुवत खेमें में बंट जाएंगे। सभी अपने-अपने पूजा स्थलों के अतीत का पता लगाने लगेंगे। यह खोज मुहम्मद बिन क़ासिम के (सन् 712) तक भी की जा सकती है। तोड़े गए उन तीस हजार मन्दिरों और तीन हजार जामा मस्जिदों का इतिहास खोदकर निकाला जा सकता है। गत हजार बारह सौ वर्षों में ऐतिहासिक विध्वंसों, गलतियों और भूलों को सुधारने तथा उन्हें यथास्थिति से मुक्त कराने का अभियान आरंभ हो सकता है। भारत सरकार द्वारा अधिगृहीत आंध्र के 53, असम के 12, बिहार के 3, गुजरात के 17, हिमाचल प्रदेश के 20, जम्मू कश्मीर के 19, केरल के 6, कर्नाटक के 198, मध्य प्रदेश के 113, महाराष्ट्र के 112, मणिपुर के 1, उड़ीसा के 37, पांडीचेरी के 5, राजस्थान के 73, तमिलनाडु के 122, त्रिपुरा के 3, उत्तर प्रदेश के 144, पश्चिम बंगाल के 43, हिन्दू मंदिरों का भी हिसाब किताब देना पड़ सकता है। 15 अगस्त 1947 के पूर्व पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दू देवी देवताओं के मदिरों की सुरक्षा के आश्वासन को पूरा करने की मांग की जा सकती है, ढाका स्थित ढाकेश्वरी देवी का मंदिर तोड़कर बना दिये गये मैदान पर ढाकेश्वरी मंदिर पुनः बनवाए जाने की मांग भी आरंभ हो सकती है।

यदि ये सभी मांगें पूरी हो जायें तो भी इसके कारण भारतीय जन के मन में शत्रुता की जो दुर्भावना जन्म लेगी, उसका क्या समाधान होगा ? कांग्रेसी, कम्युनिस्ट, मुस्लिम लीगी और दूसरे मुसलमान राजनेता संयुक्त रूप से देश को मजहबी संघर्ष की आग में धकेल रहे हैं, तिस पर तुर्रा यह है कि कांग्रेस, कम्युनिस्ट, जनता दल, राष्ट्रीय मोर्चा और कांग्रेसी सरकार देश के अल्पसंख्यकों अर्थात् मुसलमानों को 'भयमुक्त' करना चाहते हैं ? भयातंकित करके भयमुक्त करने का यह 'होम्योपैथी' तरीका व्यक्ति की बीमारी का इलाज तो कर सकता है किन्तु इसमें राष्ट्रीय मानस को भयुमुक्त करने की सामर्थ्य नहीं है। भयमुक्तता विधि-विधान, संसद, सविधान-न्यायालय और दण्ड प्रक्रिया का विषय नहीं है। सामाजिक और राष्ट्रीय संवेदनशीलता सामजिक समरसता और परस्परता के बिना भयमुक्तता का अर्जन असंभव है। यह कार्य चालाकी और तुष्टिकरण से नहीं किया जा सकता। डा० स्वराज्य प्रकाश गुप्त की यह स्थापना एक

अनुभूत सत्य है कि "सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में 'भय' और 'मीठी चालाकी' में कोई अन्तर नहीं होता।" **इसका एकमेव** परिणाम होता है भय, आतंक **और** अविश्वास।

कई खतरों का जन्म संभव

राजीव की इन्दिरा कांग्रेस के प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव देश के गांव-गांव में एक विभाजक रेखा खींचने जा रहे हैं। देश के भावनात्मक एकीकरण की प्रक्रिया को भावनात्मक विभाजन की सूली पर टांगा जा रहा है। अब केवल मुसलमानों, और हिन्दू सम्प्रदायों रामानन्दी, रामानुजाचार्यी, शैव, वैष्णव, लिंगायत, मध्व एवं सिखों के ही नहीं, ईसाईयों के भी पूजा स्थलों के प्रश्न खड़े होंगे। इसके कारण राष्ट्रीय अस्मिता और अखण्डता एक बार पुनः खतरे में पड़ सकती है। कांग्रेसी लेन-देन की राजनीति करके तुष्टिकरण को राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय अस्मिता का आधार बताकर भयातंकित देशवासियों और यहां के राष्ट्रीय समाज को 15 अगस्त, 1947 की तरह एक बार पुनः अपनी अस्मिता को समझौते की मेज पर बेच देने के लिए विवश कर सकते हैं और यदि राष्ट्रीय चेतना जागृत न रही, केवल भय का भूत सामने खड़ा रहा तो भारत का अतिशय संवेदनशील राष्ट्रीय समाज राष्ट्रीय अस्मिता और अखण्डता की रक्षा करने, रक्तपात, और दंगों से बचने के बहाने एक नहीं अनेक विभाजनों का संताप झेलने और विघटन को राष्ट्रीय एकता मानने के लिए विवश हो सकता है। मुसलमानों को खुश करने के लिए भारत के राष्ट्रीय समाज के साथ एक ऐसा राजनीतिक छल होगा, जो केवल आत्महीनता को ही जन्म नहीं देगा, अपितु आने वाले कई दशकों तक देश को अलगाववादियों और मजहबी राष्ट्र की अवधारणा वालों की। खुशी और रोष का बंधक भी बना सकता है। कांग्रेसी संस्कृति और कम्युनिस्ट परंपरा से इसके अतिरिक्त कोई अन्य अपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

देशवासियों को अब तय करना है कि वे पिट गई नेहरूवादी और अप्रासंगिक एवं असफल हो गए साम्यवादी सिद्धांतों के झण्डावाहकों के पाखण्ड का शिकार बनकर देश को मिट जाने और गुलाम हो जाने देंगे कि अपनी राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा करने के लिए अपने अन्तर्यामी का अह्वान करके कोई सार्थक सकारात्मक राष्ट्रीय अनुष्ठान आरंभ करेंगे। किसी भी व्यवस्था, संसद, संविधान, न्यायालय आदि का आधार केवल देशवासियों की मान्यता ही है। इनकी मान्यता देशवासियों की कृपा और सहमति पर आधारित होती है। यहां की राजनीतिक व्यवस्था का व्यक्ति की भावनाओं और समाज की मान्यताओं से खिलवाड़ करने लग जाना शुभ संकेत नहीं है कि देशवासी कल इस संसद, संविधान, न्यायालय, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा राजनीतिक दलों को कूड़दान में फेंक दें और किसी नई तथा समयसापेक्ष व्यवस्था का निर्माण करने के लिए सड़क पर निकल जाएं।

11 अगस्त 1991

किसी ने वोट बटोरा, किसी ने देश तोड़ा

राजीव की इंदिरा कांग्रेस के नागरिक विमानन और पर्यटन मंत्री माधवराव सिंधिया ने गत चार अगस्त 1991 को लखनऊ में जो कुछ कहा और उसके बाद लोकसभा में अपने कहे का जो स्पष्टीकरण दिया उसके कारण किसी व्यक्ति, व्यक्ति समूह या दल का ही नहीं, संपूर्ण व्यवस्था का राष्ट्रीय चरित्र संदिग्ध हो गया ।

प्रश्न केवल यह नहीं है कि इससे भाजपा को ही चोट क्यों लगी या इस कारण भाजपा को इतना अधिक आहत क्यों होना चाहिए था कि दो दिन उसने लोकसभा की कार्रवाई का बहिष्कार किया और एक दिन अपनी संपूर्ण परंपरा, मर्यादा एवं स्वनिर्मित आाचार संहिता का उल्लंघन करके संसद के कुंए में जाकर अध्यक्ष का आसन घेर लिया कि माधव राव सिंधिया ने जो कुछ कहा है उसे वापस लें, उसमें सुधार करें, अपने कहे की माफी मांगे, प्रश्न है भारत के राजनीतिक चरित्र और आचरण का । प्रश्न है संवदेनशीलता और मर्यादा का। प्रश्न लोकतांत्रिक सौमनस्य और सांविधानिक अधिकारों के सदुपयोग और दुरुपयोग का है। प्रश्न अपने विरोधियों और मतभेद रखने वालों के प्रति अभिव्यक्ति और शब्द प्रयोग का भी है। संसदीय परंपरा में मतभेद को शत्रुता और प्रतिपक्ष को शत्रु मानने लग जाना इस व्यवस्था की नींव को ही खोद कर फेंक देने का घातक प्रयास जैसा है और उससे भी घातक है देश के किसी नागरिक या संस्था को देशद्रोही कहने लग जाना, केवल इस कारण कि उस दल या व्यक्ति समूह को किसी की इच्छा के विपरीत औौर बावजूद समर्थन मिला हो और वह एक सशक्त विकल्प के रूप में देश के राष्ट्रीय और राजनीतिक मंच के केन्द्र में खड़ा हो।

यदि ऐसा न भी हो तो किसी सामान्य नागरिक पर भी देशद्रोही होने का आरोप लगाते समय सौ बार सोचना चाहिए। यह शब्द इतना सतही और बाजारू नहीं है कि इसे आसानी के साथ किसी पर फेंका या थोप दिया जाए अथवा किसी कूड़ेदान में थूकने के समान या जब जहां चाहे थूक दिया जाए। देशद्रोही होना, देशद्रोह करना या किसी को देशद्रोही कहने का अर्थ होता है उस व्यक्ति का उसे देश में रहने के अधिकार का अंत। उसका देशनिकाला। प्राणदण्ड की सजा देकर उसे सूली पर टांग दिया

जाना।

माधवराव सिंधिया की विवशता शायद यह रही कि वे शब्द कंगाल हैं। उनका शब्द दारिद्र्य और उन्हें शब्दों का अर्थबोध न होना उनकी अपनी विवशता हो सकती है किन्तु उस विवशता का दण्ड कोई वह दल या व्यक्ति क्यों भोगे, देशभक्ति जिसके रक्त का रंग और प्राण वायु हैं। देश ही जिसका एकमेव देवता है। देश के प्रतीक और प्रेरणापुरुष ही जिसके प्राणों की धड़कन हैं।

शाब्दिक चतुराई

माधव राव सिंधिया के कहे को लेकर जो कुछ सुना और देखा गया उसमें से संसदीय व्यवस्था, संसद, सांसदों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और राजनेताओं का चरित्र एवं चिन्तन जिस रूप में उभरा है वह किसी सुखद भविष्य का संकेत नहीं देता। माधवराव सिंधिया ने घुमा फिरा कर भाजपा को देशद्रोही कहा। तकनीकी तौर पर उन्होंने कहा कि 'मैंने भाजपा या किसी दल का नाम नहीं लिया।' यह वैसे ही है जैसे किसी व्यक्ति का पूरा हुलिया बता दिया जाए और उसका नाम न लिया जाए या राजा को उस मर गये हाथी की मृत्यु की सूचना देने जैसा है कि मौत की सजा के भय से कोई दरबारी सीधे यह नहीं कहता कि महाराज ! हाथी मर गया, अपितु यह कहता है कि 'महाराज ! हाथी हिल डुल नहीं रहा है, खा पी नहीं रहा है, सांस भी नहीं ले रहा है' और अन्त में राजा को ही कहना पड़ता है कि 'तो क्या हाथी मर गया?' और दरबारी समवेत स्वर में बोल उठते हैं कि 'अन्नदाता ! यह तो केवल आप ही कह सकते हैं, हम कैसे कहें कि हाथी मर गया।'

चतुराई दूसरों के साथ अच्छी बात है, किन्तु सुधीजनों ने अपनों के साथ चतुराई नहीं, समझदारी के साथ व्यवहार करने का निर्देश दिया है। अपनी चतुराई दिखाने की नाकाम कोशिश में माधवराव सिंधिया नादानी कर बैठे और उनके दल की अन्दरूनी राजनीति ने उनकी इस नादानी का उपयोग अनेक तरीकों से अनेक स्तरों पर किया। इस कार्य में लोकसभा अध्यक्ष सदन के नेता अर्जुन सिंह और सोनिया से जुड़ी मंडली सहित कई पक्षों का योगदान रहा। लोकसभा अध्यक्ष को चाहिये था कि सदन के बाहर की बात को सदन में उठाने की अनुमति ही न देते, अर्जुन सिंह अपने सहयोगी मंत्री माधवराव सिंधिया से वक्तव्य दिलाने का आश्वासन न देते और वक्तव्य दिये जाने के पूर्व अध्यक्ष ने वक्तव्य देख लिया होता।

परंपरा सबने तोड़ी। विपक्ष के नेता ने भी, सदन के नेता और लोकसभा अध्यक्ष ने भी। किन्तु विपक्ष के नेता और उनके दल 'देशद्रोही' होने के आरोप के कारण आहत थे, इस कारण उनका आंदोलित होना सहज था लेकिन शेष पक्षों ने अपनी आन्तरिक प्रतिद्वन्द्विता और गुट बाजी से मुक्त आचरण किया होता तो संसदीय परंपरा में यह अप्रिय अध्याय न जुड़ता। माधवराव सिंधिया को अपने और अपने दल

के अतीत का स्मरण होता तो वे यह गंभीर आरोप न लगाते। भाजपा के लोग राजनीति में प्रवेश के साथ ही गत चालीस वर्षों से सांप्रदायिक कट्टरपंथी, फासिस्ट, गांधी का हत्यारा, बनियों की पार्टी, पूंजीपतियों की दलाल, राजाओं की जमींदारी की पक्षधर और अमरीकी एजेंट होने का आरोप झेलते आ रहे हैं। वे सेकुलरिटी, सांप्रदायिकता, राष्ट्रवाद पर गंभीर बहस चला रहे हैं और, अधिक गंभीर एवं निर्णायक बहस चलाना चाहते हैं। डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी द्वारा नेहरू जी को सांप्रदायिकता पर बहस करने की दी गई चुनौती गत सैंतीस वर्षों से केवल संसद की कार्यवाई में दर्ज होकर सूख रही है। कोई दल या नेता उस चुनौती को स्वीकार करने का साहस नहीं करता। विपक्ष के नेता श्री लाल कृष्ण आडवाणी देश के कोने-कोने में अलख जगाते और पुकारते घूम रहे हैं कि सेकुलरिज्म, साम्प्रदायिकता तथा राष्ट्रवाद पर एक बार स्पष्ट एवं निर्णायक बहस हो जाना बहुत जरूरी है। किन्तु कोई भी नेता या दल इस आमंत्रण को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। क्यों ? केवल इसलिए कि अधिकांश दलों एवं नेताओं का अतीत और आचरण आड़े आ जाता है।

इंकाई अतीत में झांकें

बड़ा संयम है इस देश में। बहुत ही गंभीर है इस देश का अन्तर्मन। अतीव सहिष्णु हैं इस देश के नागरिक अन्यथा समूची कांग्रेस को देशद्रोह के कटघरे में खड़ा करके पत्थर मार मारकर कांग्रेसियों को मार डाला होता। माधवराव ने राजीव की इंदिरा कांग्रेस, कांग्रेस से जुड़े अधिकांश लोग, प्रगतिशीलता का लबादा ओढ़कर भिरतघात करने वाले वाममार्गी दलों, मुस्लिम लीग और उन जैसी संस्थाओं के लोगों के अतीत की ओर मुड़कर देख लिया होता तो अयोध्या एवं श्रीराम से जुड़ी भाजपा पर मजहबी राजनीति करने का आरोप लगाकर अपनी शब्द कंगाली के कारण उसे देशद्रोही न कहा होता ? देश की राजनीति में मजहब और जाति, कुनबापरस्ती और भाई भतीजावाद, भाषा और क्षेत्रवाद घुसाने की एकमेव अपराधी कांग्रेस ओर कांग्रेसी हैं। इसके सबल समर्थक केवल वाममार्गी रहे हैं, इसका लाभ केवल मजहबपरस्त अल्पसंख्यक अर्थात् राजनीतिक मुसलमान उठाते आए हैं। कांग्रेसियों ने वोट बटोरा और उनके साथ मिलकर लीगियों और वामपंथियों ने देश तोड़ा।

मजहब के आधार पर दो राष्ट्र का सिद्धांत मानकर मजहबी तुष्टीकरण करके और देशवासियों को धोखा देकर कांग्रेस और कांग्रेसियों ने भारतमाता का अंग-अंग काट डाला। मजहबी दंगों के कारण बहे खून की नदी में देश को डुबा दिया। हिन्दू मुसलमानों के बीच स्थायी खाई खोदी। तुष्टीकरण की परंपरा को स्थायित्व दिया। प्रति वर्ष देश के सैकड़ों लोगों के लिए साम्प्रदायिक दंगों में मारे जाने की मजबूरी पैदा की। किन्तु देश के किसी व्यक्ति ने अभी तक कांग्रेस को देशद्रोही नहीं कहा। देश को दिये गए आश्वासन और बार-बार दिलाए गए विश्वास को तोड़कर एक भारत

राष्ट्र में दो राष्ट्र बना देना, खे- खलिहान की तरह देश का बंटवारा कर देना देशद्रोह की स्पष्ट परिभाषा में आने के बावजूद किसी चिन्तक विचारक बुद्धिजीवी, राजनेता या विपक्षी ने यह नहीं कहा कि कांग्रेस देशद्रोही है। अपनी कल्पित अर्थव्यवस्था में फंसकर भारत राष्ट्र को आर्थिक गुलामी की यातना भोगने की संभावनाओं के सामने खड़ा कर देने के बाद भी किसी ने नहीं कहा कि भौतिक वैभव का गुलाबी सपना दिखाकर कांग्रेस ने जनद्रोह किया है। अलग-अलग संस्कृतियों और भारत को विभिन्न राष्ट्रों का समूह बताकर अलगाववाद की आग में देश को जलने के लिए विवश करने वालों के लिए इस घिनौने शब्द का प्रयोग किसी ने नहीं किया। भिण्डरवाले जैसे आतंकवादियों का पालन पोषण और उसे संत की उपाधि देने क बाद भी राजीव को देशवासियों ने क्षमा कर दिया जबकि उसके कारण विभाजन की तलवार देश के कई भागों में लटकी दिखाई देती है। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सैनिक साज सामान में कथित दलाली खाने के बाद भी राजीव की इंदिरा कांग्रेस और कांग्रेसियों पर देशद्रोही होने का आरोप किसी ने भी नहीं लगाया। कांग्रेसी और वाममार्गीनुमा देशभक्ति कांग्रेसियों और माधवराव सिंधिया को मुबारक, लेकिन अपना अपराध दूसरे पर थोपने की राजनीतिक अदा वे न दिखाएं तो देश की सबसे बड़ी सेवा होगी और इस देश के 'दौलतराव' ही अपनी संतान के कारण बार बार शर्मिन्दा नहीं होंगे। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के नायक तात्या टोपे और रानी झांसी को बार बार देशभक्ति का दण्ड नहीं भोगना पड़ेगा। पूज्य मां ने जिस कलंक को धोया, बेटे ने उसे अपने माथे पर पुनः लगा लिया।

बातें बहुत हैं, उदाहरण अनेक हैं, किन्तु किसी बात का, किसी भी उदाहरण का, किसी भी प्रश्न का उत्तर कांग्रेस, कांग्रेसी, लीगी और वाममार्गी नहीं दे सकते। भारत की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था की भरी सभा में एक राष्ट्रीय दल की राष्ट्रभक्ति के शील, चरित्र और गरिमा का चीर हरण होते हुए भी प्रतिनिधि सहजभाव से देखते रहे। देशभक्ति का युद्ध केवल भाजपा एकाकी रूप से लड़ी। उस सभा में वे लोग या उस दल से जुड़े लोग भी थे जिन्होंने देश की आजादी की लड़ाई में अंग्रेजों का साथ दिया था। जिन्होंने सुभाष चन्द्र बोस को तोजो का कुत्ता कहा था। जिन्होंने पाकिस्तान का समर्थन करते हुए मुस्लिम लीग का साथ दिया था। जिनके राजनीतिक पूर्वजों को स्व० लोहिया ने विभाजन का अपराधी कहा है। रूस, और चीन के साथ जिनकी प्रतिबद्धताएं जग जाहिर हैं। भाजपा को देशद्रोही कटघरे में खड़ा किए जाते देखकर उस सभा के कुछ लोग संतुष्ट होते हुए से दिखाई दिये थे। भारत को मुस्लिम इंडिया बनाने की मुहिम चलाते-चलाते जिनके कारण पाकिस्तान बनाना पड़ा था। वहां वे भी थे जो बाबरी मस्जिद के लिए प्राण देने और इमामों के चरण चुंबन को साम्प्रदायिक सद्भाव और राम आंदोलन को साम्प्रदायिक मुहिम तथा देश विरोधी बताते हैं। उस सभागार में वे भी बैठे थे जो जाति-पांति के नाम पर देश को

गांव-गांव तक बांट देने और जातीय शत्रुता पैदा करने को राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक न्याय करना मानते हैं।

यह विषय भावना का है। भावना की सीमाएं बना पाना या उसकी गहराई नाप पाना सहज नहीं है। अतएव यदि उसके विस्तार को बटोरें तो निष्कर्ष यह बनता है कि राम आंदोलन ओर अयोध्या से जुड़े चिन्तन के कारण उभर रही भारत राष्ट्र की मूल अस्मिता इन समस्त प्रच्छन्न सिद्धांतवादियों के लिए एक गंभीर चुनौती है। गत चार दशक से भी अधिक समय से चले आ रहे इनके 'प्रच्छन्नतावाद' का सत्य सामने आने लगने के कारण ये सभी दल, व्यक्ति और तत्व विक्षिप्त हो गए हैं। अपनी छल कपट की राजनीति के लिए उत्पन्न गंभीर चुनौती के कारण ये सभी चिन्ताग्रस्त हैं कि उनकी सिकुड़ती सिमटती राजनीतिक दुकान कभी भी बंद हो सकती हैं।

देश की समस्त विडम्बनाएं, समस्त समस्याएं, समस्त व्यवस्थाएं, समस्त राजनीतिक आचरण कांग्रेस, कांग्रेसियों और उनके वैशाखी दलों की देन हैं। इन विडम्बनाओं में एक विडम्बना है भारत के राष्ट्र नायक राम से जुड़े लोगों को देशद्रोही और आक्रमणकारियों के द्वारा किये गए विध्वंसों एवं अपमानों को राष्ट्रीय स्मारक के रूप में स्थापित करके उन्हें सुरक्षित रखने की दलील देने वालों को सेकुलर, राष्ट्रीय एकता अखण्डता, समाजिक समरसता और साम्प्रदायिक सद्भाव का झण्डावाहक कहा जाना, किसी भी देश में देशभक्ति अपवाद होते जाना, देशभक्तों और राष्ट्रीय परंपरा का निरंतर अलग-थलग पड़ते जाना सबसे बड़ी विडम्बना है। अपवाद गद्दार होते हैं देशभक्त नहीं। भारत में मुस्लिम लीग से समझौता करना और वोट के लिए इमामों से फतवा प्राप्त करना साम्प्रदायिकता या राजनीति का मजहबीकरण करना नहीं होता लेकिन श्रीराम से जुड़ना और भारत की सांस्कृतिक विरासत पर बल देना भावनात्मक विभाजन करना माना जाता है।

भाजपा का अलग-थलग पड़ जाना भारत के उज्जवल भविष्य का संकेत है। देश में अब दो स्पष्ट पाले बन गए हैं। बीच की रेखा के इस पार श्रीराम का भारत और राष्ट्र खड़ा है। और उस पार पश्चिम से उधार लिया गया एवं मजहबी तुष्टीकरण का छलिया राष्ट्रवादी गिरोह। इस ओर देश को देवता मानने वाले लोग हैं और दूसरी ओर देश को सम्पत्ति मानकर उसका बंटवारा करके उपभोग करने वाले लोग हैं। एक ओर है देश को उसकी सांस्कृतिक विरासत से जोड़ने का संकल्प, दूसरी ओर है देश को जातिवाद की छुरी से काटकर सामाजिक न्याय का प्रलाप। एक ओर है राष्ट्र की शाश्वत राष्ट्रीय धारा और अपनी अस्मिता के अहसास से भरपूर भारत का तेजस्वी भविष्य और दूसरी ओर है कांग्रेस के चुनावी राजनीतिक हथौड़े एवं छैनी से तराशा गया नकली राष्ट्र और पश्चिम से आयातित राष्ट्रीय अवधारणा

माधवराव सिंधिया के कथन ने देश के राजनीतिक और राष्ट्रीय चरित्र का सत्यासत्य उजागर किया। श्रीराम आंदोलन और अयोध्या के रामरसायन का ही

परिणाम और प्रभाव है कि किसी न किसी बहाने स्थितियां स्पष्ट होती जा रही हैं तथा अतीत और भविष्य एक साथ वर्त्तमान होने को है। माधवराव ने देशभक्त और देशभक्ति, देशद्रोह और देशद्रोही को परिभाषित करने का यह अवसर अनायास उपलब्ध करा दिया है। भाजपा को चाहिये कि वह इस अवसर का उपयोग करे । क्योंकि यह बहस उन सबको कटघरे में खड़ा कर देगी जिन्होंने कभी न कभी, किसी न किसी अवसर पर, किसी न किसी रूप में देश के साथ दगा किया है। सेकुलरिज्म, साम्प्रदायिकता, राष्ट्रवाद, राम, रोटी, और इंसाफ के अपने सैद्धांतिक और वैचारिक अभियान में देशभक्त, देशभक्ति, देशद्रोह तथा देशद्रोही शब्द और अवधारणा को भी शामिल कर लेना भारत और भाजपा के लिए शुभ होगा। राष्ट्रभक्ति का अलग-थलग पड़ जाना और उसको अलग से पहचाने जाने की विडम्बना का अन्त करने का सुअवसर और सौभाग्य शायद भाजपा के ही प्रारब्ध में दर्ज है।

25 अगस्त 1991

समानान्तरता ही विखण्डन का कारण

हम आकाश की छत छूने लगे हैं। पाताल की सैर करने लगे हैं। हमारा दावा है कि हमने प्रकृति और धरती का सत्य जान लिया है। कभी-कभी, हमें ऐसा लगने लगता है कि आज के मनुष्य के लिए भविष्य में कुछ और कहने के लिए शेष है क्या ?

हां शेष है अभी बहुत कुछ करना, पहले से बहुत अधिक करना शेष है। अपने किए के दुष्परिणामों के ताप से मनुष्य की रक्षा करने का काम शुरू करना है। रोग से लड़ते-लड़ते आज का विकसित मनुष्य कैंसर और एड्स पर टिक गया है धनवान बनते-बनते कंगाल हा गया है। प्रकृति का शोषण करते-करते उसका परिवेश और प्राण प्रदूषित हो गया है। विज्ञान का विकास करते-करते उसने विनाश को न्योता दे रखा है। भूगोल के छोटा हो जाने, आकाश की छत छूने लग जाने, पाताल की सैर करने और धरती का सत्य जान लेने के बाद भी मनुष्य की भावना का विस्तार नहीं हुआ। उसकी भावना संकुचित हो गई, उसका दिल सिकुड़ गया। एक रोग का इलाज करते-करते उसने अनेक रोगों को जन्म दिया। उसके ज्ञान–विज्ञान, भौतिक समृद्धि औद्योगिक विकास ने उसे सार्थक संपर्क और संवाद से वंचित कर दिया है। मनुष्य अपने स्वयं के स्तर पर आत्महीन होता जा रहा है। उसकी आत्महीनता सम्वेदनशून्यता उत्पन्न कर रही है। संवेदनशून्यता कुटिलता को जन्म देती है। क्रूरता उसे निष्करुण बनाती जा रही है और निष्करुण मनुष्य को आत्म विस्मृत होना स्वाभाविक है। आत्मविस्मृति से समाज में अलगाव और समानान्तरता को बल मिलता है। समानान्तरता प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा देती है। प्रतिद्वंद्विता परायेपन का कारण बनती है। परायापन शत्रुता को जन्म देता है। शत्रुता प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की फसल उगाती है। विडम्बना यह है कि भूगोल जितना छोटा होता जा रहा है यह फसल उतनी ही सघन होती जा रही है।

कसौटी

दुनिया का संदर्भ बहुत बड़ा और उलझा हुआ है। सबकी परिस्थिति और परिवेश समान नहीं हैं। समानान्तरता के रोग से दुष्परिणामों का परीक्षण हम अपने देश के अनुभव की कसौटी पर करें। गत 44 वर्षों में देश में भौतिक और वैज्ञानिक विकास

नहीं हुआ है यह कहना यथार्थ को नकाराना है। औद्योगिक और कृषि क्रांति नहीं हुई, यह कहना भी सत्य को झुठलाना है। देश ने अपना भौतिक और वैज्ञानिक विकास किया किन्तु अपने पौरुष और प्रज्ञा के आधार पर नहीं, बल्कि विदेशों से उधार लेकर। उधार लेते-लेते हमारा आधार भुरभुरा हो गया। हमाारी राजनीतिक आजादी आर्थिक गुलामी के खतरे में पड़ गयी। हमारा मनुष्य स्वार्थी और परावलम्बी बन गया। उसकी परावलम्बिता को वोट राजनीति के खरल में घोट—घोट कर प्रत्येक स्तर पर समानान्तरता उत्पन्न की गई।

देश और समाज को तोड़ने की इस विधा को विधाता का वरदान मान कर उसके मानसपुत्रों तथा अलगाववादियों ने भी अपनाया और विघटन एवं विभाजन की समस्त सम्भावनाओं के द्वार खोल दिये।

अंग्रेजों ने योजनाबद्ध ढंग से देश की एक संस्कृति, एक समाज, एक समान प्रेरणा, और समान अनुभूति में दरार डालकर यहां हिन्दू मुसलमान दो समानान्तर समाज बनाए। भारत में दो समानान्तर प्रेरणाओं समानान्तर संस्कृतियों और समानान्तर राष्ट्रों की संकल्पना की स्थापना की। इस समानान्तरता ने भारतीय राष्ट्र बोध को तोड़ा। मजहबी मान्यताओं और पूजा पद्धति की भिन्नता को सामाजिक समरसता और साम्प्रदायिक सद्भाव में बाधक बताया। मुहम्मद पैगम्बर के मुस्लिम समुदाय को यहां का एक मुहम्मदी सम्प्रदाय बन जाने और ईसामसीह के ईसाई सम्प्रदाय को यहां के अनेक सम्प्रदायों के साथ अपनी पहचान और विशेषता बनाए रखकर भी रच बस कर रहने से रोका। यदि अंग्रेजों ने ऐसा किया होता तो इतिहास की गलतियों को सुधार कर, कटुता भुलाकर, हिन्दू, मुसलमान अपनी-अपनी मान्यताओं की भिन्नता के बाद भी समाज और राष्ट्र के रूप में रह रहे होते। समान रक्त और वंश—बोध को तोड़कर समानान्तरता का बोध न जगाया होता तो भारत राष्ट्र के सामने मुसलमान चुनौती बनकर न खड़ा होता। भारत के मुसलमानों की ताजिया संस्कृति यहां के हिन्दुओं की रामनवमी और दुर्गापूजा के तर्जे पर चली थी। आजादी के पहले यहां का मुस्लिमेतर समाज उसे ताजिया महादेव के रूप में देखता और मानता था। ताजिये का दर्शन करना पुण्य माना जाता था। मुसलमान दुर्गा पूजा में आमतौर से शामिल होने लगे थे। होली दीवाली को वे अपना त्यौहार मानने लगे थे। इतिहास की गलतियों को भुलाकर अपनी पहचान बनाए रखकर दोनों एकात्म होने की प्रक्रिया से गुजर रहे थे। किन्तु समानान्तरता निर्माण करने की कुटिलता ने समरसता की इस प्रक्रिया को समाप्त कर दिया। ईसाईयों का चर्च में कीर्तन प्रारंभ करना भी इसी प्रक्रिया का अंग था। किन्तु वह भी सेकुलरिस्टों को नहीं भाया।

समानान्तरता का व्याप

समानान्तरता उत्पन्न करने या समानान्तर समाज बनाने की यह कुटिलता केवल

मुसलमानों तक ही सीमित नहीं रही। हिन्दू मुसलमान दो समानान्तर और प्रतिद्वन्द्वी समाज निर्माण करने के साथ साथ हिन्दू सिख, हिन्दू बौद्ध, हिन्दू जैन, हिन्दू आर्यसमाजी, हिन्दू हरिजन, हिन्दू दलित, और द्रविड़ों तथा आर्यों का समानान्तर समाज बनाया गया। हिन्दू मुस्लिम सिख, ईसाई, आपस में हैं भाई भाई का नारा भी समनानान्तरता निर्माण करने की प्रक्रिया में से ही बना है। यह किसी व्यक्ति को दर्पण के सामने खड़ा करके उसे ही उसका प्रतिद्वंद्वी और समानान्तर व्यक्तित्व बना देने जैसी बात है।

लोकसभा में हरिजजनों पर अत्याचार की समस्या पर कई दिन बहस चली। हिन्दू-मुस्लिम दंगों पर साम्प्रदायिकता के कारण उत्पन्न होने वाले तनावों पर भी समय-समय पर बहस होती रहती है। बहस कराने के लिए सांसद किसी भी सीमा तक चले जाते हैं। किन्तु बहस शुरू होने के बाद सदन में केवल वक्ता बैठते हैं शेष सदस्य नदारद रहते हैं। कभी—कभी कोरम के अभाव में सदन की बैठक भी स्थगित कर देनी पड़ती है। और वक्ता जो कुछ बोलते हैं उसमें समाज को जोंड़ने की संवेदना एवं स्वर नहीं होता। अलग-अलग हितों पर आधारित समानान्तर समाज मानकर उसकी समस्या पर अनेक निहित स्वार्थों के संदर्भ में विचार किया जाता है। हिन्दू समाज का कलंक धोने की बात करते—करते (हां, प्रयास नहीं, केवल बात) समाज से पीड़ित वर्ग को हिन्दू समाज का शत्रु बनाने का हर संभव शाब्दिक और आचरणजन्य प्रयास किया जाता है। एक के बाद दूसरी घटनाएं घटती जाती हैं और हर बहस के बाद बात आई गई हो जाती है। सामाजिक और साम्प्रदायिक समस्या को बनाकर रखना एक कुशल और लाभप्रद राजनीतिक व्यवसाय बन गया है।

घृणित राजनीति

आंध्र में तिसंदूर में घटित हरिजनों पर अत्याचार की घटना पहली अमानवीय एवं वीभत्स घटना नहीं है। इसके पूर्व घटित अनेक घटनाएं भी अतीव क्रूर और अमानवीय थीं। सत्तर के दशक के अंतिम चरण में बिहार के बेल्छी में हुए हत्याकांड से द्रवित होकर सत्तावंचित इन्दिरा जी बरसते पानी में हाथी पर बैठकर बेल्छी गईं थीं। बेल्छी यात्रा उनके राजनीतिक पुनरागमन का कारण और आधार बनी। अस्सी के दशक के आरंभ में देवरिया (उत्तर प्रदेश) के कथित नारायणपुर काण्ड को बहाना बनाकर बनारसीदास सरकार को भंग करके राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया था। उसके बाद के दो दशकों मे देश के विभिन्न भागों में हरिजन हत्याकांड बलात्कार और सामूहिक दहन के इतने कांड हो चुके हैं कि अब उनको स्मरण कर पाना भी कठिन है। वे अतीत अर्थात् इतिहास बन गये हैं। विश्वनाथ प्रताप सिंह के निर्वाचन क्षेत्र फतेहपुर (उ० प्र०) में बीस महीने पूर्व की वह घटना भी लोगों को स्मरण नहीं होगी जब एक गर्भवती हरिजन महिला के पति को उसकी आंखों के सामने केवल इसलिए

जला दिया गया था कि उस गरीब ने अपनी पत्नी को किसी की मांग की पूर्ति बनाने से इंकार कर दिया था। तब सामाजिक न्याय के झण्डावाहक विश्वनाथ प्रताप सिंह प्रधानमंत्री थे और आधुनिक अम्बेडकर बनने की जी तोड़ कोशिश कर रहे थे रामविलास पासवान् केन्द्रीय समाज कल्याण मंत्री। तब वे इस घटना पर लगभग मौन हो गये थे। इस घटना की लीपापोती करने का हर संभव प्रयास किया गया और अब किसी को उसका स्मरण नहीं है, कोई यह पूछता नहीं है कि अपराधियों का क्या हुआ?

हरिजन हिन्दू और दलित हिन्दू का समानान्तर समाज बनाने के साथ-साथ अगड़ों पिछड़ों का समानान्तर समाज भी बनाया जा रहा है। गरीबी और पिछड़ेपन को आधार बनाकर जाति पाति की समानान्तरता बनाई जाने लगी है। समाज की रोटी बेटी बांट दी गई है। बांटना अर्थात् एक को दूसरे से अलग करके प्रतिद्वंद्वी बना देना। संपूर्ण समाज का समरस हो कर अपनी भूख और गरीबी का हल खोजने की संभावनाएं समाप्त की जा रही हैं। रोटी बांट कर नहीं, छीन कर खाई जाने की उत्तेजना उत्पन्न की जाने लगी है।

हिन्दू मुस्लिम समानान्तर समाज का दुर्बोध जगाया गया तो पाकिस्तान बना। इसी का परिणाम है मुस्लिम बहुल राज्य कश्मीर से हिन्दुओं का निष्कासन। केरल में कम्युनिस्टों द्वारा मुस्लिम बहुल मल्लापुरम जिले का निर्माण। भारतीय संविधान से अलग मुस्लिम शरीयत के आधार पर अपना नियमन करने का मुसलमानों का हठ। समान नागरिक संहिता की सविधानसम्मत व्यवस्था का विरोध और यहीं के मुसलमानों को आक्रमणकारी मुसलमानों के साथ जोड़ने का प्रयत्न।

पंजाब में आतंकवाद और खालिस्तानी आंदोलन भी हिन्दू सिख को समानान्तर समाज बनाने के प्रयत्न का सहज परिणाम है। यही कारण है कि आतंकवादी मारे जाते हैं तो सिख नेता उनके स्वर में स्वर मिलाकर उसे निर्दोष सिखों की हत्या बताते हुए उन्हें अपने मतदान केन्द्र की ओर आकर्षित करने का हर संभव प्रयास करते हैं।

असम का आतंकवाद भी देश को विभिन्न समानान्तर संस्कृतियों में बांटने की नादानी है। नक्सली आंदोलन, अपहरण, और हिंसा भी एक मन और एक प्राण वाले राष्ट्रीय समाज को विभिन्न समानान्तर वर्गों में बांट कर देखने की सोच में ही जन्मी है।

गरीबी किसी वर्ग या जति विशेष के साथ जुड़ी नहीं है। किन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न अपना उत्तर अवश्य मांगता है। इस प्रश्न का उत्तर गरीबी और अमीरी के संदर्भ में सर्वथा दूर है। इसका संबंध मनुष्य के मन से है। सामाजिक न्याय का लक्ष्य पाना है तो समानान्तर एवं प्रतिद्वंद्वी समाज का निर्माण न करके मानसिक क्रांति का श्रीगणेश करना होगा। इस समस्या का समाधान समानान्तर समाजों के निर्माण नहीं, सामाजिक समरसता का सृजन करने में है। इस लक्ष्य की प्राप्ति अपने

प्रतिद्वंद्वी दलों पर आरोप लगाने में नहीं, इस समय का यथार्थ समझने में है। इसके समाधान का मर्म है राजनीतिनिरपेक्ष सामाजिक संवेदना से भरा मन। अपना-अपना विशिष्ट मतदाता और अपने-अपने विशिष्ट मतदाताओं का देशव्यापी विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्र बनाने का राजनीतिक स्वार्थ इस समस्या को निरन्तर बिगाड़ेगा। गरीब का मजहब और गरीब की जाति हो सकती है। किन्तु गरीबी, भूख और बीमारी की न कोई जाति हो सकती है और न कोई मजहब। समाजिक समग्रता को तोड़कर जातीय और मजहबी समानान्तरता को बढ़ावा दिया जाएगा तो सामाजिक सुख, सामंजस्य, सामाजिक न्याय, एकात्मता और आत्मीयता फांसी पर टांग दी जाएगी। सामजिक जीवन वोट राजनीति का मोहताज बन जाएगा। तो टूटना ही उसकी नियति होगी और यह मनुष्य निर्मित नियति उसकी समस्त उपलब्धियों को निगल जाएगी।

चुकता जा रहा मनुष्यत्व

अपनी समस्त भौतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियों के बावजूद मनुष्य के स्तर पर मनुष्य चुकता और कंगाल होता जा रहा है। वह अपने पड़ोसी की पीड़ा का अनुभव नहीं कर पा रहा है। राजनीति और राजनीतिक नेतृत्व सामाजिक पीड़ा से परे अपना एक अलग समाज और संसार बनाने में व्यस्त है। उस समाज और संसार में मनुष्य कहीं नहीं है वहां है केवल चुनावी हार जीत का हिसाब। केवल सत्ता स्वार्थ। केवल मतदाताओं को अपनी ओर आकृष्ट करने की चतुराई। वहां सरल और संवेदनशील आत्मीय मन का अकाल है।

कुछ लोग कह सकते हैं और कई लोग अपना बौद्धिक व्यायाम करके बताते भी हैं कि यदि समानान्तर रेल की पटरियों पर चल कर हम अपनी मंजिल तक पहुंच सकते हैं, यदि कभी न मिलने वाले दो समानान्तर किनारों के बीच बहती नदी अपने सागर में समा सकती है तो समाजिक समानान्तरता सामजिक न्याय के लक्ष्य तक क्यों नहीं पहुंच सकती ?

यदि समाज रेल की पटरियों पर चलने वाली रेलगाड़ी या दो समानान्तर किनारों के बीच बहती नदी जैसा होता तो इस कुतर्क को उसका आधार मिल जाता। किन्तु समाज न रेल की पटरी पर चलने वाली गाड़ी है न नदी। उसका जीवन प्रवाह उसके जीवन सागर की लहरें एक दूसरे के साथ रची बसी हैं। यह तो सागर को केवल लहर माने लेने जैसी बात है। सागर में लहरें उठती हैं लेकिन लहरों का सागर नहीं होता। समाज का अपना एक विशिष्ट मन है, उसकी अपनी एक मंजिल है। उसकी यात्रा में निरंतरता है। वहां ठहराव नहीं है। वह गतिमान है। वह क्षितिज से क्षितिज तक जाता है। वह भूमि के साथ-साथ भ्रमण करता है किन्तु वायु के समान निःसंग होता है। यहां यदि मनुष्य चाहे तो अपनी सामाजिकता को जागृत कर दैवी विस्तार का अनन्त छोर छू सकता है।

और यदि इस तर्क को मान लें तो समानान्तर रेल की पटरियों पर चलने वाली रेलगाड़ी के चक्कों को जोड़ने वाली विधा का उपयोग सामाजिक एकता निर्माण करने में क्यों नहीं किया जाता ? दोनों पटरियों के बीच के स्लीपर को अपनी दृष्टि से ओझल क्यों कर देते हैं। उखड़ी या उखाड़ दी गई पटरी पर रेलगाड़ी चलाई जाती है तो केवल दुर्घटना होती है, यात्री अपनी मंजिल पर नहीं पहुंच पाता। इस प्रकार की अप्रासंगिक तुलनाएं ही समाजिक समरसता को सोखकर समानान्तरता निर्माण करके नित्य नई दुर्घटनाओं, संघर्ष और तनाव को जन्म दे रही हैं। सामाजिक न्याय से जुड़ी समस्याओं का समाधान क्षितिज की छत छू लेने और पाताल की सैर करने में तो नहीं धरती के सत्य का साक्षात्कार करने में है और धरती का सत्य सामाजिक समानान्तरता नहीं, विविधता में एकता, अपनापन एवं दायित्व बोध से रचा बसा एक मन और एक प्राण सामाजिक जीवन से है। यह कार्य विज्ञान और भौतिक विकास से नहीं, भावनात्मक संबंधों की स्थापना से संभव होगा। समाज की भावना को भ्रष्ट करके सामाजिक न्याय प्रदान और प्राप्त करने की मुहिम को केवल छल कपट कुटिलता और क्रूरता की ही श्रेणी में रखा जा सकता है। यह मनुष्य के जीवन धर्म के विरुद्ध है। अवसरवादी बहस और चर्चाएं इस कलंक को मिटाती नहीं, केवल शत्रुता एवं सामाजिक समानान्तरता पैदा करके इसे स्थायित्व प्रदान करती हैं।

1 सितम्बर 1991

फिर वही अध्याय, आलेख, और आचरण

23 अगस्त 1991 ! लोकसभा में धर्म स्थलों की सुरक्षा एवं 15 अगस्त, 1947 की यथास्थिति बनाए रखने संबंधी विधेयक प्रस्तुत ! भजपा द्वारा विरोध ! शेष दलों की सहमति से विधेयक को प्रस्तुत किए जाने की अनुमति !

केन्द्र की इंका सरकार को यह विधेयक क्यों लाना पड़ा ? श्रीराम जन्मभूमि को इसकी परिधि से बाहर क्यों रखा गया ? भाजपा के सांसदों ने इसका विरोध क्यों किया ? संसद के बाहर इस विधेयक के विषय में विपरीत प्रतिक्रिया क्यों व्यक्त की गई ? क्या परिणाम होंगे इस विधेयक के ?

लोकसभा की कार्रवाई पढ़ेंगे तो पाएंगे कि देश के ऊपर मंडरा रहे किन्हीं गंभीर खतरों का हवाला दिया गया। कश्मीर, पंजाब और असम की परिस्थितियों को देखते हुए इस विधेयक को चुपचाप पारित कर देने की आवश्यकता बताई गई। देश की बिगड़ती हुई साम्प्रदायिक स्थिति को सुधारने, अल्पसंख्यकों अर्थात् मुसलमानों के मन से असुरक्षा का भाव मिटाकर विश्वास उत्पन्न करने, साम्प्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता को बचाने को लिए इस विधेयक को रामबाण उपाय बताया गया। भाजपा के अतिरिक्त सभी दलों ने विधेयक के इन उद्देश्यों का मेजें थपथपा कर स्वागत किया। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता श्री सोमनाथ चटर्जी इतना अधिक उत्साहित थे कि उन्होंने कहा कि इस विधेयक को तत्काल सर्वसम्मति से पारित कर दिया जाना चाहिये। मुस्लिम लीग ने जैसे कोई बहुत बड़ा मोर्चा जीत लिया हो। जनता दल और राष्ट्रीय मोर्चा के सांसद बल्लियों उछलने की स्थिति में थे। कांग्रेसी संतुष्ट थे कि उन्होंने मुस्लिम लीग को दिया गया अपना एक आश्वासन पूरा कर दिया।

उठते प्रश्नों की अनन्त श्रृंखला

विचार और विश्लेषण का विषय केवल विधेयक और उसके कारण उत्पन्न होने वाली परिस्थिति ही नहीं, उसके पीछे मनोवृत्ति भी है। विश्लेषण इस बात का भी किया जाना चाहिये कि भारत जैसा सेकुलर सम्प्रदाय-निरपेक्ष राष्ट्र-राज्य साम्प्रदायिकता के राजरोग सी पीड़ित क्यों हुआ ? विचार इसका भी किया जाना जरूरी है कि 15

अगस्त 1947 को मिली आजादी के बाद के भारत में विघटन की स्थिति क्यों आई ? आजादी मिलते समय रक्त में डूबा देश, दंगों से दंग देशवासी खून और दंगामुक्त क्यों नहीं हो पाए ? भारत में हिन्दू मुसलमान, हिन्दू सिख, हिन्दू हरिजन, हिन्दू दलित आदि का समानान्तर समाज बनाकर उनमें एक दूसरे के प्रति शत्रुता और प्रतिशोध की आग किसने और क्यों जलाई ? देश की अखण्डता को कश्मीर का कैंसर रोग क्यों लगा ?

ये लोग न इन प्रश्नों का उत्तर देते हैं और न समस्याओं का वस्तुपरक अनुभव और इतिहास सिद्ध विश्लेषण ही करते हैं ? ये लोग इन समस्याओं का विश्लेषण करने से कतराते हैं ? क्यों ? केवल इसलिए कि इस विषय के विश्लेषण की प्रत्येक परत उनके कुटिल इरादों को नंगा करती है। इन प्रश्नों का प्रत्येक उत्तर उन्हें कटघरे में खड़ा कर देता है—एकदम निरुत्तर और विवश !

भारत के इस राजनीतिक खेमे की मूल प्रवृत्ति है पहले समस्या उत्पन्न करना और फिर उसका समाधान करने के लिए एकजुट होने का शोर मचाना। देश की अखण्डता को खतरा पैदा करने की रक्षा करने लिए सहयोग का हाथ बढ़ाने का अनुरोध करना। पहले साम्प्रदायिकता और अल्पसंख्यकता को बढ़ावा देना, फिर साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के लिए कुर्बानी देने का आह्वान करना। पहले अपनी राजनीतिक सुविधा और सफलता के लिए अलगाववादियों और आतंकवादियों से गुप्त समझौता करना और बाद में उस समझौते की शर्तों को अपने-अपने चुनाव घोषणा पत्रों में नीति और सिद्धांत के रूप में शामिल करना, पहले देश को आर्थिक गुलामी और दिवालियेपन की बेसहारा हालत में डाल देना, बाद में कर्ज लेने का औचित्य बताना और यदि कोई उनके इस इरादे को भांपकर देश के भविष्य का अनुमान लगाकर इस खेमे की कारगुजारियों के प्रति देशवासियों को आगाह करे, इनकी भूलों को बताए, अतीत और आगत का विश्लेषण करके उसके दुष्परिणामों की ओर संकेत करे, देश की दुर्दशा और खतरों के लिए जिम्मेदार नेतृत्व और नीतियों को उन्हीं के कर्मों के कटघरे में खड़ा कर दे तो यह खेमा एकजुट होकर उस पर साम्प्रदायिक, संकुचित, दंगाई, असहिष्णु, नीतिहीन, दिशाहीन, और देश की एकता अखण्डता को खतरा होने का आरोप लगाकर उसे बदनाम करने लग जाता है।

धर्मस्थलों की 15 अगस्त 1947 की यथास्थिति बनाए रखने वाला विधेयक क्यों लाया गया और श्रीराम जन्मभूमि को इस विधेयक की परिधि से बाहर क्यों रखा गया ? 15 अगस्त 1947 और 11 जुलाई 1991 के बीच हुए समझौतों और न्यायालय के निर्णयों को यथावत् बनाए रखने की धारा क्यों जोड़ी गई ? भविष्य में तत्संबंधी कोई विवाद उठाने के अधिकार को क्यों नकारा गया ? यदि यह कार्य साम्प्रदायिक सद्भाव निर्माण करने की सद्प्रेरणा से किया गया होता, यदि इसकी प्रेरणा सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय होती तो चिन्ता की कोई बात न होती। चिन्ता इसलिए है कि यह विधेयक

इंका, जनता दल, वामपंथियों और दूसरे दलों की राजनीतिक विवशता के कारण लाया गया। राजीव ने मुस्लिम लीग और जनता दल, राष्ट्रीय मोर्चा तथा वाममोर्चा के घटकों ने अब्दुल्ला बुखारियों की शर्तें मानकर मुस्लिम वोटों का सौदा न किया होता तो 15 अगस्त 1947 की यथास्थिति बनाए रखने की धारा वे अपने अपने घोषणा पत्रों में शामिल न करते।

विकृत उद्देश्य

इसका अर्थ यह है कि देश की एकता, अखण्डता, साम्प्रदायिक सद्भाव, दंगामुक्त देश कठमुल्लों की किसी न किसी शर्त की सूली पर टंगा है। राष्ट्रीय अखण्डता के प्रति देश के अल्पसंख्यकों अर्थात् मुसलमानों की प्रतिबद्धता सशर्त है। यदि उनकी शर्तें मानी जाएंगी तो ही वे साम्प्रदायिक सद्भाव और एकजन वाले समरस सांस्कृतिक भारत राष्ट्र की सुस्थिर राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति का आश्वासन देंगे अन्यथा देश को खून की नदी में डूबते रहने की परिस्थिति पैदा करते रहेंगे।

इसी स्तंभ में पहले भी लिखा है कि यह विधेयक काशी विश्वनाथ मंदिर और मथुरा के श्रीकृष्ण जन्म स्थान पर बनाए गए आक्रमण एवं अपमान के स्मारकों को स्थायित्व प्रदान करने और उन पर मुसलमानों को कानूनी अधिकार देकर उनकी खुशी प्राप्त करने के उद्देश्य से लाया गया। दसवीं लोकसभा के चुनाव के पूर्व जनता दल, वामपंथियों और इंदिरा कांग्रेस के कांग्रेसियों ने साम्प्रदायिक तथा मजहबी राजनीति करने वाले मुसलमान नेताओं को ढाढस बंधाया था कि राम जन्मभूमि तो उनके हाथ से गई किन्तु वे यह वायदा करते हैं कि काशी विश्वनाथ और कृष्ण जन्म स्थान के जिस भाग पर उनका अधिकार है हर संभव प्रयास और व्यवस्था करके उसको उनके ही अधिकार में बनाए रखा जाएगा।

पाठक परेशान हो सकते हैं कि मैं मुस्लिम तुष्टीकरण और राष्ट्रीय-अखण्डता के संदर्भ को मुस्लिम राजनीति के साथ बार- बार क्यों जोड़ता हूं। इसलिए कि यह इस देश की अखंडता को खण्डित करने वाले तत्वों एवं तथ्यों से जुड़ा अनुभूत यथार्थ है और इस यथार्थ की ओर जब कभी किसी ने अंगुली निर्देश किया तो उसे देश के विभाजन सहित समस्त साम्प्रदायिक दंगों, अलगाव और आतंक के लिए जिम्मेदार ठहराया गया। कोई कश्मीर और पंजाब से भागकर अपने देश के दूसरे भागों में आकर विस्थापितों की जिन्दगी जी रहे हिन्दुओं की ओर संकेत करता है तो उसके कारणों की तलाश न करके संकेत करने वाले को अलगाववाद और साम्प्रदायिक घृणा फैलाने का अपराधी बनाकर बहुत मासूम तरीके से स्वयं को अपराधमुक्त मान लिया जाता है।

व्यक्तिगत वार्त्ता को सार्वजनिक बना देना, लेखकीय परंपरा के विरुद्ध है तो भी अपनी पूर्वोक्त स्थापना की पुष्टि के लिए मैं एक उदाहरण देता हूं। एक उदाहरण

जनता दल के शासन के समय विश्वनाथ प्रताप सिंह के प्रधानमंत्रित्व में जारी किये गए उस अध्यादेश का है जिसके अन्तर्गत श्रीराम जन्मभूमि की आसपास की भूमि अधिगृहीत कर ली जाकर उसे श्रीराम जन्मभूमि न्यास को सौंपा जाना था। वह अध्यादेश जारी तो हुआ किन्तु अड़तालीस घण्टे में उसे वापस भी ले लिया गया था। क्यों ?

रहस्योद्घाटन जरूरी

इस प्रश्न का उत्तर दिया विश्वनाथ प्रताप सिंह मंत्रिमंडल के एक वरिष्ठ मंत्री ने। यह घटना मंत्रिमंडल के कागजों में दर्ज है। इस लेखक ने मंत्रिमंडल में की गई टिप्पणियां देखी थीं। किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण है उक्त मंत्री द्वारा बताया गया सत्य। अध्यादेश ज़ारी करने के पूर्व जनता दल के मंत्रियों ने अपने प्रधानमंत्री से पूछा था कि क्या उन्होंने मुसलमानों से बात कर ली है ? क्या अब्दुल्ला बुखारी से पूछ लिया है ? क्या लखनऊ के अली मियां जैसे मौलवियों की राय ले ली है ? क्या बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी वालों का मन जान लिया है । क्या यह अध्यादेश जारी होने के पश्चात् की परिस्थिति के सभी पक्षों का विचार कर लिया है ? उस समय श्रीराम कार सेवा आन्दोलन चरम सीमा पर था। श्रीराम कार सेवक अयोध्या की ओर चल पड़े थे। श्रीआडवाणी का रथ सोमनाथ से दिल्ली के पास पहुंच चुका था। विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने सहयोगी मंत्रियों से कहा था 'हां, सबसे बात कर ली है। कोई कठिनाई नहीं आएगी। अली मियां भी सहमत हैं और अब्दुल्ला बुखारी भी।'

विश्वनाथ प्रताप सिंह के इस आश्वासन के पश्चात् मंत्रिमंडल ने अध्यादेश को स्वीकृति प्रदान कर दी थी। राष्ट्रपति को रात में नींद से उठाकर अध्यादेश जारी कराया गया। किन्तु दूसरे दिन ? दूसरे दिन हुआ यह कि प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने सहयोगियों से सम्पर्क किया कि 'मंत्रिमंडल की आपात बैठक होनी है, सभी उपस्थित मंत्री बैठक में आ जाएं।' बैठक प्रारंभ हुई तो विश्वनाथ प्रताप सिंह बोले 'यह अध्यादेश वापिस लेना पड़ेगा।'

'क्यों' सभी मंत्रियों ने एक साथ प्रश्न किया ।

विश्वनाथ प्रताप सिंह का मासूम किन्तु विवश उत्तर था—'अब्दुल्ला बुखारी नहीं मान रहे हैं। अली मियां मुकर गये हैं। आज उनको नाराज करके हम कोई भी कार्य नहीं कर सकते।' और यह अध्यादेश वापिस हो गया था।

पहले यह एक अनुमान था बाद में उक्त मंत्री को बताया गया तो अनुमान को प्रमाण मिल गया।

यही वह प्रवृत्ति है जिसने देश को तोड़ने में लीगियों की मदद की है, **यही वह** राजनीति है जिसने कश्मीर को पाकिस्तान की दया का गुलाम बना रखा है। **यही वह** मानसिकता है जो पीलीभीत में मारे गये आतंकवादियों के पक्ष में धरना देने का

आधार प्रदान करती है यही वह 'राष्ट्रीय संकल्पना' है जो राष्ट्र को मजहबों और सम्प्रदायों में बांटती है । यही वह चतुराई है जो श्रीराम का प्रत्यक्ष निषेध तो नहीं करती किन्तु श्रीराम आन्दोलन को साम्प्रदायिक बताकर भारत में बाबरी वंश को प्रोत्साहन देकर, उसका पालन पोषण भी करती है, उसकी शर्तों पर देश का हिताहित भी पारिभाषित करती है।

साम्प्रदायिकता का बारूद

राजीव इन्दिरा कांग्रेस की सरकार ने साम्प्रदायिक तत्वों, लीगियों, समाजवादी लोगों, वाममार्गी दलों और इन सबको मिलाकर बने 'धर्म निरपेक्ष वंश' के सहयोग से एक बार पुनः देश के गांव-गांव तक साम्प्रदायिकता का बारूद छिपाने का काम किया। गली-गली में दंगे की जमीन जोत दी। प्रत्येक पूजा स्थल को विवादास्पद बना दिया। इस खतरे का उल्लेख इसी स्तंभ में गत दिनों किया जा चुका है। 15 अगस्त 1947 की स्थिति बनाए रखने के बहाने यदि भारत स्थित कोई अंग्रेज जार्ज पंचम और महारानी विक्टोरिया की हटा दी गई प्रतिमाओं को पुनः लगाने का अनुरोध करने लग जाए तो उसका क्या उत्तर देंगे ये तथाकथित सेकुलरिस्ट ? 15 अगस्त 1947 के बाद भारत सरकार के पुनर्वास मंत्रालय ने जो मस्जिदें सिखों और शेष हिन्दुओं को सौंप दी थीं और जहां गुरुद्वारे एवं मंदिर को इस विधयेक की परिधि से बाहर रखा गया है किन्तु श्रीराम जन्मभूमि को जिस विवशता के कारण इसकी सीमाओं से बाहर रखा गया है क्या वह विवशता शेष पूजा स्थलों को भी विधेयक की सीमा से बाहर रखवाने के लिए प्रोत्साहित और उत्तेजित नहीं करेगी ? जिस कारण श्रीराम जन्मभूमि को कानून की परिधि से बाहर रखा गया कल वही कारण देश के कोने–कोने में उत्पन्न किया जाने लगे तो इसका दायित्व किसका होगा ? जो मुस्लिम तुष्टिकरण भारत की राष्ट्रीय चेतना और अस्मिता को आहत करता आ रहा है क्या इस विधेयक के माध्यम से किया गया कानूनी तुष्टिकरण यहां के हिन्दुओं को इस बात के लिए विवश नही करेगा कि वे इस कानून को रद्दी कागज की तरह कचरे की टोकरी में फेंक दें ? यदि देश के बहुमत ने संसद के बहुमत को अस्वीकार कर दिया तो संसद के सम्मान और केन्द्रीय सार्वभौम सत्ता का क्या होगा ? ऐसी परिस्थितियां क्यों पेदा की जा रही हैं कि देश आन्तरिक अस्थिरता, आतंक और अराजकता का शिकार हो जाए ? साम्प्रदायिक राजनीति को अपनी सत्ता की मूल धुरी बनाकर देश की 85 प्रतिशत आबादी अर्थात् यहां के राष्ट्रीय समाज के साम्प्रदायिक होने, मजहब और सम्प्रदाय के संदर्भ में सोचने एवं आचरण करने की परिस्थितियां पैदा करके क्या सबल सुस्थिर, समरस और परस्पर विश्वास से परिपूर्ण राष्ट्र और समाज का निर्माण कर पाना संभव है ?

मिथ्या प्रलाप

कहा गया है कि यदि वह विधेयक पास होकर कानून बना तो कश्मीर की समस्या का समाधान हो जाएगा। कैसे ? क्या देश की समस्याओं को हिन्दू मुसलमान,

हिन्दू सिख, हिन्दू ईसाई आदि का साम्प्रदायिक संदर्भ प्रदान करके सुलझाया जा सकता है ? इस कानून को कश्मीर में न लागू किये जाने का आधार साम्पद्रायिक सद्भाव है कि वहां के मुसलमानों के बहुमत का भय ? क्या इसी भय ने कश्मीर को भारत का होकर भी भारत से अलग नहीं कर रखा है ? भय का निर्माण करके भय से मुक्त करने या रहने की सलाह देते रहना कांग्रेसी राजनीति की प्रयोगशाला की विशिष्ट उपलब्धि है।

ये लोग इस इतिहास सत्य पर पर्दा डालते रहते हैं कि भारत की कश्मीर की समस्या पाकिस्तान के आक्रमण का परिणाम है। पाकिस्तान अधिकृत गुलाम कश्मीर को आजाद करने का अभी तक कोई प्रयास नहीं किया गया तो केवल इसलिए कि शेष भारत में रहने वाले यहां के राजनीतिक और पाकिस्तानपरस्त मुसलमान इस प्रकार के किसी भी प्रयास से नाराज होते हैं। कैसे हैं ये शेष भारत के शेष मुसलमान ? किस राष्ट्रीयता और किस राष्ट्रभक्ति की परिभाषा दी जा रही है भारत के मुसलमानों को अपनी दूषित राजनीतिक मानसिकता एवं कुटिलता के साथ जोड़कर ? भारत की भूमि पाकिस्तान के कब्जे में बनी रहे और भारत का कोई नागरिक खुश हो तो उसे भारत का राष्ट्रजन भारत माता की संतान माना जाना नादानी है और राष्ट्रीय अपराध भी। गुलाम कश्मीर पर पाकिस्तानी कब्जा भारत पर पाकिस्तान का आक्रमण है। कांग्रेसी, जनता दल, राष्ट्रीय मोर्चा और वाममार्गी लोग क्या धर्मस्थल रक्षा विधेयक पारित करके इस आक्रमण का उत्तर देना चाहते हैं ?

कहा गया है कि यह विधेयक पाकिस्तान से कश्मीर खाली करा लेगा, पंजाब को शांत कर देगा। कैसे ? उनका उत्तर है कि भारत का मुसलमान संतुष्ट और खुश हो जायेगा तो यह समस्या स्वतः समाप्त हो जायेगी।

पंथनिरपेक्षता का ढोंग

देशवासी भूले नहीं होंगे कि गत 44 वर्षों से कांग्रेसी कुनबा और वाममार्गी गिरोह यही तो करता आया है । यही सब करते–करते देश को विभाजन से लेकर शाहबानो तक पहुंचा दिया। इसी खुशी के लिए मुसलमानों की शरीयत को समानान्तर संविधान मानकर, भारतीय संविधान के निर्देशों का निषेध और अवज्ञा करके समान नागरिक संहिता और कानून नहीं बनाया गया, उनकी हर खुशी के लिए हर प्रकार की कुर्बानी की, लकिन देश फिर भी मुस्लिम अलगाववाद और मजहबी गुण्डागर्दी के आतंक से मुक्त नहीं हो पाया।

धर्म स्थलों के 15 अगस्त 1947 की यथास्थिति सुरक्षित करने वाला यह विधेयक भी इसी राष्ट्रघाती साम्प्रदायिक प्रवृत्ति और राजनीति का विस्तार है। इस विस्तार का विश्लेषण बहुत ही भयावह है। इस विधयेक ने देश को 15 अगस्त 1947 के आस पास वाली उस स्थिति में पहुंचा दिया जब देश खून में डूबा था। दंगों के कारण

लाशों से पटा था और भारत के अभिन्न अखण्ड भूगोल को काटकर एक मजहबी मुस्लिम राष्ट्र की नींव इन्हीं तथाकथित सेकुलरिस्टों द्वारा हिन्दू मुस्लिम समस्या सुलझाने और दंगामुक्त भारत का निर्माण करने के लिए रखी गई थी। वही अध्याय पुनः खोला गया है। वही आलेख पुनः लिखा गया है तो वही दुष्परिणाम पुनः सामने आएंगे। अपने अपराधों को छिपाने के लिए इस गिरोह के लोग पुनः किसी बलि के बकरे की तलाश करेंगे ओर निस्संदेह वह बकरा भारत की राष्ट्रीय अस्मिता और मूल राष्ट्रीय धारा से जुड़े वे लोग होंगे जो तब भी (15 अगस्त 1947) इस प्रवृत्ति और प्रक्रिया के विरुद्ध खड़े थे और आज भी इस राजनीतिक कुटिलता और पाखण्ड के विरुद्ध खड़े हैं। इस विधयेक के माध्यम से देश को एक बार पुनः मुस्लिम साम्प्रदायिकता और मजहबी उन्माद के भेड़िये के सामने फेंक दिया गया है।

8 सितम्बर 1991

देश बेचकर सुख खरीदने की मानसिकता

किधर जा रहा है देश ? क्या दशा है देश की ? किस माहौल में रह रहे हैं हम ? अनिश्चित कल के विषय में कोई सान्त्वनापूर्ण कल्पना भी क्यों नहीं कर पा रहे हैं हम ? समाज टूट रहा है। स्वयं टूट रहा होता तो हम मान लेते कि उसकी आयु पूर्ण हो गई । किन्तु वह स्वयं नहीं टूट रहा है, उसे स्वार्थप्रेरित होकर योजनाबद्ध ढंग से तोड़ा जा रहा है। सामाजिक सुधार के नाम पर सामाजिक विकार को बढ़ावा दिया जाना, सामाजिक न्याय को अन्याय की आधार भूमि प्रदान करना, समाज के स्थायी भाव का निषेध करके अस्थिरता को प्रगति का पर्यायवाची बताना, देश के नेतृत्व का सीधा और सरल तरीका बन जाना किसी सुखद भविष्य की ओर संकेत नहीं करता।

माना कि किसी भी देश का पूर्ण चित्र समाचार पत्रों में प्रतिबिम्बित नहीं होता। किन्तु उससे देश के स्वास्थ्य और उसके शरीर के तापमान का पता तो चलता ही है। जब हम यह पढ़ते हैं कि देश के विभिन्न भागों में किसी व्यक्ति को मार मार कर इसलिए मार डाला गया कि वह कोई हरिजन या अछूत था, जब यह समाचार छपा है कि हरिजनों पर हमला करके उसकी बोटी-बोटी काट कर फेंक दी गई, जब हरिजन महिला को नंगा करके सड़क पर घुमाने की खबर मिलती है, जब समाज के पिछड़े वर्ग के गांव केवल इसलिए जला दिये जाते हैं कि वे अपना अधिकार पाना चाहते हैं, जब उन्हें कुएं से पानी भरने से रोका जाता है तो भी क्या हम यह मान लें कि देश में सब कुछ ठीक ठाक है ?

जब हम यह समाचार पढ़ते हैं कि आंध्र, बिहार या गुजरात के किसी गांव के अछूत और सवर्ण जाति के लोग एक दूसरे को नीचा दिखाने या सबक सिखाने की तैयारी कर रहे हैं, जब हमें यह पता चलता है कि हमारे अपने ही देश की युवतियों को कुछ धन पशु खरीद कर विदेश ले जाकर बेचते हैं, जब किस वनवासी, किसी अर्थपीड़ित परिवार को अपनी बेटी बेचने के लिए विवश होना पड़ता है, जब भूख से तड़पते परिवार को रोटी देने के लिए किसी मां को, किसी बहन को, किसी बेटी द्वारा, अपना शरीर बेचने और उसे खरीदने का समाचार पढ़ते हैं तो क्या यह आवश्यकता शेष रह जाती है कि हमें कोई और बताए कि हमारे देश और समाज का स्वास्थ्य

कैसा है ?

खुला सच

जब हम समाचार पत्रों में पढ़ते और भारतीय संसद में अपने गृहमंत्री से सुनते हैं कि हमारे अपने भारत, हमारी अपनी मातृभूमि का एक लाख सोलह हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पाकिस्तान और चीन के कब्जे में है, अठहत्तर हजार वर्ग किलोमीटर भूमि पाकिस्तान ने दबा रखी है। 1962 में अड़तीस हजार वर्ग किलोमीटर भूमि चीन ने हमला करके हड़प ली है। 1962-63 में पाकिस्तान-चीन समझौते के अन्तर्गत पाकिस्तान ने भारत की 5120 वर्ग किलोमीटर भूमि चीन को सौंप दी, जब हमें बताया जाता है कि तथाकथित आजाद कश्मीर नाम का भारतीय भू भाग अभी तक गुलाम है, जब इंग्लैंड की लेबर पार्टी के छाया विदेश मंत्री काफमैन हमारे अपने निमंत्रण पर भारत आकर पाकिस्तान के पक्ष में कश्मीर का अन्तराष्ट्रीयकरण करते हैं, जब पाकिस्तान में अमरीकी राजदूत ओकले कश्मीर पर पाकिस्तानी अधिकार मानकर विश्व मंच पर पाकिस्तान का पक्षधर होने का आवश्वासन देते हैं, जब कश्मीर, पंजाब, असम, तमिलनाडु, और आंध्र प्रदेश के आतंकवादी हमारे सुरक्षाबलों की बंदूकें छीन लेते हैं, जब भारत सरकार आतंकवादियों के सामने विवश होती दिखाई देती है, जब समाचारों की पंक्तियों के बीच की सफेदी बोलने लग जाती है कि भारत सरकार आतंकवादियों की बंधक है जब भारतीय संसद में भाारत का गृहमंत्री आंकड़े देता है कि केवल 1990-91 में 5093 निर्दोष नागरिक आतंकवादी हिंसा के शिकार हुए, जब बंगलादेश का विदेश मंत्री कहता है कि बंगलादेश की मैत्री और खुशी खरीदने के लिए भारत सरकार तीन बीघा क्षेत्र देने के लिए तैयार हो गई है, जब भारत का वित्त मंत्री अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक की तिजोरी में भारत की राजनीतिक आजादी को गिरवी रखने की शर्तें मानकर भारत की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का आश्वासन देता है तो भी क्या हम किसी वैद्य की प्रतीक्षा करें कि वह आए और राष्ट्र की नाड़ी पर हाथ रखकर हमें बताए कि उसका स्वास्थ्य कैसा है ?

सिर्फ शोर !

क्यों है छुआछूत इस देश में ? क्यों जलाए जाते हैं हरिजन ? क्यों होती हैं सामूहिक हत्याएं ? उनकी महिलाओं को नंगा क्यों किया जाता है ? क्यों किसी की मां, बहन, बेटी को अपना शरीर बेचने के लिए विवश होना पड़ता है ? और कोई क्यों उन्हें खरीदता और बेचता है ? भारत का हिन्दू दर्शन इसकी अनुमति नहीं देता फिर भी छुआछूत और ऊंच-नीच का भेद भाव क्यों है ? केवल इसलिए कि हम विकृतियों के बंदी हैं और विकृतियों में कहीं न कहीं किसी न किसी स्तर पर हमारा स्वार्थ निहित है। हम अपने ही समाज के बंधुओं को अपने ही रक्त मांस को, अपना

रक्त मांस और आत्मांश नहीं मानते। इन विकृतियों का हम अपनी राजनीतिक, सामाजिक, और मानसिक विलासिता के साधन के रूप में उपयोग करने लगे हैं। परिणामस्वरूप हम इनके विषय में शोर तो मचाते हैं, इन पर शब्द बाण तो चलाते हैं, इनसे जुड़ी घटनाओं को लेकर संसद और विधानसभाओं की कार्रवाईयां तो रोक देते हैं, मुख्यमंत्रियों, मंत्रियों, और प्रधानमंत्री के त्यागपत्र की मांग तो करते हैं किन्तु अपने इन पीड़ित बंधुओं की व्यथा को बांटने का कोई सार्थक कार्य नहीं करते। उनका संताप तो बढ़ाते हैं किन्तु अपने और उनके संताप तथा रोटी और बेटी का साझापन पैदा नहीं करते। उनकी बहुओं-बेटियों के साथ बलात्कार पर शोर तो मचाते हैं किन्तु उनकी बेटी को अपनी बहू बनाने से कतराते हैं, अपनी बेटियों को उनके बेटों के साथ (उन बेटों के साथ भी हमारी बेटियां, जिनकी बहू बनना चाहती हैं) रिश्ता नहीं बनने देते। अपने हाथ से रोटी खिलाकर अछूतोद्धार करने का यश तो लूटते हैं, किन्तु उनके हाथ से रोटी का प्रसाद खाकर आत्मोद्धार नहीं करते। सामाजिक अभिसरण की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करने का हर संभव प्रयास केवल इसलिए किया जाता है कि बोलने के लिए विषय बना रहे, सामाजिक न्याय के लिए सामाजिक सुधार का पुरोधा बने रहने का अवसर समाप्त न होने पाए।

जिस समाज और जिस व्यवस्था में नारी को नंगा किया जाता है वहां केवल महाभारत होता है, महाविनाश। जिस समाज में नारी को सम्पत्ति मानकर बेचा और जुए में हारा–जीता जाता है उस समाज के धर्म को वनवासित होना ही पड़ता है। यह केवल महाभारत की द्रौपदी या धर्मराज के साथ ही नहीं घटता प्रत्येक युग में उस प्रत्येक व्यक्ति-समूह को इसका शिकार होना पड़ता है। नारी का बंटना, उसका बांटा जाना, संपूर्ण सृष्टि को बांटना और उसके साथ बलात्कार करना है। स्त्री को बेचना और उसका बिकना, उसको खरीदा जाना ईश्वरीय सत्ता का अपमान और मानव निहित दैवी संवेदनाओं का आसुरी हो जाना है। किसी मनुष्य को अछूत मानकर कोई भी समाज या व्यक्ति समूह अक्षत और अक्षय नहीं रह सकता। अमीरी और गरीबी को ऊंच–नीच और छुआछूत का आधार मानना, आर्थिकता के आधार पर सामाजिकता का निर्धारण करना, सामाजिक स्तर को रुपये, और सम्पत्ति के तराजू पर तोलना, वनवासी को वनवासी और अछूत बनाए रखकर सामाजिक सुधार और सामाजिक न्याय की प्रक्रिया चलाते रहने का संतोष करना सामूहिक और सार्वजनिक छल है। यदि हम अपने गरीब भाई और बेटे को उसकी गरीबी के कारण अछूत नहीं मानते, उसकी आर्थिक विपन्नता के कारण उसका सामाजिक आदर भाव कम नहीं होता तो हम हमारे अपने ही समाज और अपने ही पूर्वजों की संतानों को अस्पृश्य क्यों मानें? यदि हम किसी विदेशी गोरे या काले को अपने लोटे से पानी दे सकते हैं, उसके साथ खा-पी सकते हैं, उसको अपनी बेटी ब्याहने में गर्व का अनुभव करते है, तो अपने राष्ट्रीय भाइयों और अपने रक्त मांस के साथ भेद भाव क्यों करते हैं?

देश के स्वास्थ्य के विषय में एक बात और। और यह मूल बात है। हम देश दशा की बात तो करते हैं, किन्तु स्वयं से नहीं, दूसरों से। आजकल जो कुछ हो रहा है वह अचानक नहीं है। उसका एक सिलसिला है। एक सलीका है। इस देश को, यहां के निवासियों को उनके 'आत्म' से जुड़ने न देकर उन्हें आत्महीन बनाने की एक ऐतिहासिक प्रक्रिया चली आ रही है। हमें अपने आदर्श, अपनी संस्कृति, अपने पूर्वजों और अपने इतिहास के उज्ज्वल पक्ष से जुड़ने न देकर केवल अंधेरा, केवल विकृति, केवल अपराध और केवल अन्याय के साथ जोड़ा गया। हमारी विकृतियों और विकारों को हमारा यथार्थ बताया गया। पहले परिवार तोड़ा गया फिर समाज को और अब राष्ट्र को तोड़ा जा रहा है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक ही सांस्कृतिक सूत्र में गुंथी समान राष्ट्रीय प्रेरणाओं और समान सामाजिक संवेदनाओं को राजनीतिक विद्वेष की बारूद से उड़ा देने का प्रयास किया गया। क्योंकि रूस विभिन्न राष्ट्रीयताओं और राष्ट्रों को विवश करके सोवियत संघ बना था इसलिए भारत को भी विभिन्न राष्ट्रों का एक संघ बताना कुछ लोगों ने जरूरी समझा। यह साजिश पूरी तरह सफल तो नहीं हुई किन्तु राष्ट्रों का न सही राज्यों का भारतीय संघ बनाने में तो वे सफल हो ही गये। विभिन्न राष्ट्र अर्थात् विभिन्न संस्कृतियां, विभिन्न समाज अर्थात् अलग-अलग प्रेरणाएं, अलग-अलग प्रेरणा पुरुष, अलग-अलग इतिहास और अलग- अलग भाषाओं में अलग-अलग भाव धाराएं। भारत में इस स्थापना के पुरस्कर्ताओं के प्रेरक राष्ट्र और उनके राष्ट्रनायक स्वयं एक भाषा में बोलते हैं किन्तु, भारत की एक सर्वमान्य राष्ट्र भाषा नहीं बनने देते।

और इस विचार प्रवाह के उत्तराधिकारी ? उत्तराधिकारी वे हैं जो इस वैचारिक कूड़े में भारतीय कीड़े के रूप में पल रहे हैं। यहां के राष्ट्रीय समाज और देश के भूखण्ड को सदा टूटने की स्थिति में बनाए रखना ही उनकी राजनीति का मूलाधार है। यदि कोई राष्ट्रीय एकता अखण्डता की बात करता है, राष्ट्र के विघटन के कारणों की मीमांसा करता है, सामाजिक समरसता, जाति वर्ण विहीन समाज और सामाजिक न्याय पर बल देता है, मजहबनिरपेक्ष राष्ट्र नीति का उल्लेख करता है, अपने-अपने मजहबी कर्मकाण्ड अक्षत रखकर एक राष्ट्रीय पहचान की आवश्यकता का प्रतिपादन करता है तो विकृति के ये उत्तराधिकारी पुरोधा कहते हैं कि देश में समस्याएं और भी हैं। राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय प्रेरणा के ऊर्जा स्रोतों की बात अभी न करें। इनके विचार से श्रीराम से जुड़ने से देश टूटता है। भगवान शिव की मंगल कामना और शुभ संकल्प सामाजिक और राष्ट्रीय एकता में बाधक हैं। इनका राष्ट्रीय ज्ञान योगेश्वर श्रीकृष्ण को सेकुलरिटी के लिए खतरा बताता है। समस्याएं और भी हैं कहकर ये लोग केवल वही कार्य करते हैं जिनके कारण देश बंटे, समाज टूटे, समाजिक समरसता समाप्त हो और साम्प्रदायिक सद्भाव संकटग्रस्त हो जाए। कोई श्रीराम जन्मभूमि की मुक्ति की बात करे तो वह देशद्रोही होता है लेकिन काशी विश्वनाथ

और श्रीकृष्ण की जन्मभूमि पर बर्बर विदेशी आक्रमण के कलंक को चिरस्थायित्व प्रदान करे तो इनकी यह अपेक्षा होती है कि उन्हें देशभक्त कहा जाना चाहये। ये भारत का एक लाख सोलह हजार वर्ग किलोमीटर भू भाग विदेशी कब्जे में रहने दें और देश का 'तीन बीघा' बंगला देश को यह कहकर सौंप दें कि, उस भूखण्ड पर केवल पैंतीस परिवार रहते हैं तो उन्हें ही कहीं और बसा दिया जाएगा, तो इन्हें राष्ट्रीय अखण्डता का रक्षक और भारत माता का सपूत संतान माना जाए।

विरोधाभासी प्रवृत्तियां

भारत माता को बेचकर दोस्ती खरीदने वाली मनोवृत्तियां सामाजिक न्याय और नारी के सम्मान का मार्ग नहीं बना सकतीं। देश उनके लिए भावना का नहीं, उनका भौतिक सुख खरींदने वाली वस्तु है। देश और समाज का स्वास्थ्य बिगड़ा ही इसीलिए कि इसको केवल वस्तु माना गया। सामाजिक व्यवस्था को अपने सुख की स्वार्थपूर्ण व्यवस्था करने के लिए आवश्यक माना गया। हमें अपने समाज के बंधुओं और राष्ट्र के प्रति पाप करने में लज्जा आनी बंद हो गई है। पाप पुण्य की संवदेनशीलता प्रतिगामी और अंधयुग की सोच बन गई तो परायापन आना ही है। पशु, पक्षियों, वृक्षों, पर्वतों, नदियों, तालाबों को जीवन्त मां की स्नेहमयी संवेदना से जोड़ना, इनके साथ मां का नाता जोड़कर जीना, बंद न किया जाता या इस जीने का निषेध न किया जाता तो इन सामाजिक संतापों और राष्ट्रीय संकटों की तपती रेत पर चलने की विवशता पैदा ही न हुई होती, हमारे समाज का शरीर-स्वास्थ्य और मन इतना न बिगड़ता कि हम अपने ही रक्त-मांस-बीज और वृक्ष से नफरत करने लग जाते।

15 सितम्बर 1991

मस्जिद की जमीन, मस्जिद की हैसियत और भारत राष्ट्र

पश्चिमी देशों, रूस और दुनिया के दूसरे भागों से केवल सोना और सम्पत्ति की ही तस्करी नहीं होती। कुछ ऐसे भी तस्कर हैं जो कल्पना, साहित्य, तर्क, बुद्धि और अपनी अलग पहचान बनाने के लिए राष्ट्रीय अस्मिता की भी तस्करी करते हैं। ये बुद्धि तस्कर ही हैं जिन्हें भारत की हजारों वर्ष पुरानी राष्ट्रीय अस्मिता भारी पड़ती है। जिनके लिए भारत एक बहु सांस्कृतिक और राष्ट्रीय राज्य है, ये ही लोग भारतीय राष्ट्रीयता और पश्चिमी हिन्दुत्व में निहित सनातनता को नकार कर पश्चिमी प्रगतिशीलता को, मिली जुली सांस्कृतिक अवधारणा के प्रकाश में भारत की एकरस गंगाधारा को नदी नालों में तोड़कर बांटते हैं। ये भारत की सांस्कृतिक प्रक्रिया को एक ऐसी प्राचीन पाण्डुलिपि PALIMPSET तो मानते हैं जिस पर पहले लिखे आलेख को मिटाए बिना बार-बार लिखा गया है, किन्तु यह मूल बात नहीं मानते कि भारत की धरती पर प्रथम आलेख जिनका है, संस्कृति का प्रथम श्लोक जिन्होंने लिखा है, सृष्टि के सनातन सत्य का जिन्होंने साक्षात्कार किया है, भूमि के साथ जन का संतान के रूप में नाता जोड़ा है, अपने भूगोल को माता की भावना से रचा सा है, भारत भूमि पर रह रहे उसी जन को कालान्तर से हिन्दू और उसकी साधनासिद्ध मानवता को हिन्दुत्व की संज्ञा प्रदान की गई।

सनातन धर्म का यह साक्षात्कार भारत मे रह रहे प्राचीन भारतीय अर्थात् हिन्दू समाज के संतों, साधकों और तपस्वियों ने ईसा मसीह और पैगम्बर मुहम्मद के जन्म से कई हजार वर्ष पूर्व किया था। पांच हजार वर्ष का तो ज्ञात इतिहास है, ढाई हजार वर्ष से अधिक बुद्ध और महावीर को हुए ही हो गए, लगभग इतने ही वर्षसे विक्रम संवत् भी चल रहा है। और तभी से भारत की यह हिन्दूनामी सांस्कृतिक धारा अखण्ड बहती आ रही है। इस धारा ने कभी किसी का निषेध नहीं किया। यह सर्वसमावेशी धारा है। इस प्रक्रिया में सबको सामान आदर प्राप्त है। यह रक्त-मांस-बीज वृक्ष की एकात्मता का साक्षात् स्वरूप है। यह सच है कि हजारों वर्ष प्राचीन इस सांस्कृतिक और राष्ट्रीय धारा में कई धाराएं मिली थीं किन्तु सभी ने इसमें अवगाहन करके आत्म विसर्जन कर दिया, अपनी नश्वरता को सनातनता में समाहित करके वे सभी धाराएं

अविनाशी बन गईं। सभी का अपना गंतव्य अर्थात् सागर का लक्ष्य प्राप्त करने में भारत की गंगाधारा सहज भाव से सहायक बनी। कोई चाहे तो अपनी बुद्धिजीविता की रक्षा करने के लिए इसे मिली जुली संस्कृति कह ले या संस्कृतियों का महासंघ किन्तु यथार्थ यह है कि भारत की संस्कृति सागर में नित्य उठने वाली एक दूसरे से जुड़ी हुई लहर के समान है। यह नदी प्रवाह के सतत, नित्य और प्रति क्षण नवीन होकर सामने उपस्थित होने वाले जल जैसी है। नवीन जल प्रवाह के कारण नदी नहीं बदलती। सैंकड़ों नदियों के जल का संगम होने के बाद भी सागर—सागर ही रहता है, वह विभिन्न नदियों के नाम से नहीं जाना जाता। संगम और एक आलेख को मिटाए बिना दूसरे आलेख लिखते जाने में कोई अन्तर नहीं है। उस आलेख को न पढ़ा जाना व्यावहारिक विवशता है तो संगम की समरसता सृष्टि का संस्कार है।

भ्रामक प्रचार

भारत की भूमि पर हजारों साल से रह रहे समाज को हिन्दू संज्ञा प्रदान की गई तो भारत राष्ट्र सहज भाव से हिन्दू राष्ट्र के रूप में जाना पहचाना जाने लगा। पश्चिम के बच्चा राष्ट्रों को अपना नवजात रूप भारत के भीष्म राष्ट्र के समक्ष बौना दिखाई देने लगा तो उन्होंने इसकी पहचान का सवाल खड़ा कर दिया। क्योंकि वे यहां अवैध ढंग से रह रहे थे। इसलिए भारत को राष्ट्र न मानकर सराय बताया कि यहां तो सभी बाहर से आए हैं इसकी कोई एक संस्कृति नहीं है। यह कभी राष्ट्र रहा ही नहीं। अभी इसे राष्ट्र बनना है और जिन्हें यह तर्क भाया, सुविधाजनक लगा, जो बुद्धि के स्तर पर पश्चिम के गुलाम थे, उन्होंने इस तर्क को मान लिया और उसी की तोतारटन्त करने को अपनी बुद्धिजीविता बना लिया। वे ही पश्चिम और रूस की कही हुई यह बात दोहराते रहते हैं कि भारतीय राष्ट्रीयता न हिन्दू है न ईसाई और न मुसलमान। इसका आधार है बहुसंस्कृतिवाद।

किन्तु वे हर बार यह भूल जाते हैं कि बहुवादिता पश्चिम और रूस की नहीं, भारत की भूमि पर हिन्दू नाम से जाने—पहचाने जाने वाले समाज और उसकी प्रज्ञा का गुण धर्म है। ईसाई और मुस्लिम मजहब के झण्डावाहक बहुवादिता के विरोधी ही नहीं, उसके शत्रु भी हैं। उनका सिद्धांत है, उनकी मानो या मरो। यही उनके वांङ्मय का निर्देश भी है।

इन विक्षिप्त बुद्धिजीवियों का दुर्भाग्य यह है कि वे जिस हिन्दू संस्कृति का निषेध करते है। जिस हिन्दू राष्ट्र का विरोध करते हैं। जिस आत्म को पराया बताकर अपनी प्रगतिशीलता प्रमाणित करना चाहते हैं, वह एक स्थाई और एतिहासिक सत्य है। अपनी स्थापना को सत्यापित करने के लिए वे जिन राज्यों और साम्राज्यों की चर्चा करते हैं वह भारत राष्ट्र का नहीं, वह भारत की राजनीति का सत्य है। राष्ट्र और राज्य समाज और शासन को गड्डमड्ड करने के कारण पश्चिमी और रूसी बुद्धि के

तस्कर राष्ट्र को राज्य और राज्य को राष्ट्र मान लेते हैं और उसी तर्ज पर राष्ट्र राज्य की बहस चलाते रहते हैं। वे यह मानकर चलते हैं कि यदि राजनीतिक विप्लव में से पश्चिम की राष्ट्रीय अवधारणा उपजी थी तो भारत में भी उसे उसी प्रक्रिया में उपजना चाहिये। हीन भावना से ग्रस्त और अपने अतीत को नकारकर आधुनिक बनने की होड़ में लगे इन बुद्धि तस्करों की यह मान्यता इसलिए है कि यदि सोवियत रूस विभिन्न संस्कृतियों, राष्ट्रीयताओं और राष्ट्रों का संघ है तो भारत को भी विभिन्न राष्ट्रीयताओं और संस्कृतियों का संघ होना चाहिये।

यही बुद्धि विकलांगता भारत राष्ट्र, भारत की राष्ट्रीयता, भारतीय संस्कृति और असंदिग्ध राष्ट्रीय अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह लगाकर संदिग्ध बनाती और यहां के राष्ट्रीय समाज से प्रमाण मांगती है कि यह बताओ कि यह राष्ट्र तुम्हारा कैसे है ? विविधता से भरे इस भूखण्ड की एक संस्कृति, एक जीवनधारा, एक इतिहास, एक प्रेरणा, समान आकांक्षा और समान अनुभूति कैसे हो सकती है ? वे बार-बार कहते हैं कि यदि भारत में कश्मीर से कन्याकुमारी तक कभी एक राजनीतिक इकाई रही ही नहीं तो यह एक राष्ट्र कैसे हो सकता है ?

राष्ट्र होने की शर्त

ये प्रश्न केवल प्रश्न ही नहीं उत्तर भी हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक की इनकी बात भारत के एक राष्ट्र होने का स्वयं प्रमाण है। क्या किसी राष्ट्र का एक ही राजनीतिक इकाई की चौखट में रहना आवश्यक है ? क्या एक मजहब को मानने वालों का एक राष्ट्र होना किसी राष्ट्र की पहली शर्त है ? यदि ऐसा होता तो ईसाई और इस्लाम को मानने वाालों का एक ही राष्ट्र होता। तो पश्चिम के देश में अमरीकी, कनाडी, जर्मनी, फ्रांसीसी और ब्रिटिश राष्ट्रों का अलग-अलग अस्तित्व न होता। तो अरब और दूसरे भागों में रहने वाले इस्लामी मतानुयायियों का एक ही राष्ट्र होता। राष्ट्र होना किसी एक राजनीतिक इकाई पर निर्भर होता तो युगोस्लाविया का विघटन न होता, बाल्टिक देश रूस से पिण्ड छुड़ाकर स्वतंत्र होने की घोषणा न करते।

इन बुद्धि तस्करों की यह बात मान लेने मे कोई हानि नहीं है कि भारत राष्ट्र पर घिरे अनेक संकटों में सबसे गंभीर संकट उसकी अस्मिता और पहचान का संकट है।

भारत की राष्ट्रीय पहचान पर प्रहार करके, और भारत राष्ट्र की हिन्दू अस्मिता को अपमानित करके इसे सराय बनाकर रखने वालों की साजिश का पर्दाफाश किया है श्रीराम आंदोलन ने। श्रीराम आन्दोलन ने दो स्पष्ट पाले बना दिये हैं। बीच की सीमा के एक ओर खड़े हैं भारत राष्ट्र की अस्मिता, उसके गौरवशाली अतीत और पहचान के प्रति प्रतिबद्ध लोग और दूसरी ओर हैं मूर्त्त भारत राष्ट्र को अमूर्त्त बताकर विदेशियों के बंटवारे से भारत की राष्ट्रीय अस्मिता को तोल रहे तस्कर बुद्धिजीवी।

राम आंदोलन के विरोधी केवल वे हैं जो भारत राष्ट्र को उसकी मूलधारा से काटकर उसे अस्तित्व और अस्मिता विहीन निराकार रखना चाहते हैं। ये लोग न ईसाई हैं न मुसलमान। ये हैं मजहब के ठेकेदार, भारत की विविधता में एकता के सूत्र को छिन्न कर अपना राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करके अपनी अलग कौमियत और सार्वभौम सत्ता का सपना देखने वाले विकृत बुद्धिजीविता के बंदी लोग।

इस स्थाापना का सिद्ध प्रमाण है बाबरी मस्जिद की पक्षधरता। जो लोग मस्जिद की मानसिकता का रक्षा कवच बनकर खड़े हैं, जो लोग काशी विश्वनाथ और श्रीकृष्ण जन्मस्थान उसके उपासकों को न दिये जाने के लिए कटिबद्ध हैं उनका न कोई मजहब है। न कोई संस्कृति। वे न कुरान की मानते हैं न पुराण की। यदि ये इस्लाम कुरान, पुराण और इतिहास को मानते होते, यदि ये लोग राजनीतिनिरपेक्ष होकर श्रीराम से जुड़ी राष्ट्रीय अवधारणा को पहचान पाए होते तो तथाकथित बाबरी मस्जिद के रूप में श्रीराम की जन्मभूमि पर खड़े ढांचे का सर्वसम्मति से हल किया गया होता। ये लोग जो कुछ कर रहे हैं पैगम्बर मुहम्मद, इस्लाम और कुरान इसकी अनुमति नहीं देता।

मस्जिद की जमीन और मस्जिद की हैसियत के विषय में दिये गये निर्देशों का मानना भी क्या इस्लाम का एक महत्वपूर्ण अंग नहीं है ?

'मस्जिद और मस्जिद की जमीन के सिलसिले में उल्मा और फुकहा ने बड़ी शरायत मुकर्रर की है। फुकहा की इस राय से किसी को इख्तलाफ नहीं है कि जो मस्जिद रियाकारी, नामोनमूद के लिए बनाई जाए, जो पाक माल से, हलाल कमाई से न बनाई जाए, उसकी हैसियत मस्जिद जरार की-सी होगी। (तफसीरात अहमदी, पृष्ठ 283)

'बैफांसिद से खरीदी गई जमीन पर मस्जिद बनाना दुरुस्त नहीं है। ऐसी जमीन पर मस्जिद बनाने की इजाजत नहीं है। (फतुहल कदीर, खण्ड-2, पृष्ठ-875)

'नाजायज तरीके से हासिल की गई जमीन पर भी मस्जिद बनाना दुरुस्त नहीं है। मिसाल के तौर पर कुछ लोग किसी का घर जबदरदस्ती हासिल करके उस जमीन पर मस्जिद या जामा मस्जिद बना लें तो ऐसी मस्जिद में नमाज पढ़ना जायज न होगा। (फ़तवा आलमगीरी, खण्ड 6 पृष्ठ-214)

'कोई रास्ता ऐसा हो कि एक मस्जिद के बनने से चलने वालों को परेशानी, नुकसान या तकलीफ हो तो बिलाशुबहा ऐसी मस्जिद दुरुस्त नहीं है।' (फतवा आलमगीरी खण्ड-3 पृष्ठ-239)

'फुकहा की राय यह भी है कि अगर कोई शख्स ऐसी जगह मस्जिद बनाए जिसमें दूसरे का हक हो और उसकी रजामंदी न हासिल की गई हो तो उसको हक है कि उस मस्जिद को बातिल करार दे दे और अपना हक ले ले। दूसरे लफ्जों में यह बात भी कही जा सकती है कि अगर किसी जमीन पर पड़ोस या रिश्ते की वजह से

किसी को हक शफा हासिल हो तो उसकी मर्जी या इजाजत के बगैर इस पर मस्जिद नहीं बनाई जा सकती।' (फतहलकदीर, खण्ड-2, पृष्ठ-875)

'मस्जिद की तामीर के लिए जमीन जायज और हलाल तरीके से ही हासिल की जानी चाहिये और इस हलाल तरीके की वजाहत यह की गई है कि इस जमीन पर किसी का हक न हो। हदाया में इसे एक मिसाल के जरिये इस तरह समझाया गया है कि अगर एक शख्स ने कोई मस्जिद बनाई **जिसके नीचे** कोई तहखाना हो और उसका दरवाजा किसी रास्ते पर खुलता हो ओर गो कि इस मस्जिद के हिस्से को उसने अपनी मिलकियत से निकालकर मस्जिद बना दिया हो तो भी यह दुरुस्त नहीं होगा। क्योंकि उसने जब उस हिस्से को बजाव्ता-तौर पर खरीद फरोख्त नहीं किया है तो उसको और उसके वारिसों का, उसके इंतकाल के बाद इस हिस्से को फरोख्त करने का हक बाकी रहेगा। साहेब हदाया ने इसकी दलील यह दी है कि यह मस्जिद अल्लाह के लिए खालिस नहीं थी क्योंकि इससे बंदे का हक भी जुड़ा हुआ है। कायदा कुल्लिया यह है कि मस्जिद वह है जिसमें कसी को भी हकमना हासिल न हो यानी इस मस्जिद पर किसी तरह का कोई भी हक न हो।' (हदाया, खण्ड-2, पृष्ठ-624-625)

फुकहा इस मसलक पर हमेशा अलमपैरा रहे हैं। मौजूद दौर के फतावा में भी इसकी मिसालें मिलती हैं —

सवाल : मुसलमान चाहते हैं कि हिन्दू जमींदार से जमीन खरीदकर मस्जिद बनाएं क्योंकि मुसमलमानों के पास मौरुसी जमीन से अलग कोई ऐसी जमीन नहीं है जिस पर मस्जिद या जामा मस्जिद बनाई जा सके। लेकिन वह हिन्दू जमींदार जमीन बेचना नहीं चाहता, ऐसी सूरत में क्या किया जाए ?

जवाब : अगर हिन्दू जमींदार जमीन बेचना नहीं चाहे तो मुसलमान घरों में ही नमाज पढ़ें (फतावा रजविया, खण्ड-6, पृष्ठ- 461)

"अगर जमीन मुश्तरक है तो शुका की इजाजत के बगैर मसिजद बनाना जायज नहीं है और अगर ऐसी जमीन पर मस्जिद बना भी दी जाए तो इसमें नमाज पढ़ने का सवाब नहीं है।" (फतावा मौ० अब्दुल हई,, वहवाला आदाबुल मस्जिद, मुफ्ती मुहम्मद शकी पृष्ठ-25)

'किसी फाहिशा औरत ने अगर अपनी हराम आमदनी से मस्जिद बना दी तो यह मस्जिद तसलीम नहीं की जाएगी। (मजमुआ फतावा मौलाना अब्दुल हई, पृष्ठ-268)

इस्लाम के इतिहास में ऐसी मिसालें मिलती हैं कि अगर किसी इबादतगाह के किसी भी हिस्से को जबदरस्ती हासिल करके मस्जिद में शामिल किया गया तो बाद में उसे तोड़ दिया गया। बनू उमैय्या के जमाने में वलीद बिन अब्दुल मलिक ने दमिश्क में एक शानदार मस्जिद बनाने का इरादा जाहिर किया। इसके लिए जमीन कम पड़ी तो उसने पड़ोस के चर्च की जमीन ईसाईयों से मांगी। उन्होंने बखुशी देने से इंकार कर दिया। हजरत उमर बिन अब्दुल का जमाना आया तो उन्होंने हुक्म दिया कि

मस्जिद का यह हिस्सा जो चर्च की जमीन पर बना है गिरा दिया जाए और सरकारी खर्च पर चर्च अजसरे नौ तामीर किया जाए (खुत्वत शिव्ली, पृष्ठ-74 व 75)

मजकूरा वाला हवालों से यह साबित होता है कि मस्जिद ऐसी इमारत को ही कह सकते हैं जो उस जमीन पर ही बनाई जाए जिस पर किसी का हक न हो, जो गैर मुतानाजिया हो, जो हलाल या जायज आमदनी से बनाई गई हो, जिसके लिए किसी इबादतगाह को गिराया न गया हो या उसकी जमीन पर कब्जा न किया गया हो। ऐसी किसी जमीन पर जो मजकूरा वाला शरायत पर पूरी न उतरती हो मस्जिद बनाना मना है और अगर कोई मस्जिद बनाई जाए तो उसे गिराया या हटाया जा सकता है।

किन्तु इन लोगों का तथ्यों, तर्कों और निर्देशों से कोई बांटना नहीं है। भारत राष्ट्र को उसकी अस्मिता से जुड़ने न देकर उसे अमूर्त्त रखने में ही ये लोग अपना हित संबंध सुरक्षित मानते हैं। अतएव यह संघर्ष मंदिर-मस्जिद, राम-रहीम के बीच नहीं, भारत राष्ट्र की अस्मिता और उस विदेशी बुद्धि के बीच है जो अपनी श्रेष्ठता को चिरस्थाई बनाए रखने के लिए भारत की जनता में हीनभावना भरकर, यहां की राष्ट्रीयता को साम्प्रदायिकता के समकक्ष खड़ा करके संपूर्ण भारत राष्ट्र को केवल साम्प्रदायिक और केवल सराय के रूप में प्रस्तुत करने के लिए कटिबद्ध हैं। अतः संघर्ष की समर भूमि मंदिर-मस्जिद और मजहब नहीं, यह मानसिकता है। यही विकृत मानसिकता भारत राष्ट्र को बिगाड़ रही है, यही मानसिकता भारत के प्राणतत्व को पराया अर्थात् किसी का भी नहीं सिद्ध करके निराकार सनातन धर्म के साकार स्वरूप हिन्दू राष्ट्र को मिटा देने के लिए जूझ रही है। अतएव मंदिर मस्जिद विवाद से जुड़ी बहस करनी ही है तो उसका आरंभ यहां से किया जाना चाहिये कि श्रीराम आंदोलन भारत राष्ट्र और उसकी सनातन राष्ट्रीयता की पहचान कराने वाली धारा का स्रोत है और श्रीराम जन्मभूमि पर मंदिर का निर्माण इसका समापन होगा अर्थात् तभी एक बार पुनः राजनीति और मजहब निरपेक्ष भारत राष्ट्र की अस्मिता मूर्त्त रूप धारण करेगी।

22 सितम्बर 1991

संसद में हुआ राष्ट्रीय अस्मिता पर प्रहार

संसद का पावस सत्र, बजट सत्र के रूप में सम्पन्न हुआ। यह सत्र बजट पारित करा लेने के कारण इंदिरा कांग्रेस की अल्पमत सरकार और दल के लिए सुखद, संतोषप्रद और उत्साहवर्धक हो सकता है, किन्तु देशवासियों को इस बीच तीन बड़े आघात लगे। एक— लोकसभा में दूसरे बड़े दल को शासक दल के एक मंत्री द्वारा देशद्रोही कहने से, दो— पूजा स्थलों की 15 अगस्त 1947 की यथास्थिति बनाए रखने वाला विधेयक पारित होने से, तीन— भारत के मर्यादा पुरुषोत्तम और समस्त विश्व के एक मात्र मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम प्रभु को दुराचारी कहने से। ये तीनों प्रसंग भारत की राष्ट्रीय परंपरा, राष्ट्रीय प्रेरणा और राष्ट्र भक्ति के साथ जुड़े हैं। इन तीनों का संदर्भ संसद में एक ऐसी गहरी विभाजक रेखा खींच गया है कि जिसने भारत की जनता, हम भारत के लोगों द्वारा निर्वाचित सांसदों को दो स्पष्ट खेमों में बांट दिया है।

अशोभनीय था वह क्षण

इन तीन बिन्दुओं के अतिरिक्त एक ऐसा माहौल भी स्थायित्व ग्रहण करता दिखाई दिया जिसके कारण संसदीय मर्यादा और इस मान्यता का, कि लोकतंत्र वाद-विवाद और विचार विमर्श द्वारा मतभेद कम या समाप्त करके आम सहमति या विमति का सम्मान करते हुए चलने वाली प्रक्रिया का अंत होना दिखाई दिया। यह भी एक मान्यता है कि निर्वाचित प्रतिनिधि देश की जनता का प्रतिनिधित्व करते है। और उनके माध्यम से सदन में जनभावना प्रतिबिम्बित होती है। गहरे और गंभीर मतभेदों तथा विभिन्न प्रतिबद्धताओं के बाद भी सौमनस्य बनाए रखना लोकतंत्र का प्राणतत्व है। किन्तु दसवीं लोकसभा के प्रथम सत्र में यह मान्यता भी मिटती दिखाई दी। मतभेदों, सैद्धान्तिक और नीतिगत प्रतिबद्धताएं शत्रुता और प्रतिशोध का रूप लेती दिखाई दीं। परिणामस्वरूप सदन में आचरण और शब्द प्रयोग की गरिमा बगलें झांकने लगी।

इंदिरा कांग्रेस सरकार के मंत्री माधवराव सिंधिया ने भाजपा को देशद्रोही कहा तो भाजपा के अतिरिक्त लोकसभा के सदस्य आमतौर से चुप्पी साध गए और भारत की संसद में देशभक्ति की लड़ाई भाजपा को अलग-थलग रहकर अकेले लड़नी पड़ी।

देशभक्ति क्रास पर भाजपा को देशद्रोह की कील से टांके जाने की कोशिशों की एकमत और तत्काल निन्दा नहीं की गई। भारत के पूजास्थलों की 15 अगस्त, 1947 की यथास्थिति सुरक्षित रखने वाले विधेयक को समूची संसद ने भाजपा पर प्रहार करने का हथियार बनाया और भाजपा के प्रति यह कटुता इस सीमा तक चली गई कि भारत के भगवान रूप राष्ट्र पुरुष श्रीराम प्रभु को दुराचारी कहने में भी संकोच या लज्जा का अनुभव नहीं हुआ। भाजपा प्रसन्न होगी, उसे प्रसन्न होना चाहिए कि श्रीराम प्रभु अर्थात् भारत की चिरन्तन चिति के साथ उसकी एकात्मता और राष्ट्रीय परम्परा के साथ उसकी एकरसता ने भारतीय संसद में उसे वह एकमेवता प्रदान कर दी है, जिसके लिए प्रत्येक देशभक्त तड़पता है। और जो प्रत्येक देशवासी का अभीष्ट होता है।

भाजपा प्रसन्न हो सकती है, उसका प्रसन्न होना स्वाभाविक भी है किन्तु देशवासी दुःखी हुए, चिन्तित हुए और उनका दुःखी और चिन्तित होना भी स्वाभाविक है।

देशवासियों की चिन्ता और दुःख का कारण स्पष्ट है। दसवीं लोकसभा ने अपने प्रथम सत्र में जिस चिन्तन प्रक्रिया और राजनीतिक आचरण का प्रदर्शन किया है उसने उन तमाम स्मृतियों की पर्तें उघाड़ दी हैं जिसके कारण 15 अगस्त, 1947 को देशमाता का विभाजन हुआ था, जिसके कारण देश में सामाजिक समानन्तरता, सांप्रदायिक शत्रुता, क्षेत्रीय राष्ट्रीयताओं, भाषाई उन्माद, मजहबी तुष्टीकरण एवं अल्पसंख्यकवाद को बढ़ावा और राष्ट्रीय चिन्तन को इंच-इंच करके काट डालने और मिटा देने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई थी। देशवासियों के दुःख का एक कारण यह भी रहा कि भारत के जिस राम के चरित्र पर आज तक अंगुली नहीं उठाई जा सकी, उसी भारत की संसद में, उसी भारत के उसी राम को दुराचारी कहा और भारत की गरिमामय संसद में ऐसा लगा कि मानो कहीं कुछ हुआ ही नहीं। यदि भाजपा के सांसद सदन में उपस्थित न होते तो जनता दल के सांसद द्वारा श्रीराम को दुराचारी कहे जाने का संभवतः किसी ने कोई प्रतिवाद न किया होता। श्रीराम पर लगाया गया यह आरोप भारतीय संसद के जिन माननीय सदस्यों ने सहज भाव से सुना, वही सदस्य मुहम्मद साहब के विषय में श्री गुमानमल लोढ़ा द्वारा कहे गए एक वाक्य को कि 'आप लोग श्रीराम पर आरोप लगा रहे हैं यदि मैं मुहम्मद साहब के विषय में कहूं कि वह...थे तो, आपको कैसा लगेगा। आपत्ति करते हुए उछलने लगे थे। यह विपक्ष और भाजपा के नेता श्री लाल कृष्ण आडवाणी ही थे जिन्होंने लोकसभा के उपाध्यक्ष से निवेदन किया था कि, 'श्रीमन्, मुहम्मद साहब के विषय में मेरे दल के सांसद ने जो कुछ कहा है, उसे सदन की कार्रवाई से निकाल दिया जाए।' किन्तु भारत के किसी नेता या सांसद ने आपत्ति करने का नैतिक साहस नहीं किया और न अन्य दलों के नेताओं या उनके किसी सांसद ने इस पर आपत्ति की। भारत के श्रीराम प्रभु

भारतीय संसद में उस दिन लावारिस से बन गए थे। वह तो भाजपा ने उनको अपनी छाती से लगा लिया अन्यथा अब तक की अपनी संपूर्ण गरिमा और मर्यादा पुरुषोत्तम होने के बावजूद श्रीराम का यहां कोई पक्षधर नहीं था।

राष्ट्र को अपमानित करने की होड़

भारत को, अपने राष्ट्र को, अपमानित करने की यह होड़ सचमुच चिन्ताजनक है। भारत के महापुरुषों, भारत के शास्त्रीय विधानों, भारत की सामाजिक और राष्ट्रीय परंपराओं को घटिया बताने, वेदों की ऋचाओं, स्मृति के श्लोकों और साहित्य के पदों का प्रसंगहीन प्रयोग करना निःसंदेह रूप से निन्दनीय है तो भी यह सब किया और बोला जा रहा है और इस सबका कारण केवल यह है कि भारत की चिति का नवोन्मेष भारत के कुछ विशिष्ट नेताओं और दलों को रास नहीं आ रहा है।

भारत के पूजा स्थलों की 15 अगस्त, 1947 की यथास्थिति बनाए रखने के लिए संसद द्वारा पारित किया गया विधेयक हो या भाजपा को 'देशद्रोही' कहा जाना अथवा श्रीराम को दुराचारी बताना, इस सबके पीछे की मानसिकता एक ही है कि क्योंकि आजादी के बाद से अब तक की समस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सांप्रदायिक स्थापनाएं ध्वंस हो चुकी हैं, मिलीजुली संस्कृति और मिलेजुले राष्ट्र की अवधारणा के कारण देश खंड-खंड होने की हालत में पहुंच गया है, देशवासी अपनी मूर्छा का त्याग करके जाग रहे हैं। वे अपने राष्ट्रीय यथार्थ और सामाजिक, सांस्कृतिक वास्तविकताओं के साथ जुड़ने लगे हैं, इस कारण देश की राजनीति को अपने दल और नेतृत्व के संदर्भ से जोड़कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने का हर संभव प्रयास करते रहने वाले नेता विक्षिप्त हो गए से लगते हैं। भारत राष्ट्र की चिति और चेतना के नवजागरण को वे अपने अस्तित्व के लिए चुनौती मानते हैं। क्योंकि यह चुनौती राजनीतिक क्षेत्र में उन्हें भाजपा के रूप में मूर्त्त हुई दिखाई देती है, इसलिए भाजपा के साथ शत्रुता और प्रतिशोध की भावना के कारण वे राम और राष्ट्र पर भी प्रहार करने लगते है।

यदि 11 सितंबर 1991 को लोकसभा में भाजपा सांसद कुमारी उमा भारती ने स्पष्टीकरण के बहाने 10 सितंबर को जनता दल के सांसद द्वारा श्रीराम को दुराचारी कहे जाने का उल्लेख न किया होता तो यह आरोप सदन में सुना तो गया होता, सदन के बाहर बोला तो जाता, किन्तु सदन की कार्रवाई का अंश न बनता और बाहर लिखा भी नहीं जा सकता था। सदन की कार्रवाई में से प्रथम दिन यह शब्द निकाल दिया गया था किन्तु दूसरे दिन निकालते-निकालते रह गया। कुमारी उमा भारती का यह कथन सदन की कार्रवाई में दर्ज है कि "मैंने (उमा भारती) बी० जे० पी० के सदस्यों से कहा कि किसी व्यक्ति को, न राम के बारे में, न जीसस क्राइस्ट के बारे में, न मुहम्मद के बारे में अभद्र शब्द, खासतौर से 'दुराचार' जैसे शब्द के प्रयोग का

अधिकार नहीं है। तुम भी मत बोलो। अगर तुम बोलोगे तो मैं उस पर भी आपत्ति करूंगी। वे वाद-विवाद के क्षण थे। मुझे किंचित मात्र भी स्मरण नहीं है कि मैंने सोनकर शास्त्री (राजनाथ सोनकर शास्त्री) जी को यह कहा हो कि मैं तुम को मार डालूंगी, और तुम्हारी लाश बनारस के घाट पर जलती रहेगी।'

घातक पड़ाव की पीड़ा

प्रश्न यह है कि क्यों होता है ऐसा? क्यों हो रहा है यह सब? क्यों बोला गया यह अभद्र शब्द। इसका कारण केवल यह नहीं है कि भाजपा की राजनीतिक सफलता उसके विरोधियों, विशेषकर जनता दल, कम्युनिस्टों और लीगियों, विश्वनाथ प्रताप, सोमनाथ चटर्जी, इन्द्रजीत गुप्त और सुलेमान सेत जैसों को हजम नहीं हो पाई अथवा वे अपनी राजनीतिक पराजय, घटती प्रतिष्ठा और प्रतिदिन कम होती विश्वसनीयता के कारण परेशान हैं, इसका कारण कुछ और है। इस शत्रुतापूर्ण गिरोहबंद राजनीति का बिन्दु केवल राजनीतिक या चुनावी जय-पराजय में नहीं है। इसका आरंभ वह 15 अगस्त, 1947 है जिसे पूजा स्थलों की यथास्थिति बनाए रखने का आधार वर्ष या सीमारेखा माना गया है और जिसके कारण जामा मस्जिद दिल्ली के नायब शाही इमाम अहमद बुखारी ने 13 सितम्बर की नमाज के बाद कहा है कि 'हिन्दुस्तान का मुसलमान पार्लियामेंट के फ्लोर पे अपना केस जीत गया।' अर्थात् यदि मुसलमान की जीत हुई है तो कोई हारा भी होगा।

भारत की अति प्राचीन जीवन यात्रा में 15 अगस्त, 1947 बड़ा ही घातक पड़ाव है। इस दिन की घटना ने केवल भारतभूमि का ही विभाजन नहीं किया, भावनात्मक स्तर पर भी देशवासी और देश दोनों को बांट दिया। 15 अगस्त, 1947 के कारण ही हमें हमारी राष्ट्रीय विरासत बोझ मालूम पड़ने लगी। 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत को भारत न रहने देकर इसे यूरोप, अमरीका और रूस बनाने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत को उसकी मूलधारा और अखंड परंपरा के प्रवाह से अलग कर दिया गया। 15 अगस्त, 1947 के बाद अनन्तकाल से ज्ञात और मान्य राष्ट्रपुरुष और भारत के भगवान को भुलाकर एक नए राष्ट्रपिता और एक नए महापुरुष की पूजा प्रारंभ हुई।

भाजपा को देशद्रोही कहे जाने, श्रीराम प्रभु पर दुराचारी होने का आरोप लगाने तथा पूजा स्थलों की 15 अगस्त, 1947 की यथास्थिति बनाए रखने की मानसिकता, आवश्यकता और विवशता का पता लगाना है तो 15 अगस्त, 1947 को पराजय के लिए जिम्मेदार और राष्ट्र का अपमान करने के अपराधियों को अपना छल-प्रपंच उजागर होता दिखाई देने लगता है तो वे किसी मानवीय सिद्धांत की ओट से राष्ट्रीय अस्मिता पर संयुक्त प्रहार करने लग जाते हैं।

क्योंकि उन्होंने महात्मा गांधी को 15 अगस्त, 1947 को जन्मे भारत राष्ट्र का

राष्ट्रपिता मान लिया है, इसलिए गांधी जी के पूर्व के भारत के राष्ट्रपुरुष और भारत माता की सपूत संतानें उनके लिए संदर्भहीन हैं क्योंकि 15 अगस्त, 1947 के बाद उन्होंने केवल जवाहरलाल नेहरू को महापुरुष माना है इसलिए उनके तई नेहरू जी के पूर्व किसी महापुरुष का होना अर्थहीन है। क्यों कि उन्होंने 15 अगस्त, 1947 को भारत राष्ट्र जन्म दिवस माना है, 15 अगस्त 1947 को ही वे भारत के राष्ट्र बनने की प्रक्रिया का आरंभ मानते हैं, इसलिए उसके पूर्व के हजारों वर्ष प्राचीन भारत का अस्तित्व और उसकी अस्मिता को अनावश्यक मानते हैं। क्योंकि उनकी यह मान्यता नेहरू और इंदिरा के साथ-साथ चलती हुई राजीव तक आकर ठहर जाती है इसलिए वे किसी और की मान्यता की कल्पना ही नहीं कर पाते। अपने ही वर्तमान के बंदी ये लोग न भारत का अनादि-अतीत देख पाते हैं, न अनन्त भविष्य से जुड़ पाते हैं।

विभाजक मानसिकता

दसवीं लोकसभा के प्रथम सत्र में यही मानसिकता भारत के गौरवशाली अनादि-अतीत पर प्रहार करती मिली। भाजपा 15 अगस्त, 1947 के पूर्व और पश्चात् दोनों का प्रतिनिधित्व करती दिखाई दी तो जनता दल, वाममर्गी पार्टियां, इंदिरा कांग्रेस, मुस्लिम लीग, और दूसरे दल 15 अगस्त, से जुड़ी विभाजक मानसिकता का रक्षा कवच बनकर खड़े दिखाई दिये। अपनी राजनीतिक पराजय को भाजपा के प्रति शत्रुता में बदलने का कारण किसी की संख्या का घटना या बढ़ना नहीं, उनकी अब तक की समस्त मान्यताओं और स्थापनाओं का ध्वस्त हो जाना है। इसी कारण उनकी दृष्टि में श्रीराम दुराचारी हैं, इसी कारण भाजपा देशद्रोही है, इसी कारण संसद को विचार-विमर्श और सार्वभौम मंच न रहने देकर राजनीतिक प्रतिशोध, वैचारिक छुआछूत और राजनीतिक शत्रुता का अखाड़ा बना दिया गया अन्यथा दसवीं लोकसभा का प्रथम सत्र अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के पद के चुनाव के संदर्भ में जिस उत्तम एवं स्वस्थ संसदीय परंपरा का निर्माण करने की प्रक्रिया के साथ प्रारंभ हुआ था उसी क्रम में उसका समापन भी हुआ होता। स्मरण रहे लाकतंत्र की इस स्वस्थ प्रक्रिया का प्रारंभ भी जनता दल के विश्वनाथ प्रताप, वाममार्गियों के सोमनाथ और इन्द्रजीत गुप्त, मुस्लिम लीग के सुलेमान सेत और इसी प्रकार के दूसरे दलों तथा नेताओं को भाया नहीं था।

इस सत्र में जनता दल और वाम मोर्चे का एकमेव लक्ष्य था भाजपा को किनारे करके स्वयं के अस्तित्व का अहसास कराना। किन्तु क्या कोई एक दल और कोई अकेला या अनेक नेता संपूर्ण देश की अस्मिता के साथ जुड़े लोगों को अलग-थलग या उन्हें अस्तित्वहीन कर सकते हैं? नहीं। इसलिए अपनी समस्त कोशिशों के बावजूद ये राजनीतिक गिरोहबंद नेता यह कार्य नहीं कर सके। दसवीं लोकसभा के इस प्रथम और पावस सत्र के पश्चात् भाजपा देश की जनता के और अधिक करीब आई, जबकि समाज के यथार्थ के संदर्भ में इन नेताओं और दलों ने संसद को संदर्भहीन और लोकतंत्र को लोकसभा से अलग-थलग करने का हर समय प्रयास किया।

29 सितंबर 1991

गति और प्रगति के बीच कैद लोग

कम्युनिस्टों के लिए यह चिन्ता का विषय हो सकता है कि कम्युनिज्म असफल हो गया। कम्युनिस्टों की मातृ संस्था रूस की कम्युनिस्ट पार्टी समाप्त हो गई। पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट देशों ने रूस से ही नहीं, मार्क्स, लेनिन और कम्युनिज्म से भी अपना पिण्ड छुड़ा लिया, जार के आतंकवाद से मुक्त रूस ने अपने आस-पास के जिन राष्ट्रों को कुचलकर, उनका दमन करके, उन्हें सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक का गुलाम बनाया था, अपनी स्वाधीनता की घोषणा करके वे रूस और कम्युनिज्म से अलग हो गए, रूस में मार्क्सवाद का प्रयोग करने वाले पुरोधा कम्युनिस्ट नेता लेनिन की प्रतिमाएं तोड़ दी गईं। म्युजियम में मसाला लगाकर रखे लेनिन के शव तक को समाप्त करने के लिए रूसी जनता बेचैन है, रूस में कम्युनिस्ट नेताओं को कब्र से निकालकर पीटा जा रहा है। रूसी गुप्तचर संस्था के० जी० बी० के जनक जेट जेन्सकी की प्रतिमा को उखाड़कर फेंका ही नहीं गया बल्कि उसे जूतों से पीटा भी गया।

अमरीका और पश्चिमी यूरोप के देशों के समर्थक भी चिन्तित एवं परेशान हो सकते हैं कि कम्युनिस्ट व्यवस्था के बिखर जाने के बाद अब उनकी बारी है। पूंजीवाद अपने चरम शिखर पर पहुंचने के बाद अब ढलान पर है। कोई बाजार व्यवस्था और उसके अर्थशास्त्र का बंदी है तो कोई कर्ज के बोझ से दबा जा रहा है, किसी की युवा पीढ़ी विलासिता के कारण चारित्रिक और मानसिक रूप से विकलांग हो रही है तो किसी का भविष्य सुविधाभोगी संस्कृति का शिकार है। विश्व क्षितिज पर यह बहुत ही साफ तौर पर दिखाई देने लगा है कि पूंजीवाद और पश्चिमी औद्योगिक क्रांति में से जन्मी औद्योगिक संस्कृति अब केवल कुछ दिनों की न सही किन्तु केवल कुछ वर्षों की मेहमान रह गई है।

कम्युनिस्ट और पूंजीवादी खेमे के समान ही मुस्लिम विस्तारवाद के पक्षधर भी चिन्तित हैं कि इस्लामी भाईचारा कल्पित कथा मात्र बन कर रह गया। अपने उदय के चौदह सौ वर्ष बाद भी इस्लाम अपनी अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण नहीं कर पाया। विश्व व्यापी होने की उसकी चाह संपूर्ण विश्व को 'दारूल इस्लाम' नहीं बना

सकी। उसकी इच्छा और कोशिशों के बावजूद विश्व का अधिकांश भाग अभी तक 'दारुल हरब' है और इस्लाम विभिन्न राष्ट्रीयता में बंटकर मिटने की स्थिति मे आ गया है। दारुल इस्लाम 'दारुल हरब' पर हमला करना तो चाहता है किन्तु उसके हौंसले अपने ही घर में पस्त हैं।

ईसाई संसार की दशा भी कुछ ऐसी ही है। ईसा मसीह के भक्त और बाईबिल भी एक ईसाई संस्कृति का निर्माण नहीं कर पाए। मजहब और चर्च अर्थात् पूजा पद्धति और पूजा स्थान की समानता होते हुए भी ईसाई मत को मानने वालों की राष्ट्रीय आकांक्षाएं और प्रेरणाएं भिन्न-भिन्न हैं। उनके अपने-अपने राष्ट्रीय स्वार्थ हैं। उनका अपना-अपना राष्ट्र है और राष्ट्रीय सम्मान है। उनका अपना-अपना राष्ट्रीय गौरव है। उनके राष्ट्रों की सीमाएं चर्च और बाइबिल से भी अधिक पवित्र और महत्त्वपूर्ण हैं।

वैकल्पिक व्यवस्था की खोज

कम्युनिज्म, पूंजीवाद, इस्लाम और ईसाइयत के पक्षधरों की चिन्ता, उनके अतीत और वर्त्तमान की चिन्ता है। भविष्य की बात वे इसलिए नहीं कर पाते कि वादों और मत-मतान्तरों के आधार पर बनी किसी भी व्यवस्था की आयु सीमित होती है। वाद और मत-मतान्तर दर्शन और धर्म की तरह अविनाशी अनन्तजीवी नहीं होते। जो अनित्य है उसकी नित्यता की कोई संभावना है कि नहीं।.

अगर रूस के कम्युनिज्म, रूसी कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े बाहरी कम्युनिस्ट और कुछ स्वप्नजीवी वामपंथी बुद्धिजीवी चिन्तित हैं तो कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कम्युनिस्ट आतंकवाद, पूंजीवाद, बाजारवाद, इस्लामी दंगावाद, ईसाई कल्पनावाद का अन्त होते देखकर आनन्दित भी हैं। अपने मन के विपरीत विचारों और व्यवस्थाओं का अन्त होते देख इनका आनन्दित होना सहज और स्वाभाविक है। किन्तु आज की समस्या, आज के मनुष्य की समस्या का समाधान, किसी व्यवस्था के अन्त पर केवल दुःखी या आनन्दित होने में नहीं है। आज की समस्याओं का समाधान किसी वैकल्पिक दर्शन में निहित है।

माना कि कम्युनिज्म अपनी ही प्रयोगशाला में असफल हो गया, यह भी स्वीकार किया कि कम्युनिस्ट पार्टी का तथाकथित अन्तराष्ट्रीय वृक्ष अपनी ही जमीन पर सूख गया, यह भी सच है कि रूसी झण्डे पर अंकित हंसिए-हथौड़े ने अपने ही लोगों का गला काटा और सिर फोड़ा, इसे भी कोई नकार नहीं सकता कि राष्ट्रवाद को अस्वीकार करके लेनिन, स्टालिन और कम्युनिस्टों ने जिस 'विश्ववाद' का नारा लगाया था वह नारा उनके अपने ही राष्ट्र की गली-कूचों में गुम गया, यह भी अब सभी मानने लगे हैं कि समतायुक्त समाज, समान वितरण, गरीबी का अन्त और शोषणमुक्त समाज का निर्माण करने की बात केवल दिवास्वप्न, केवल परिकथा मात्र बनकर रह

गई। यह भी मान लेते हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था दुनिया के देशों का ईमान खरीदने लगी है, गरीब को और अधिक गरीब, शोषितों को और अधिक शोषित, पिछड़ों को और अधिक पिछड़ा, कर्जदार को और अधिक कर्जदार बनाए रखना पूंजीवाद का एक मात्र प्रायोजन है। पूंजीवादी देश सम्पूर्ण विश्व, विशेषकर विकासशील राष्ट्रों, को अपना बाजार बना लेने का हर संभव प्रयास कर रहे हैं। विकासशील देशों की राजनीतिक आजादी को अपनी आर्थिक गुलामी में पकड़ने का वे कोई अवसर नहीं चूकते।

इस्लामी दंगावाद, अलग़ाववाद से अब सभी देश पीड़ित हैं। जो कभी और आज भी भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता की वकालत करते थे और करते-रहते हैं, रूस चीन और दूसरे कम्युनिस्ट देशों का अनुभव भारत के अनुभव से भिन्न नहीं है। इग्लैड में अलग मुस्लिम राष्ट्र बनाने की मांग के कारण अंग्रेजों को पाकिस्तान की मांग का रहस्य और उसको दिए गए समर्थन का दुष्परिणाम अब समझ में आया है। रूस के इस्लामी रिपब्लिक्स के खूनी जेहाद अभी ताजे हैं और चीन द्वारा मुस्लिम पहचान का दमन किए जाने को अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं।

विकासशील देशों की गरीब जनता को लोभ लालच में फंसा कर, सेवा का पाखण्ड रचकर उनका ईसाइकरण करने की पादरी प्रक्रिया भी सबकी जानी पहचानी है, किन्तु क्या इन सभी अनुभवों से किवल चिन्तित होने या केवल आनन्द मनाने तक ही सीमित रहना समय की मांग की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त है ? नहीं।

तो फिर रास्ता क्या है ? क्या किया जाए कि तथाकथित दो महाशक्तियों की दो अलग-अलग आधार भूमियों के बंजर हो जाने के बाद कोई हरा-भरा भू प्रदेश बने ? किसी समृद्ध और शांत, किसी एकात्म और सरस संसार का निर्माण किया जा सके। क्या करें, कि कम्युनिज्म और पूंजीवाद में जिस जड़ता और बंधुआपन को प्रगति माना गया उसका यथार्थ भी दुनिया जाने और उसके पांव गत्यात्मक परिवर्तन की ओर बढ़ें।

सिर्फ एक ही आधार

इस समय ऐसा कुछ बताने और कहने की आवश्यकता है कि कम्युनिज्म और पूंजीवादी सहित दुनिया के दूसरे देशों की जनता को भी यह पता लग जाए कि रूस में कम्युनिस्ट क्रांति की सफलता के समय जो रूसी जनता लेनिन और उसके बाद स्टालिन की जय-जयकार करती थी वही जनता उनकी मूर्तियों पर पांलिख क्यों पोतने लगी है ? लेनिन को अपना भाग्यदेवता और कम्युनिज्म को अपने शोषण से मुक्ति का एकमेव कवच मानने वाले लोगों ने लेनिन का ताबूत तोड़कर उसकी मृत काया को क्यों नष्ट कर देना चाहा और उन्होंने क्यों कम्यूनिज्म को असफल हो गया घोषित कर दिया ?

यदि इन प्रश्नों का सार्थक और साधार उत्तर दिया गया तो पूंजीवादी प्रताड़ना से मुक्ति के लिए किसी और उत्तर की तलाश नहीं करनी पड़ेगी।

स्पष्ट है दर्शन और व्यवस्था दोनों स्तरों पर दुनिया बंजर हो चुकी है। यदि इसे किसी शाश्वत दर्शन, किसी आन्तरिक मनोजगत के साथ न जोड़ा गए तो उसकी कृति और उसके कर्म उसे ही खाकर खत्म कर देंगे। ये सभी 'वाद' विश्व-मंच पर अपना-अपना खेल दिखा चुके। इन्होंने भारत के सनातनता के समानान्तर तात्कालिकता को प्रयोजनीय माना। साधन को लक्ष्य माना और साध्य का यंत्रवत् उपयोग किया। अतएव समूचा समीकरण बिगड़ गया। समीकरण बिगड़ा तो सम्पूर्ण गणित का गड़बड़ हो जाना और संतुलन का असंतुलित हो जाना अवश्यम्भावी था। रूस में अप्रत्याशित कुछ नहीं हुआ है। जो कुछ हुआ है और अभी जो कुछ होगा वह पूर्वापेक्षित है।

चिन्ता का विषय कम्युनिज्म का अन्त नहीं यह है कि पड़ोसियों का घर जल रहा है तो लोग अपने-अपने स्तर पर केवल आनन्दित या केवल दुःखी भर हो रहे हैं। यह नहीं सोचा जा रहा है कि किसी कालातीत दर्शन और उसके आधार पर किसी कालसापेक्ष वैकल्पिक व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है कि नहीं? और यह भी कि कौन कर सकता है यह कार्य ?

घूम फिर कर, पिट-पिटाकर, लुट-लुटाकर दुनिया के देशों के लिए एक ही आधार बचा है, भारत। अतएव हम भारत के लोगों को आज नहीं तो कल इस दायित्व का निर्वाह करना होगा कि वस्तुजगत के साथ-साथ मनोजगत में भी क्रांति हो। अर्थात् मानसिक क्रांति के बिना किसी भी क्रांति के किसी सार्थक परिणाम तक पहुंच पाना असम्भव है।

इस स्थापना को हम रूस के साथ जोड़ कर परखें। डा० प्रमोद कुमार दुबे ने अपने एक आलेख में दो व्यक्तियों का उदाहरण देकर इसकी व्याख्या की है। एक व्यक्ति है कम्युनिस्ट क्रांति के जनक रूसी राजनेता लेनिन और दूसरा व्यक्ति है रूस का दार्शनिक साहित्यकार तालस्ताय। डा० दूबे लिखते है रूस में समाजवादी क्रांति की सफलता के कुल सत्तर वर्ष पार करते-करते लेनिन की जय-जयकार करने वाली वही रूसी जनता लेनिन की मूर्तियों पर कालिख पोतने लगी, ताबूत में रखी गई उनकी निर्जीव काया की उठापटक शुरू हो गई, यह स्थिति वस्तु जगत के परिवर्तन की समय-सीमा बताती है। व्यवस्था चाहे कैसी भी क्यों न हो उसमें समय के बहाव के साथ गत्यात्मक परिवर्तन अतीव आवश्यक होता है। यदि परिवर्तन की गति को रोक दिया जाएगा तो भारी विकृति के बाद ध्वंस का हाहाकार ही साथ आएगा, साथ ही दूसरी सचेष्ट विरोधी शक्तियों की पराधीनता में फंसना भी पड़ सकता है।

वस्तुजगत में परिवर्तन की तुलना में मनोजगत में परिवर्तन की गति तो धीमी होती है, किन्तु परिवर्तन चिरजीवी होता है। यही कारण है कि लेनिन द्वारा लाए गए परिवर्तन से जन्मी व्यवस्था बिखर गई और उपेक्षा एवं उदासीनता का संताप भोगते

रहने के बाद भी तालस्ताय की प्रतिष्ठा में स्थिरता बनी रही। रूस में समाजवादी क्रांति आन्दोलन के दौरान रूसी साहित्यकार मैक्सिम गोर्की ने तालस्ताय की बखिया उधेड़ी, किन्तु अन्ततः उन्हें भावुक होकर कहना पड़ा कि "तालस्ताय नहीं होते तो आज गोर्की भी वही होता।" लेनिन को भी यह कहने के लिए विवश होना पड़ा था कि 'रूसी समाज को समझने के लिए तालस्ताय के साहित्य और चिन्तन से ही सहायता मिली।'

क्षणजीवी शक्तियां

ये बातें मात्र अपने देश के किसी साहित्यकार की प्रतिष्ठा में कही गई नहीं मानी जानी चाहिएं। केवल रूस नहीं, किसी भी देश के तालस्ताय अपने देशकाल की सीमा पार कर विश्व क्षितिज पर स्थापित होते हैं, उनका विरोध कोई भी राज्य व्यवस्था करे तो भी उन्हें मिटाया नहीं जा सकता। राजसत्ता कभी-कभी ही नहीं, अधिकांशतः अंहवश यह भूल जाती है कि उसके परिवर्तन की कालावधि दार्शनिकों की कालावधि से बहुत कम है। दर्शन, चिन्तन, साधना और साहित्य को सत्ता-राजनीति का अनुगत बनाने का प्रयास जन मानस को कुण्ठित कर देता है, परिवर्तन प्राणघाती बन जाता है।

राजनीतिक वस्तुजगत में परिवर्तन युगधर्म तो हो सकता है युगातीत धर्म नहीं। 'लेनिन' युगधर्म होते हैं, तालस्ताय' वस्तुजगत के और सत्ता के कारण बड़े नहीं बनते, अपितु अपने चित्तगत कालबोध के तद्रूप विस्तृत मनोभाव में कर्म करने के कारण काल की कसौटी पर श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। भारतीय तत्वद्रष्टाओं ने बड़े और शाश्वत कालखण्ड में स्थित रहने वाले व्यक्ति और व्यवस्था को ही श्रेष्ठ माना है।'

भारतीय दर्शन में अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए शस्त्र और सैनिक अभिमान का निषेध है। महाशक्ति का निवास मारकशस्त्रों और प्रशिक्षित सेना में नहीं, मनोजगत में होता है। इस दृष्टि के अभाव में हम और सारी दुनिया जिस अमरीका और रूस को महाशक्ति मानने लगी, जिस जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैण्ड को महाशक्ति मानती थी वे रेत के दूह निकले और उनकी क्षणजीविता उजागर हो गई। ये सभी देश शस्त्र सम्पन्न थे, इनमें से आज भी कुछ देश 'शस्त्र' सम्पन्न हैं। किन्तु इनमें से 'शक्ति ' सम्पन्न एक भी नहीं है। सभी किसी न किसी स्तर पर अकिंचन हैं, भिखारी हैं ? इनकी आयु अनन्त नहीं हो सकती। इन्होंने सृष्टि के शाश्वत नियमों को पाखण्ड मानकर अपनी 'क्रांति' की है। भारत ने विश्व के मानव को भावना से, संवेदना से, पीड़ा से जोड़ा। पश्चिम देशों, अमरीका और रूस आदि ने भौतिकता की उपासना की। यही कारण है कि भारत के राज्य-साम्राज्य मिटे, भारतवासी गुलाम हुए, इसे मिटाने के लिए हर संभव प्रयास किए गए किन्तु भारत मिटा नहीं, मरा नहीं, गुलामी का तौक तोड़कर वही पुनः आजाद हो गया। इसकी आजादी उसी मात्रा में

अधूरी रह गई जिस मात्रा में वह मनोजगत से कटकर वस्तुजगत के साथ जुड़ा रहा।

पश्चिमी तथा अमरीका आदि पूंजीवादी देशों और रूसी कम्युनिज्म के दावेदारों ने धन के कम-अधिक होने को विकसित या अविकसित होना कहा। भौतिकता को समता, स्वतंत्रता और बंधुता का आधार माना। परिणाम में प्राप्त हुआ चारित्रिक पतन, जीवन मूल्यों का ह्रास। पैसे वालों को ही प्रतिष्ठा की पंक्तियों में खड़े होने का हक दिया जाने लगा, तो व्यक्ति ज्ञानार्जन, शोध और साधना क्यों करे। चिन्तन के नित्य नए-नए क्षितिज क्यों छुए ? धन कामना ही उसकी प्रतिष्ठा और विकास का एकमेव मार्ग रह गया, तो अपने 'पेट' की गहराई में उसका गुम हो जाना कोई अनहोनी बात नहीं हुई।

भारत की समाज और भारतीय जीवन रचना का आधार धन या पद नहीं है। भारत के ऋषियों ने व्यक्ति को सृष्टि के सनातन सत्य का दर्शन कराया। कुछ कालसापेक्ष और कुछ कालनिरपेक्ष जीवन मूल्यों की स्थापना की। कुछ युगधर्म बताए तो साथ ही युगातीत धर्म का ज्ञान भी कराया। गुण और कर्म की चेतना को व्यक्ति के विकास और व्यवस्था का मर्म बताया। शाश्वत और नश्वर, नित्य और अनित्य के बीच जो अन्तर है ठीक वही अन्तर, पश्चिम देशों, अमरीका और रूस तथा भारत के बीच आसमान है।

अतएव अब समय आ गया है कि भारत देश का हिन्दू जीवन दर्शन अर्थात् एकात्म मानव दर्शन अपनी भूमिका और दायित्व का निर्वाह करे। चिन्ता करनी ही है, आनन्दित होना ही है, तो चिन्ता करें अपनी सार्थक भूमिका का निर्वाह करने की। आनन्दित हों कि युगों-युगों से अर्जित सनातन हिन्दु जीवन दर्शन के पुनः प्रयोग और स्वीकृति का अवसर आ गया है। भारत के शाश्वत जीवन दर्शन से हटकर चलने वाले कई रूस, कई अमरीका, कई इंग्लैण्ड, कई फ्रांस, कई जर्मनी की नियति कई बार टूटते-बिखरते रहना ही है। आज के युग की संधि में केवल भारत ही एक ऐसा देश है, जिसके आधुनिक ऋषि यदि हिन्दू दर्शन की बात भारत के शब्दों में कहें तो दुनिया उसे मानने के लिए मानसिक रूप से सिद्ध है, क्योंकि उसके लिए और कोई मार्ग अब शेष रहा ही नहीं।

6 अक्तूबर 1991

एक भूल, केवल एक भूल

चार दशक से भी अधिक समय बीत गया, किन्तु अभी तक भारत की राष्ट्रीय भूल, केवल एक भूल, के कारण भारत का राष्ट्रीय गणित गड़बड़ हो गया। केवल एक भूल के कारण भारत का लोकतंत्र 'थोकवोट' का बंधक बन गया। केवल एक भूल के कारण एक भारत राष्ट्र दो राष्ट्रों में बंट गया। केवल एक भूल के कारण कश्मीर भारत का है भी और नहीं भी है। केवल एक भूल ने देश के अनेक भागों को अपनी अलग पहचान के नाम पर, एक स्वायत्त और सार्वभौम मजहबी, जातीय अथवा क्षेत्रीय राष्ट्र बनने की दिशा में बढ़ने का 'तर्क' प्रदान कर दिया। केवल एक भूल के कारण भारत की आन्तरिक समस्याओं का अन्तरराष्ट्रीयकरण किया जाता है, किया जा रहा है और हम, भारत के लोग, और भारत सरकार इस सबके केवल तमाशबीन हैं। केवल एक भूल के कारण हम अपने ही देश के नागरिकों द्वारा अपने ही देश के नागरिकों को बंधक बनाए जाते देखते रहने, उनकी हत्या होने और अपराधियों की शर्त स्वीकार करने के लिए विवश हैं। केवल एक भूल के कारण हमारी सार्वभौम, सर्वप्रभुता सम्पन्न सरकार आतंकवादियों की बंधक बन गई है। केवल एक भूल के कारण हमारे देश के अधिकांश राजनीतिक दलों को अलगाववादियों और मजहबी कठमुल्लों की शर्तो पर अपने-अपने चुनाव घोषणा-पत्र बनाने पड़ते हैं।

कौन सी भूल

क्या है वह भूल ? वह भूल है अपने देश भारत को राष्ट्र, संस्कृति और इतिहास की नहीं मजहब की दृष्टि से देखना। भारत राष्ट्र की सनातनता में मजहबी मिलावट करना। देश की आजादी के लिए मजहबी तुष्टीकरण को एक अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार कर लेना। भारत की मुख्य राष्ट्रीय धारा को अस्वीकार करके इसे मिलीजुली राष्ट्रीयताओं और संस्कृतियों का जमघट या जंगल मान लेना।

इस स्थापना का परीक्षण करना चाहें तो परीक्षण कर लें। सभी समस्याओं की मीमांसा कर पाना संभव न हो तो केवल कश्मीर की कसौटी हाथ में ले लें, भारत की भूलों का चार दशकीय यथार्थ स्पष्ट हो जाएगा। कश्मीर और भारतीय लोकतंत्र के बीच कोई तालमेल नहीं है। कश्मीर और भारत की राष्ट्रीय जनता के बीच कोई सीधा-सपाट सम्बन्ध नहीं रह गया है। कश्मीर भारत का कम, पड़ोसी पाकिस्तान का अधिक है। पाकिस्तान अधिकृत गुलाम कश्मीर भारत के आजाद कश्मीर को निगल जाने की हर संभव और सबल संभावनाएं उत्पन्न कर रहा है।

अन्तरराष्ट्रीय सभा (राष्ट्रसंघ) में भारत के कश्मीर का चीर हरण किया जाता है और हम शिमला समझौते का गीत गाकर संतुष्ट हो जाते हैं। कश्मीर को शिमला

समझौते की सूली पर टांगकर हमने भारत की राष्ट्रीय अखण्डता, सार्वभौमिकता और अखिल भारतीयता को केवल कल्पना की वस्तु बना दिया है।

आधुनिक भारत के निर्माता

कहते हैं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के निर्माता थे। माना कि वे 1947 के बाद भारत के निर्माता थे। उन्होंने आजाद भारत की प्रारंभिक नीतियों की नींव रखी थी। इसे मान लेने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए, आपत्ति है भी नहीं, क्योंकि यह स्वीकार किए बिना देश की वर्त्तमान स्थिति के कारण और उसके यथार्थ का पता चल ही नहीं सकता।

जब हम यह स्वीकार करते हैं कि नेहरू जी आधुनिक भारत के निर्माता थे तो हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि नेहरू जी की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मजहबी नीतियों का ही परिणाम है कि आज उनके द्वारा निर्मित भारत की राजनीतिक आजादी आर्थिक गुलामी के चंगुल में फंस गई है।

नेहरू जी की नीतियों के कारण ही देश विघटन की ओर बढ़ रहा है। नेहरू जी की नीतियों के कारण ही देश जातियुद्ध की चपेट में पड़ा है। नेहरू जी की नीतियों ने ही, भारत की एक नागरिकता अलग-अलग पहचानों और अस्तित्वों के भंवर में फंस गई। नेहरू जी के कारण ही भारत की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अस्मिताओं की हजारों वर्ष की यात्रा का आधार बिन्दु 15 अगस्त, 1947 बन गया। नेहरू जी की नीतियों ने ही मुस्लिम तुष्टिकरण को भारत में सेकुलेरिटी का नया संस्करण उपस्थित किया। नेहरूजी की नीति के कारण ही आज कश्मीर भारत का होकर भी भारत का नहीं होने की स्थिति में पहुंच गया है।

यह नेहरू जी की ही देन है कि भारतीय लोकतंत्र का भारत की समस्याओं के साथ कोई तालमेल नहीं रहा। नेहरू जी ने लोकतंत्र का जो भारतीय संस्करण बनाया वह भारत की अनुभवसिद्ध समानता के साथ नहीं, केवल चुनाव, केवल थोक वोट, केवल सरकार और सत्ता के साथ जुड़ा है। नेहरू प्रणीत लोकतंत्र की विशेषता समस्याओं को सुलझाना नहीं, उलझाना है। समस्याएं पैदा करना, समस्याओं को गंभीर से गंभीरतम बनाते जाना और उनकी गंभीरता कम करने के लिए पहले अधिक गंभीर किसी नई समस्या का सूत्रपात कर देना ही नेहरू संस्कृति का प्राणतत्व है। यदि कोई समस्या सुलझती न दिखाई दे, स्थिति हाथ से निकलने लगे तो किसी बलि के बकरे को खोजकर उसके लिए उसे जिम्मेदार ठहरा देना भी नेहरूवाद की एक विशिष्ट देन है। अतएव यदि नेहरू जी का यथार्थ स्वीकार करना है तो उसे पूरे संदर्भ और परिणामों के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया जाना चाहिए।

हम बात कर रहे थे कश्मीर की। कश्मीर की समस्या भी अन्य रजवाड़ों की

रियासतों के समान सुलझ गई होती, यदि नेहरूजी ने उसे तत्कालीन उप प्रधानमंत्री और गृहमंत्री सरदार पटेल के हाथ से छीनकर विदेश विभाग के अन्तर्गत अर्थात् अपने हाथ में न ले लिया होता। कश्मीर को समस्या बनाया नेहरू जी ने, कश्मीर का अन्तराष्ट्रीयकरण किया नेहरू जी ने, कश्मीर को संयुक्त राष्ट्रसंघ में ले गए नेहरू जी, कश्मीर में जनमत संग्रह के सिद्धान्त को जमीन प्रदान की नेहरू जी ने, कश्मीर को विशिष्ट दर्जा प्रदान कराया नेहरूजी ने। यह देश के इतिहास की साक्षी है और यह इतिहास अभी बहुत पुराना नहीं पड़ा है। इसके लिए पुस्तकें पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, अभी तक इसके कई प्रत्यक्षदर्शी और भुक्तभोगी जीवित हैं, उनसे पूछा और पता किया जा सकता है।

कहते हैं कि कश्मीर की समस्या गरीबी और बेरोजगारी के कारण अर्थात् आर्थिक है। वहां का उग्रवाद भारत सरकार की उदासीनता के कारण पनपा है। किन्तु यह कश्मीर की समस्या का सत्य नहीं है। और न ही पंजाब, असम, आंध्र और तमिलनाडु की समस्या का ही सत्य है।

न पंजाब भूखा है, न कश्मीर। गत चार दशकों में भारत सरकार ने कश्मीर को पचासी हजार करोड़ रुपए से अधिक का अनुदान दिया है। कहां गई उस अनुदान की राशि ? गत 40 वर्षों में कश्मीर क्षेत्र की जनता को भारत सरकार ने सस्ता राशन दिया है। गत चालीस वर्षों से कश्मीर सें कश्मीर के लोग अपना निर्णय स्वयं करते आ रहे हैं। उनका एक अलग संविधान है, उनको शेष देशवासियों से अधिक और विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं। उनकी विधानसभा की स्वीकृति के बिना भारतीय संसद द्वारा पारित कोई भी अधिनियम वहां लागू नहीं होता। गरीबी, भूख, बेरोजगारी ही यदि कश्मीर की समस्या, आतंकवाद और अलगाववाद का कारण होती तो बिहार, बंगाल, उड़ीसा और तमाम वनवासी क्षेत्रों को अब तक भारत से अलग होने का अभियान चला देना चाहिए था। भूख का निदान रोटी है, अलग राष्ट्र नहीं। जो जनसमूह 'रोटी' के लिए राष्ट्र को लहूलुहान कर सकता है उसकी राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय निष्ठा पर विश्वास करना सर्वथा आत्मनाश ही है।

बंटवारे के समर्थक

भारत के नेहरूवादी और भारत को टुकड़े-टुकड़े में बांट देने के लिए प्रयत्नशील तत्व एक स्वर में कहते हैं, कि कश्मीर में राजनीतिक समाधान निकाला जाना चाहिए। वे मात्र इतना बोलकर चुप हो जाते है, यह नहीं बताते कि कश्मीर अब तक किस प्रक्रिया में से गुजर रहा था ? किस प्रक्रिया के कारण वह इस स्थिति तक पहुंचा है ? वह प्रक्रिया क्या राजनीतिक न होकर कुछ और थी ? क्या जिस राजनीति और राजनीतिक प्रक्रिया ने कश्मीर को कैंसर बनाया है, वही राजनीतिक प्रक्रिया कश्मीर के संकट का शमन कर सकती है ? क्या कश्मीर को नेशनल कांफ्रेंस और फारूख

अब्दुल्ला के हाथों में सौंपने की राजनीतिक प्रक्रिया में कश्मीर समस्या के समाधान की आश्वस्ति है ? राजनीतिक समाधान अर्थात् समझौता अर्थात् लेन-देन। किसे और क्या देकर कश्मीर की समस्या के राजनीतिक समाधान की बात की जा रही है ? भारत को तो लेना ही लेना है, देना कुछ भी नहीं है। भारत को वह कार्य करना है जिसे 44 वर्ष पूर्व किया जाना चाहिए था। अर्थात् कश्मीर को पाकिस्तान के पंजे से आजाद कराना। कश्मीर, समस्या बना है पाकितान के आक्रमण के कारण। जब तक यह आक्रमण विद्यमान है, कश्मीर समस्या का कोई भी समाधान संभव नहीं होगा।

अब परिस्थितियां और अधिक गंभीर मोड़ ले रही हैं। पंजाब के पंथिक दल के नेता मनोचहल ने जो कुछ कहा है वह देश की अखण्डता के लिए एक गंभीर चेतावनी है। कम्युनिस्ट रूस के बिखराव को मनोचहल ने एक नया संदर्भ दिया है। उस संदर्भ का शायद गंम्भीरता के साथ विश्लेषण नहीं किया गया। उनका कहना है कि बाल्टिक देशों का रूस से अलग होकर स्वतंत्र और सार्वभौम राष्ट्र बन जाने की घटना का प्रभाव भारत पर भी पड़ेगा। जम्मू-कश्मीर, पंजाब, असम, नागालैंड, मिजोरम, तमिलनाडु और आंध्र बाल्टिक देशों का रास्ता अपना सकते हैं। भारत के इन राज्यों को अलग होने का तार्किक आधार मिल गया है।

हिन्दुत्व के उग्रवाद के विरूद्ध राष्ट्रीय विद्रोह की संभावनाएं सबल हो गई हैं। यदि इस विद्रोह ने अपना रूपाकार ग्रहण कर लिया तो भारत की केंद्रीय सत्ता अपनी रक्षा नहीं कर पाएगी।

भूल सुधार का समय

अपने स्वभाव के अनुसार हम इसे मनोचहल का मनचलापन या उनकी बकवास मान सकते हैं, किन्तु यह मानसिकता जिस संदर्भ के साथ जुड़ी है उसके दुष्परिणामों से बच पाना सरल नहीं है और यदि बचना है तो उस एक भूल को, जो चार दशक पूर्व की गई थी, समय रहते सुधार लेना चाहिए। यद्यपि समय बहुत बीत गया है, समय हाथ से हर क्षण निकलता भी जा रहा है, फिर भी अभी इतना समय शेष है कि कश्मीर समस्या को उसके सही संदर्भ और उसकी वास्तविकताओं के प्रकाश में देखा जाए। भारतीय लोकतंत्र की थोक मजहबी वोट की विवशता से मुक्त होकर इस समस्या का समाधान न खोजा गया तो केवल राज्यपाल बदलने से कश्मीर की परिस्थिति में कोई बदलाव नहीं आएगा।

हमारे देश के नेताओं को कश्मीर से अधिक चिंता स्वयं अपनी है। वे कश्मीर की सुरक्षा के लिए नहीं, अपने सुरक्षा-गार्डों के लिए झगड़ते हैं। भारत सरकार किसी राजीव, किसी सोनिया, किसा वी०पी०, किसी पी० वी०, किसी चह्वाण और किसी मुलायम सिंह के लिए तो विशेष अधिनियमित सुरक्षा दल का गठन करती है, किन्तु कश्मीर और भारत की प्रभुसत्ता की रक्षा करने के लिए किसी विशिष्ट व्यवस्था के मुद्दे

पर आनाकानी ही नहीं करती, उसे अनावश्यक भी मानती है।

गत चार दशकों में कश्मीर संबंधी हमारी नीतियों के कारण हमें क्या मिला ? यही कि कश्मीर स्थित भारत के सुरक्षा बलों और सैनिकों की स्थिति किसी बाहरी देश की आक्रमणकारी सेना की सी हो गई। भारत-पाकिस्तान की सीमा को पाकिस्तान-राजस्थान, सीमा कहा जाने लगा। राजनीतिक प्रक्रिया का पूर्णरूप से टूटकर ध्वंस हो जाना, कश्मीर के विकास के नाम पर दिए गए लगभग एक लाख करोड़ रुपए के अनुदान का कोई प्रतिफल न मिलना, कश्मीर में भारत का राष्ट्रध्वज जलाया जाना, कश्मीरी पंडितों (हिन्दुओं) का अपने ही देश में विस्थापित हो जाना, भारत को आत्महीन बना देने वालों को कश्मीर की रक्षा का भार सौंपते रहना, पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को नागरिकता और मताधिकार का अधिकार न मिलना, शेष भारत के नागरिकों को कश्मीर में उनके सांविधानिक एवं राष्ट्रीय अधिकार से वंचित कर दिया जाना, कश्मीर स्थित मंदिरों को तोड़ दिया जाना, हिन्दू युवतियों के साथ बलात्कार किया जाना, उनके गुप्तांगों, जंघाओं और स्तनों पर पाकिस्तान जिन्दाबाद लिख देना, और भारत को यह चेतावनी देना कि कश्मीर को एक स्वतंत्र कश्मीरी राष्ट्र हाने का 'सत्य' स्वीकार कर लो अन्यथा कश्मीरी जनता भारत की ईंट से ईंट बजा देगी।

भूल के परिणाम

एक भूल, केवल एक भूल, नेहरूजी की एक भूल भारत राष्ट्र को मार रही है। केवल एक भूल ने कश्मीर को भारत के भूगोल से काटने की जमीन प्रदान की है और हम हैं कि उसी भूल के साथ अभी तक चिपके हुए हैं। उसमें ही भारत का भविष्य और भला देखने की सलाह देते हैं। यदि इस भूल को सुधारा न गया तो केवल कश्मीर ही नहीं पंजाब भी जाएगा और असम भी, नागालैंड और मिजोरम भी, आंध्र भी जाएगा और तमिलनाडु भी। यह भूल एक भारत राष्ट्र को अनेक प्रक्षन्न राष्ट्रों में बांटकर भारत की राष्ट्रीय अस्मिता को भी निगल जा सकती है। भारत के हजारों वर्ष पुराने ज्ञात-अज्ञात राष्ट्रीय अतीत को 15 अगस्त, 1947 का बन्दी बनाकर जिस भूल ने भारत का विभाजन कराया है, वही भूल भारत की राष्ट्रीय अस्मिता में आग लगाने के लिए सतत सन्नद्ध है। 15 अगस्त, 1947 को जिस भूल की प्रक्रिया का आरंभ हुआ था वह अपने अभीष्ट की ओर निरन्तर बढ़ रही है। भविष्य का यह संकेत भारत के क्षितिज और छाती पर अत्यन्त सशक्त रूप से उभरा हुआ है। इसका सामना करने का साहस और शक्ति हो तो इसे देख और परख लें, यदि इससे भयभीत हों तो यह भी समझ लें कि आंखें बन्द कर लेने से आने वाला तूफान न कभी रुका है, न ही अब रुकेगा। अब केवल कश्मीर की नहीं भारत की रक्षा का भी प्रश्न है।

13 अक्तूबर 1991

परजीवी बुद्धिजीवियों की शोकान्तिका

इसे संयोग भी कह सकते हैं और विधाता का विधान भी कि मैं तीस अक्तूबर और दो नवम्बर 1990 को भी अयोध्या में था और अट्ठारह अक्तूबर एवं इक्कीस अक्तूबर 1991 को भी।

तीस अक्तूबर 1990 को श्रीराम जन्मभूमि पर श्रीराम कार सेवकों ने भगवा ध्वज फहरा कर कार सेवा का प्रतीक प्रारम्भ किया और दो नवम्बर को श्रीरामलला का दर्शन करने के प्रयास में उन्हें प्राणाहुति देनी पड़ी।

अट्ठारह अक्तूबर 1991। विजयादशमी का पावन दिन। श्रीराम जन्मभूमि न्यास को समर्पित मन्दिरों और भवनों का हटाया जाना प्रारम्भ। ये मन्दिर श्रीराम जन्मभूमि के आसपास थे। इनके स्वामियों ने अपना स्वामित्व श्रीरामलला का मन्दिर बनाने के लिए लिखित रूप में श्रीराम जन्मभूमि न्यास को सौंप दिया था। जिला प्रशासन को लिखकर दिया था कि वे अपना मन्दिर और भवन यहां से हटाना चाहते हैं। मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठित मूर्तियों का अभिषेक और पूजा करके विधि-विधानपूर्वक उनका स्थानान्तरण किया गया। और फिर श्रीराम मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ होने के पूर्व वहां शेष रह गए ढांचे कों हटाया गया। संकट मोचन मंन्दिर के श्री हनुमान जी की मूर्ति को स्थानान्तरित करके स्थापित करने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में यथावत् रहने दिया गया। फलाहारी बाबा, तिवारी जी और केशव पुजारी का स्थान उनकी अनुमति और वज्रांग यज्ञ में आए रामभक्तों की सहायता से हटाया गया।

और इक्कीस अक्तूबर

इक्कीस अक्तूबर को ठीक उसी स्थान पर हवन करके भूमि को पवित्र किया गया, जिसे नौ नवम्बर 1989 को शिलान्यास के लिए तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री नारायण दत्त तिवारी ने निश्चित करके समतल करा रखा था। उस समय भी वहां के खण्डहरनुमा मकान की दीवारें हटा दी गई थीं, किन्तु श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति वहां शिलान्यास करना अस्वीकार करके अपने पूर्व निर्धारित स्थान पर ही शिलान्यास करने के संकल्प पर अड़ी रही, तो उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद भी शिलान्यास स्थल को निर्विवादित घोषित करके तिवारी सरकार ने राहत की सांस ली

थी। इक्कीस अक्तूबर 1991 को हवन का स्थान श्रीराम मंदिर के सिंहद्वार के दूसरे स्तम्भ का स्थान है। चालीस दिवसीय वज्रांग रूद्र यज्ञ में शामिल होने के लिए आ रहे रामभक्तों का श्रीरामलला का दर्शन करने जाना सहज और स्वाभाविक था और वे स्वाभाविक रूप से वहां गए भी। रामभक्त अयोध्या आएंगे तो भविष्य में भी दर्शनार्थ जाएंगे।

कुल बात केवल इतनी सी ही थी। इसे ही किसी ने मन्दिर तोड़ा जाना कहा, तो किसी ने प्रचारित किया कि कारसेवकों ने श्रीराम चबूतरा तोड़ डाला। अफवाह फैलाई गई कि केन्द्र सरकार उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार को भंग कर देगी। इस अफवाह के जनक थे केन्द्रीय गुप्तचर और जिला प्रशासन के एक वरिष्ठ अफसर। उन्होंने प्रधानमन्त्री को भी गुमराह किया। बाबरी मस्जिद वालों ने गिरफ्तारी दी।

विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अल्पसंख्यक (मुस्लिम) सम्मेलन किया। जनता दल के बड़े-बड़े नेताओं ने जेल जाने के लिए प्रदर्शन किया। शहाबुद्दीन ने खालिस्तानी सिख नेता सिमरनजीत सिंह मान से हाथ मिलाया। मुस्लिम लीग के सुलेमान सेत ने मान का स्वागत किया। विश्वनाथ प्रताप के नेतृत्व में दिल्ली के गोल मेथी चौक पर जनता दल, राष्ट्रीय मोर्चा और वाममार्गी दलों ने सांकेतिक धरना दिया, अयोध्या में क्रमिक सत्याग्रह करने गए, प्रधानमन्त्री के निवास पर धरना देने की योजना बनी। देश के जिला केन्द्रों पर बाबरी मस्जिद के पक्ष में प्रदर्शन किया गया। प्रधानमन्त्री नरसिंहराव की इन्दिरा कांग्रेस की कार्यकारिणी ने लम्बी बैठक की। पूरी बैठक सांप-छछूंदर की स्थिति में बनी रही। कोई स्पष्ट निर्णय न कर पाकर न्यायालय और बातचीत का अपना पुराना संपुट दोहरा कर 'सेकुलरिज्म' के प्रति अपनी 'प्रतिबद्धता' और राष्ट्र के प्रति अपनी 'जागरुकता' का परिचय दिया।

राजनीतिक गिरोह का पाखण्ड

श्रीराम जन्मभूमि के आस-पास की लगभग तीन एकड़ भूमि भाजपा सरकार द्वारा अधिगृहीत किए जाने का विरोध करने वाले जनता दलीय राजनीतिक गिरोह का विरोध एक बार पुनः प्रगटा।

भारतवासी अभी भूले नहीं होंगे कि सितम्बर 1990 में पूर्व प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रताप ने एक अध्यादेश जारी करके श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर सहित आसपास की सत्तर एकड़ भूमि अधिगृहीत कर ली थी। वहां स्थित सभी मन्दिर और भवन गिराकर मनोरंजन स्थल, फव्वारे और जलाशय बनाने की योजना थी। किन्तु मुसलमानों विशेषकर अब्दुल्ला बुखारी के विरोध के कारण वह अध्यादेश केवल छत्तीस घंटे में वापस ले लिया था। तब वह अध्यादेशीय अधिग्रहण अवैधानिक और सेकुलिरिटी विरोधी नहीं था। मनोरंजन स्थल बनाने के लिए विश्वनाथ प्रताप मन्दिर

तोड़ना चाहते थे, लेकिन अब वह राम मन्दिर बनाने के लिए मन्दिर स्थानान्तरित करने का विरोध कर रहे हैं।

देशवासियों को अभी यह भी स्मरण होगा कि गत वर्ष अक्तूबर में उच्च न्यायालय के आदेशों का उल्लंधन करके विश्वनाथ प्रताप सिंह के मुख्यमन्त्री मुलायम सिंह ने अयोध्या की परिक्रगा नहीं होने दी थी। कारसेवकों द्वारा न्यायालय का आदेश दिखाने के बाद भी उन्हें अयोध्या नहीं जाने दिया था। ढाई लाख हिन्दू कश्मीर से भगा दिए गए, लेकिन विश्वनाथ प्रताप सिंह और उनके गिरोह ने एक भी शब्द नहीं बोला। तब उन्होंने मुलायम सिंह को न न्यायालय का आदेश मानने को कहा और न हिन्दूओं को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करने से ही रोका। तब भी मुलायम सिंह और विश्वनाथ प्रताप ने मुस्लिम सम्प्रदायिक उन्माद भड़काया था और अब भी वे वही कार्य कर रहे हैं।

और बुद्धिजीवी एवं पत्रकार ?

बिना जाने-देखे, बिना किसी गम्भीर सोच-विचार के गत अर्द्धशताब्दी से भी अधिक काल से पढ़ी जा रही फाइलें निकालकर अपनी पूर्व की कतरनों के साथ तालमेल बिठाते हुए लिखा कि 'देश को रक्त की नदी में डुबा देने का एक और प्रयास' राम मन्दिर का निमार्ण प्रारम्भ करके विश्व हिन्दू परिषद्, रा० स्व० संघ और भाजपा ने देश को साम्प्रदायिक दंगे के ज्वालामुखी पर बिठा दिया। राम मन्दिर का निर्माण काय उपचुनावों को ध्यान में रखकर प्रारम्भ किया गया है। विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा मन्दिरों को तोड़ने का धर्म विरोधी कार्य बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए, आदि-आदि।

मैं कई बार लिख और कह चुका हूं कि अयोध्या में श्रीराम मंदिर का निर्माण यज्ञ न कोई सामान्य प्रक्रिया है और न इस संदर्भ में घटित होने वाली घटनाएं कोई सामान्य घटना। यह आंदोलन एक ऐसा दर्पण है, जो देश के उन सभी के चेहरों को स्वयं उन्हें और दूसरों को भी साफ-साफ दिखाता है कि उनका स्वरूप क्या और कैसा है? राम आंदोलन सबकी नीयत को नंगा करके ही अपना अंतिम स्वरूप ग्रहण करेगा। यह आंदोलन भारत की राष्ट्रीय अस्मिता की अभिव्यक्ति का अनुष्ठान है। भारत की दासता-पराधीनता, अपमान और स्वाभिमान, परजीविता और स्वावलंबन, विस्मृति और स्मृति, अश्लील और शील, स्वार्थी राजनीति और निःस्वार्थ राष्ट्रभक्ति को एक बार पुनः परिभाषित करेगा वह आंदोलन। यह आंदोलन एक प्रश्न है और उत्तर भी कि बोलो तुम कौन हो? किसकी संतान हो? किस परंपरा में पले हो? और किस दाय का दायित्व तुम्हे निर्वाह करना है? तुम किसके वारिस हो? यह भूमि, इस भूमि से जुड़ी भावनाएं, इसके तपस्वियों का तप, किस तपस्या, किस बलिदान, किस चिन्तन और किस चेतना के साथ संबद्ध है ?

यह दुर्भावना क्यों ?

इतने बड़े प्रश्न, इतना गंभीर संदर्भ, इतना सतही सोच, इतना चलताऊ विश्लेषण और इतना दुर्भावनापूर्ण लेखन? श्रीराम की परंपरा के प्रति यह दुर्भावना क्यों है ? केवल इसलिए की ये बुद्धिजीवी और राजनेता, अब तक जिस सोच का प्रतिपादन करते आ रहे थे, वह समय तथा अनुभव की कसौटी पर नकली निकला और जिस विचार को इन सभी ने हाशिए पर खड़ा कर दिया था वह केंद्र में आकर खड़ा हो गया। चाहिए तो यह था कि ये लोग अपनी भूल और पराजय खुले मन से स्वीकार करके भारत राष्ट्र के सत्य को अपना लेते, किन्तु इस तथाकथित-प्रगतिशील बुद्धिजीवी और राजनीतिक गिरोह में यह नैतिक साहस नहीं है। इनकी प्रगतिशीलता के पांव उल्टी दिशा में चलते हैं। ये प्रतिगामिता की प्रतिनिधि हैं। विश्व के विचारकों ने अनुभव के आधार पर अपनी स्थापनाएं बदल दीं। रूस के गोर्बाचोव ने कम्युनिस्ट क्रांति की व्यर्थता खुलेमन से और खुलेआम स्वीकार कर ली। अपने राष्ट्र के हित में उन्होंने कम्युनिज्म और कम्युनिस्ट पार्टी को अंतिम प्रणाम कर लिया। पूर्वी यूरोप के देश अपने राष्ट्र के हित में अपनी पुरानी राह छोड़कर अपने राष्ट्रीय रास्ते पर चल पड़े। किन्तु भारत के ये लोग सड़ी-गली व्यवस्थाओं और कालबाह्य हो गए, असफल विचारों को अपनी छाती से चिपकाए प्रगतिशीलता का दंभ भर रहे हैं। अपने देश को नित्य छोटा कर रहे विचारों और व्यवस्था को बदलने का विचार करने का साहस नहीं है इनमें। स्वतंत्र चिन्तन और विचार अभिव्यक्ति के सांविधानिक अधिकार के इन दावेदारों की निर्भीकता और साहस आतंकवादियों की धमकी मात्र से काफूर हो जाता है। ये 'सत्यमेव जयते' लिखते हैं किन्तु सच-सच कहने का साहस नहीं दिखाते। पंजाब के खालिस्तानी आतंकवादियों ने कहा कि 'हमें आतंकवादी नहीं, खाड़कू लिखो और कहो, तो इन 'स्वतंत्र पत्रकारों' और बुद्धिजीवियों ने कोई प्रतिकार और प्रतिवाद किए बिना तत्काल खाड़कू लिखना प्रारंभ कर दिया।

विडंबना यह है कि ये ही आधुनिक भारत के 'चिन्तक' और 'ऋषि' हैं? ये ही राष्ट्र के स्वयंभू भविष्य दृष्टा है? ये शांतिपूर्ण श्रीराम आंदोलन का उपहास उड़ाते हैं। कहते हैं कि भारत राष्ट्र और यहां के हिन्दुओं को आत्मसम्मान प्रदान कराने के नाम पर चलाए जा रहे इस आंदोलन से जुड़े लोग विदेशियों के समक्ष भीख का कटोरा लेकर घूमने में अपमान का अनुभव नहीं करते। कर्ज लेने के लिए घुटनों के बल बैठने में इन्हें लज्जा का अनुभव नहीं होता, क्योंकि इसे वे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में शामिल होना मानते हैं। ओलम्पिक खेलोंऔर क्रिकेट मैच में भारत की पराजय को ये राष्ट्र की पराजय नहीं मानते, कहते हैं कि खेल को खेल की खेल की भावना से खेला जाना चाहिए। भारत की हजारों वर्ग किलोमीटर भूमि पर चीन द्वारा कब्जा कर लेने के बावजूद उसके साथ मित्रता स्थापित करने के प्रयास से इनके आत्मसम्मान को

चोट नहीं लगती। कहते हैं कि इससे सह-अस्तित्व की भावना को बल मिलेगा। ये यह मानते हैं कि एक अरब चीनी गलत नहीं हो सकते, क्योंकि हम केवल अस्सी करोड़ हैं, इसलिए भारत की अस्सी करोड़ की आबादी में केवल आठ करोड़ मुसलमान भी सही नहीं हो सकते। अतएव शताब्दियों पूर्व उनके पूर्वजों द्वारा किए गए अपमान को धो डालना चाहिए।

यह व्यंग्य यही समाप्त नहीं होता। ये बुद्धिजीवी व्यंग्य करते हैं कि 'अयोध्या तो केवल आरंभ है। अभी और अपमानों को भी मिटाना है। इन अपमानों को मिटाने के लिए ये मथुरा में श्रीकृष्ण और काशी में श्री विश्वनाथ का मंदिर भी बनाएंगे। तीन हजार से अधिक मस्जिदों पर पुनः अधिकार करेंगे। भारत के सभी अपमानों को मिटाएंगे और यह कार्य करते हुए भाजपा का भविष्य भी अपने सामने रखेंगे।'

यह व्यंग्य मात्र व्यंग्य नहीं है। यह भारत के प्रच्छन्न, पिट चुके, परजीवी बुद्धिजीवियों का आत्मनिवेदन है। बड़ी चतुराई के साथ वे अपना अपराध स्वीकार कर रहे हैं। इस स्वीकृति के लिए वे कोई ओट चाहते हैं और इनकी शोकान्तिका यह है कि इस कार्य के लिए उन्हें श्रीराम आंदोलन का ही सहारा लेना पड़ रहा है।

राष्ट्रीयता का बोध

जिस विचारधारा और जिन संस्थाओं पर वे राष्ट्रीय अपमान का बोध न होने का आरोप लगाते हैं, वस्तुतः संपूर्ण देश में एकमात्र विचारधारा वही है, जो विदेशी कर्ज लेने और अर्थव्यवस्था के सरकारीकरण का सतत् विरोध एवं निषेध करती आ रही है। चीन के अधिकार में पड़ी भारत-भूमि की मुक्ति, तिब्बत की आजादी, गुलाम कश्मीर को भारत में मिला लेने की आवाज यदि कहीं और किसी ओर से सुनाई देती है तो वह राम आंदोलन से जुड़ी विचारधारा और उसके कुल से ही सुनाई देती है। शेष लोग, जिनमें ये बुद्धिजीवी, पत्रकार और राजनेता भी शामिल हैं, उन्हें युद्ध लिप्सु, युद्ध पिपासु, मुस्लिम द्वेषी, सांप्रदायिक, संकीर्ण, प्रतिक्रियावादी और प्रतिगामी कहकर बदनाम करते आए हैं। देश की संप्रभुता और भौगोलिक अखंडता की कीमत चुकाकर विश्व शान्ति का नाम लेकर चीन की दोस्ती खरीदने का काम राम आंदोलन के विरोधी करते हैं। ओलम्पिक खेलों और क्रिकेट मैच में पराजय को पराजय न मानकर खेल भावना के नाम पर पराजय के बाद पराजय के बावजूद अपमान का अनुभव यदि किसी को नहीं होता तो कांग्रेसी कुनबे के लोगों को, कांग्रेसी संस्कृति के झण्डावाहकों और प्रच्छन्न एवं परजीवी बुद्धिजीवियों को। राम आंदोलन से जुड़ा वैचारिक और राष्ट्रीय वंश किसी भी राष्ट्रीय पराजय को किसी भी अंश में सहन नहीं करता। यह इस राष्ट्रीय परिवार की राजनीतिक नहीं, राष्ट्रीय विवशता है। यही वह बिन्दु है, यही वह रेखा है जो इन दोनों प्रश्नों को अलग-अलग करती है। भारत की भूमि पर चीनी कब्जे का औचित्य आबादी, सैनिक और शस्त्रबल के आधार पर

स्वीकार करने की दलील भी यही लोग देते हैं। ये ही लोग यह भी आरोप लगाते हैं कि क्योंकि भारत की अस्सी करोड़ जनसंख्या में मुसलमान केवल आठ करोड़ हैं, इसलिए यहां के बहत्तर करोड़ हिन्दू उनकी बात मानने में अपमान का अनुभव करते हैं।

श्रीराम आंदोलन ने ढपे-मुंदे सेकुलरी सत्य को उजागर कर दिया है। इन नेताओं को न राष्ट्र से मतलब है, न किसी मजहब, संप्रदाय अथवा जाति से। ये न रक्त का नाता मानते हैं, न देश का। इन्हें न पूर्वजों से कुछ लेना-देना है, न परंपरा और इतिहास से। ये न अनुभव से सीखते हैं, न अपमान से। इनका संबंध केवल निजी और उसका बहुत अधिक व्याप हुआ तो दलीय स्वार्थ से है। इनकी देशभक्ति केवल सत्ता प्राप्त करने में है। इनका सांप्रदायिक सद्भाव मजहबी तुष्टीकरण करना है। इनका राष्ट्रीय हित विभिन्न स्तरों पर राष्ट्र के विभाजन और विभाजक तत्वों का थोक वोट प्राप्त करने में है। इनकी राष्ट्रीय अखंडता आतंकवादियों और अलगाववादियों का संरक्षण करने एवं देश को आतंरिक अशान्ति, हत्या और हिंसा की आग में जलाते रहने में है। मजहबी आधार पर भारत में समानान्तर राष्ट्रों की मान्यता ही इनकी राष्ट्र की कल्पना है। इसीलिए जो लोग अब तक मस्जिद बचाने की कसमें खा रहे थे, वे अब मन्दिर बचाने का संकल्प दोहराने लगे हैं। ये भ्रमित लोग हैं। बेचारे हैं। परजीवी हैं। दया के पात्र हैं। इन पर क्रोध न करके कृपा की जानी चाहिए।

अपने राष्ट्र को अपने निजी, दलीय और वोट राजनीति का बंदी बनाकर रखने की कुटिलता का ऐसा ज्वलंत उदाहरण विश्व के किसी और देश में नहीं मिलेगा। इस संदर्भ में भी भारत अद्वितीय है। लेकिन श्रीराम आंदोलन की महिमा कि इसने समस्त प्रच्छन्न बुद्धिजीवियों और परजीवियों को नंगा करके चौराहे पर खड़ा कर दिया और देशवासियों को अपने देश की दुर्दशा के कारणों से जुड़े प्रश्नों का उत्तर मिलने लगा।

तीस अक्तूबर 1990 से अट्ठारह अक्तूबर 1991 तक अयोध्या में जो कुछ हुआ और उसको जिस रूप में प्रचारित किया गया यही है उस सबका कारण और निष्कर्ष।

10 नवंबर 1991

भारत माता का दुःख

अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि पर मंदिर निर्माण के प्रयास को लेकर तूफान खड़ा किया जा रहा है कि 'यदि मंदिर बना तो देश टूट जाएगा। देश के कोने-कोने में सांप्रदायिक उन्माद बढ़ेगा। देश रक्त की नदी में डूब जाएगा। श्रीराम मंदिर का निर्माण भारत के सेकुलर चरित्र के विरुद्ध है, इसके कारण अल्पसंख्यक संप्रदाय देश से अलग हो जाएगा।'

यह तूफान निर्माण करने का प्रयास दो फरवरी, 1986 के बाद से विशेष रूप से किया गया। श्रीराम जन्मभूमि मंदिर का ताला खोला गया तो देश के सांप्रदायिक तत्वों और 'सेकुलरिस्टों' का खून खौला कि यह मस्जिद तोड़ने की प्रक्रिया का प्रारंभ है। उसके बाद 9-10 नवंबर, 1988 को शिलान्यास, तीस अक्तूबर, 1990 को सत्ता का दंभ तोड़कर श्रीराम मंदिर के शिखर ध्वाजारोहण और दो नवंबर, 1990 का हौतात्म्य आदि ऐसे प्रसंग रहे जिनके कारण मुस्लिमपरस्त राजनेता और मुस्लिम वोटों के व्यापारी तथाकथित मुसलमान नेताओं ने देश को हिन्दू-मुस्लिम खेमें में बांट देने का हर संभव प्रयास किया। यह प्रयास इस तथ्य को अनदेखा करके किया गया कि देश के निवासियों में मजहब और संप्रदाय का अभियान जगाकर, देश के देवता के निवास स्थान को विवादित बताकर, जिस स्थान पर भारत राष्ट्र का प्रकाश पुरुष अवतरित हुआ था उसे आक्रमण और अपमान के स्मारक के रूप में अक्षत रखने का अभियान चलाकर, एक देश की भूमि पर अनेक समानान्तर राष्ट्रों की आधारशिला रखेगा।

एक साल बीता। तीस अक्तूबर, 1991 को तीस अक्तूबर, 1990 के शौर्य दिवस की वर्षगांठ मनाई गई। दो नवंबर को हुतात्माओं को श्रद्धांजलि दी गई। देश के उस वर्ग ने, देशमाता का प्राण स्पन्दन जिसके प्राणों की धड़कन है, इस दिन को जिस प्रेरणा और प्राण की शक्ति के साथ मनाया वह दिन आज नहीं तो कल राष्ट्र-पर्व अवश्य बनेगा। तथाकथित राष्ट्रीय एकता अभियान दल के छः मिनटीय नाटक ने 31अक्तूबर, 1991 को जो प्रदूषण पैदा किया, उसकी मारक दुर्गन्ध से देशवासी जितना शीघ्र मुक्त हो सकें उतना ही हितकर रहेगा। अगर यह 'एकता अभियान दल अयोध्या न गया होता और इंका के श्री एम० जे० अकबर श्रीराम मंदिर में चप्पल

सहित प्रविष्ट न हुए होते तो रामभक्त उत्तेजित न हुए होते। शौर्य और हौतात्म्य दिवस के संवेदनात्मक प्रसंग को राजनीतिक कुटिलता का कलंक लगाने का प्रयास ही हुआ। इकतीस अक्तूबर, 1991 को कुछ रामभक्तों ने भावोद्रेक में श्रीरामलला के मंदिर के शिखर पर भगवाध्वज फहराया तो अखबारों को पढ़कर ऐसा लगा कि 'मानो इस कारण भयंकर भूचाल आ गया हो कि 'देश उलटा-मलटा हो गया हो।' यह ध्वजारोहण श्रीराम कार सेवा समिति या श्रीराम जन्मभूमि न्यास की योजना का अंग नहीं था, तो भी श्रीराम मंदिर पर भगवा ध्वज फहराना कोई अपराध नहीं था और न उसकी निन्दा करना किसी उदारता का परिचायक।

योजना और अनुशासन की बात अलग है, भावना और समर्पण का संदर्भ अलग। श्रीराम मंदिर को किसी हानि-लाभ के लेखा-जोखा के साथ जोड़ना सर्वथा अनुचित है। यह भारत राष्ट्र की राष्ट्रीयता और राष्ट्र का प्रतीक है। अतः इसे सत्ता व राजनीति की अंधी गली मे न धकेलकर राष्ट्र और राष्ट्रीयता के साथ ही संबद्ध रहने देना उचित और हितकारी होगा।

फिर भी यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि जिन रामभक्तों ने 31 अक्तूबर, 1991 को श्रीराम मंदिर पर भगवा ध्वज फहराकर शौर्य दिवस मनाया उन्होंने निर्धारित पद्धति के अनुकूल आचरण नहीं किया। इसका अपना विशिष्ट महत्व है। 30 अक्तूबर, 1990 को श्रीराम मंदिर पर ध्वज फहराना जनता दल और मुलायम सिंह की दंभी सत्ता की चुनौती स्वीकार करके उसे उसकी औकात बता देने की योजना का अंग था। 31 अक्तूबर, 1991 का ध्वजारोहण बिना किसी योजना एवं स्वीकृति के किया गया। परन्तु यह मानना होगा कि बिना किसी निश्चित योजना के श्रीराम मंदिर के शिखरों पर फहराए गए ध्वजों में देशवासियों की भावनाएं एवं प्राण ध्वनि निहित थे। देशवासी चाहते है कि श्रीराम मंदिर का निर्माण यथाशीघ्र प्रारंभ हो और उस भव्य मंदिर में यथाशीघ्र उन्हें श्रीरामलला की अर्चना-आराधना करने का सुख-सौभाग्य प्राप्त हो। श्रीराम मंदिर पर भगवा ध्वज फहराना न कोई अपराध है और न ही संविधान या आचार-संहिता का उल्लंघन। जिस मंदिर में श्रीराम की निरंतर पूजा होती है, जहां घंटा-घड़ियाल बजते हैं, उस मंदिर के शिखर पर श्रीराम का ध्वज होना ही चाहिए। इस पर आपत्ति करने का कोई औचित्य नहीं है, यह एक परंपरा का निर्वाह मात्र है।

दंगा कराने का प्रयास

किन्तु इस ध्वजारोहण को उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार को कत्ल करने का हथियार बनाया गया। तथाकथित राष्ट्रीय मोर्चे और वाममोर्चे के घटकों, बाबरी मस्जिद बुद्धिजीवियों ने कभी अलग-अलग तो कभी संयुक्त रूप से वक्तव्य दिए, धरने दिए, गिरफ्तारियां देकर ऐसा दृश्य निर्माण करने का असफल प्रयोग किया मानो देश में कोई खूनी संघर्ष होने जा रहा है। प्रकारान्तर से इन सभी का यह प्रयास रहा कि

देश और विशेषकर उत्तर प्रदेश में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो और वे हिन्दू-मुसलमानों के खून से अपना राजनीतिक आटा सानकर अपनी सत्ता की रोटी सेकें।

ये सभी प्रसंग ऐसे रहे कि इनके प्रकाश में देश की सेकुलरी राजनीति का पाखंड साफ-साफ दिखाई दिया। गत वर्ष सितंबर महीने से ही तब की मुलायम सिंह की जनता दल सरकार ने उत्तर प्रदेश को अर्द्धसैनिक बलों की छावनी और पुलिस लाइन में परिवर्तित कर दिया था। आवागमन के सभी साधनों पर रोक लगा दी। रेलगाड़ियां बंद थीं। बसें सड़कों पर नहीं चलीं। साइकिल पर चलना भी दूभर हो गया। पैदल चलना खतरे से खाली नहीं लग रहा था। हर दस किलोमीटर पर सड़कों पर अवरोध लगे थे। हजारों वर्ष से चली आ रही अयोध्या की पंचकोशी परिक्रमा नहीं होने दी गई थी। उच्च न्यायालय के एक नहीं दर्जनों आदेशों का उल्लंघन किया गया, निहत्थे, बेगुनाह रामभक्तों को गोलियों से भून दिया गया, श्री लालकृष्ण आडवाणी को अयोध्या नहीं जाने दिया गया, लाखों रामभक्तों को स्थायी और अस्थायी जेलों में केवल इसलिए बंदी बना दिया गया कि वे अयोध्या जाकर शांतिपूर्ण तरीके से श्रीराम मंदिर का पुनर्निर्माण करने का अपना अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। सभी सरकारी अवरोधों और राजनीतिक विरोधों के बावजूद उस समय भी कारसेवकों ने अपने प्राण देकर ध्वजारोहण किया था किन्तु तब किस कम्युनिस्ट, किसी जनता दलीय,किसी कांग्रेसी, किसी बुद्धिजीवी, मानवाधिकारों के किसी भी झण्डावाहक ने जनाधिकारों के हनन, संविधान के उल्लंघन, न्यायालय की अवमानना, धार्मिक स्वतंत्रता पर किए गए आघात के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठाई थी। तब के प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने मुख्यमंत्री मुलायम सिंह के संविधान विरोधी कार्यों और नरसंहार करने के अपराध के फलस्वरूप उनकी सरकार को भंग करने की चर्चा तक नहीं की थी। हिंसक नक्सलवादियों और अराजकतावादी आतंकवादियों की हत्या को मानवाधिकारों और सांविधानिक मान्यताओं का हनन मानने वाले तथाकथित मानवाधिकारवादियों को दो नवंबर, 1990 का अयोध्या हत्याकांड, कुछ भी नहीं लगा। जिन लोगों ने पीलीभीत में मारे गए आतंकवादियों के पक्ष में मांग की, वे सभी अयोध्या हत्याकांड पर मौन रहे थे। उस हत्याकांड की न्यायिक जांच करके दोषियों को दंडित करने की मांग की अपनी परंपरागत तोता रटंत भी नहीं की। किन्तु उन्होंने कल्याण सिंह की सरकार के विरुद्ध अभियान चलाया। उनकी दृष्टि में भारत में रामभक्त होना अपराध है। हिन्दू हित की बात करना सांप्रदायिकता है। राष्ट्रीय एकता के प्रति प्रतिबद्ध होना कट्टरपंथी होना है। राष्ट्रीय परंपरा के साथ जुड़ना देश में सांप्रदायिक दंगा कराना है।

वोट की राजनीति की विवशता

इन सेकुलरिस्टों को केवल अयोध्या ही दिखाई देती है। इनकी दृष्टि कश्मीर,

पंजाब, असम, आंध्र, तमिलनाडु आदि राज्यों में व्याप्त आतंकवाद नहीं देख पाती। ये बंगलादेशी मुस्लिम घुसपैठियों की सरपरस्ती तो करते हैं, किन्तु कश्मीर से भगा दिए लाखों हिन्दू विस्थापितों की पीड़ा का इनके लिए कोई महत्व नहीं है। अयोध्या को लेकर दो बार राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक हो चुकी है किन्तु कश्मीर, पंजाब, असम, आंध्र और तमिलनाडु में फैले आतंकवाद और अलगाववाद के कारण राष्ट्रीय अखंडता के लिए उत्पन्न चुनौती पर विचार करने के लिए राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक बुलाने का विचार तक उनके मन में नहीं उभरता।

ऐसा क्यों है ? क्यों अयोध्या को ये लोग देशतोड़क कहते हैं और क्यों कश्मीर, पंजाब, असम, आंध्र आदि राज्यों में व्याप्त आतंकवाद को केवल आर्थिक समस्या मानकर मौन हो जाते हैं।

इस प्रश्न को केवल वोट राजनीति की विवशता का तुष्टीकरण कहकर टाला जा सकता है। इसमें सत्यांश भी है, किन्तु इतना ही नहीं है। इसमें यह एक मूलगामी प्रश्न निहित है कि देश और राष्ट्र की एकता की बातें करने, राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक बुलाने वाले, सांप्रदायिकता-विरोधी और सेकुलरिज्म का झंडा ढोने वालों को क्या देश, राष्ट्र, सांप्रदायिकता और सेकुलरिज्म की प्रतीति है? इस प्रश्न का उत्तर मिल जाए तो अयोध्या और आतंकवाद का समीकरण बदल जाए। तब अयोध्या, कश्मीर, पंजाब, असम, आंध्र के आतंकवाद का उत्तर बनकर उभरती दिखाई देगी और इस सत्य को सभी सहज भाव से स्वीकार कर लेंगे कि अयोध्या कश्मीर से जुड़ी है, उसका उसके संदर्भ से जुड़ा रहना ही राष्ट्रीय अखंडता को अपने-अपने हानि-लाभ की तुला पर तौलने वालों के लिए चुनौती भी है और चेतावनी भी। अयोध्या देश और राष्ट्र की प्रतीति का प्रमाणपत्र है।

राष्ट्र का उत्पत्ति सिद्धान्त

राष्ट्रीय एकता की बातें करने वालों को क्या देश की पहंचान न हो तो श्री अरविन्द का कहा सुनें और लिखा हुआ पढ़ें।

श्री अरविन्द ने कहा है, 'देश ही है राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा भूमि। बहुत सी परस्पर विरोधी जातियां एक देश में निवास करती हैं, उनमें सद्भावना, एकता और मैत्री का न होना भय का कारण नहीं होना चाहिए। जब एक देश, एक मां का भाव दृढ़ होगा तब एक न एक दिन एकता आकर ही रहेगी। अनेक जातियों के मिलने से एक बलवान, अजेय राष्ट्र उत्पन्न होगा। धर्ममत एक नहीं है, संप्रदाय-संप्रदाय में चिर विरोध है, मेल नहीं है, मेल की आशा भी नहीं है, फिर भी भय की कोई बात नहीं है। एक दिन स्वदेश मूर्तिधारिणी मां के प्रबल आकर्षण से साम्प्रदायिक विभिन्नता भ्रातृभाव और भ्रातृप्रेम में डूब जाएगी। एक देश में विभिन्न भाषाएं हैं, भाई-भाई की बात समझने में असमर्थ है, हम एक दूसरे के भाव में प्रवेश नहीं कर पाते, हृदय में

हृदय के आबद्ध होने के पथ में अभेद प्राचीर खड़ी है, फिर भी डरने की कोई बात नहीं है। एक देश, एक जीवन, एक विचार की धारा सबके मन में प्रवाहित होगी तो प्रयोजन की प्रेरणा से सर्वसाधारण भाषा की सृष्टि होगी ही, या तो वर्तमान किसी भाषा का आधिपत्य स्वीकृत होगा या एक नई भाषा की सृष्टि होगी। मां के मंदिर में सब उसी भाषा का व्यवहार करेंगे। मां का प्रयोजन, मां का आकर्षण, मां के प्राणों की कामना विफल नहीं होती। वह सभी बाधाओं, सभी विरोधों को अतिक्रम करती है, विनष्ट करती है, विजयी होती है। 'हमारा' एक मां के गर्भ से जन्म हुआ है, हम एक मां की गोद में निवास करते हैं और हम एक मां के पंचभूत में मिल जाते हैं।' यदि यह अनुभूति होती तो आंतरिक सहस्र विरोध होने पर भी मां की पुकार पर हम एक हो जाएंगे। यही है प्रकृति का नियम, सभी देशों के इतिहास की शिक्षा। देश ही है राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा भूमि। एक देश में दो जातियां चिरकाल तक नही रह सकतीं, उन्हें मिलना ही होगा। यदि एक देश न हो, जाति, भाषा और मजहब एक हो भी तो उसका कोई लाभ नहीं। अलग-अलग देशों को संयुक्त करके एक वृहत साम्राज्य तो बनाया जा सकता है परन्तु एक वृहत राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता। उस साम्राज्य को ध्वंस करके स्वतंत्र राष्ट्र पुनः उत्पन्न होकर अपने देश की भूमि पर प्रतिष्ठित होता है।'

देश की राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रीय एकता परिषद का गठन और उसकी बैठक करने वाले प्रकृति के इस नियम से परिचित होते और उन्हें सभी देशों के इतिहास का बोध होता तो वे एक मां के गर्भ से उत्पन्न, एक मां की गोद में विकास करने और एक मां के पंचभूत में मिल जाने का भाव देशवासियों के मन में दृढ़ करने का प्रयास करते। मां-संतान संबंध, समान रक्त-वीर्य और वंश की अनुभूति का अभाव देश के वासियों को देश की भौमिक और भावुक भूमि के साथ एकात्म होने में एकमात्र बाधा है। भूख का दुख या भौतिक सुख की कामना का देशमाता और राष्ट्र के साथ अपनत्व अथवा अलगाव का कोई संबंध नहीं है।

एकमेव मार्ग

भारतमाता का दुख यह नहीं है कि यहां अनेकता है, विविधता है, भाषाओं की भिन्नता है, संप्रदायों और जातियों की भीड़ है, प्राकृतिक असंतुलन है। भारत माता का दुःख यह है कि यहां के निवासी किसी पब्लिक या प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के शेयर होल्डर की तरह आचरण करते हैं जबकि देश और राष्ट्र पब्लिक या प्राइवेट (लि०) कम्पनी की तरह नहीं होता कि उसके अंशधारी समय-समय पर एकत्र होकर लाभ-हानि का लेखा-जोखा करके अपने-अपने हिस्सों की मांग करें और यदि लाभ होता हो तो वे कंपनी के साथ रहें, यदि हानि होती दिखाई दे तो अपना हिसाब करके अलग हो जाएं।

संभवतः लोगों को अच्छा न लगे लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक किसी पब्लिक लिमिटेड कंपनी के अंशधारियों की बैठक से अधिक और कुछ नहीं होती। उस बैठक में वे सभी अंशधारी एकत्र होते है जो अपने लाभ के लिए देश को तोड़ सकते हैं और जिन्होंने अतीत में देश को तोड़ा भी है। जो अपने राजनीतिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए सांप्रदायिक शत्रुता और जाति का जहर फैलाते और उसके एवज में वोट की फसल काटा करते हैं।

अयोध्या इन सबका निषेध करती है, अयोध्या भारत राष्ट्र और देशमाता की भौतिक और भावात्मक एकात्मता की आधारभूमि है, अयोध्या के गर्भ से ही अब तक इस विश्व में एकमात्र मर्यादा पुरुषोत्तम का जन्म हुआ था, कश्मीर, पंजाब, असम, आंध्र आदि राज्यों में व्याप्त आतंकवाद की पीड़ा, राष्ट्रीय एकता तथा देशमाता की अखंड प्रतिमा की शाश्वत प्रतिष्ठा के लिए उत्पन्न खतरों का एकमेव समाधान है अयोध्या और राम आंदोलन। किसी कंपनी के अंशधारियों और उसके प्रबंध निदेश की प्रवृत्ति देशमाता और राष्ट्र के सुख का सृजन नहीं कर सकती।

देश माता से लिया नहीं उसे दिया जाता है। इस संदर्भ में अमरीका के स्व० राष्ट्रपति केनेडी का यह कथन पूर्णतया सार्थक है कि यदि हम देश भक्त हैं तो हम यह कदापि न सोचें कि हमें देश से क्या मिला या हमें देश ने क्या दिया, अपितु यह विचार करें कि हमने अब तक देश को क्या दिया है और भविष्य में हम उसे और क्या दे सकते है।

राष्ट्र और देशमाता के प्रति पूर्ण समर्पण का मंत्र एवं दृष्टिदाता है अयोध्या। यदि इसके कारण देश को पब्लिक लिमिटेड कंपनी मानने वालों को कष्ट होता हो और इस कारण यदि वे अनर्गल प्रलाप करने लगें तो इसमें न कोई आश्चर्य है, न कोई अतिशयोक्ति। ये ऐसे लोग हैं जो सांप्रदायिक सद्भाव, सामाजिक न्याय एवं समता को समरसता और भ्रातृत्व की भूमि पर प्रतिष्ठित न करके समता की अप्राकृतिक भूमि पर मातृत्व को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हैं। ये लोग यह भूल जाते हैं कि साम्यहीन भ्रातृत्व तो संभव है, भ्रातृत्वहीन समता संभव नहीं है। मतभेद, कलह, लाभ-हानि के बंटंवारे की खींचतान, और अधिकार कीउद्दामलालसा 'समता' को नष्ट कर देगी। अतएव देश की एकता की प्रथम शर्त है पूर्णभ्रातृत्व फिर पूर्ण साम्य। और यह लक्ष्य केवल देशमाता की गोद में उसका रक्तांश होकर ही प्राप्त किया जा सकता है, दूसरा और कोई मार्ग नहीं है।

17 नवंबर 1991

कब तक चलेगा यह पाखण्ड ?

भारतवर्ष संपूर्ण भौगोलिक और भौतिक सृष्टि का एक आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सनातन सत्य है। यहां के राष्ट्रीय समाज अर्थात् हिन्दू के जीवन दर्शन, संस्कृति एवं इतिहास, उसका तप, त्याग, शौर्य, चिन्तन और चिति ही भारत की चेतना और जिजीविषा है। हिन्दू समाज और उसके द्वारा सर्जित भारतीय जीवन दर्शन को अमान्य करना प्रकृति प्रदत्त मानवी धर्म का निषेध करना है। भारत के राष्ट्रीय समाज ने गत हजारों वर्ष से जिस समन्वित भाव, सम्वेदनात्मक अनुभूति, समादर और समभाव की सृष्टि की है वही अथ को अन्त से जोड़ने वाला अनन्त सूत्र है। न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, जीव और शिव की स्पष्टता केवल भारत की ही देन है। विश्व के शेष देशों ने भारत की जूठन खाकर नैतिकता-अनैतिकता और न्याय-अन्याय का अपने-अपने परिवेश में प्रतिपादन किया। बहुत प्रयास करके भी वे अपने स्वार्थ की भूमि सीमा को पार नहीं कर पाए। उनके चिन्तन की सीमा भूगोल की भौतिक सीमा में ही बंधी रही, जबकि भारत द्वारा सर्जित असीम और अनन्त दर्शन ने भौगेलिक और भौतिक सीमाओं को लांघ करके जड़-चेतन ब्रह्माण्ड को भी व्याप्त किया। यही वह एकमेव कालजयी दर्शन और सनातन जीवन दृष्टि है, जो समय और परिस्थिति निरपेक्ष है और जिसमें कालबाह्य व्यवस्था, विचार और प्रवृत्ति को अमान्य करके सनातन और शाश्वत जीवन दर्शन के प्रकाश में कालसापेक्ष व्यवस्था निर्माण करते रहने की क्षमता है। प्रलय के बाद नव सृजन के समस्त तत्व इसी जीवन दर्शन में विद्यमान हैं।

इतना महत् जीवन इतनी महत् परम्परा, इतना महत् तप और त्याग, इतनी सहज परिस्थिति निरपेक्षता परिस्थिति में परिवर्तन की इतनी अपरिमित और अचूक क्षमता, मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त दायित्व का बोध कराने का इतना महत् ज्ञान, सृष्टिकर्ता और त्रैलोक्य के नियन्ता का केवल मानसी नहीं, प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने वालों का वंशज, "मैंने उस हिरण्मय को अपनी चर्म-चक्षुओं से देखा है," का उद्घोष करने वाले ऋषियों की संतान, प्रत्यक्ष परमेश्वर की मानवी लीलाभूमि का राष्ट्रीय समाज पग-पग पर और प्रति क्षण अपमानित हो, उसकी राष्ट्रभक्ति को साम्प्रदायिक और उसके प्रिय राष्ट्र के लिए घातक बताया जाए तो इसे क्या कहा जाएगा? किस रूप में और किन शब्दों में इसकी मीमांसा की जाए? एक शब्द में कहे तो, 'नादानी', और एक वाक्य में कहे तो

'आत्मनाश का आमंत्रण।'

सचमुच यही हो रहा है आज। हमें आत्मनिन्दा में आनन्द आता हैं। अपने पूर्वजों को प्रताड़ित करने में हमारा प्राण प्रफुल्लित होता है, अपने अपराधों पर हमें अब आत्मग्लानि नहीं होती। आत्मप्रवंचना प्रगतिशीलता और सद्भाव का पर्याय बन गई है। अपनी राष्ट्रीय अस्मिता के विरूद्ध गिरोहबन्द होने को राष्ट्रीय एकात्मता का अनुष्ठान माना जाने लगा है।

झूठ, और झूठ

कहते हैं कि भारत का राष्ट्रीय समाज, भारत के वे लोग, जिनके रक्त में भारत की माटी का रस है, जिनकी सांस-सांस में भारत का पवन समाया हुआ है,जिनके रोम-रोम से भारत-भारत के अतिरिक्त और कोई शब्द निसृत नहीं होता, भारत का अतीत, वर्तमान और भविष्य ही जिनका त्रिकाल है, भारत की धरती की सुगंध ही जिनके जीवन की सुगंध है, जो भारत को चैतन्यमयी माता की तरह पूजते हैं, भारत माता का रक्त जिनका रक्त है, जिनके प्राणों की धड़कन मां भगवती भारत माता के प्राण स्पन्दन के साथ संबद्ध है, जिनका भारत के अतिरिक्त न कोई आस है, न कोई वास, वे और उनका समाज इस देश में 'सांप्रदायिक' है। आतंकवादी है। दंगाई। संकीर्ण है।

कहा जाता है कि हिन्दुत्व के आग्रह के कारण देश की आजादी और अखंडता खतरे में पड़ जाएगी। यह सब यह जानते हुए और जानबूझ कर कहा जाता है कि भारत का भूगोल उतना ही बड़ा होता है और भारत की राजनीतिक सत्ता वहीं तक चलती है जहां भारत का राष्ट्रीय अर्थात् हिन्दू समाज बहुमत में और समर्थ होता है, यह भी कि उस क्षेत्र में अलगाव का अभियान नहीं चलता। वह भूखंड भारत की मूल भूमि के साथ मत, प्राण सहित एकात्म रहता है और इसके विपरीत जहां-जहां हिन्दू अल्पमत में होता है और दूसरे समुदाय अर्थात् मुसलमान और ईसाई बहुमत में हो जाते है। उस भूखंड में भारत से अलग होकर एक स्वतंत्र सार्वभौम समानान्तर राष्ट्र-राज्य का निर्माण करने की मांग बलवती हो जाती है। वे क्षेत्र या तो भारत से अलग हो जाते हैं या फिर विधान और विधि के अन्तर्गत विशेष दर्जा और विशेषाधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

यह इतिहास सिद्ध तथ्य है कि भारत के राष्ट्रीय समाज अर्थात् हिन्दू के सिकुड़ने के साथ-साथ भारत की सीमाएं भी सिमटती जाती हैं। कभी अफगानिस्तान भारत की सीमा थी और अब पाकिस्तान की पूर्वी सीमा भारत की सीमा है। कभी ब्रह्मदेश भी भारत था, अब पूर्वी बंगाल (बंगलादेश) की पश्चिमी सीमा तक भारत सिमट आया है। कश्मीर में हिन्दू जनसंख्या कम हुई तो वहां के बहुसंख्यकों और शेष भारत में अल्पसंख्यकों अर्थात् मुसलमानों ने कश्मीरी राष्ट्र के लिए बंदूकें उठा लीं। पूर्वांचल

की ईसाई बहुलता के साथ-साथ एक असम छः राज्यों में बंट गया। वह बंटवारा प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए नहीं अपितु ईसाई अलगाववाद द्वारा भारत विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र की सफलता का परिणाम है। केरल के मल्लापुरम को मुस्लिम बहुलता के कारण कम्युनिस्टों ने एक अलग मुस्लिम जिला बना दिया।

किन्तु हिन्दू ! हिन्दू यह सब नहीं करता। वह केवल हिन्दुतानी है, केवल भारतीय है। हिन्दुओं को भाषा, क्षेत्र और राज्य रचना के नाम पर बांटने के समस्त प्रयासों और राजनीतिक स्वार्थों के बाद भी उनकी राष्ट्रीय एकात्मता और सांस्कृतिक समग्रता अक्षुण्ण ही रही। विभिन्न राष्ट्रीयताओं का अनर्गल प्रलापों के बावजूद कन्याकुमारी से कश्मीर तक वह एक ही राष्ट्र और एक ही भारतमाता का दर्शन करता है।

कैसा प्रगतिवाद ?

फिर भी तथाकथित प्रगतिवादियों, नकलची आधुनिकतावादियों और पश्चिमी गुरुओं के शिष्य बुद्धिजीवियों की दृष्टि में भारत की राष्ट्रीय अस्मिता, इसके आत्मसम्मान के प्रति एकान्तिक निष्ठा और आग्रह रखने वाला समाज और लोग सांप्रदायिक हैं। भारत की आत्मा पर अपमान का कालिख स्थाई रूप से लगे रहने को वे सर्वधर्म समभाव का प्रतीक मानते हैं। कहानियां गढ़ी गई हैं कि अयोध्या के एक मंदिर का पुजारी 87 वर्षीय मुसलमान है। दलील दी जाती है कि मंदिर-मस्जिद की साझी दीवार बनाकर हिन्दू-मुस्लिम एकता की नींव दृढ़ की जाए। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जाता कि यह प्रयोग केवल हिन्दूओं की ही छाती पर ही क्यों किया जाना चाहिए ? केवल मंदिर तोड़ कर मस्जिद क्यों बनानी चाहिए ? केवल मंदिर की दीवार ही साझी क्यों होनी चाहिए? केवल भारत के मान बिन्दुओं का मर्दन करके यह कार्य क्यों किया जाना चाहिए? किसी नए स्थान पर यह नया प्रयोग क्यों नहीं किया जाता कि मंदिर-मस्जिद की दीवारें साझी हों और मंदिर का कीर्तन तथा मस्जिद का अजान एक ही समय और एक ही साथ हों? अयोध्या के एक मंदिर का मालिक किसी मुसलमान को बना देने का विरोध किसी हिन्दू ने नहीं किया, क्या कोई मुसलमान या मुस्लिम वक्फ बोर्ड किसी हिन्दू को कोई मस्जिद या ईदगाह सौंपने के लिए तैयार होगा? क्या सांझा मंदिर, मस्जिद, चर्च बनाकर एक ही समय और साथ-साथ उपासना का प्रस्ताव या सुझाव मुसलमानों या ईसाईयों की ओर से आया है? नहीं, यह सुझाव भी हिन्दूओं का ही है। चाहे किसी भी कारण या किसी भी रणनीति के तहत यह क्यों न कहा जा रहा हो, किन्तु यह विचार केवल हिन्दू ही व्यक्त कर सकता है। गिरा से गिरा और पथ-भ्रष्ट हिन्दू भी यदि धर्म के स्तर पर सोचता है तो उसके लिए मजहबी और भौतिक भेद का कोई अर्थ नहीं रहता। किन्तु यह एकपक्षीय और एकहरा रास्ता है, दूसरी ओर से इसका आम प्रतिसाद प्राप्त नहीं होता। अपवाद रूप में कुछ

सूफियाई बातों का किया जाना सामान्य मानस नहीं होता। किसी मंदिर की बात तो बहुत छोटी है, भारत के हिन्दूओं ने अपनी प्राणमय भारत माता को भी काट कर दे दिया, किन्तु अलगाववादियों, आक्रमणकारियों और भारत के शत्रुओं के वंशजों की क्षुधा फिर भी शांत नहीं हुई।

पर उपदेश.....

जो लोग, जिस समुदाय और संप्रदाय के लोग हिन्दुओं को सांप्रदायिक और प्रतिक्रियावादी कहते हैं, जो लोग हिन्दुओं को मुसलमानों का शत्रु बताते हैं, जो लोग भारत की राष्ट्रीय अस्मिता और आत्मसम्मान की पुनर्प्रतिष्ठा करने के आग्रह, अनुष्ठान और जागरण अभियान को हिन्दू आतंकवाद और कट्टरपंथी प्रवृत्ति कहते हैं या तो वे इतिहास को अस्वीकार करते हैं, भारत की परंपरा के संदर्भ में या तो वे अशिक्षित हैं, अज्ञानी हैं या क्रूर और स्वार्थी। वे मध्ययुग का इतिहास पढ़ें तो पाएंगे कि मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के पूर्व मुसलमानों की मस्जिदें और ईसाईयों के चर्च हिन्दू राजाओं के राजकोष से बनवा दिए जाते थे। भारत समस्त विश्व के विस्थापितों का अभयारण्य था। पारसियों और यहूदियों का अनुभव इसका साक्षी है।

भारत की सद्भावना और इसकी मजहबी निरपेक्षता पर पहला आक्रमण किसने किया ? मुसलमानों ने। भारत के हिन्दुओं को जला-जला कर राख किसने किया यह जानना है तो गोवा का इतिहास पढ़ लें। मुहम्मद बिन कासिम द्वारा आरंभ किया गया मंदिर तोड़ने का अभियान अभी तक जारी है। तीस हजार मंदिरों को तोड़ कर मस्जिद बनाने की घटना इतिहास में दर्ज है। इनमें से तीन हजार मंदिरों को जामा मस्जिद में बदल दिया गया। इन मस्जिदों की सीढ़ियों और दीवारों पर लगी खंडित मूर्तियां इसका प्रमाण हैं। दिल्ली की कुतुबमीनार के पास लगे पत्थरों पर स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि 'सत्ताईस मंदिरों को तोड़कर उसके मलबे से इसका निर्माण किया गया है।' अभी अभी 1983-84 में जम्मू-कश्मीर में सैकड़ों मंदिर तोड़ दिए गए। 15 अगस्त, 1947 को भारत का विभाजन हुआ, तो मुस्लिम पाकिस्तान से भारत के हिन्दू भगा दिए गए, लाखों मार दिए गए तो इसे एक विशेष परिस्थिति, विशेष घटना बताकर भूल जाने के लिए कहा गया और भारत का हिन्दू भूल भी गया। किन्तु कश्मीर के पाकिस्तान परस्तों ने उसकी पुनरावृत्ति कर दी। भारत स्वतंत्र हुआ तो कश्मीर घाटी में लगभग पच्चीस लाख हिन्दू थे। लेकिन चालीस वर्ष बाद वहां केवल ढाई-तीन लाख हिन्दू रह गए। उन ढाई लाख हिन्दुओं को कश्मीर घाटी से निकाल दिया गया। वे अब अपने ही देश में विस्थापित हैं। कश्मीर में हिन्दुओं की बहू-बेटियों के स्तन काट लिए गए। उनके गुप्तांगों और जंघाओं पर पाकिस्तान जिन्दाबाद लिखा गया। हिन्दुओं के घरों पर नोटिस चिपका दी गई कि तुम्हारी पत्नियां, बहू-बेटियां अब तुम्हारी पत्नियां और बहू बेटियां नहीं, वे अमुक-अमुक की

पत्नी हैं, उन्हें वहां भेज दो।'

इस सबके बावजूद क्या हुआ? जिस हिन्दू को प्रतिक्रियावादी, हिन्दुत्व के प्रति जिस आग्रह को आतंकवादी, भारत माता के प्रति जिस संपूर्ण समर्पण को देश के लिए घातक होने की दलील दी जाती है क्या उस हिन्दू समाज ने कश्मीर में तोड़े गए पचास से अधिक मंदिरों के बदले में देश के शेष भागों में स्थित किसी भी मस्जिद को हाथ लगाया? क्या कश्मीर से भगा दिए गए हिन्दुओं के अपमान और वेदना की प्रतिक्रिया में शेष देश के किसी भी भाग से किसी भी मुसलमान को किसी भी हिन्दू ने विस्थापित बनाया। मकबूल बट को फांसी दी जाए, पाकिस्तान में भुट्टो को फांसी, जिया उल हक की विमान दुर्घटना में मृत्यु, या मक्का में सऊदी अरब की सेना घुस जाए, इस्रायल में अलस्का मस्जिद काण्ड हो या ईराक का कुवैत पर कब्जा किया जाना, कोई कहानी हो या सलमान रुश्दी का उपन्यास, उसकी प्रतिक्रिया में भारत के हिन्दुओं की दुकानें जलाने और मंदिर तोड़ने का कोई औचित्य न होने के बावजूद भारत के मुसलमानों ने यह कार्य किया। फिर भी हिन्दुओं ने उनके किसी पूजास्थल, किस पवित्र ग्रंथ और किसी बहू-बेटी को हाथ नहीं लगाया। इसलिए नहीं कि वह बदला लेन का यह कार्य नहीं कर सकता या उसमें यह सब करने की क्षमता नहीं है। वह यह सब कर सकता है, फिर भी ऐसा नहीं करता, किन्तु फिर भी उस पर आतंकवादी, सांप्रदायिक, प्रतिक्रियावादी, मुस्लिमों का शत्रु आदि का आरोप धड़ल्ले से लगाए जाते हैं। और देश को बांटने के लिए बम-बारूद और बंदूक से बात करने वाले आतंकवादियों को कहीं खाड़कू, तो कहीं आर्थिक विषमता दूर करने और सामाजिक न्याय के लिए जूझ रहे 'क्रांतिकारी' कहा जाता है।

सेकुलरिटी और सांप्रदायिक सद्भावना के इन झण्डावाहकों की वास्तविकता क्या है ? इस्लामी और ईसाई भाईचारे का स्वरूप क्या है? ईसाई और मुस्लिम सहिष्णुता की सच्चाई जानने के लिए अतीत के अंधकार में भटकने की आवश्यकता नहीं है। गत अक्तूबर महीने में नाइजीरिया मे एक घटना घटी। 16 अक्तूबर, 1991 के समाचार पत्रों में यह समाचार छपा है कि 'दंगाई मुसलमानों द्वारा ईसाइयों के चर्च जला दिए जाने का बदला लेने के लिए सशस्त्र ईसाई प्रदर्शनकारियों ने उत्तरी नाइजीरिया के कानो नामक स्थान पर दो मस्जिदों को जला कर राख कर दिया। ईसाईयों और मुसलमानों के बीच हुए इस संघर्ष में सौ लोग मारे गए। कर्फ्यू लागू किए जाने के बावजूद रात भर हत्याकांड चलता रहा। दोनों संप्रदायों के छोटे-छोटे गिरोह आगजनी करते सड़क पर घूमते रहे और एक-दूसरे से बदला लेने के लिए खोज-खोज कर सम्पत्ति जलाते और हत्याएं करते रहे?'

भारत के हिन्दुओं को उपदेश देने वाले लोग इस घटना पर एक भी शब्द नहीं बोले। भारत के हिन्दुओं को आतंकवादी और दंगाई कहने वाले यूरोप के ईसाइयों को दंगाई और आतंकवादी नहीं, प्रभु के, ईसू के घर के रक्षक के रूप में सम्मानित किया

मुसलमानों ने अपने दंगाईयों को पैगम्बर मुहम्मद का पैगाम फैलाने वाले और खुदा की इबादतगाह का मुहाफिज बताया। इसे जिहाद की संज्ञा देकर, उन्हें जन्नत प्रदान करने के लिए स्थान-स्थान पर मस्जिदों में सामूहिक नमाज पढ़ी।

यह सब ईसाई और मुस्लिम जगत में न्यायोचित और जायज है, किन्तु हिन्दुओं द्वारा अपने राष्ट्रीय अपमान और अन्याय के विरुद्ध आक्रमणकारियों, अन्यायियों और अत्याचारियों के प्रति केवल क्षोभ व्यक्त करना आतंकवादी होना होता है। वे हिन्दुओं के मंदिर तोड़ें हिन्दुओं के मंदिर को मस्जिद बताकर उस पर जमे रहें, तो उससे सेकुलरिटी सुदृढ़ होती है, हिन्दू अपना तोड़ा गया देवालय प्राप्त करने का प्रयास करें, तो इसे सांप्रदायिक विद्वेष और मजहबी दुश्मनी कहा जाता है।

कब तक चलेगा यह पाखंड? कब तक किया जाता रहेगा यह छल? कब होगी भारत की राष्ट्रीय अस्मिता और इसकी मूलधारा की प्रतिष्ठा और पहचान? भारत के राष्ट्रीय समाज की सहनशीलता को कायरता समझने की नादानी कब तक की जाती रहेगी? यदि ऐसा ही चलता रहा तो यह भय है और आशंका भी कि कहीं अपनी सहनशीलता को लांघ कर हिन्दू सचमुच सांप्रदायिक बन गया तो? इस आशंका के वास्तविकता न बनने में ही भारत और विश्व के लिए शुभ और मंगल निहित है। यह सब न हो, इसका दायित्व है उन पर, जिन्होंने हिन्दुओं को कोसते रहना, उन्हें अपमानित करते रहना और उन्हें उनके भाग एवं भाग्य से वंचित रखना, अपना युगधर्म मान रखा है।

24 नवंबर, 1991

जहर और जीवन का घातक साथ

इस दीपावली के समय दिल्ली में एक दुर्घटना घटी। लगभग दो सौ लोग कर्पूर आसव सुरा पीने से मर गए। एक दर्जन व्यक्ति अंधे हो गए।

गुजरात में एक घटना घटी। देसी शराब पीकर दो दर्जन लोग मारे गए।

कर्नाटक में कुछ वर्ष पूर्व 350 व्यक्ति शराब के शिकार हुए थे।

महाराष्ट्र से समाचार मिला कि जहरीली शराब पीने से दर्जनों मृत, सैकड़ों पीड़ित और कई लोग अस्पताल में भर्ती। अस्पताल में भर्ती लोगों में कई की हालत गंभीर।

—वैध और अवैध शराब काण्ड के इसी तरह के समाचार बिहार, उड़ीसा, आंध्र, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश आदि प्रदेशों से बीच-बीच में मिलते रहते हैं। जब इस प्रकार के समाचार मिलते हैं, इस प्रकार की घटनाएं घटती हैं तो समाज, प्रशासन और शासन सभी चिन्तित हो उठते हैं। शराब और नशाखोरी के विरुद्ध अभियान प्रारंभ हो जाता है। शराब की भट्टियों और दुकानों पर छापे मारे जाते हैं, कुछ गिरफ्तारियां होती हैं और कुछ गोष्ठियां। इस बीच शराब पीकर मरने वालों की मौत का गम भूल जाता है, अस्पताल में भर्ती लोग अपने घर वापस आ जाते हैं, छापे में पकड़े लोग छोड़ दिए जाते हैं, सीलबंद दुकानों की सील तोड़ दी जाती है, दुकानों पर वैध-अवैध शराब पुनः बिकने लगती है और लोग पुनः पूर्ववत् पीने लगते हैं। इन पीने वालों में उन परिवारों के लोग भी होते हैं जिनके कुछ सदस्य शराब पीकर मर चुके होते हैं।

खबरों का ऋतुचक्र

यही दशा दहेज के संदर्भ में बहूदहन या बहुओं के आत्मदाह की भी है। देश के किसी कोने में कोई घटना घटते ही संपूर्ण देश में बहुदहन का दौर चल पड़ा सा दिखाई देने लगता है। समाचार पत्र दहेज विरोधी अभियान के समाचारों से भर जाते हैं। बहूदहन के एक के बाद एक समाचार निरंतर आते रहते हैं। दहेज के दानव पर आक्रमण का कभी न समाप्त होने वाला सिलसिला शुरू हो जाता है। महिलाएं सड़कों पर आ जाती हैं, संसद और विधानसभाओं में काम रोको प्रस्ताव आते हैं; इस

सामाजिक बुराई को समाप्त करने का संकल्प लिया जाता है और इस बीच बहूदहन की लपटें शांत हो जाती हैं। ऐसा कि जैसे कभी कहीं किसी ने दहेज लिया या मांगा ही न हो और इसके कारण कहीं किसी ने किसी बहू को न जलाया हो या न किसी बहू ने आत्मदाह किया हो। अगली घटना घटने तक सब कुछ ठीक-ठाक मान लिया जाता है।

और बलात्कार !

अपने देश में बलात्कार का भी दौर चलता है। बलात्कार का भी एक मौसम आता है कि चारों ओर बलात्कार की ही चर्चा चलती है। समाचार पत्रों में बलात्कार के समाचार प्रकाशित करने की प्रतियोगिता सी चल पड़ती है। ऐसा लगने लगता है कि इस देश में और कुछ नहीं केवल बलात्कार ही होता है।

बहूदहन और बलात्कार की ही तरह सांप्रदायिक दंगों का भी अपना एक विशिष्ट मानस और मौसम सा बन गया है, जो ऋतु चक्र की भांति वर्ष में एक बार आता है और चला जाता है। दंगों को लेकर भी हंगामा होता है, और भाषण, गोष्ठियां, प्रस्ताव, सहभोज आदि के बाद सब कुछ जस का तस।

भ्रष्टाचार, अस्पृश्यता, सामाजिक अन्याय और आर्थिक विषमता का भी हाल इससे भिन्न नहीं है। बीच-बीच में इन समस्त बुराइयों और दोषों पर शाब्दिक और जनप्रदर्शनी आक्रमण करते रहना एक सार्वजनिक कर्मकाण्ड सा बन गया है।

प्रश्न यह है कि क्यों मरते हैं लोग शराब पीकर ? कौन मिलाता है शराब में जहर, किसकी देख रेख में जहरीली दवाएं बनती हैं ?

कौन करते हैं बहूदहन ? किसी बहू के आत्मदाह की परिस्थितियां कौन और क्यों पेदा करते हैं ? बलात्कार, सामाजिक अन्याय, आर्थिक विषमता और भ्रष्टाचार क्यों है और यह किसकी देन है ? क्या हम नशा, भ्रष्टाचार, बलात्कार, दहेज और सामाजिक अन्याय विरोधी अभियानों के प्रति ईमानदार हैं ? या केवल आकस्मिक अभियान चलाकर शाब्दिक आक्रमण करके यह मान लेने में कि सब कुछ ठीक-ठाक हो गया, इन समस्याओं को समाप्त किया जा सकता है ?

इन प्रश्नों का उत्तर कई बार दिया जा चुका है। इनका उत्तर जो शराबी हैं, उन्होंने भी दिया है, जो शराब बेचते हैं, उन्होंने भी। जो नशाबन्दी अभियान चलाते हैं उन्होंने भी और जो नशे की दुकानों पर छापा मारते हैं, उन्हें सीलबन्द करते हैं, उन्होंने भी । इन प्रश्नों का उत्तर नेता भी देते हैं और शासन भी । पर समस्या का समाधान फिर भी नहीं होता। क्यों ?

बीमार समाज

केवल इसलिए कि हम जिस समाज में रह रहे हैं, वह एक बीमार समाज है। वह शारीरिक ही नहीं, मानसिक रूप से भी विकलांग है। वह मानसिक कोढ़ से पीड़ित है।

पाखण्ड ही उसका जीवन और स्वभाव है। किसी बीमार समाज से स्वच्छ और स्वस्थ आचरण की अपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि यह अपेक्षा की जाएगी तो यह केवल आत्मप्रवंचना और आत्मछल होगा। गत कई दशकों से हम, हमारा समाज, हमारी सामाजिकता, हमारा देश, हमारी व्यवस्था, तथाकथित हमारे नेता, आधुनिक बुद्धिजीवी अर्थात् आज के ऋषि यदि आत्मछल के शिकार न होते, तो समय-समय पर कुरीतियों और कुकर्मों का त्यौहार मनाने को सामाजिक समता और राष्ट्रोत्थान का अनुष्ठान न मानते। स्थिति ऐसी है कि यदि कोई संत किसी भीड़-भरे चौराहे पर खड़ा होकर या किसी विशाल और विराट जनसभा को सम्बोधित करते हुए यह कहे कि कोई ऐसा एक व्यक्ति आगे आए जो किसी न किसी स्तर पर, किसी न किसी विवशता के कारण ही क्यों न हो, इन कुरीतियों और कुकर्मों के साथ सम्बद्ध न हो या वह व्यक्ति इन दुराचारों पर आक्रमण करे, जिसने मानसिक या शारीरिक रूप से भी दुराचार न किया हो, तो सम्भवतः एक व्यक्ति भी उस विशाल और विराट जनसमूह में से उठकर आगे आने से हिचकिचाए।

हम शब्दों और कर्मों से भी पाखण्डी ही हैं। शब्द और कर्म पाखण्ड दुराचरण के मां-बाप हैं। शासन और शासक नशाबन्दी अभियान चलाते हैं। देश के कोने-कोने में पोस्टर और बड़ी-बड़ी होर्डिंग्स लगाते हैं कि नशा छोड़ो, नशीली दवाओं का प्रयोग न करो, टूटी बोतलें, मरते और मरे हुए लोगों की तस्वीरें दीवारों पर चिपकाई जाती हैं, लाखों रुपए खर्च करके नशा-विरोधी साहित्य बांटा जाता है कि नशा छोड़ो, सदाचारी बनो। किन्तु उसके बाद ? उसके बाद नहीं, उसी के साथ-साथ शराब की दुकानों की बोली लगाई जाती है। शराब के ठेके दिए जाते हैं। यह प्रयास किया जाता है कि गत वर्ष की तुलना में शराब की दुकानें और खपत बढ़े। सरकारी और गैरसरकारी शराब की दुकानों पर शराबियों की लम्बी-लम्बी कतारें और साथ ही नशाबन्दी करने का अभियान। समाचार पत्रों में सिगरेट का विज्ञापन और उसके साथ ही 'सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है' का उपदेश। पुत्र के विवाह में दहेज का स्वागत और पुत्री के विवाह में दहेज की निन्दा, अपना लाभ होता हो, तो भ्रष्टाचार को रिवाज कहना, हानि होती हो तो पतन होने का प्रलाप करते हुए छाती पीटना।

मानसिक विलांगता

स्पष्ट है, देशवासियों का मन बिगड़ गया है। मन बिगड़ता है तो न्याय-अन्याय की तुला, शील-अश्लील का संतुलन भी बिगड़ जाता है। इसके कारण समाज जीवन का स्थाई भाव अस्थिर हो जाता है। अस्थिरता के इस माहौल में जीवन मूल्य तिनके की तरह तितर-बितर होने लगते हैं। गुण-दोष, सदाचार-भ्रष्टाचार, न्याय-अन्याय, समता-विषमता, व्यवस्था-अराजकता, सामाजिकता और असामाजिकता का अर्थ बदल जाता है। ये अपना-अपना पाला बदल लेते हैं। तब देशवासियों की मजहब तथा जाति

निरपेक्षता, समरसता की अवधारणा को साम्प्रदायिक और जातीय तथा मजहबी पहचान को प्रमुखता देना सम्प्रदाय निरपेक्षता एवं सामाजिक न्याय माना जाने लगता है। तब क्षेत्रीय गौरव को राष्ट्राभिमान और सम्पूर्ण राष्ट्रके प्रति प्रतिबद्धता को संकीर्णता की संज्ञा दी जाने लगती है। अलग-अलग मजहबी पहचानों को एक राष्ट्रीय संस्कृति की विविधता न मान करके उन्हें अलग-अलग राष्ट्रीयताएं और अलग राष्ट्र की आधार भूमि मानकर, देश को खण्ड-खण्ड बांटने को अखण्ड राष्ट्र का निर्माण करना माना जाने लगता है।

कुछ लोग कहते हैं कि देश की राजनीति बीमार है, देश के राजनेता बीमार हैं, देश की व्यवस्था बीमार है, देश का समाचार बीमार है, और यह कहकर वे स्वयं के स्वस्थ होने का प्रमाण देते हैं। काश ! ऐसा होता। विचार और आभार, शब्द और कर्म के सिद्धान्त और नीति, सभी स्तरों पर यदि बीमार और विकलांग न होते, तो किसी विक्षिप्त व्यक्ति की तरह हम परस्पर विरोधी बातें और व्यवहार न करते। हमारी सामाजिक और मानसिक विकलांगता का ही यह परिणाम है कि हम हंसने और रोने का असहज और अप्राकृतिक कार्य साथ-साथ करना चाहते हैं, करने लगे हैं। हम शराब पीते हैं, शराब का उत्पादन और खपत बढ़ाते हैं और नशाबन्दी अभियान भी चलाते हैं। बलात्कार करते हैं और बलात्कार विरोधी सभा में प्रथम वक्ता के रूप में उपस्थित भी रहते हैं। दहेज लेने के बाद निन्दा करते हैं। घूस लेकर उसे सेवा या सुविधा शुल्क की संज्ञा प्रदान करते हैं। सामाजिक न्याय के लिए प्राणोत्सर्ग कर देने का संकल्प लेते हैं और जातीय घृणा फैलाने का हर संभव प्रयास भी करते रहते हैं। छुआछूत के सामाजिक कलंक को बनाए रखकर अपना सार्वजनिक रोजगार बरकरार रखते हैं। यदि हमें सचमुच किसी स्वस्थ एवं समरस समाज का निर्माण करना है तो सर्वप्रथम हमें अपनी मानसिक विकलांगता और सार्वजनिक पाखण्ड से मुक्त होना होगा। जहर और जीवन दोनों के साथ-साथ चलना सर्वथा असंभव है। नकारात्मक और आकस्मिक अभियानों में सामाजिक दोषों को दूर करने की क्षमता नहीं होती। इसके लिए स्थाई और सकारात्मक अनुष्ठान आवश्यक हैं।

1 दिसम्बर 1991

जुड़ना अयोध्या का कन्याकुमारी और कश्मीर से

कन्याकुमारी से कश्मीर तक की प्रतीक एकता यात्रा को लेकर तरह-तरह की चर्चाएं प्रारम्भ हो गई हैं। सन्देह, भ्रम और भय-निर्माण करने का बौद्धिक, साम्प्रदायिक, क्षेत्रीय, राजनीतिक और प्रशासकीय प्रयास किया जा रहा है। भारत सरकार के गुप्तचर प्रत्यक्ष सड़क पर हजारों के जनसमूह के साथ चल रही इस यात्रा का 'रहस्य' और इस जनसमूह के साथ चल रही इस यात्रा का 'रहस्य' और इसकी गोपनीयता' का समाचार सरकार को देने के लिए आयोजकों के साथ सम्पर्क साधे हुए हैं कि खुले मैदान में किए जा रहे इस राष्ट्रीय एकता मतानुष्ठान को गुप्त साजिश के रूप में प्रस्तुत कर सकें।

'एकता यात्रा' क्यों ?

डा० मुरली मनोहर जोशी की इस एकता यात्रा का उद्देश्य स्पष्ट है, घोषित है कि वे इस देश को टूटने से बचाने के लिए इसे इसकी भावभूमि पर पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। देश के बिगड़ रहे मन को सुधारना चाहते हैं। आतंक और अलगाव, हिंसा और हत्या के माहौल के कारण भयभीत देशवासियों को भय-मुक्त करना चाहते हैं। कन्याकुमारी के साथ मंगलमय कैलाश, नन्दनवन कश्मीर, मां कामाख्या का असम, योगेश्वर श्रीकृष्ण की द्वारका, जगन्नाथ और सोमनाथ, अयोध्या, मथुरा और काशी का एकात्म और एकरस होना ही तो राष्ट्रीय एकता और एकात्मता की प्रत्यक्ष सृष्टि है। समस्त पवित्र तीर्थों की माटी, समस्त पवित्र नदियों के जल, सभी सागरों के सम्मिलन बिन्दु और इन सबसे जुड़ी भारत की सनातन संस्कृति, इससे जुड़ी भारत की चिति, इसी से जुड़े भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य का अहसास ही तो भारत राष्ट्र है।

विश्व के इस प्रथम राष्ट्र का मंगल और शुभ इन सबकी समरसता में ही तो निहित है। इसी एकमेव उद्देश्य की पूर्ति के संकल्प की ही तो घोषणा की है भाजपा अध्यक्ष डा० मुरली मनोहर जोशी ने। अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि को लेकर श्रीराम का भावात्मक राष्ट्र रूप उदित हुआ। अयोध्या अनुष्ठान ने भारत राष्ट्र का भाव जगत जागृत किया तो कन्याकुमारी से कश्मीर की एकता यात्रा भारत के राष्ट्रजन के भौमिक और भौतिक जगत को उसके सनातन यर्थाथ से जोड़ेगी।

भारतीय राजनीति में जो पिण्ड हैं भाजपा और उससे जुड़े लोगों के पिण्ड जन्मतः उनसे भिन्न है। इनकी जन्म और कर्म पत्रियां भी सर्वथा भिन्न हैं। आजादी के बाद के चवालीस वर्ष इसके साक्षी हैं। ये लोग सबको पेट और रोटी मानते हैं तो भाजपा रोटी को राम से जोड़कर बांटकर खाने का आग्रह करती है। ये लोग भारत को विभिन्न संस्कृतियों और राष्ट्रों का, जमघट मानते हैं तो भाजपा इसे एक प्राणवान राष्ट्र, एकजन, एक संस्कृति, एक इतिहास, समान सुख-दुख, समान जय-पराजय, समान अतीत, वर्तमान और भविष्य की आकांक्षाओं वाला देश मानती है। ये जातियों, मजहबों और मतवादों से जुड़े लोगों को संतुष्ट करके उनके अलग अस्तित्व के प्रति उनका स्वार्थ और अलगाव-बोध जगाकर उनकी अलग-अलग शर्तें स्वीकार करके उनकी कृपा के आधार पर राष्ट्रीय अखण्डता का सपना देखते हैं तो भाजपा भारत की विविधता में सांस्कृतिक एकता की सनातनता पर बल देती है। ये सम्प्रदाय सापेक्ष राष्ट्रीयता को बल प्रदान करते हैं तो भाजपा सम्प्रदाय-निरपेक्ष राष्ट्रप्रेम की पक्षधर है। सम्प्रदाय, वर्ग और वर्ण विद्वेष इनके कार्य, नीति और एकता का आधार हैं तो भाजपा अगाध-प्रेम को एकात्मता का मूलाधार मानती है। इन्हें भारत में आकर घुसपैठियों के बस जाने, नागरिकता और मताधिकार प्राप्त कर लेने और अपने ही देश में अपने ही रक्त के बंधुओं के विस्थापित बन जाने में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। भाजपा घुसपैठियों, शरणार्थियों और विस्थापितों का अन्तर उनकी मनोवृत्ति, मानसिकता, षड्यंत्र और अन्तर्पीड़ा का बहुत ही गहराई और गंभीरता के साथ अनुभव करती है। ये कर्ज लेने में गर्व का अनुभव करते हैं, भाजपा आत्मनिर्भरता एवं आत्मसम्मान को प्राथमिकता देती है। ये आर्थिक गुलामी के तवे पर अपनी सत्ता-राजनीति की रोटियां सेकते हैं, भाजपा अपने पौरुष और पसीने की कमाई को महत्व देती है। समाज टूटता है और सम्प्रदाय लड़ते हैं, अलगाववाद, आतंकवाद बढ़ता है, तो इनका राजनीतिक-चरागाह लहलहा उठता है, किन्तु भाजपा को भारत राष्ट्र का उद्यान उजड़ता दिखाई देता है। दो अलग-अलग ध्रुवों पर खड़े हैं, दूसरे दल एवं भाजपा। इसलिए यह सहज है कि उनको अपना दुर्ग ढहता दिखाई दे, उनकी अराष्ट्रीय सोच पर से इनकी तथाकथित राष्ट्रीयता का पर्दा और पाखण्ड उजागर होने लगे तो ये चीखें और तरह-तरह के आरोप आरोपित करके अपने पाखण्ड को यथार्थ सिद्ध करने का प्रयास करें।

नकली सेकुलरिस्ट, भयभीत बुद्धिजीवी, सत्तालोलुप राजनेता और जातिवादी कुनबे के लोगों में यह चर्चा है कि कन्याकुमारी से कश्मीर की एकता यात्रा के कारण देश के अल्पसंख्यकों के मन में अविश्वास बढ़ेगा, कश्मीर में आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करने के अभियान को बल मिलगा, जनमत-संग्रह की मांग पुनः उठेगी। कश्मीर और अल्पसंख्यक कहेंगे कि "हमारे ऊपर राष्ट्रीय एकता थोपी जा रही है।" इसके कारण खालिस्तान की नींव मजबूत होगी। यह यात्रा भारत की मिलीजुली

संस्कृति पर हिन्दुत्व का आक्रमण है। यह हिन्दुओं का थोक वोट बटोरने की राजनीति से प्रेरित है। यह यात्रा केवल कन्याकुमारी से कश्मीर ही क्यों जा रही है ? इसके मार्ग में पूर्वांचल को शमिल न किया जाना देश के एक बहुत बड़े भाग की उपेक्षा है और पूर्वांचल के लोग यह सोच सकते हैं कि उन्हें देश की मूलभूमि और मूलधारा का अंश नहीं माना जाता। यह भी कहा जा रहा है कि भाजपा अल्पसंख्यकों अर्थात् मुसलमानों से जुड़ा आंदोलन ही क्यों करती है ? वे अयोध्या, कश्मीर घुसपैठियों से जुड़े आंदोलनों आदि का उदाहरण देकर अपनी बात दूसरों के गले उतारने में लगे हैं।

भय का कारण

यही है विडम्बना इस देश की। यहां समान नागरिकता, समान आचार संहिता, समान कानून और असंदिग्ध राष्ट्रप्रेम को देश के लिए घातक माना जाता है। भारतीयता की दुहाई देने वाले लोग अखिल भारतीयता की अवधारणा से घबराते हैं। ये राष्ट्रीय एकता का संकल्प लेते हैं, क्षेत्रीय खण्डता का पोषण करते हैं। साम्प्रदायिक सद्भाव और सामाजिक न्याय के ये उद्घोषक इस देश के राष्ट्रीय समाज को हिन्दू-मुसलमान, सिख-ईसाई, अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में बांटकर एकात्मता निमार्ण करने का नारा लगाते हैं। सम्प्रदाय निरपेक्ष समाज और राष्ट्रसापेक्ष नागरिकता के कारण उनका देश टूटता है। राष्ट्रीयता के जागरण और प्रबल एवं प्रखर राष्ट्र का निमार्ण करने के अनुष्ठान में वे साम्प्रदायिकता का दर्शन करते हैं। हिन्दुत्व से जुड़ी भारत की सनातन संस्कृति के पुनर्जागरण को वे मुस्लिम विरोधी अभियान बताते हैं।

गत 44 वर्षों के इनके इस मारक प्रयोग और भय मिश्रित सोच का जो दुष्परिणाम देशवासी भोग रहे हैं ये चाहते हैं, कि यह प्रयोग यथावत चलता रहे कि उनकी सत्तावादी वोट राजनीति अपनी सौदेबाजी करती रहे। ये लोग आतंकवादी से लड़ने की कसमें तो खाते हैं किन्तु आंतंकवादियों की रक्षा करने और उन्हें मुआवजा दिलाने का हरसंभव प्रयास भी करते हैं, क्योंकि देशवासियों को वे केवल मतदाता और देश की धरती को केवल मतदान केन्द्र मानते हैं इसलिए प्रत्येक एकता प्रयास को वे अपने वोट बैंक की लूट मानकर, उसे वोट बटोरने का षड्यंत्र बताते हैं।

कश्मीर के लाल चौक पर 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस पर भारत का अशोक चक्रांकित राष्ट्रध्वज फहराने को कश्मीर और मुसलमानों पर आक्रमण बताने की मानसिकता को क्या संज्ञा देना चाहेंगे देशवासी ? क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि कश्मीर स्वदेश नहीं विदेश है ? यह भी कि कश्मीर भारत की प्रभुसत्ता से अलग एक स्वतंत्र और सार्वभौम राष्ट्र है ? क्या वहां का समाज और सम्प्रदाय भारत के अतीत, वर्त्तमान और भविष्य के साथ जुड़े नहीं हैं। कश्मीर का भारत की अखिल भारतीयता में शामिल होना क्या केवल एक सपना है , यदि हां, तो कश्मीर में भारत के चक्रांकित राष्ट्रध्वज का प्रवेश आक्रमण हो सकता है। जो लोग भारत के राष्ट्रध्वज के

कश्मीर-प्रवेश को आक्रमण मानकर आतंकित होते हैं, और इसके कारण जिनकी अस्मिता और जिनका अस्तित्व संकटग्रस्त हो जाता है, उनके विषय में यह विचार किया जाना चाहिए कि वे भारत के उन लोगों में शामिल हैं कि नहीं जिन्होंने इस देश को 'हम भारत के लोग' कहकर भारतीय संविधान को आत्मार्पित और गणतंत्र को स्वीकार किया है। इस प्रश्न का उत्तर चाहिए कि जिन लोगों का अलग संविधान और जिनके राज्य का अलग निशान है, जो लोग भारतीय संविधान के अन्तर्गत अपनी विशिष्ट, स्थायी पहचान को बनाए रखने के लिए बन्दूकें उठा लेते हैं, जो लोग अपहरण, हत्या, हिंसा, बलात्कार और राष्ट्रजनों का निष्कासन करके कश्मीर को इस्लामी राज्य बनाना चाहते हैं, उन्हें सम्प्रदायनिरपेक्ष भारत में रहने देना है कि नहीं, जो लोग भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया और राष्ट्रीय विकास की धारा से अलग अपनी समानान्तर प्रक्रिया चलाना चाहते हैं उनको सांविधनिक संरक्षण मिले कि नहीं?

ये आंख के अन्धे राजनेता

इन प्रश्नों का संदर्भ केवल कश्मीर नहीं है, इनका संदर्भ है भारत की अखिल भारतीयता, भौगोलिक अखण्डता और भावात्मक एकात्मता और संप्रभुता। भारत की संप्रभुता, अखिल भारतीयता, अखण्डता और भावात्मकता को जहां-जहां से और जिस-जिस स्तर पर चुनौतियां उभरी हैं और उभर रही हैं उन सभी का समाधान और उनका संरक्षण इन प्रश्नों के सार्थक अथवा स्वार्थपरक उत्तर में निहित है।

वैसे तो भारत के राजनेताओं और भारत को एक आधुनिक राष्ट्र बनाने के तथाकथित दावेदारों को दुनिया के देशों, विशेषकर अमरीकी और यूरोपीय देशों की नकल करने की महारथ प्राप्त है किन्तु कुछ ऐसे क्षेत्र, विषय और भाव हैं जिनमें प्रवेश करने से वे घबराते हैं और अपनी पूर्ण शक्ति से उनकी उपेक्षा करते रहने का सुनियोजित प्रयास करते हैं। अपने देश की राष्ट्रीयता को अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक में विभाजित करके देखने और दिखाने में गर्व का अनुभव भारत के राजनेता ही करते हैं और कोई नहीं।

दुनिया के दूसरे देशों को उपासना-पद्धतियों और मजहबों के आधार पर राष्ट्रीयता की पहचान या सुविधाओं का प्रबन्ध करते नहीं देखा जाता। ऐसा नहीं है कि वहां भिन्न-भिन्न मतवादों के अनुयायी नहीं है। विभिन्न मतवादों के अनुयायी वहां भी हैं, वे पूर्णरूप से सुरक्षित भी हैं, किन्तु उनकी सबकी प्रथम शर्त है उस राष्ट्र के प्रति बिना शर्त और पूर्ण समर्पण। वहां इससे कम कुछ भी स्वीकार नहीं है।

जिस अमरीका का धन कर्ज लेकर हमारे प्रधानमंत्री भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार की दिशा में बढ़ने की घोषणा करते हैं उस अमरीका का थोड़ा सा राष्ट्रधर्म भी यदि कर्ज में ही सही, ले लेते तो भारत की अखण्डता पर लटकी तलवार सदा-सर्वदा के लिए टूट जाती। अमरीका में अब्राहम लिंकन के समय हुआ गृहयुद्ध अमरीकी

अखण्डता की रक्षा करने का युद्ध था। तब की सत्तर लाख अमरीकी आबादी में दस लाख लोग राष्ट्रीय अखण्डता की बलि चढ़ और चढ़ा दिये गये थे। किन्तु लिंकन ने संयुक्त अमरीका की एकता के साथ समझौता नहीं किया था। 1818 में अमरीकी विदेशमंत्री जान क्विन्सी अंडमंस का पत्र राष्ट्रीय अखण्डता पर आने वाले संकट, अल्पसंख्यकों और विदेशी नागरिकों के कारण उत्पन्न होने वाली समस्या के समाधान का दस्तावेज है। श्री क्विन्सी लिखते हैं—

" They (Immigrants to America) come to a life of Independence; but to a life of labour--and if they cannot accomodate temselves to the character, moral, political and physical, of this country with all its compensating balance of good and evil, the Atlantic is always open to them to return to the land of their nativity and their fathers. To one thing they must make up their minds, or they will be disappointed in every expectation of happiness as Americans. They must cast off the European skin, never to resume it. They must look forward to their posterity rather than bacrward to their ancestors, they must be sure that whatever their own feelings may be, those of their children will cling to the prejudices of this country".

"अर्थात् "अमरीका आने वाले अप्रवासियों का जीवन स्वतंत्र होता है, किन्तु वह एक ऐसा जीवन है जिससे अत्यधिक श्रम की अपेक्षा है। यदि वे इस देश के आचार-व्यवहार, यहां की नैतिकता, यहां के राजनीतिक और भौतिक चरित्र के साथ एकाकार नहीं हो पाते हैं, यदि वे इस देश की अच्छाई और बुराई के संतुलन को स्वीकार नहीं करते हैं तो उनके लिए अतलांतिक महासागर खुला है, वे अपने पुरखों की भूमि को वापस जा सकते हैं। उन्हें इस एक बात के लिए अपना मानस बना लेना चाहिए, नहीं तो वे अमरीकन के रूप में कभी सुखी जीवन जीने की अपेक्षा नहीं कर सकते । उन्हें सदा-सर्वदा के लिए यह भूल जाना होगा कि वे यूरोपीय हैं। वे अपनी भावी पीढ़ी के भविष्य के विषय में सोचें, पीछे मुड़कर अपने यूरोपियन पूर्वजों की ओर दृष्टिपात् करना छोड़ दें। वे यह सुनिश्चित कर लें कि उनकी अपनी भावभूमि चाहे जो हो उनकी संतान इस देश की भावनाओं को ही अपनाएगी।"

राष्ट्रशक्ति का जागरण

दूसरा उदाहरण है स्पेन का। 712 ई० में तारिक खां ने स्पेन पर आक्रमण किया। 70 वर्ष तक स्पेन पर मुसलमानों ने राज्य किया। एक लम्बे संघर्ष के बाद ईसाइयों की विजय हुई । कालान्तर में जब मुस्लिम अल्पसंख्यकता अलगाववाद का रूप धारण करने लगी तो स्पेनी नेता फर्डिनांद ने मुसलमानों के सामने तीन विकल्प रखे—(1) या तो वे स्पेन छोड़कर चले जाएं, (2) या वे ईसाई हो जाएं, (3) या मृत्यु स्वीकार करें। अधिकांश मुसलमानों ने दूसरा विकल्प स्वीकार किया और कुछ मुट्ठी

भर मुसलमान पहला विकल्प अपनाकर स्पेन छोड़कर चले गए।

क्या भारत की राष्ट्रीय अखण्डता की रक्षा और सामाजिक-साम्प्रदायिक सद्भाव का निर्माण करने की घोषणा करने वालों में इन दोनों उदाहणों में से किसी एक को अपनाने का साहस है। राष्ट्रीय एकता यात्रा को मुस्लिम विरोध और राजनीति से प्रेरित कहने के पूर्व क्या यह विचार किया जाना आवश्यक नहीं है कि कश्मीर, पंजाब, असम, आन्ध्र तमिलनाडु जिस दिशा में बढ़ रहे हैं, उन्हें दीपक दिखाने का कार्य किस आचरण और किस नीति ने किया है ? किस सोच के कारण अखण्ड भारत विभाजित हो गया और किस सोच ने अमरीकी अखण्डता की रक्षा कर ली ? हम अपने पूर्वजों की यह सलाह सुनें कि भारतमाता की प्रदक्षिणा में ही एकात्मता, सद्भावना और अखण्डता का वरदान निहित है। मातृदर्शन ही देश तोड़कों को लगाम देगी। इस यात्रा को देश तोड़कों के लिए अंतिम चेतावनी और राष्ट्रभक्ति के जागरण के रूप में देखा जाना चाहिए। राम और राष्ट्र समानार्थी हैं। रामभक्ति की भावभूमि पर ही राष्ट्र शक्ति का जागरण संभव है। अयोध्या अब कश्मीर से जुड़ी है, देश की अखण्डता अक्षत है।

8 दिसम्बर 1991

एक दुर्घटना, सच्चाई पर झूठ थूकने की

"शेख अब्दुल्ला भारत की एकता और सेकुलर भावना के मूर्तिमत अवतार थे। संविधान की धारा 370 शेष देश के साथ कश्मीर की एकात्मता में बाधक नहीं।"

—प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव

"छब्बीस जंनवरी, 1992 को कश्मीर के लाल चौक पर राष्ट्रध्वज तिरंगा फहराने की कोई आवश्यकता नहीं है। सरकार को चाहिए कि 'एकता यात्रा' को प्रारम्भ होने के पूर्व ही रोक दे।"

—एम० जे० अकबर

—"पश्चिमी बंगाल, असम, बिहार और पंजाब में धारा 370 नहीं हैं, फिर भी ये राज्य समस्याग्रस्त क्यों हैं ? सेकुलर आचरण के प्रति अपनी निष्ठा के कारण कश्मीर की जनता ने द्विराष्ट्र के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया था। इस समय उन्हें अपनी इसी निष्ठा की कीमत चुकानी पड़ रही है। शेख अब्दुल्ला कश्मीर में केवल एक संस्था ही नहीं, लोकप्रिय जन आन्दोलन भी थे।"

—केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री माखनलाल फोतेदार

—"देश की एकता को मजबूत करने के लिए वस्तुतः किसी रथयात्रा की आवश्यकता नहीं है। यदि देश की एकता की रक्षा करने की वास्तविक अन्तः प्रेरणा है, तो इसके लिए उत्तेजक भाषण और दूसरों पर दोषारोपण करने की जरूरत नहीं है, भावनाएं उत्तेजित करके राजनीतिक लाभ उठाने का एक सड़ियल और दुष्ट प्रयास है। जिन्हें अपने राष्ट्रीय जीवन मूल्य प्रिय हैं , उन सबको चाहिए कि वे इस मिथ्यावादी और शैतानी राजनीतिक दांव का सामना करने के लिए सामने आएं"

—अर्जुन सिंह

—"एकता यात्रा का नाटक एकता के लिए नहीं है। यह कश्मीर घाटी पर एक आक्रमण है।"

—वसन्त साठे

—" शेख अब्दुल्ला एक महान व्यक्ति थे। कश्मीर को अनिश्चित काल तक जलाते रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती। वेदों की भूमि कश्मीर की रक्षा करना हमारी सांस्कृतिक अनिवार्यता है। कश्मीर को राष्ट्रीय एकता का रचनात्मक प्रतीक बनाने के लिए साहस, धैर्य और स्पष्टता की आवश्यकता है।" **— डा० कर्ण सिंह**

— "कश्मीर जिन्ना के साथ नहीं गया, गांधी के साथ रहा। प्रश्न केवल भूमि को अपने पास रखने का नहीं, अपितु कश्मीर की सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा करने का है। डा० फारुख अब्दुल्ला कश्मीर की समस्या का समाधान करने में मुख्य भूमिका अदा कर सकते हैं।" —चन्द्रशेखर

— "एकता यात्रा के कारण अल्पसंख्यक वर्ग साम्प्रदायिक हिंसा भड़कने की आशंका से आतंकित है। सम्पूर्ण सदन को यह प्रयास करना चाहिए कि यह यात्रा प्रारम्भ न हो।" —इंका सांसद ए० जी० कुलकर्णी

— "भारतीय जनता पार्टी अपनी यात्राओं द्वारा देश की जनता को विभाजित करने का प्रयास कर रही है।" —जनता दल नेता गुरुपदस्वामी

— "देश को साम्प्रदायिक दंगे से बचाना है, तो इस यात्रा को रोका और रद्द किया जाना जरूरी है।" —कम्युनिस्ट सांसद गुरूदास गुप्ता

—"यह यात्रा देश के मुसलमानों का कत्लेआम करने की तैयारी है।"

—अब्दुल्ला बुखारी

— "हिन्दू आतंकवाद पैदा करने का यह एक और प्रयास है।'

—मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी

— "यह 'एकता यात्रा' देश को जोड़ेगी नहीं, तोड़ेगी। देश को सबसे गम्भीर खतरा हिन्दुवाद से है। यदि अल्पसंख्यकों को भयमुक्त न किया गया, तो देश टूट जाएगा।" —विश्वनाथ प्रताप सिंह

गत दिनों उपरोक्त विचार संसद में भी व्यक्त किए गए हैं और जन सभाओं में भी। ये भोजन की मेज पर भी कहे गए हैं और गोष्ठियों के भाषणों में भी। ये विचार 'कश्मीर —दि सिम्बल आफ नेशनल युनिटी' जैसे सेमिनार में उभरे हैं, तो हिन्दू साम्प्रदायिकता से लड़ने के लिए आयोजित कार्यक्रमों में भी। यह जो कुछ कहा जा रहा है अपनेक्षित नहीं है। यदि यह न कहा जाता तो अनपेक्षित और आश्चर्यजनक अवश्य होता।

बौद्धिक दुर्घटना के शिकार

देश के विभाजक तत्व परेशान हैं कि देश को जोड़ने का यह प्रयत्न उनके पुराने पापों को प्रकट कर देगा। ये चतुर लोग हैं और य- जानते हैं कि यदि कन्याकुमारी कश्मीर और कामाख्या व द्वारका से जुड़े तो इनका तम्बू उखड़ जाएगा। इनकी इस परेशानी को परिभाषित किया प्रसिद्ध वाममार्गी साहित्य समालोचक डा० नामवर सिंह ने। उनका कहना है कि 'क्या हमारे पास (वामपंथियों, जनता दलीयों और कांग्रेसी संस्कृति वालों) राम (राम आन्दोलन) की कोई काट है। यह देश, धर्म का देश है। राम इस देश की राज और राष्ट्र नीति के प्रवर्तक पुरुष हैं। दक्षिण पंथियों ने राम को पकड़ लिया है। अभी तो केवल चार राज्यों में इनका शासन है। जरा सोचिए यदि

दिल्ली पर उनका अधिकार हो गया तो क्या होगा ?"

इन लोगों को केवल सत्ता, केवल दिल्ली का शासन और केवल अपना 'राशन' दिखाई देता है। राष्ट्र, समाज, सिद्धान्त और नीति की परिभाषा ये लोग केवल वोट और कुर्सी को पाने या खाने के संदर्भ में करते हैं।

भारत देश में कुछ विभिन्न घटनाएं घटती हैं। ये घटनाएं प्रकृति प्रदत्त भी होती हैं और मनुष्य प्रदत्त भी। भूकम्प आ जाना, बाढ़ में बह जाना, प्राकृतिक दुर्घटनाओं का संकट है। सड़क पर चलते समय कुचल कर मर जाना, किसी की हत्या हो जाना, लूट, आगजनी बलात्कार, आदि मनुष्य जनित भौतिक घटनाएं है। इन घटनाओं से भी गंभीर मनुष्यजन्य एक दुर्घटना और भी है। वह है 'बौद्धिक दुर्घटना'। यह दुर्घटना अचानक और अनजाने नहीं, जानबूझकर और नियोजित ढंग से घटित कराई जाती है। यह दुर्घटना गत पांच दिसम्बर को संसद और एक सेमिनार में घटित हुई। अवसर था शेख अब्दुल्ला की 86 .वीं वर्षगांठ। दुर्घटना स्थल था एम०जे० अकबर और फारुख अब्दुल्ला द्वारा आयोजित—'कश्मीर दि सिम्बल आफ नेशलन युनिटी'—गोष्ठी और राज्यसभा का शून्यकाल।

प्राकृतिक और भौतिक दुघटनाएं किसी क्षेत्र विशेष और कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित होती हैं। किन्तु बौद्धिक और भावनात्मक दुर्घटना का प्रभाव सार्वभौमिक होता है। 'एकता यात्रा' के संदर्भ में ये लोग जो कुछ लिख, कह और बोल रहे हैं, उसे पढ़-सुन कर आम आदमी के लिए यह विवशता बन गई है कि या तो वह अपनी अंधी और बहरी कर दी गई स्वतंत्रता का वहम स्वीकारता रहे अथवा खून का घूंट पीकर स्तब्ध और शांत हो जाए।

तथ्य कुछ और है और बोला कुछ और जा रहा है। ये वक्ता और बेचैन लोग, ये विभाजक तत्व और यह भयभीत भीड़ सत्य का सामना करने से डरती है। ये अपने ही कर्मों के प्रेत से परेशान हैं। अपनी ही परछाई इन्हें निगलती दिखाई देने लगी है।

भारत की राजधानी में कश्मीर को राष्ट्रीय एकता का प्रतीक सिद्ध करने की लफ्फाजी करने और कश्मीर जाने और गणतंत्र दिवस पर वहां राष्ट्रध्वज फहराने को कश्मीर पर हमला बताने वाले लोग अपने अन्तर्द्वन्द्व और अपनी आत्मप्रवंचना को भारत के लोगों का अन्तर्द्वन्द्व और उनकी आत्मप्रवंचना बनाकर उसे ही राष्ट्रीय यथार्थ सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील हैं। ये लोग यह भूल जाते हैं कि जिस 'कश्मीर को वे राष्ट्रीय' एकता का प्रतीक बतला रहे हैं, उसी कश्मीर की भयावह दुर्गति के प्रतीक कश्मीरी पंडितों के हजारों परिवार विस्थापित बने पड़े हैं। वे यह भी भूल गए कि कश्मीर में व्याप्त मुस्लिम आतंकवाद ने कश्मीरी औरतों के स्तनों और जांघों पर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' लिख कर सारे देश में उन्हें भारत की 'राष्ट्रीय एकता' (?) का प्रतीक बनाकर घूमने के लिए लाचार कर दिया है। ये वक्ता यह भी भूल गए कि कश्मीर में तिरंगा नहीं, 'पाकिस्तानी झण्डा ' फहराया जाता है। इन लोगों ने यह भी

बिसरा दिया कि कश्मीर के बचे-खुचे पंडितों के घरों पर जवान लड़कियों, बहुओं सहित जमीन-जायदाद छोड़कर भाग जाने की चेतावनियां संगीनों से लिख दी गई हैं। इस लिखावट, हिंसा, लूटपाट, बलात्कार और आगजनी के ऐतिहासिक चित्रों और दस्तावेजों को भी इन वक्ताओं ने झुठला दिया। आश्चर्य की बात है कि सूरज जैसी सच्चाई पर झूठ थूकने के इस शाब्दिक सेमिनारी व्यायाम और संसद के शून्यकाल के किसी भी वक्ता ने अपने-अपने चेहरों पर थूक गिर जाने के बाद उसे पोंछने की कोशिश नहीं की। थूक से सने इन चेहरों के बीच प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव के बैठे रहने से ही लोग हैरान हो सकते थे, पर उनके इस कथन से कि शेख अब्दुल्ला भारत की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के अवतार थे—पूरा देश हैरान रह गया होगा।

कुछ निर्लज्ज, कुछ कायर

प्रधानमंत्री का कहना है कि धारा 370 कश्मीर को भारत से जोड़ती है, अतः उसे नहीं हटाया जाएगा। श्री नरसिंह राव ने इस धारा से राष्ट्रीय एकता में कश्मीर के जुड़ाव का ब्यौरा नहीं दिया। क्या प्रधानमंत्री अब भी इस गलतफहमी में है कि इस धारा की बेशर्म सच्चाईयों से भारतवासियों को अब भी अनजान बनाए रखने में सफल हो सकेगें ? यह धारा जिसने भारत में द्विराष्ट्रवाद का विष बोया है, किस तर्क या आधार पर 'जुड़ाव' का कारण कही जा सकती है ? क्या इसलिए कि जब कांग्रेस और मुस्लिमपरस्तों के सारे मुखौटे उघड़ चुके हैं और आम आदमी इनकी मुस्लिम तुष्टीकरण तथा सम्प्रदायवादी राजनीति के साथ-साथ जातीय छुआछूत के आधार पर वोट विभाजन के लिए चलते रहे सत्ता समझौतों को समझ चुका है, तब क्या प्रधानमंत्री और उनके सेकुलरी सहयोगी राजनीतिक संस्कृति की उसी डोर से बंधे रहना चाहते हैं, जिसका हर रेशा राष्ट्रद्रोह की बहुमुखी आग में या तो जल चुका है, या झुलस चुका है, या सड़ रहा है ? नरसिंह राव जैसे व्यक्ति की बेबसी पर केवल दया ही की जा सकती है।

इससे अधिक हास्यास्पद बात क्या हो सकती है कि बसन्त साठे जैसे लोग भारत राष्ट्र के अविभाज्य अंग कश्मीर में राष्ट्रध्वज फहराने और एकता की बात करने को कश्मीर पर हमला कहते हैं, जबकि कश्मीर को अलगाव की इस्लामी आग में झोंके देने वाले शेख अब्दुल्ला की स्तुति करते नहीं थकते।

कौन कर रहा है हमला ? क्या होता है हमला ? क्या विवेकानन्द ने कन्याकुमारी से हिमालय और देश का दर्शन करके भारत की एकता-अखण्डता पर आक्रमण किया था ? क्या शंकराचार्य ने केरल से कश्मीर तक यात्रा करके कश्मीर पर हमला किया था ? क्या प्रतिवर्ष बद्रीनाथ, केदारनाथ और अमरनाथ का दर्शन करने जाने वाले असंख्य भारतीय वहां हमला करने जाते हैं ? क्या अपनी मां का चीरहरण रोकने वाले बेटे की तड़प मां पर हमला करना होता है ? यदि एकता और राष्ट्रीयता के यही अर्थ

साठे और सेमिनारी बुद्धिजीवी समझ-बूझ पाए हैं, तब उनकी बुद्धि किसी और के लिए नहीं, उनके अपने लिए सवाल बन चुकी है। जो आरोप कभी गांधी जी और कांग्रेस पर अंग्रेज लगाया करते थे, वही आरोप आज अंग्रेजों के मानस पुत्र , रूसी बगल बच्चे, पाकिस्तानी परस्त लीगी और मुस्लिमपरस्त भयभीत लोग डा० जोशी और भाजपा पर लगा रहे हैं।

राजनीतिक कोढ़

शेख अब्दुल्ला की इस 86 वीं वर्षगांठ से पहले 84 वीं और 85 वीं वर्षगांठ भी आई थी, पर तब मियां अकबर ने कश्मीर को लेकर सेमिनार आयोजित करना आवश्यक नहीं समझा था, जबकि कश्मीर उस समय भी आतंकवादी शिकंजे में जकड़ा हुआ था। सौ से अधिक मंदिर तोड़े जा चुके थे। कई लाख हिन्दू विस्थापित किए जा चुके थे। भारत के खिलाड़ियों पर हमला किया जा चुका था। पर सहसा इसी वर्ष यह 'शुभ कार्य' मियांजी ने क्यों किया ? क्या इसलिए नहीं कि डा० मुरली मनोहर जोशी की 'एकता यात्रा' ने कांग्रेस संहित समस्त छद्म मुस्लिम सेकुलरिस्टों के चेहरे से थोथे दावों और पंथनिरपेक्षता के सारे बुर्के उघाड़ फेंके हैं ? क्या इसलिए कि अब कश्मीर में कांग्रेसी संस्कृति और मुस्लिमपरस्ती के राजनीतिक कोढ़ की बदबू सारे देश में फैल गई है ? क्या वे यह नहीं जानते कि कश्मीर का अनंतनाग अब अनंतनाग नहीं कहलाता बल्कि इस्लामी कट्टरपंथी आतंकवादियों ने उसको इस्लामाबाद घोषित कर दिया है ? कश्मीर को अनंतनाग कहना मृत्यु को न्यौता बन गया है ? कश्मीर की धरती पर बरसों से राष्ट्रीय ध्वज फहराना बन्द हो चुका है और वहां समय-समय पर पाकिस्तानी झण्डे लहराने लगते हैं ? उस कश्मीर में भारत माता की जय के घोष का अपराध बन जाना क्या राष्ट्रीय एकता का प्रतीक होता है ? ऐसी स्थिति आ जाने पर जब एक राष्ट्रीय नेता 'एकता यात्रा' पर आगे बढ़ता है तो कश्मीर और राष्ट्रीय एकता पर सेमिनार में शब्द चर्वण करना ही संभवतः सत्ताखोरों की जरूरत बन गई । यह जरूरत पहले क्यों न हुई ? क्या इसलिए कि —

चिन्ता मुझे भी थी कभी देश के लिए,
पर पेट भर गया तो मुझे नींद आ गई !

कृपा है ईश्वर की। नींद खुली तो। भले छद्म बौद्धिकता और मुस्लिमपरस्त सेकुलरिटी के अन्धेरे कमरे में ही खुली है।

डा० जोशी की 'एकता यात्रा' ने थप्पड़ मारकर इन विभाजन विशेषज्ञों की आंखें खोल दी हैं कि देखो अपनी करतूतें। पढ़ लो अपनी कर्मपत्री। देश को दुःख देकर अब तक अपने किए का सुख भोगते आए थे, अब देश का सुख उसे वापस दो, अपने कर्म और कपट का परिणाम भोगो। कश्मीर को अंधकार में भटकते-भटकते चालीस साल हो गए। अगला थप्पड़ उस अंधेरे से भी मुक्ति दे देगा, जिसके कारण

समझदार लोग सही राह नहीं देख पा रहे हैं। सेमिनारी चमगादड़ यदि इस आगत प्रकाश से परेशान हैं, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। देशवासी उनके चेहरे पहचान लें, जो राष्ट्रभक्ति को राजनीति का पयार्यवाची मानते हैं। देश को तोड़ना और बेचना ही जिनका राष्ट्रधर्म है। हत्यारों से वार्त्ता और आतंकवादियों से समझौता और देशभक्तों को बदनाम करना ही जिनका व्यवसाय है।

इस देश को अपनी निजी जायदाद समझ कर अपनी जमींदारी चलाने वाले इन लोगों का इरादा साफ नहीं है। ये उसी देश विभाजक कुनबे के लोग हैं, जिन्हें डा० लोहिया ने 'विभाजन का अपराधी' कहा है। इनके बखिए उधेड़ दिए जाने चाहिएं कि ये भारतीय राजनीति के शीर्षस्थ पदों पर बैठ कर समूचे राष्ट्र के साथ पुनः विश्वासघात न कर सकें। इन लोगों में माखन लाल फोतेदार जैसे वे कश्मीरी भी शामिल हैं, जो अपनी कश्मीरी माताओं-बहनों की जांघों पर लिखे 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' की ओर से आंखें मूंद कर सत्ता में मंच पर चढ़ कर निर्लज्ज भाव से ठहाके मार रहे हैं।

इस सेमिनार में फोतेदार का यह कहना कि धारा 370 के निर्माण का आधार महाराजा हरिसिंह द्वारा 1933 में बनाए गए कानून हैं, काश ! वहां उपस्थित डा० कर्णसिंह के लिए शर्म पैदा कर सकता। कितना अच्छा होता यदि कर्णसिंह अपनी बौद्धिक कायरता का खोल फेंककर फोतेदार के कुतर्कों का जवाब दे सके होते। उन्होंने धारा 370 को केवल किसानों और जमीन जायदादों से जोड़कर आम आदमी को भ्रान्ति में डाले रखना चाहा।

काश ! कर्णसिंह , फोतेदार को उनके कुतर्कों का जवाब देते हुए बतला सकते कि कैसे इस धारा के द्वारा कश्मीर को भारत में रखकर भी उसे भारत से अलग अस्तित्व में खड़ा किया गया है। वह बतला सकते कि कश्मीर में होने वाले विधानसभा, पंचायत व अन्य स्वायत्त संस्थाओं के चुनावों से अन्य भारतीय नागरिकों को अलग करके मामूली तौर पर भारत में एक और संविधान को मान्यता दे दी गई है।

कितना अच्छा होता कि इस सेमिनार में कोई स्वाभिमानी और देशभक्त नेता यह कह पाता कि धारा 370 पूरी तरह अलगाववादी है, जिसे लेकर जगमोहन ने अपनी पुस्तक 'माय फ्रोजन ट्रबुलंस इन काश्मीर' में लिखा है। "जम्मू और कश्मीर संविधान की धाराएं अनेक समस्याओं की जन्मदात्री हैं। विशेष रूप से जमीन खरीदने, नागरिकता का अधिकार और बसने के अधिकारों के संदर्भ में संविधान की व्यवस्था समस्याजनक है। भारत के नागरिक जम्मू और कश्मीर के नागरिक नहीं हो सकते। राज्य में बसने का उनके पास कोई संवैधानिक अधिकार नहीं हैं। भारत का संविधान इकहरी नागरिकता को मान्यता प्रदान करता है। लेकिन जम्मू-कश्मीर के नागरिक दोहरे विशेषाधिकारों का लाभ लेते हैं। एक—भारत के नागरिक के रूप में और

दूसरा—जम्मू-कश्मीर राज्य के नागरिक के रूप में। वे व्यक्ति, जो जम्मू-कश्मीर राज्य के नागरिक नहीं, राज्य में किसी प्रकार की सम्पत्ति के मालिक नहीं बन सकते। वे राज्य की विधानसभा, स्थानीय निकाय या पंचायत व सहकारी समितियों आदि के चुनावों में मतदान नहीं कर सकते। इससे अधिक अन्यायपूर्ण बात और क्या हो सकती है कि जम्मू-कश्मीर की एक महिला यदि (यहां महिलाओं को राज्य की नागरिकता का जो प्रमाण पत्र दिया जाता है वह विवाह होने तक वैध होता है।) राज्य के बाहर रहने वाले किसी नागरिक से विवाह करती है, तो उसे अपनी सम्पत्ति से वंचित होना पड़ता है। अपनी पैतृक सम्पत्ति में भी वह भागीदार नहीं बन सकती। ये धाराएं राज्य व संघ के नागरिकों में भावनात्मक अवरोध पैदा करती हैं।"

पर वैसा नहीं हुआ। डा० कर्ण सिंह खामोश बैठे रहे और अपनी बारी आने पर सुख-सुविधाओं की लालच में जुते बैल की तरह शेख अब्दुल्ला को 'भाव-भीनी' श्रदांजलि देते हुए उनके प्रति व्यक्तिगत आदर और श्रद्धा के साथ-साथ व्यक्तिगत स्नेह की भी दुहाई दी। उन्होंने शेख के व्यक्तित्व की बुलंदगी पर कई कसीदे पढ़े और शायर की यह बात सिद्ध कर दी कि—

चारों तरफ एक वियाबानी है,
सब सियासत की मेहरबानी है।
क्यों गंवाते हो जान सच कह कर,
ये झूठों की राजधानी है।

बौद्धिक नपुंसकता और कायरता का यह नंगा नाटक संभवतः संस्कृति प्रेमी (?) वंसत साठे की चर्चा का भी मोहताज है, जिनके अनुसार मुरली मनोहर जोशी की 'एकता यात्रा' कश्मीर घाटी पर हमला है। क्या साठे जी को यह भी बतलाना होगा कि हमले कि परिभाषा क्या होती है ? और हमला किस तरह किया जाता है ? इस समय कश्मीर में नंगे आतंकवाद का जो घिनौनापन चल रहा है क्या साठे जी के मानसिक कोश में राष्ट्रगौरव और स्वाभिमान की ऐसी एकाध बूंद है, जो उन्हें अहसास करा सके कि कश्मीर से भागे लुटे-पिटे, अबाल, वृद्ध, वनिताओं में भी वही रक्त बहता है, जो उनके शरीर में बहता है ? क्या साठे में डा० जोशी की तरह साहस है कि सेमिनारबाजी से हटकर श्रीनगर में तिरंगा फहराने के लिए उनके हमसफर बन सकें ? डा० जोशी की 'एकता यात्रा' के लिए उनके हमसफरों की कोई सूची नहीं बनी है। उन्होंने प्रधानमन्त्री को भी श्रीनगर में तिरंगा लहराने के लिए आमंत्रित किया है। तब साठे जी या इस किस्म के लोग क्यों दिल्ली की इमारतों में कश्मीर को लेकर चूहा-चीत्कार कर रहे हैं ? क्यों नहीं कश्मीर जाकर 26 जनवरी को वहां तिरंगा फहराते ?

22 दिसम्बर, 1991

इतिहास कांग्रेस में कांग्रेसी और वाममार्गी आतंकवाद

उज्जैन, (मध्य प्रदेश) में 28 से 30 दिसम्बर तक होने वाला स्थगित 'इतिहास कांग्रेस' का सम्मेलन इन दिनों सुर्खियों में है। यह सुर्खियां 'इतिहास कांग्रेस' के तथाकथित राजनीतिक इतिहासकार यथा अर्जुन सिंह, रोमिला थापर, रामशरण शर्मा आदि उसी तर्ज में हासिल कर रहे हैं, जिस तर्ज में आतंकवादी निर्दोषों की हत्याएं करके 'सुर्खियां' बनाते हैं। 'इतिहास कांग्रेस' में कांग्रेसी और वाममार्गी आतंकवाद इस हद तक जा पहुंचा है, कि समूचा इतिहास विषय ही घायल हो गया। जख्मों का ताजा उदाहरण अर्जुन सिंह जैसे लोगों ये तर्क हैं कि 'वह उस इतिहास के हिमायती हैं, जो सर्वानुमति के आधार पर अंकित किया जाए।' इससे अधिक दुःखदायी बात क्या हो सकती है कि इतिहास जिसकी हर तिथि, क्षण और सुबह, दोपहर, सांझ कालचक्र के साथ-साथ स्वयं अंकित होते रहते हैं, उनका निर्धारण पंचायत चुनाव की तरह करके समय सत्य की स्थापना की जाने लगे।

विवाद की वास्तविकता

पर यह सब आश्चर्यजनक नहीं है। कम से कम उस स्थिति में तो बिल्कुल भी नहीं है, जिसमें स्वयं 'इतिहास कांग्रेस' का रूप निर्धारण किया गया है। हिन्दी कवि शिवमंगल सिंह सुमन, कट्टरपंथी मुस्लिम विस्तारवाद के पोषक शहाबुद्दीन, कांग्रेसी मंत्री कमल नाथ, नौकरशाह सांसद मणिशंकर अय्यर, रबीराय और अंग्रेजी कथाकार आ० के० नारायण जैसे लोगों को इतिहासकार मानकर 'इतिहास कांग्रेस' की दुकान चलाई जा रही है। ऐसी दुकानें चलाई जाने के लिए तरह-तरह के परमिट, कोटों और लाइसेंसों की जरूरतें होती है।

अतएव सहज है कि वह दुकानदार या दुकानदार एण्ड कम्पनी, राजनीतिक अथवा प्रशासनिक सेवक या चाटुकार की तरह व्यवहार करने लगे। 'इतिहास कांग्रेस' ने भी यही किया है वह अब तक यही करती आई है। एक गुट जो इस दुकान को चलाता आया था, अपने-अपने कांग्रेसी और वाममार्गी आकाओं से धन-सुविधाएं लेकर ऐसे इतिहास का निर्धारण करता आया है, जो इतिहास न होकर 'एक सर्वानुमत

सहमति की किस्सागोई भर होता है। इसी किस्सागोई के रहते उज्जैन में होने वाले 'इतिहास कांग्रेस' के सम्मेलन में मध्य प्रदेश की भाजपा सरकार को लेकर गुल-गपाड़ों और गाली-गुप्तों का माहौल बनाया गया। अखबारी शोर में बहुत कम लोग जानते हैं कि इन इतिहासी दुकानदारों का यह कहना कि 'इतिहास कांग्रेस' का सम्मेलन प्रदेश की भाजपा सरकार नहीं होने देना चाहती है, अपने आप में बहुत बड़ा झूठ है। विशेष रूप से उस हालत में, जबकि सरकार ने इस कांग्रेस को आर्थिक अनुदान देने के साथ-साथ ठहरने-रहने, खाने की भी पूरी-पूरी सुविधाएं मुहैया करवा दी थीं।

इस विवाद की वास्तविकता यह है कि वामपंथी और छद्म सेकुलरिस्ट इन इतिहास बेचने वालों को जबसे यह अनुभव हुआ कि इस सम्मेलन में संभव है कि बड़ी मात्रा में राष्ट्रवादी इतिहासज्ञ भी भाग लें अथवा शरीक होने का प्रयत्न करें, तब उन्होंने झूठा शोर मचाकर अपनी गन्दगी का ठीकरा प्रदेश सरकार के मत्थे तोड़कर चीखना-चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया। यह चीख-चिल्लाहट इस कारण भी हुई, क्योंकि 'इतिहास कांग्रेस' के माध्यम से अपनी दुकान चलाने और दादागिरी करने वाले इन वामपंथी और परदेशमुखी इतिहासकारों को अपना इतिहास खतरे में पड़ता दिखाई दे रहा था। यह भी खतरे में था कि वे विगत सत्यों को अपनी सर्वानुमति-किस्सागोई से गढ़ सकें। इस विवाद के पीछे एक और सूचना के अनुसार उज्जैन में होने वाली 'इतिहास कांग्रेस' को राष्ट्रवादी तत्वों द्वारा दी गई ऐसी चेतावनियां भी थीं, जिनके अनुसार उन्होंने कह दिया था कि वे इस कांग्रेस में इतिहास के साथ किसी भी किस्म का खिलवाड़ नहीं होने देंगे और प्रयत्न करेंगे कि ऐसे सही इतिहासवेत्ताओं का पैनल बने, जो अपने बहुआयामी विचारों द्वारा सच्चे इतिहास की रचना करें और यह इतिहास स्वतंत्रतापूर्व भारतीय संघर्ष की सच्चाइयों को स्कूली शिक्षा स्तर से लेकर स्नातकीय शिक्षा तक पढ़ाया जाए।

इतिहास के ठेकेदार

कहते हैं कि इस चेतावनी ने इतिहास कांग्रेस के उस गुट को बुरी तरह चिन्तित और बैचेन कर डाला, जो अपने विदेशी आकाओं और स्वदेशी संरक्षकों की कृपा पाने के लिए, उनकी तरह का इतिहास उनसे जान-बूझ कर व्याख्यायित और दर्ज करता आया था। इस इतिहास के तहत 'हरित क्रान्ति' और बढ़ते सम्प्रदायवाद के कारण पैदा होने वाली समस्याओं पर भी 'सर्वानुमत इतिहास' दर्ज होना था। पर इन विषयों के उस समय परखचे उड़ गए, जब देश के जागरूक और राष्ट्रवादी विचारकों ने इस योजना की बखिया ही नहीं उधेड़ डाली, बल्कि इसे महज राजनीतिक कसरतबाजी कहकर खारिज कर दिया कि 'हरित क्रान्ति' का इतिहास से क्या संबंध ? इस तथाकथित हरित क्रांति की पोल यह सच्चाई बतलाकर खोल दी कि सच्चाई में तो यह क्रांति महज 'लाल क्रांति' की ओर ले जाने का वामपंथी प्रयास था। जिसके

फलस्वरूप बड़े किसानों ने गरीब होते जा रहे किसानों की जमीनें हड़प कर उनकी गरीबी को बढ़ाया।

परिणाम वही हुआ, जो इतिहास और संस्कृति का राजनीतिकरण करते आए हर प्रयास का होता है। चूंकि 'इतिहास कांग्रेस' में प्रथमतः कांग्रेसी और वाममार्गी थे, इतिहासकार नहीं, अतः उन्होंने वही छिछोरी चीख-पुकार और अखबारी हुल्लड़बाजी शुरू कर दी, जिस तरह वे राजनीतिक मंचों से हमेशा करते आए थे। कभी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर आरोपों की बेतुकी मार की जाने लगी और कभी भाजपा पर झूठे बेतुके आरोप लगाए जाने लगे। इस प्रकार 'इतिहास कांग्रेस' ने अपना एक इतिहास गढ़ना प्रारम्भ कर दिया। यह इतिहास गढ़ने वालों को मध्य प्रदेश की कांग्रेस राजनीति में पूंछ कटे बन्दर की तरह घूम रहे अर्जुन सिंह ने अपनी बिरादरी में शामिल करने के लिए पिछले दिनों 'हाय इतिहास, हाय कांग्रेस और हाय हम' चिल्लाते-चिल्लाते तीन लाख रूपए केन्द्रीय शासन में उछलवा दिए, ताकि 'कांग्रेस के छद्म सेकुलरी इतिहासकारों और ओढ़े हुए बुद्धिवादियों' की दुकान चलती रहे तथा इस दुकान के गुमाश्ते मध्य प्रदेश में अर्जुन सिंह ही हैं, जो इतिहासी बुद्धिजीविता के न केवल ठेकेदार हैं, बल्कि उनमें बुद्धिजीवी समझ भी है।

ये अनोखे इतिहासकार

अर्जुन सिंह की बुद्धिजीवी समझ (?) तो समझ में नहीं आती, पर सत्ताजीवी समझ जरूर समझ में आती है और यह भी भली प्रकार समझ में आता है कि वह 'तू कौन-मैं ख्वाह-में-ख्वाह' की अदा के साथ, सुर्खियों में रहना चाहते हैं। ये सुर्खियां उन्हें इतिहासकार और 'इतिहास कांग्रेस' को इतिहास से कितना जोड़ सकेंगी—भले ही शंकास्पद हो, पर इतना निश्चित है कि उन्हें 'इन्टरव्यू योग्य' जरूर बनाए रख सकेगी।

जहां तक इतिहास कांग्रेसियों की बात है, उनके लिए तीन लाख बहुत हैं, और इससे कम से कम 3 दिन के इतिहासी मौज-मेले का खर्च निकल सकेगा। इन इतिहासी आतंकवादियों को लड़ने का अभ्यास है। दूसरों पर कीचड़ उछालने में प्रवीण ये लोग विवाहिता से लेकर विधवा और वेश्या तक की भाषा में लड़ सकते हैं। देखना यह है कि सच्चे इतिहासकार, इतिहासवेत्ता, राष्ट्रवादी चिन्तन किस स्तर तक कैसे उनका सामना कर पाएंगे।

ये वही इतिहासकार और बुद्धिजीवी हैं, जिन्होंने भारत देश को पहले पश्चिम और फिर मास्को की नजर से देखा। उसके बाद पश्चिमी और रूसी तर्ज पर भारत राष्ट्र का इतिहास लिखने-पढ़ाने का आन्दोलन किया। 'इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस' की पचास वर्ष पुरानी दुकान की रजिस्ट्री तक नहीं कराई। भारत और राज्य सरकारों से मनमाना धन लेते और इतिहास के नाम पर भारत के अतीत और भविष्य के साथ वर्त्तमान में बौद्धिक बलात्कार करते रहे। पहले वे बोले — भारत अनेक राष्ट्रों का

मिला-जुला राष्ट्र है। यहां अनेक संस्कृतियां हैं। यहां कुछ आदिवासी हैं, शेष आक्रामक। क्योंकि यहां के सभी निवासी कोई पहले और कोई बाद में आए हैं। इसलिए किसी एक संस्कृति, किसी एक जन, किसी एक परम्परा, किसी एक प्रेरणा, किसी एक इतिहास की बात करना अनैतिहासिक और दूसरे मतानुयायियों पर आक्रमण है। भारत की विविधता में एकता - एकात्मता के सांस्कृतिक सूत्र को नकार कर इसे कई राष्ट्रों को मिला कर बनाया सोवियत रूस की कार्बन कापी माना।

क्योंकि इतिहास की काल सत्यता को बहुत काल तक अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि राष्ट्रीय अस्मिता शब्द छल की मोहताज नहीं होती, क्योंकि देश का अतीत ही उसके वर्तमान और भविष्य का आधार होता है, क्योंकि इतिहास भूतकाल का यथार्थ अंकन होता है। इसलिए वह छल-कपट की शब्द कारा को तोड़कर कभी न कभी बाहर आ ही जाता है। ठीक वैसे ही जैसे सोवियत रूस जार के रूस तक सीमित हो जाना। रूसी राष्ट्र पर जारशाही के अत्याचार का अन्त करना अभिनन्दनीय था, तभी तो उसे महान जनक्रांति की संज्ञा प्रदान की गई, किन्तु दूसरे राष्ट्रों की अस्मिता की हत्या कर रूस का उद्यान गुलजार करना अप्राकृतिक था। जो प्रकृति था, जो राष्ट्र सत्य था, वह समय पाकर अभिव्यक्त हुआ।

अब कालचक्र नहीं थमेगा

भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के साथ इन पथ और मति भ्रष्ट इतिहासकारों द्वारा विगत पांच दशकों से किया जा रहा छल, राष्ट्रीय यथार्थ और अनुभव से कटा उनका प्रदूषित इतिहास, सोच-देशमाता को व्यभिचरिणी सिद्ध करने की सीमाएं छूने लगा, तो यही सब होना था, जो उज्जैन में 'इतिहास कांग्रेस' के सम्मेलन के स्थगन को लेकर हुआ। बहाने गढ़े गए कि भाजपा की मध्य प्रदेश सरकार ने पर्याप्त धन नहीं दिया। तीन लाख रूपए की जगह केवल पैंतीस हजार रूपए ही दिए। उसी समय उज्जैन में एक और समानान्तर इतिहास सम्मेलन का आयोजन किया गया, उसी समय भाजपा अध्यक्ष डा० मुरली मनोहर जोशी की 'एकता यात्रा' उज्जैन आ रही थी, विश्व हिन्दू परिषद्, बजरंग दल और रा०स्व० संघ के लोग आतंक फैला रहे थे, अल्पसंख्यकों में भय व्याप्त हो गया था, साम्प्रदायिक दंगे की संभावना उत्पन्न हो गई थी। इसलिए 'इतिहास कांग्रेस' का सम्मेलन स्थगित कर दिया गया। इसका सबसे मजेदार पक्ष यह है कि इतिहास सम्मेलन के आयोजकों ने सम्मेलन स्थगित करने की सूचना सम्मेलन के अध्यक्ष श्री कुलकर्णी को भी नहीं दी। उन्हें समाचार पत्रों से पता चला कि सम्मेलन स्थगति कर दिया गया।

'इतिहास कांग्रेस' का सम्मेलन स्थगित करने जैसी ही इनकी इतिहास दृष्टि भी है। इतिहास कांग्रेस के सम्मेलन के स्थगन के कारणों की तरह ये इतिहास सत्य को भी मनचाहे ढंग से गढ़ते हैं। ये असत्य इनकी खुराक हैं, इनमें सत्य का सामना करने

का साहस नहीं है। ये लोग अपने पांव की धरती खिसक जाने की आशंका से आतंकित हैं। पचास वर्षीय दादागिरी समाप्त होने की सम्भावना से भयभीत हैं। भारत के इतिहास की अपने राष्ट्र सत्य के साथ जुड़ंने की बेचैनी देखकर ये परेशान हैं।

इनके द्वारा रचित पुस्तकों का ही यह कमाल था कि 'ग' को गणेश से काट कर गधे से जोड़ दिया गया। 'ग' का गणेश सत्य -'गधे' से जुड़े रहना अस्वीकार करने लगा, तो अपना ढकोसला उजागर होते देख अपनी दुकान बचाने का यही एकमेव मर्ग उन्हें सूझा। किन्तु कब तक बचेंगे राष्ट्र के साथ कपट करने वाले इतिहास कांग्रेस के ये छद्म इतिहासी। कालचक्र की गति को रोक पाना सुविधाभोगियों के बूते की बात नहीं है। इतिहास झूठ के रास्ते का नहीं सत्य के पथ पर पथिक होता है। वह वामपंथी-दक्षिणपंथी या मध्यमार्गी नहीं अतीव कठोर और किसी को भी क्षमा न करने वाला यथावत् भूताकंन होता है। इतिहास अतीत का दर्पण होता है, सुविधाभोगी विश्लेषण या विवेचन का आलेख नहीं। जो लोग इतिहास के इस चरित्र को नहीं मानते, वे ही इस समय 'इतिहास कांग्रेस' के झण्डावाहक बने बैठे हैं, इन्होंने ही राष्ट्रीय इतिहास के पाण्डवों को पांच दशक से वनवास दे रखा था और ये ही इस समय दुर्योधन की तरह अपने इतिहास कांग्रेस के हस्तिनापुर में राष्ट्रभक्त युधिष्ठरों के प्रवेश को रोकने का हर सम्भव प्रयास कर रहे हैं। 'इतिहास कांग्रेस' में अन्न, जल पर अपने एकमेव अधिकार को चुनौती मिलती देख वे चीखते घूम रहे हैं कि भारत का इतिहास उसके राष्ट्रसत्य से जोड़ने का प्रयास करने वाले भारत के सेकुलर चरित्र को नष्ट करना चाहते हैं। कैसे बुद्धिजीवी हैं ये, जो यह समझते और मानते हैं कि भारत की संपूर्ण जनता को सदा-सर्वदा मूर्ख बनाते रहेंगे। अब समय बदल रहा है, उनकी उधार ली गई स्थापनाएं उखड़ चुकी हैं, भारत की धरती पर बना और धरती में पल रहा राष्ट्रसत्य वर्त्तमान को समेट कर अपने अतीत के यथार्थ की मीमांसा कर रहा है कि उसका भविष्य गौरवमय हो। किन्तु इसे स्वीकार करने से कतरा रहे हैं ये बुद्धिजीवी और यही कारण है उज्जैन में प्रस्तावित 'इतिहास कांग्रेस के सम्मेलन को स्थगित करने का।

29 दिसम्बर, 1991

एकता यात्रा पर पराजितों का प्रलाप

भारत के छद्‌म पंथ-निरपेक्षवादी और पश्चिमी परिभाषा के मूर्त्तरूप, उसी ढांचे में ढले, छद्‌म बुद्धिराक्षस एक वर्ष पूर्व यह कह रहे थे कि -'यदि अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि पर श्रीराम मन्दिर बनने दिया गया, तो हो सकता है कि राम का एक छोटा मंदिर तो बन जाए किन्तु भारत माता का बड़ा मन्दिर टूट जाएगा, और ये ही लोग अब यह भी कह रहे हैं कि "यदि कश्मीर के श्रीनगर के लाल चौक पर भारत का राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया तो भारत टूट जाएगा, देश में साम्प्रदायिक उपद्रव होंगे, देश खून की दरिया में डूब जाएगा। भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष डा० मुरली मनोहर जोशी की एकता-यात्रा का एकमेव उद्‌देश्य कश्मीर समस्या को हिन्दू मुस्लिम संघर्ष के रूप में परिभाषित करना है। यदि इस यात्रा की प्रतिक्रिया में देश के दूसरे भागों में रह रहे कश्मीरी मुसलामनों के सम्बन्धी अयोध्या में बाबरी मस्जिद पर हरा झण्डा फहराने के लिए चल पड़े तो क्या होगा ? इस यात्रा का उद्‌देश्य राष्ट्रीय एकता नहीं, दिल्ली पर राजनीतिक अधिकार जमाना है।"

मूल चरित्र

स्पष्ट है कि छद्‌म सेकुलरिस्टों, बुद्धिराक्षसों और कुर्सीवादी राजनीतिज्ञों के पास कोई सहज एवं बुद्धिगम्य तर्क नहीं है। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता, सामाजिक और आर्थिक समस्याएं उनके लिए केवल एक ऐसा राजनीतिक झुनझुना है, जिसे ये लोग समय-समय पर बजाते रहते हैं। ये भारत राष्ट्र को हिन्दू-मुस्लिम की विभाजक दृष्टि से देखते हैं। इनके राष्ट्र में कुछ लोग हिन्दू हैं और कुछ मुसलमान। यहां कोई ऐसा राष्ट्रीय समाज है ही नहीं, जो अपने देश को मजहब और जातियों में न बांटकर एक एकात्म, जीवन्त, प्रबल और प्रखर राष्ट्रीय इकाई मानता है। यही कारण है कि जब अयोध्या में श्रीराम मन्दिर बनाने की बात उठती है तो उन्हें इस छोटे मंदिर के कारण भारतमाता का बड़ा मंदिर टूटता दिखाई देता है और जब भारतमाता के बड़े मंदिर की रक्षा करने का प्रयास किया जाता है, तो उसमें हिन्दू-मुस्लिम दंगा और साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न करने की दूषित योजना दिखाई देती है।

अपने देश में एक आम चलन हो गई है, 'आम सहमति' की बात करने की। यह

शब्द बहुत ही कर्णप्रिय लगता है। किन्तु है यह बहुत ही बेचारा शब्द। इस शब्द का प्रयोग अब वस्तुतः आम सहमति के लिए नहीं, राजनीतिक गिरोहबन्दी करने और अपने प्रतिद्वन्द्वियों को अलग-थलग करके अपना राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करने के लिए किया जाता है। भारत की राष्ट्रीय एकता और गणतंत्र दिवस पर देश के किसी भाग में राष्ट्रध्वज का फहराया जाना या न फहराया जाना भी अब छद्म सेकुलरिस्टों के लिए आम सहमति का मुद्दा है कि यदि कश्मीर में राष्ट्रीय ध्वज फहराए जाने के प्रश्न पर आम सहमति न होगी तो वहां राष्ट्रध्वज नहीं फहराया जा सकेगा। और आम सहमति का यह खेल खेलते कौन हैं, वे जो देश के बंटवारे के लिए जिम्मेदार हैं, जिनके कारण भारत अलगाववाद, अल्पसंख्यकवाद और आतंकवाद का शिकार है, जो देशद्रोह को पुरस्कृत और राष्ट्रभक्ति को तिरस्कृत करते हैं। देश तोड़कों से वार्त्ता करना जिनकी राष्ट्रीय एकता का अधिष्ठान है, हत्यारों के समक्ष आत्म-समर्पण करते रहना जिनका राजनीतिक मजहब है और सत्ता के लिए देश की संस्कृति, परम्पराओं, पूर्वजों और राष्ट्रीय चेतना को बेच देना ही जिनका मूल चरित्र है।

आजादी का सौदा

श्रीराम आन्दोलन और एकता-यात्रा ने इसके समर्थकों और विरोधियों को समान रूप से परेशान किया है। विरोधियों के तर्क कुतर्की हैं और समर्थकों का अनुष्ठान आत्म-सन्तोषी। विरोधियों का विरोध केवल हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष और साम्प्रदायिक दंगे की संभावनाएं बतलाता है, उनकी राष्ट्रीय एकता और उनका साम्प्रदायिक सद्भाव केवल अल्पसंख्यकों अर्थात् मुसलमानों के हित-अहित, उनके संतोष-असन्तोष, उनके हर्ष और रोष का मोहताज है। राम-आन्दोलन और राष्ट्रीय एकता के पक्षधर सदा स्तब्ध से रहते हैं कि क्या कहें, क्या उत्तर दें। असंदिग्ध को संदिग्ध बनाने की कोशिश करने वालों को वे दया की दृष्टि से दखते हैं और अपने आप में संतुष्ट रहते हैं कि जो सच सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है, उसके विषय में कुछ बोलने-कहने की क्या आवश्यकता है ? कश्मीर में राष्ट्रध्वज फहराए जाने और राम जन्मभूमि पर मंदिर बनाने से साम्प्रदायिक और मजहबी तनाव होने जैसी बातों का औचित्य क्या है? दोनों पक्षों की अपनी-अपनी विवशता है। विरोधी विरोध करने के लिए विवश हैं तो पक्षधर आश्चर्यचकित होने के लिए।

जो लोग इस देश को हिन्दू-मुसलमान में बांटकर देखते हैं, जिन्होंने हिन्दू-मुसलमान के आधार पर देश को बांटकर आजादी का सौदा किया, लाखों बेगुनाह भारत भक्तों का रक्त जिनकी रीति-नीति के कारण आजादी के विहान की लाली बना, उनका चरित्र और सोच है ही ऐसा कि वह सदा देश-हित के विरूद्ध ही जाता है। जो लोग देश को केवल रोटी और भूखों का पेट मानते हैं, छीना-झपटी करना और विभाजक रेखाएं खींचते रहना ही उनका सार्वजनिक राजनीतिक रोजगार है। देश को वे अपनी और

अपने दल की जागीर मानते हैं। वे जो कहें, वह सिद्धान्त, वे जो करें वही करणीय, शेष सब राजनीति है, दूषित है, साजिश है, साम्प्रदायिकता है, मजहबी शत्रुता है, सामाजिक अन्याय है, आर्थिक शोषण है।

स्थिति यह है, कि यदि कांग्रेस, जनता दल, वाममार्गी खेमा, मुस्लिम लीग, अकाली और दूसरे दल देश को अलग-अलग जातियों और मजहबों में बांटने का अभियान चलाएं तो उसे राष्ट्रीय एकता का अनुष्ठान माना जाना ही चाहिए और यदि भाजपा जैसा कोई दल देश को दल से ऊपर मानकर उसकी चारों सीमाओं में रह रहे जनसमूह को एक मन, एक प्राण के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास एवं आह्वान करे तो उसे राष्ट्र को खण्ड-खण्ड करना और विभिन्न सम्प्रदायों का अस्तित्व मिटा देना माना जाना चाहिए। यदि वे लोग दिल्ली पर अधिकार करने के लिए कश्मीर, पंजाब, असम, आन्ध्र और तमिलनाडु आदि राज्यों के आतंकवादियों का आलिंगन करें तो ठीक है, किन्तु भाजपा यदि भारत की अस्मिता को अभिव्यक्त करने वाला कोई अभियान चलाए तो वह राजनीति प्रेरित होता है, इसलिए निन्दनीय है। ये देश को बैकवर्ड-फारवर्ड में विभाजित करके वोट बटोरें तो वह राजनीति निरपेक्ष सामाजिक न्याय, दान और आर्थिक अन्याय पर आक्रमण होता है ओर यदि भाजपा सामाजिक अन्यायों और आर्थिक विषमताओं को उनके संपूर्ण संदर्भ में समाप्त करने की बात करे तो उसे राजनीतिक अपराध बताया जाता है। कश्मीर में मुसलमान गुण्डे सैकड़ों मंदिर तोड़ देते हैं तो इनके लिए जैसे कहीं कुछ हुआ ही नहीं होता, किन्तु मध्य प्रदेश में काल्पनिक रूप से एक मस्जिद तोड़कर संसद में शोर मचाने को सेकुलरिटी की रक्षा करना मानते हैं। इनके लिए मस्जिद टूटना सेकुलरिटी पर आक्रमण और मंदिरों का तोड़ा जाना सेकुलरिटी का पोषण करना होता है। बंगलादेश से आए करोड़ों मुसलमान घुसपैठियों की सरपरस्ती को ये राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक मानते हैं, किन्तु कश्मीर घाटी और पंजाब से आए विस्थापितों के साथ बात करने या उनकी बातें सुनने के लिए भी उनके पास समय नहीं होता। युद्ध के समय इराक से भागकर आए मुसलमानों की तत्काल व्यवस्था करने वाले इन लोगों ने जम्मू और दिल्ली में पड़े हिन्दू विस्थापितों के पक्ष में बोलने की भी आवश्यकता नहीं समझी। कोई भी प्रधानमंत्री अब तक जम्मू के विस्थापितों से वहां जाकर नहीं मिला और यदि भाजपा इस समस्या की ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करती है, विस्थापितों की व्यवस्था करती है तो उसे विस्थापित और कश्मीर समस्या का साम्प्रदायिकी और राजनीतिकरण करना कहा जाता है।

परेशानी का कारण

चाहे राम आन्दोलन हो या राष्ट्रीय एकता यात्रा — इस संदर्भ में इसके विरोधियों का सोच राष्ट्रीय नहीं, केवल राजनीतिक हैं। वे अपने ही मानसिक और

राजनीतिक जाल में फंसे हुए हैं। भारत की जिस राष्ट्र अस्मिता को वे अब तक भ्रम और भुलावे में डाले रहे थे, वह अब अपने यथार्थ के साथ जुड़ने लगी है। देशवासियों के साथ गत पांच दशकों से किया जा रहा छल-छद्म अब प्रगट होने लगा है तो वे परेशान हैं। उनकी परेशानी यह है कि वे अपनी भूल और पराजय स्वीकार कैसे करें ? किसने रोका था कि स्व० राजीव, विश्वनाथ प्रताप सिंह, नरसिंह राव, वाममार्गी, लीगी, समाजवादी जनता दलीय और तथाकथित राष्ट्रीय मोर्चे के घटकों के नेता कश्मीर न जाएं। विद्यार्थी परिषद् को आश्वासन देकर भी विश्वनाथ प्रताप तिरंगा फहराने कश्मीर क्यों नहीं गए ? संसद में घोषणा करके भी विश्वनाथ प्रताप पंजाब के लोगों से मिलने क्यों नही गए ? अपनी घोषित सामाजिक न्याय यात्रा को उन्होंने क्यों रद्द कर दिया ? प्रधानमन्त्री नरसिंह राव को कश्मीर के विस्थापित हिन्दुओं की व्यथा क्यों नहीं व्यापती ? कम्युनिस्ट, कश्मीरी पंडितों का नेतृत्व क्यों नहीं करते ? एकता यात्रा को सर्वदलीय रूप प्रदान करने का अनुरोध करने वाले नरसिंह राव को किसने रोका है यात्रा में सम्मिलित होने और उसका समर्थन करने के लिए ? वरिष्ठ पत्रकार श्री कामथ के इस विश्लेषण में कांग्रेस सहित उन सभी दलों का चरित्र उजागर है जो भाजपा को अलग-थलग करने के लिए गिरोह बन्द है कि "मुद्दा यह नहीं है कि भाजपा ने इंका के गुब्बारे की हवा निकाल दी है, मुद्दा है कांग्रेस का कल्पनाशून्य होना। एकता यात्रा की पहल देश के सबसे पुराने और सबसे बड़े दल इंका द्वारा की जानी चाहिए थी। राष्ट्रीय एकता का संदेश देने के लिए सर्वदलीय यात्रा का आयोजन करने की पहल इंका को करनी चाहिए थी, किन्तु अपनी अन्तर्भूत कुख्याति और अविश्वसनीयता के कारण इंका यह कार्य नहीं कर सकी। अभी बहुत विलम्ब नहीं हुआ है, यथासम्भव और यथाशीघ्र उसे भाजपा की एकता यात्रा में शामिल हो जाना चाहिए ?"

विकृत सोच

किन्तु नरसिंह राव, उनकी पार्टी और दूसरे दलों से श्री कामथ की यह अपेक्षा, केवल दिवास्वप्न है। ये दल, नेता और बुद्धिराक्षस जिस राजनीतिक संस्कृति में पले बढ़े हैं, उसमें ऐसे किसी अनुष्ठान में शामिल होने की न अनुमति है और न परम्परा ही। वे देश और समाज को टुकड़े-टुकड़े में देखने और उन टुकड़ों को अलग-अलग संस्कृति एवं अस्मिताएं मानकर उनके अहं को राष्ट्रीय गौरव से भी अधिक महत्व देने को ही राष्ट्रीय एकता स्थापित करना मानते हैं। उनके खेमे में बन्देमातरम् कहना आज भी साम्प्रदायिक है। कांग्रेस के कांकी नाड़ा अधिवेशन में बंदेमातरम् का बहिष्कार करने वाले जिन लोगों ने अपने भारत द्वेषी अभियान को पाकिस्तान की प्राप्ति में परिवर्तित किया था उसी संस्कृति और सोच वाले लोग आज (1991) भी बंदेमातरम् अर्थात् 'भारत माता की जय' को साम्प्रदायिक और एकता यात्रा को

मुस्लिम विरोधी बता रहे हैं और इंका सहित जनता दल, कम्युनिस्ट और दूसरे राजनेता उनके साथ राजनीतिक समझौते करके साम्प्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता की डींगे हांकते नहीं थकते।

उनका कहना है कि इस एकता यात्रा का आयोजन भाजपा ने अपना राष्ट्रीय प्रभुत्व स्थापित करने के इरादे से किया है। किन्तु इस प्रश्न का उत्तर इन लोगों के पास नहीं है कि क्या राष्ट्रीय प्रभुत्व स्थापित करने की आकांक्षा का एकाधिकार केवल इन छल-छद्मकारी राजनेताओं के नाम ही रजिस्टर्ड है ? भारतीय संविधान की किस धारा में लिखा है कि भाजपा राष्ट्रीय प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास नहीं कर सकती, क्योंकि यह विशेषाधिकार केवल मुस्लिम लीगियों, कांग्रेसियों, जनता दलीयों और कम्युनिस्टों के लिए सुरक्षित है ? यदि राष्ट्रीय एकता का मार्ग राष्ट्रीय प्रभुत्व की मंजिल की ओर जाता है, तो इन दलों को इस मार्ग पर चलने से किसने रोका है। भाजपा का आमंत्रण स्वीकार करके ये दल यात्रा में शामिल क्यों नहीं होते ? श्री कामथ ने ठीक ही कहा है कि 'भाजपा ने इंका और दूसरे दलों पर मानसिक और नैतिक विजय प्राप्त कर ली है।'

एकता यात्रा के संदर्भ में कही जा रही विपरीत बातों की विडम्बना यह है कि कहने वाले स्वयं नहीं समझ पा रहे हैं कि जो कुछ वे कह रहे हैं, उसका अर्थ क्या है और परिणाम क्या होगा ? कश्मीर और आतंकवाद की समस्या की गम्भीरता की ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए आयोजित यात्रा को जो लोग मुस्लिम विरोधी केवल इसलिए बता रहे हैं कि कश्मीर घाटी मुस्लिम बहुल है और वहां से हिन्दुओं को निकाल दिया जाना सहज बात है, वे यह भूल जाते हैं कि उनकी इस स्थापना और तर्क में यह संदेश और संकेत भी निहत है कि जहां-जहां मुसलमान अल्पसंख्या में हैं वहां-वहां से उनको निकाल दिया जाना भी उचित और न्यायपूर्ण होगा। यदि कश्मीर के विस्थापित हिन्दुओं की दुर्दशा पर मौन रहने से देश की एकता पुष्ट होती है तो शेष देश में भी यदि लोग यही मानदण्ड अपनाने लगें तो क्या होगा?

एकता यात्रा को प्रारम्भ हुए अब (26 दिसम्बर) सोलह दिन पूर्ण हो चुके हैं। किन्तु अभी तक किसी भी क्षेत्र में किसी प्रकार का कोई तनाव दिखाई नहीं दिया। जिस-जिस प्रदेश से होकर यात्रा निकली है वहां जन-उत्साह तो दिखाई दिया, किन्तु तनाव का कहीं कोई चिन्ह या संकेत तक नहीं था। यदि कहीं तनाव है तो उन दलों के दफ्तरों और नेताओं के दिमाग में जो हर संभव प्रयास करके भाजपा को अलग-थलग करके राष्ट्रीय अस्मिता के यथार्थ की अभिव्यक्ति पर अपने छल-छद्म का आवरण डाले रखना चाहते हैं और जो यह चाहते हैं कि देश में दंगा हो। मुस्लिम समुदाय की देशभक्ति सदा संदिग्ध बनी रहे, उन्हें शेष देशवासी राष्ट्रीय एकता के शत्रु तथा विभाजक तत्व के रूप में देखते रहें, मुसलमान मूल राष्ट्रीय धारा में शामिल न हों। वे एक समानान्तर मुस्लिम राष्ट्र की अस्मिता के लिए युद्धरत रहें और वे

उनकी अलग पहचान और उनके मजहब के नाम पर सेकुलरी राजनीति की सौदेबाजी करते रहें।

सम्भवतः अब इस सोच के दिन लद चुके। लगभग पांच दशक की यातना और अनुभव अब इसका और अधिक प्रयोग करने की अनुमति नहीं देता। राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, साम्प्रदायिक सद्भाव, सामाजिक न्याय और आर्थिक हित का उद्देश्य सिद्ध करना है तो कन्याकुमारी को कश्मीर से, कामख्या को द्वारका से और सम्पूर्ण भारत को राम से जोड़ने के अतिरिक्त और कोई मार्ग है ही नहीं। देश के एक सौ साठ करोड़ हाथों में राष्ट्रध्वज और अस्सी करोड़ कण्ठों से बन्देमातरम् के समवेत स्वर में ही समस्याओं का समाधान निहित है। एकता यात्रा का यही एकमात्र उद्देश्य है। यही सर्वाधिक उचित अवसर है और यदि इसमें से किसी दल का राष्ट्रीय प्रभुत्व स्थापित होता हो तो इसमें भयभीत होने जैसी कोई बात नहीं है। क्योंकि यह प्रभुत्व आतंकवाद, अलगाववाद, मजहबी विस्तारवाद, साम्प्रदायिक शत्रुता, सामाजिक और आर्थिक विषमता का नहीं, राष्ट्रीय अस्मिता का होगा, जहां राष्ट्र का गौरव ही व्यक्ति और समाज का भी गौरव होगा। जहां सभी देश के समान नागरिक और राष्ट्रीय विरासत के समान उत्तराधिकारी होंगे। वर्तमान और भविष्य, समृद्धि और सुख में सबकी समान भागीदारी होगी, जो इस अवधारणा के विरूद्ध हैं, वे ही एकता यात्रा के भी विरोधी हैं। कौन सी संज्ञा प्रदान की जाए इन्हें, किस नाम से पुकारें इनको, इसका निर्णय आज नहीं, कल के हाथों में सौंपना ही उचित होगा। यह इतिहास का कार्य है, इसे इतिहास को ही करने दें। वर्त्तमान जिस अतीत का उत्तराधिकारी है और जिस भविष्य का बन्दनवार है वह अतीत और भविष्य का सुखद सेतु बन सके, इस समय मात्र यही प्रत्येक राष्ट्र भक्त का कार्य है।

5 जनवरी, 1992

वह देश जो हमें नेहरू ने दिया

कर्नाटक के तमिल और तमिलनाडु के कन्नड़ी पलायन करने के लिए विवश हैं। वे दोनों भयभीत हैं, आतंकित हैं, आशंकित है कि अब अपने-अपने पूर्वजों के वर्त्तमान आवास और प्रदेश में रहना खतरे से खाली नहीं है। अपने ही देश में वे परायों की तरह शरणार्थी और विस्थापित बना दिए गए हैं। यह विस्थापित संताप, संत्रास, भय, आशंका और अविश्वास किसी पराए देश या शत्रु के आक्रमण के कारण नहीं, अपनों के कारण है, अपने रक्त और वंश के बंधुओं के कारण है, अपनी ही परम्परा और पूर्वजों के वारिसों के कारण है, अपने ही स्वार्थों के दबावों के कारण है, स्वयं को अलग-अलग संस्कृति, भाषा और राज्य समझने के कारण है।

देश का यथार्थ

यही वह भारत देश है जिसे आजादी के बाद के गत 44 वर्षों में बनाया गया है। यही वह देश है जिसके निर्माता के रूप में नेहरू जी का स्मरण किया जाता है। यही वह देश है जिसे हमें नेहरू जी ने सौंपा है और यही वह देश है जिस पर गर्व करने के लिए हमें विवश किया जाता है और हम अपने अन्तर्मन में निहित देशमाता के प्रति स्वयंभु श्रद्धा के कारण विवश हैं कि इसे ही अपना देश और अपने देश का यथार्थ मानें।

इस समय हमारे समक्ष देश माता की जो प्रतिमा प्रस्तुत है, वह हमारे राष्ट्र के देवालय में प्राण-प्रतिष्ठत भगवती भारत माता नहीं, बाजार से खरीद कर लाई गई एक टूटी-फूटी खंडित मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति में भारत राष्ट्र की प्राण प्रतिष्ठा की ही नहीं गई, इसकी आरती और वन्दना का विधिवत् विधान किया ही नहीं गया और कहा गया कि जो कुछ नेहरू जी करें, वही करणीय है।

और नेहरू जी ने जो कुछ किया, उसी का परिणाम है कि प्रदेशों की सीमाएं पहले राज्य की सीमाएं बनीं और अब वे एक अलग पड़ोसी स्वायत्त सार्वभौम राष्ट्र की सीमाएं जैसी आकार लेने लगी हैं। नेहरू जी ने इस देश की भाषा ही नहीं, भावना भी बदली। उन्होंने देश को भाषाई राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख किया। उनकी राज्य व्यवस्था ने संस्कृति और सद्भाव को अपना भोज्य बनाया। देश को विभिन्न

संस्कृतियों में बांटा। मजहब को देश की राजनीति का मूलाधार बनाया। राष्ट्र-नीति के अभाव में राजनीति बन्ध्या और देश बंजर सा बन गया। अब इस सुजला, सुफला और अमला भूमि पर केवल स्वार्थों के कंटीले झंखाड़ उगते हैं, कहीं भी पांव रखिए, गोखुरू के कांटे चुभ ही जाते हैं।

नेहरू जी ने जिस भारत की रचना की और जिस पर गर्व करने के लिए हमें विवश किया जाता है, वह भारत भिखारी भारत है। वह आर्थिक गुलामी की अंधेरी सुरंग जैसा है। उसकी अर्थव्यवस्था का नियन्त्रण स्वदेशी नहीं, विदेशी हाथों में है। वह विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोश और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मोहताज है। नेहरू जी ने हमें जो भारत सौंपा है, उस भारत का नागरिक अपने देश की निर्भय और निर्बाध परिक्रमा नहीं कर सकता। नेहरू जी के भारत में जीने-मरने का प्रकृति प्रदत्त अधिकार भी नहीं है। हमारी जिन्दगी और मौत दोनों किसी आतंकवादी, अलागाववादी और उग्रवादी की दया की दास हैं।

विद्वेष के बीज

नेहरू जी ने हमें जिस कार्यशैली, जिस चिन्तन और जिस चरित्र से जोड़ा, वह हमारे अपने भारत देश का चरित्र, चिन्तन और इसकी अपनी कार्यशैली नहीं है और यदि यह सब अपना होता, तो कर्नाटक का तमिलनाडु से, आंध्र का तमिलनाडु और कर्नाटक से, महाराष्ट्र का कर्नाटक से, गुजरात का मध्य प्रदेश से और इसी प्रकार एक प्रदेश (राज्य) का दूसरे प्रदेश से शत्रुतापूर्ण संघर्ष न होता। जब भारत की पयस्विनी नदियों का अमृतमय जल विवाद, हिंसा, हत्या, लूट-पाट और पलायन का कारण न बनता। जब भारत को कोई प्रकाश सिंह बादल, कोई जगजीत सिंह चौहान यहां के प्रदेशों (राज्यों) को स्वायत्तता और संप्रभुता प्रदान करके रूसी राष्ट्रकुल की तर्ज पर भारतीय राष्ट्रकुल बनाए जाने की दलील न देता। जब इस देश में यह आवाज न उठती कि यहां की राजनीतिक, आर्थिक, क्षेत्रीय, भाषाई और मजहबी समस्याओं का समाधान करने के लिए राज्यों को प्रभुता सम्पन्न स्वायत्तता प्रदान करके उनका एक ऐसा भारतीय संघ बनाया जाए कि वे अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकें। जब भारत सबकी समान श्रद्धाभूमि होता, तब अनेक पूजा-पद्धतियों, कर्मकाण्डों और विचार-विभन्नताओं के बावजूद सबकी वांशिकता, सबके पूर्वज, सबकी प्रेरणाएं, सबकी परम्परा, सबकी आशा-आकांक्षा समान और साझी होती। तब किसी नदी के पानी के लिए एक प्रदेश दूसरे प्रदेश के प्राणों का प्यासा नहीं, देश के पानी की रक्षा करने के लिए अपने प्राण लुटाता होता।

नेहरू जी, उनकी सोच एवं संस्कृति वालों के कारण ही हम पहले अपने अतीत से पिण्ड छुड़ा कर भागे, अब अपने वर्त्तमान से भाग रहे हैं। हमारा अतीत ऐसा तो नहीं है कि हम उस पर केवल शर्मिन्दा ही हो सकते हैं, गर्व करने जैसी कोई बात

उसमें है ही नहीं। विकृतियों को प्रकृति और यथार्थ मान लेना क्या बुद्धिमत्ता और समझ का परिचायक है ? हजारों वर्ष की एक अटूट परम्परा के 'प्रवाह' के नीचे की धरती पर यदि कोई 'सिल्ट' पड़ गया हो तो प्रवाह को पाट देने को प्रगति माना जाएगा कि उस सिल्ट को साफ करके प्रवाह को और अधिक गतिमान और गहरा बनाने को ? हजारों वर्ष के अनवरत प्रवाहित इस सांस्कृतिक और राष्ट्रीय प्रवाह में पड़े कीटाणुओं को ही इसका मूल स्वरूप मान लेने के कारण ही आज अपना देश जातीय संघर्ष, साम्प्रदायिक शत्रुता, क्षेत्रीय असंतुलन, भाषाई और मजहबी राष्ट्रीयता, वंश और नस्ल-भेद के भंवर में फंसा है। यदि हमें कन्याकुमारी से कश्मीर और कामाख्या से द्वारका का साक्षात्कार होता तो हम अलग-अलग संस्कृतियों की बात न करते।

अतीत एक ऐसा निरन्तर प्रवाह है जिसका कोई पड़ाव नहीं है। अपने अतीत से भागकर वर्त्तमान का निर्माण करने की सलाह देने वाले नेहरू जी एवं समस्त नेहरूवादी क्या कोई ऐसा वर्त्तमान बता सकते हैं जिसका कोई अतीत न हो, जो अतीत न बनता हो, भारत के जिस अतीत को नेहरू और नेहरूवादियों ने नकारा, वह भारतराष्ट्र का वर्त्तमान था। भारत का जो वर्त्तमान गत हजारों वर्ष से अतीत बनता आ रहा था और, जो भारत के भविष्य का प्रवेश द्वार था, नेहरूवादियों ने उसे ही नकारा और विदेशियों के जूठन को अधुनातन मानकर अपने गौरवशाली अतीत पर शर्मिन्दा होकर बैठ गए।

मैं गत दिनों कन्याकुमारी में था। कन्याकुमारी भारत भूमि का अंतिम छोर है। भारत का यह दक्षिणी छोर कन्याकुमारी, उत्तरी छोर कैलाश के साथ एकरस और एकात्म है। इतिहास की, वांङ्मय की, लोक कथाओं की, ऋषियों की, परम्पराओं की, जनभावनाओं की साक्षी इसकी पुष्टि करती है। मैंने रामेश्वरम् को अयोध्या के साथ एक-मन और एक-प्राण पाया। मुझे मदुराई के मीनाक्षी मन्दिर में कश्मीर की मां वैष्णो देवी स्पष्ट दिखाई दीं, त्रिपति (तिरूपति) और कांची द्वारका, काशी के साथ एकरूप मिले। वहां हमारे देश का अतीत साक्षात् दिखा। हमारी कला, हमारा शिल्प, हमारा साहित्य, हमारी भाषा, हमारे मंत्र, हमारे कर्मकाण्ड, हमारी आराधना, हमारा समर्पण, हमारे मन और प्राण सब कुछ समान थे। सभी समरस थे। सभी की अभिव्यक्ति और आकांक्षा एक थी।

क्या रामेश्वरम् और अयोध्या के अतीत को नकार कर किसी वर्त्तमान भारत के निर्माण की कामना की जा सकती है, क्या भारत भूमि के कण-कण में रची-बसी राष्ट्र-भावना को हाशिए पर रखकर किसी वर्त्तमान भारत की रचना कर पाना संभव है, इसी असम्भव को सम्भव बनाने का प्रयास नेहरू जी ने किया था और इसी अस्वाभाविकता और आत्मनिन्दा का परिणाम है आज का भारत।

भारत ही नहीं, कोई भी देश अपने अतीत से कटकर वर्तमान का निर्माण नहीं

कर सकता। सोवियत संघ का इतिहास बन जाना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। अभी-अभी (गत 25 दिसम्बर, 1991 को) विश्व की यह महाशक्ति इतिहास बना है। कुछ दिन बाद सोवियत संघ के अतीत का शोध किया जाएगा कि क्यों टूटी यह शक्ति ? क्यों बिखर गया सोवियत संघ ? क्यों उतर गया क्रेमलिन से लाल निशान ? और इन समस्त प्रश्नों का उत्तर यह होगा कि "जिन राष्ट्रों को मिलाकर, जिन्हें बलात् एकत्र करके एक सोवियत संघ नामक राष्ट्र की रचना की गई थी, उन राष्ट्रों का अतीत, उनकी राष्ट्रीयता और संस्कृति के कारण ही सोवियत संघ बिखरा है, किसी राजनीतिक या आर्थिक दबाव के कारण नहीं, सोवियत संघ प्रकृति प्रदत्त राष्ट्र नहीं था, विभिन्न राष्ट्रों का एक राष्ट्र हो ही नहीं सकता, वह केवल संघ होगा और संघ में संघ बने रहने की अपनी कोई आन्तरिक और आधारभूत शक्ति होती ही नहीं। उसका आधार या तो भय होता है या स्वार्थ और ये दोनों ही तोड़क तत्व हैं, जो निरन्तर उस अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं कि कब वह अवसर आए और वे अपनी अलग सार्वभौम राष्ट्रीय अस्मिता स्थापित करें।

कावेरी, कृष्णा और नर्मदा के जल का विवाद हो या कश्मीर, पंजाब या असम की समस्या, सभी का सन्दर्भ समान है — 'नेहरूवाद, कांग्रेस की राजनीतिक संस्कृति, देश को उसके अतीत से काटकर वर्त्तमान का निर्माण करने की नादानी।'

नेहरू भक्तों से सवाल

देश यर्थाथ भी है और सपना भी। देशमाता का यथार्थ सपने की भूमि पर ही प्रगट होता है। देशमाता एक ऐसा सुखद सपना है जो निराकार होते हुए भी साकार सरीखा सुख देता है। देश केवल भूगोल मात्र नहीं है, भावना भी है। यदि भावना के साथ भूमि न जुड़ी हो या भूमि का तर्पण भावना के गंगाजल से न किया जाए, तो किसी देश का बनना या होना सम्भव ही न हो। देश स्मृतियों के रथ पर सवार होकर वर्त्तमान में उतरता और भविष्य की ओर गतिमान होता है, स्मृतियों का संदर्भ और उनकी कोख है अतीत। वर्त्तमान की समस्त समस्याओं, सभी कष्टों, विपरीतताओं के बावजूद इस देश का अतीत और भविष्य दोनों हमारा है, अपना है। केवल हमारा और किसी का नहीं। और यह भी न भूलें कि यह देश केवल उन्हीं का नहीं है, जो इस समय जीवित हैं, यहां रह रहे हैं, यह देश उनका भी है, जिन्होंने इसके लिए अपने प्राण अर्पण किए हैं। जो इसके लिए मर गए, जिन्होंने तप किया, तकलीफें उठाईं और जो अतीत बन गए, इस आशा के साथ कि आगत पीढ़ी को एक सुखी, समृद्ध, समर्थ और सर्वमेव कुशलम् की भावना से भरपूर भारत मिलेगा।

क्या उत्तर देंगे केवल वर्त्तमानवादी और नेहरू भक्त उन्हें, जो अब नहीं रहे, जो इस देश की मिट्टी में मिल गए, जिनके कारण यह देश-भूमि आज भी सुजला, सुफला, और अमला है, जो भारत माता के सुहाग-सिन्दूर हैं, जिनके कारण भारत

दुनिया में एक अजर-अमर राष्ट्र के रूप में जाना-पहचाना जाता है। भारत के विभिन्न राज्यों को सार्वभौम राष्ट्र और उनका राष्ट्रकुल बनाने तथा नदी जल के लिए अपने पड़ोसी को जला कर राख कर देने वालों का जन्मदाता और कोई नहीं केवल नेहरूवाद है, केवल कांग्रेसी संस्कृति है, केवल सत्तावादी राजनीति है। अपनी अतीत और अपनी समग्रता को नकार कर देशमाता और उसकी संतानों को टुकड़े-टुकड़े तथा विभिन्न जातियों और नस्लों में बांट कर देखने का ही दुष्परिणाम देश भुगत रहा है। यही मनोवृत्ति कश्मीर को भारत से अलग रखे हुए है। यही नेहरूवाद हमें कश्मीर के कल्हण की राजतरंगिणी पढ़ने से रोकता है, इसी कारण कश्मीर को कन्याकुमारी से जोड़े जाने के प्रयास को साम्प्रदायिक उत्तेजना फैलाना कहा जाता है। इसी कारण तीर्थ जैसा हमारा देश केवल कुछ भौगोलिक राज्यों की सीमा बनकर रह गया। इसी कारण का परिणाम है कि हमारी हजारों वर्षों की स्मृतियों को अन्धकार युग में जीना कहा जाता है और हमारी हजारों वर्षों की राष्ट्रीय यात्रा का अंत करके उसे केवल चार दशक पुरानी यात्रा बनाकर आधुनिक हुआ निरूपित किया जाता है।

भारत का कोई भी भाग यदि अपने अतीत से कटेगा या उसके किसी भी भाग को उसके लम्बे अतीत से काट कर केवल पांच दशकीय वर्त्तमान से जोड़ा जाएगा, तो यह देश कभी एक नहीं रहेगा, केवल बंटेगा। क्योंकि बंटवारा ही नेहरू प्रणीत देश का प्राण-पिण्ड है।

समाज की अपेक्षा

अतएव यदि हम चाहते हैं कि विश्व की रंगभूमि पर भारत अपनी ईश्वर प्रदत्त भूमिका का निर्वाह करे, यदि हम चाहते हैं कि भारत अपने बहुआयामी चिन्तन और जीवन प्रणाली को पुनः अभिव्यक्ति दे, यदि हम चाहते हैं कि विश्व का यह अति प्राचीन और ब्रिटिश मार्क्सवादी ई०पी० थाम्पसन के अनुसार विश्व के भविष्य के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण देश भारत अपनी संपूर्ण गरिमा और छटा के साथ अपने विधि विहित कर्तव्य का निर्वाह करे, तो उसे राम की अयोध्या, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी और कैलाश से जुड़े अतीत, वांङमय, कला, शिल्प, इतिहास, अनुष्ठान, तप और आकांक्षाओं के साथ जोड़ना ही होगा। नेहरू का तथाकथित आधुनिकतावाद भारत को कंगाल और उसकी संतानों को क्रूर बना रहा है। वह कश्मीर को उसकी राजतरंगिणी से वंचित करता है, कुरूक्षेत्र में गीता गान कर रहे श्रीकृष्ण को नकारता है, सागर तट पर राष्ट्रीय एकता का संकल्प ले रहे राम को साम्प्रदायिक कहता है।

नेहरू जी ने हमें जो भारत दिया है वह हमारा अपना भारत नहीं है, वह आत्मग्लानि से भरे, अपने अतीत के प्रति शर्मिन्दा लोगों का भारत है। हमारे भारत में नदी माता के जल के लिए, भारत माता की भूमि के टुकड़े के लिए, रोटी और रोजी के लिए, मजहब और अलग पहचान के लिए, लड़ने वाले प्रतिद्वन्द्वी नहीं अपने पूर्वजों

का तर्पण और देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए वर्त्तमान में तप करने वाली संतानों का समरस और एकात्म समाज रहता है। हमारे भारत में रोटी रोजी के लिए देश नहीं बांटा जाता। जो लोग रोटी के लिए, रोजी के लिए, मजहब के लिए, देश को बांटने और अलग राष्ट्र-राज्य प्राप्त करने के लिए हथियार उठाकर हत्या और हिंसा करते हैं, वे हमारे भारत के नहीं, भारत के अतीत से अलग नेहरू जी के जाये वे 'आधुनिक लोग' हैं जिनके सामने केवल भूमि है, केवल कुछ सीमाएं हैं, केवल कुछ सुख-सुविधाएं हैं, वे देशमाता की भावना से शून्य केवल स्वार्थी लोग हैं, लुटेरे हैं, लुटेरों की संतान। हमें नहीं चाहिए अपने अतीत से कटा नेहरूवादियों का यह आतंक, आशंका, अविश्वास और अलगाव से ग्रस्त तथाकथित आधुनिक भारत देश। जो देश हमें नेहरू जी ने दिया है, वह मां के आंचल की छाया में देखा गया किसी निष्पाप शिशु का सपना नहीं, किसी वेश्या के बाहुपाश में आबद्ध किसी शराबी के सपने जैसा है।

12 जनवरी 1992

बिखरना सोवियत संघ का और मरना कम्युनिज्म का ?

रूस अभी जीवित है, सोवियत समाजवादी रूस मर गया। बोलशेविक (सर्वहारा) क्रांति और सोवियत समाजवादी रूस की स्थापना बीसवीं सदी की प्रमुखतम घटना थी। दोनों विश्व युद्ध के बीच उभरे रूसी साम्यवाद ने समस्त विश्व को चमत्कृत कर रखा था। साम्यवादी होना प्रगतिशील होना माना गया। साम्यवादी अर्थात् गरीबों, भूखों, निराश्रितों, शोषितों का शरणदाता-रक्षक। समस्त विश्व के मजदूरों का एक नया संयुक्त संसार बनाने के स्वप्न की घोषणा से सभी चमत्कृत थे कि आज नहीं तो कल क्रेमलिन में फहरा रहा हंसिया हथौड़े वाला लाल झण्डा समस्त विश्व पर फहराएगा और विश्व सम्पदा का सभी में समान वितरण होकर सभी को समान अवसर और अधिकार प्राप्त होगा।

किन्तु हुआ ठीक इसके विपरीत। सात दशक-सत्तर वर्ष के सतत् प्रयोग और प्रचार के बावजूद सोवियत संघ ताश के पत्ते की तरह बिखर गया और बिखरा भी तो ऐसा कि उसके बिखराव पर किसी ने आंसू तक नहीं बहाए। खुशियां मनाई गई और खुशियां ऐसी कि लेनिन और स्तालिन की मूर्तियों को हटाकर, उनका नामोनिशान मिटा कर मनाई गईं। सत्तर वर्षीय साम्यवादी व्यवस्था के धूमधड़ाके के अन्त में हुआ यह कि मार्क्स और लेनिन तो बीत गए, किन्तु गरीबी और सर्वहारा वर्ग आज भी यथावत है – रूस में भी और दुनिया भर में भी। साम्यवादी लौह दीवार में बन्द सोवियत संघ की महाशक्ति का उदय और उसका अस्त दोनों कई प्रश्न छोड़ गए हैं।

खूनी तानाशाही का निर्माण

प्रश्न यह है कि सोवियत संघ बना और बिखरा क्यों ? और सोवियत संघ की राख में से जन्मे राष्ट्रकुल की आयु क्या होगी ? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर देने के लिए न किसी ज्योतिषी की जरूरत है और न ही किसी बहुत गहरे और गम्भीर विश्लेषण की। क्योंकि साम्यवादी अवधारणा जिस वैचारिक जमीन पर उभरी थी, वह बहुत ही सतही और भुरभुरी थी। उसमें वर्गीयता थी, विद्वेष था, घृणा थी, लूटने-खसोटने और प्रतिशोध की आग थी, क्रूरता थी, कटुता थी, भूख, गरीबी और

शोषण से मुक्त समाज बनाने की उसकी घोषणाएं मानवीय सम्वेदनाओं में से नहीं शोषकों और गरीबों अर्थात् सर्वहारा के नाम पर निरंकुश तानाशाही स्थापित करने की लालसा में से जन्मी थी।

ऋषि मार्क्स के सिद्धान्तों को लेनिन ने जिस व्यवस्था के सांचे में ढाला, उसे आचरण के जिस खरल में घोटा उसमें से एक खूंखार और खूनी तानाशाही का निर्माण हुआ। मार्क्स का सिद्धान्त और लेनिन की क्रान्ति परम्परा एक ऐसे तानााशाह या तानाशाहों के क्रूर हाथों में चली गई, जिन्होंने साम्यवाद को मौत, हत्या, निर्वासन और यातना शिविरों का पर्यायवाची बना दिया। साम्यवादी बुद्धिराक्षस यह कह सकते हैं और वास्तविकता पर अपना बौद्धिक माया जाल डालकर गुमराह करने का प्रयास कर सकते हैं कि सोवियत संघ में जो कुछ हुआ, वह ऋषि मार्क्स और क्रांतिकारी लेनिन की सर्वहारा क्रांति की असफलता के कारण नहीं, अपितु उसके उत्तराधिकारियों के अज्ञान और अयोग्यता के कारण हुआ। किन्तु वे इस प्रश्न का उत्तर नहीं देते कि यदि मार्क्स के दर्शन और लेनिन की क्रान्तिकारिता में दम था तो उसने उनके अयोग्य और अज्ञानी उत्तराधिकारियों को कूड़ेदान में न फेंककर साम्यवाद, साम्यवादी दल और व्यवस्था को ही क्यों कूड़ेदान में न फेंका। विश्व की सामरिक महाशक्ति सोवियत रूस अपना राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक बोझ क्यों नही सम्हाल पाया ? सोवियत रूस के जिन मजदूरों को समस्त विश्व का अधिपति बनाने का गुलाबी सपना दिखाया गया था, उनकी भूख क्यों नहीं मिटी ? शोषितों के शोषण का अन्त क्यों नहीं हुआ ? समान अवसर और अधिकार का समतावादी सपना तानाशाही की लौह दीवार से सिर टकरा कर चूर-चूर क्यों हो गया ? रूस सहित सोवियत संघ के समस्त गणराज्य आज राजनीतिक आजादी तथा सामान्य जीवन की स्थापना की प्रक्रिया में से गुजरते हुए पुनर्रचना की प्रसव वेदना झेलने के लिए विवश क्यों है ?

कम्युनिज्म के झण्डावाहकों को अब यह यथार्थ स्वीकार कर लेना चाहिए कि 1917 में रूस में हुई सर्वहारा क्रांति के संदर्भ में जो प्रयोग प्रारम्भ हुआ था वह दर्शन और प्रयोग दोनों स्तरों पर विफल हो गया। नोबल पुरस्कार विजेता मैक्सिको के एक विचारक और भारत में रहे राजदूत ओक्टोवियो का कहना है कि सर्वहारा क्रांति की असफलता एक सामाजिक असफलता थी, क्योंकि वह स्वतंत्रता और समता प्रदान कर पाने में असफल रही। यह आर्थिक असफलता भी थी क्योंकि साम्यवादी व्यवस्था में जिस सम्पत्ति का निर्माण करने की कामना की गई थी वह संभव नहीं हुई। सर्वहारा क्रान्ति का स्वरूप जिसे सैनिक क्रांति कहना अधिक उपयुक्त होगा केवल राजनीतिक था। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि सर्वहारा क्रान्ति में से जन्मे स्वप्नदर्शी सिद्धान्तों के लोप हो जाने के बाद रूस में किसी नए राजनीतिक दर्शन का उदय हुआ है। वहां अभी भी सामाजिक आदर्शों और सामूहिक नैतिकता के बीच एक गहरी खाई विद्यमान है। वहां की जनता और शासन बाढ़ के प्रवाह में निर्मूल वृक्ष की तरह बहे

जा रहे हैं। सोवियत रूस और कम्युनिज्म अपने ही सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बोझ के नीचे रहकर बिखर गया। निराकार प्रलाप न करके वामपंथियों को आत्मालोचना करनी चाहिए कि रूसी महाशक्ति से जुड़े नागरिक, देश और व्यवस्था सहसा निर्मूल वृक्ष की तरह निराधार और दिशाहीन क्यों हो गई ? सोवियत संघ का विश्ववादी सपना उसकी अपनी ही धरती पर चकनाचूर क्यों हो गया ?

ये ही और ऐसे ही वे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर देने से कम्युनिस्ट अर्थात तथाकथित प्रगतिशील बुद्धिराक्षस या बुद्धि ठेकेदार कतराते भी हैं और घबराते भी। जिस राष्ट्रीयता, राष्ट्रीयत्व और राष्ट्रवाद को उन्होंने नकारा, जिसे संकीर्ण, परंपरागत रूढ़ीवाद और तानाशाही की जन्मभूमि बताया, जिसे जर्मनी के हिटलर और इटली के मुसोलिनी के मुखड़े के रूप में प्रस्तुत करके घृणित करार दिया, जिसके विकृत रूप को यथार्थ और यथार्थ को केवल कुछ कुलीनों और अभिजात्यों की काल्पनिक उड़ान बताकर शोषक और उत्पीड़क कहकर बदनाम किया क्या वही राष्ट्रीय अस्मिता और संवेदना राष्ट्रों की सीमाएं समाप्त करके समस्त विश्व को लाल झण्डे के नीचे लाने की सोवियत संघ की सतही और रेतीली नींव को उड़ा नहीं ले गई ? दमन और भय दिखाकर जिन राष्ट्रों को विवश करके सोवियत राष्ट्र की रचना की गई थी क्या उन राष्ट्रों के मानस में गत सात दशकों से उनकी अस्मिता रूस के लौह पाश से मुक्त होने के लिए कसमसा नहीं रही थी ? जिन राष्ट्रों को अपने जबड़े में दबाकर सोवियत रूस महाशक्ति बना था क्या उनकी और रूसी आकांक्षाएं समान और समरस हो गई थीं? यदि ऐसा हुआ होता और ऐसा न होता तो सोवियत संघ को केवल किसी गोर्बाचोव की पुनर्रचना और उसका खुलापन इस कदर धक्का न मारता कि वह चकनाचूर हो जाता और देखते-देखते क्रेमलिन से लाल झंडा उतार कर तिरंगा फहरा दिया गया होता।

भूख, भय, बीमरी, शोषण, उत्पीड़न, सामाजिक और आर्थिक विषमता की समस्याएं हैं और भविष्य में भी ये समस्याएं रहेंगी, किन्तु इनका अंत करके एक समतायुक्त समरस संवेदनशील समाज तथा संसार का निर्माण क्रूरता, प्रतिशोध, सैन्य और धनबल से कर पाना संभव नहीं हैं। यह कार्य न अतीत में हुआ है और न वर्त्तमान और भविष्य में संभव होगा।

समरसता का तात्पर्य

यह कार्य होगा भारत की ऋषि परम्परा में से उद्भूत दर्शन और दृष्टि के आधार पर। यह कार्य होगा मनुष्य का सांगोपांग विचार करने से। यह संभव होगा मनुष्य की आध्यात्मिक प्रेरणाओं की पहचान करने से ; मनुष्य को केवल शरीर, केवल पेट, केवल भूख, केवल बीमारी मानकर बनाई गई कोई भी व्यवस्था किसी भी दार्शनिक का कोई भी दर्शन इस लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता। ये व्यवस्थाएं व्यक्ति को अपना बंधक तो

बना सकती हैं, उसको कष्ट और पीड़ा से मुक्त नहीं कर सकतीं। बहुआयामी और बहुमार्गी मनुष्य को एकमार्गी बनाने के प्रत्येक प्रयास को असफल होना ही है। क्योंकि जिस मनुष्य के लिए ये व्यस्थाएं की जाती हैं, उसका अन्तर्मन उनका पूर्ण निषेध ही नहीं करता, विरोध भी करता है। इसलिए भारत के ऋषियों ने कहा कि मनुष्य को भूख तो लगती है, उसे रोटी तो चाहिए किन्तु उसके शरीर की भूख सर्वथा भिन्न होती है। मन के स्तर पर मनुष्य को ठीक किए बिना विषमताओं का अंत और व्यवस्थाओं की सफलता असंभव है।

यह है भारत का दर्शन। यही है वह हिन्दुत्व जिसे संकीर्ण, प्रतिगामी, अंध और मध्ययुगीन कहकर सर्वहारा क्रांतिकरियों और पूंजीवादी धनपशु अब तक बदनाम करते आए हैं। जिस मानवीय प्रकृति और प्रवृत्ति, जिस मानवीय आशा और आकांक्षा, जिस मनुष्य निर्मित संस्कार और संस्कृति, उसकी जिस अभौतिक तथा आध्यात्मिक अन्तःप्रेरणा और जिस भौतिकता का जिस विशिष्ट परिवेश और भूमि पर भावात्मक रूपायन होता है वही उस मनुष्य-समुदाय का देश और राष्ट्र होता है। उसके साथ उसका रक्त का जीवन्त संबंध होता है। देश उसकी एक ऐसी प्रदत्त प्रयोगशाला होता है जहां वह विश्व और ब्रह्मांड के साथ अपनी एकात्मता सिद्ध करने के लिए साधना करता है। जो देश और द्रष्टि का निषेध और दमन करते हैं, वे मानवता के शत्रु होते हैं।

कम्युनिस्टों की अंध भक्ति

रूसी साम्यवाद, अमरीकी और पश्चिमी पूंजीवाद में यह निषेध तत्व प्रबल होने के कारण ही सोवियत रूस मर गया, साम्यवाद ने अपनी चकाचौंध खो दी, रूस की कम्युनिस्ट पार्टी का विसर्जन हो गया, पूर्वी यूरोप और सोवियत गणतंत्र के देश सोवियत रूस की कम्युनिस्ट गुलामी से मुक्त होकर आजाद हो गए।

सोवियत रूस की दासता के अभ्यस्त लोग, विशेषकर भारत के कम्युनिस्ट इतनी बड़ी घटना और क्रांति के बाद भी इस यथार्थ को अभी हजम नहीं कर पा रहे हैं। भारत के कम्युनिस्ट अभी भी सोवियत रूस की तर्ज पर भारत को बहुराष्ट्रीय राज्य बता रहे हैं। गत चार जनवरी, 1992 को मद्रास की अपनी चौदहवीं कांग्रेस की पूर्व संध्या पर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रवक्ता सुरजीत ने भारत को अनेक राष्ट्रों का समूह बताया है। भारत को भी सोवियत संघ के रास्ते पर ले जाकर ये इसे अस्तित्वहीन करने के लिए कृत संकल्प हैं किन्तु वे यह भूल गए कि इस कम्युनिस्ट मायाजाल में यदि भारत के राष्ट्रीय यथार्थ और एकात्म जीवन दर्शन का सामना करने की क्षमता होती तो उसकी जन्मभूमि ने उसे दुत्कार न दिया होता।

साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों प्रतिक्रियावादी और मनुष्य को दास बनाने के दर्शन हैं। जिस तरह सोवियत रूस के अंतिम राष्ट्रपति गोर्बाचोव यह कहकर अपने

दायित्व से मुक्त हुए थे कि यह (रूसी) समाज आजाद हो गया। इसे राजनीतिक और आध्यात्मिक तौर पर मुक्त कर दिया गया है। यह हमारी अतीव महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जिसे हमें मजबूती के साथ पकड़े रखना है। किन्तु हम इसे पूरी मजबूती के साथ पकड़ नहीं पाए हैं, क्योंकि अभी हमने आजादी का उपयोग करना सीखा ही नहीं है, इसी प्रकार अमरीका का भी कोई बुश एक दिन पूंजीवाद की गुलामी से अमरीका और दूसरे देशों को मुक्त करके अलविदा कह दे तो कोई आश्चर्य नहीं होगा।

छः वर्षों का काल खण्ड

साम्यवाद की यह भी एक विडंबना रही कि जिस समतावादी दर्शन ने सोवियत रूस के पड़ोसी देशों को आकर्षित किया, जिसके कारण उन्होंने रूसी गुलामी स्वीकार की, उसी समता और असमानता की उनकी भूख ने उस महासंघ को तोड़ भी डाला। सर्वहारा क्रांति के महानायक लेनिन ने 1917 से 1923 के छः वर्षों में जिस सोवियत संघ की नींव रखी थी, 1985-1991 के केवल छः वर्षों में ही उस महाशक्ति को गोर्बाचोव ने विसर्जित कर दिया। इस क्रांति प्रक्रिया में सोवियत संघ के बनने और मिटने में केवल छः वर्ष और लाल झण्डा उतरने में केवल छः सेकेण्ड लगे। लेनिन ओर स्तालिन की प्रतिमाएं उखाड़ कर फेंक दी गईं तो सोवियत संघ और रूसी जनता को मुक्त कराने वाले गोर्बाचोव के रूस के राजनीतिक परिदृश्य से अस्त होने पर किसी को कोई दुःख भी नहीं हुआ क्यो ? क्योंकि अपनी राष्ट्रीय अस्मिता और मान सम्मान का मूल्य चुका कर भी वे लोग जो सुख और संतोष प्राप्त करना चाहते थे वह उन्हें नहीं मिला। दुनिया के दूसरे देशों को भी मार्क्सवादी दर्शन और सर्वहारा क्रांति में केवल धोखाधड़ी, केवल दमन, हत्या और निरंकुशता दिखाई दी। अतएव कुल मिलाकर सभी ने सोवियत संघ के विसर्जन, स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय, साम्यवादी दर्शन और सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के यथार्थ के उजागर और समाप्ति पर संतोष और सुख की सांस ली।

एकमात्र विकल्प

अब क्या होना है? अब होना यह है कि एक नए विश्व के उदय होने की संभावनाओं की तलाश में यदि दुनिया के देश भविष्य में भारत की ओर देखने लगें, तो इसमें कोई असंभवनीयता नहीं होगी। क्योंकि मनुष्य जीवन को सुखी बनाने का सृष्टि प्रदत्त सनातन जीवन दर्शन केवल भारत के पास है। भारत अपने इस आगत उत्तरदायित्व का निर्वाह करने की तैयारी करे। इस भूगोल पर अब भारत ही एकमात्र विकल्प शेष है, जो मनुष्य और उसकी राष्ट्रीय अस्मिताओं को सुरक्षित रखते हुए वैश्विक दायित्व का भी निर्वाह करने की क्षमता और दृष्टि प्रदान कर सकता है। यही नियति का निर्देश है और विधि का विधान भी। वाममार्गी बुद्धिराक्षस और मानसिक

स्तर पर पराजित लोग इस यथार्थ को नकार सनातन की अभिव्यक्ति को रोक नहीं सकते। पांच हजार. वर्ष से भी अधिक कालखंड का ज्ञात इतिहास जिस देश की धरोहर है, जिसकी जीवन शक्ति आज भ विद्यमान है, उसी भारत को कल के आधुनिक विश्व का निर्माण करना है। उसकी अन्तःचेतना में पल रहा चित्र और चरित्र ही भावी विश्व का भी चित्र और चरित्र है। सदियों से रिक्त विश्व गुरु का सिंहासन भारत का आह्वान कर रहा है। साम्यवाद की असफलता, सोवियत संघ का विसर्जन और कुछ नहीं तात्कालिकता पर सनातनता की विजय प्रमाण है। इसी कारण तो इसके अंत पर न किसी ने आंसू बहाए और न किसी को कोई अफसोस हुआ।

19 जनवरी 1992

श्रीराम मंदिर का न होना और बाबरी मस्जिद का होना?

लगभग छः वर्ष और विशेषकर एक फरवरी, 1986 से ऐसा होता आ रहा है कि जितनी बार यह कहा जाता है कि हिन्दू सांप्रदायिक और आतंकवादी तत्व अयोध्या में बाबरी मस्जिद को तोड़कर मंदिर बनाना चाहते हैं, उतनी बार मैं अयोध्या जाता हूं, बहुत बारीकी से हर बार तलाश करता हूं कि वह तथाकथित मस्जिद है कहां, जिसे तोड़कर मंदिर बनाए जाने का आरोप लगाया जाता है।

श्रीराम जन्मभूमि पर ही नहीं, फैजाबाद और अयोध्या रेलवे स्टेशन या बस अड्डे पर उतरिए और रिक्शा या टैक्सी वाले से कहिए कि 'मुझे बाबरी मस्जिद ले चलो', तो वह आश्चर्य मिश्रित प्रश्नवाचक मुद्रा में देखने लगता है कि 'यह बाबरी मस्जिद है कहां?' किन्तु यदि उससे श्रीराम जन्मभूमि पर ले चलने के लिए कहा जाए तो वह तत्काल तैयार होकर चल पड़ता है।

जिस ढांचे को तथाकथित सांप्रदायिक सद्भावनावादी लोग बाबरी मस्जिद कहते हैं, उस ढांचे, उसके आसपास और दूर-दूर तक मस्जिद का कहीं कोई निशान नहीं है। वहां स्थित डाकखाने का नाम है 'डाकखाना जन्मस्थान', वहां के पब्लिक टेलीफोन पर लिखा है, 'टेलीफोन जन्मस्थान', पुलिस की जीप और पुलिस चौकी पर लिखा है 'पुलिस जन्मस्थान' और 'पुलिस चौकी जन्मस्थान', अयोध्या स्टेशन से आबादी में जाते समय महत्वपूर्ण मोड़ों पर जन्मभूमि या तीरांकित 'जन्मस्थान' या 'जन्मभूमि की ओर' लिखा है। दृश्य और वस्तुजगत में किसी भी रूप में वहां मस्जिद का अस्तित्व दिखाई नहीं देता। सरकारी कागजों, राजस्व के दस्तावेजों में भी बाबरी मस्जिद दर्ज नहीं है। 'सर्वे आफ इंडिया' के एक सर्वेक्षण में 'मस्जिद जन्मस्थान' अवश्य दर्ज है

बाबरी मस्जिद ढूंढिए ?

इतिहास के पन्नों पर यह लिखा है कि बाबर के सेनापति मीर बाकी ने रामकोट में स्थित एक मंदिर को तोड़कर मस्जिद बनाई, जनश्रुतियां, साहित्य और इतिहास सन् 1529 से दो नवंबर, 1990 तक उस स्थान की मुक्ति के लिए सतहत्तर बार युद्ध और संघर्ष की पुष्टि करते हैं। इस स्थान पर श्रीराम की गरिमा के अनुरूप भव्य मंदिर बनाने के लिए लगभग तीन लाख रामभक्त आत्मबलिदान कर चुके हैं। श्रीराम

जन्मभूमि पर स्थित श्रीरामलला के मंदिर को तोड़कर मस्जिद बनाने में प्रतिरोध के कारण मीर बाकी सफल नहीं हो पाया, तो एक पत्थर पर 'फरिश्तों के उतरने की जगह' लिखकर उस भवन पर जड़ दिया। न वहां किसी ने नमाज पढ़ी, न उसके आसपास कोई नमाजी रहता है और न मुसलमान आबादी ही है। मीर बाकी के बाद मुस्लिम बादशाहों ने जिन्हें उस ढांचे का मालिक बनाया था उनके खानदान के लोग पास के गांव में रहते हैं। वे शिया संप्रदाय के हैं। सुन्नियों ने उस ढांचे का अधिकार उनसे छीन लिया है। उस खानदान का जो एक व्यक्ति अभी जीवित है, उसे सुन्नियों ने पागल घोषित कर दिया है। उस खानदान का कहना है कि वह उसकी मिल्कियत तो है, किन्तु न उसके अधिकार में है और न वहां नमाज पढ़ी जाती है। श्रीराम जन्मभूमि पर ग्यारहवीं सदी से हिन्दू मंदिर और भवन होने का प्रमाण है। विक्रमादित्य द्वारा उसी स्थान पर मंदिर बनवाए जाने, मंदिर में पूजा-अर्चना और उसकी देखरेख के लिए सरकारी कोष से धन दिए जाने का भी प्रमाण मिलता है।

नवंबर, 1990 के बाद चन्द्रशेखर प्रधानमंत्री बने थे, तो उन्होंने श्रीराम मंदिर और बाबरी मस्जिद वालों से दस्तावेजी प्रमाण मांगे थे कि दोनों अपना-अपना दावा सिद्ध करें। किन्तु बाबरी वाले अपने पक्ष में न कोई ऐतिहासिक प्रमाण दे सके थे और न बातचीत को किसी अन्तिम और निर्णायक बिन्दु पर ले जाने के लिए ही तैयार थे। राम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति, श्रीराम कारसेवा समिति और विश्व हिन्दू परिषद ने बाबरी वालों के दस्तावेजों की समीक्षा करके उनकी अप्रासंगिकता, अनैतिहासिकता और संवेदनशीलता को उजागर करके सरकार के पास भेज दिया था, किन्तु सरकार के बार-बार आग्रह करने पर भी बाबरी वालों ने राम मंदिर के पक्षधरों के दस्तावेजों की समीक्षा नहीं की और न उसमें लिखित तथ्यों पर कोई सप्रमाण प्रश्न चिन्ह ही लगाए।

बाबरी मस्जिद कार्रवाई समिति के एक सदस्य ने तो यह भी कहा था कि, 'हम लोग बातीचत के जाल में नाहक फंस गए। आप लोगों (राम मंदिर के पक्षधरों) ने सोच-समझकर, योजनाबद्ध तरीके से तैयारी और सप्रमाण एकत्र करके आंदोलन चलाया है, हम तो ऐसे ही बिना किसी प्रमाण के इसमें उलझ गए। हम इस जाल से अतिशीघ्र निकलना चाहते हैं। स्थिति यह है कि यदि हम प्रमाण मान लें, तो मुसलमान हमें जिन्दा नहीं छोड़ेगा और न मानें तो बातचीत तोड़ने का आरोप लगेगा। अतः हमारे हित में है कि हम बातचीत से अलग हो जाएं।'

कहा जाता है कि मस्जिद तोड़कर उसके मलबे से मंदिर नहीं बनाने दिया जाएगा। पहली बात तो यह है कि यदि वहां कोई मस्जिद होगी तभी तो उसे तोड़े जाने का प्रश्न उपस्थित होगा। दूसरी बात यह है कि यदि बाबर के सेनापति मीर बाकी द्वारा किसी मुसलमान फकीर कलन्दर के कहने से मंदिर तोड़कर उसके मलबे से मस्जिद बनाने का अफल प्रयास किया जा सकता है तो हिन्दू अपने ही राष्ट्र देवता के

भव्य मंदिर का पुनर्निर्माण क्यों नहीं कर सकते ? यदि मंदिर का तोड़ा जाना सांप्रदायिक शत्रुता नहीं था, तो मंदिर का पुनर्निर्माण सांप्रदायिक, मुस्लिम और मस्जिद विरोधी क्यों और कैसे हो गया?

मंदिर के रूप में ज्ञात कथित मस्जिद को तोड़ने का प्रश्न भी अकल्पित है। किसी पुराने मंदिर या भवन का जीर्णोद्धार उसे तोड़ना नहीं कहा जाता। उसकी हर ईंट और उसका हर पत्थर बदल देने की प्रक्रिया को पुनर्निर्माण कहा गया है। निर्माण को ध्वंस बताना शब्दों का मूलार्थ बदलने का प्रयास करना है।

अस्तु ! क्या हमने यह विचार किया है कि जिस तथाकथित और कल्पित मस्जिद को तोड़कर मंदिर बनाने को हिन्दुओं की सांप्रदायिकता और मुस्लिमों के साथ शत्रुता, भारत की संस्कृति और सामाजिक स्वभाव के विरुद्ध बताया जा रहा है, उस मस्जिद का अस्तित्व न होना और उसके संदर्भ में सामाजिक, राजनैतिक, सांप्रदायिक और राष्ट्रीय संताप उत्पन्न करने का परिणाम क्या हो रहा है और भविष्य में यह क्या मोड़ लेगा ?

यदि हमने अर्थात् छद्म सेकुलरिस्टों तथा देश की एक भूमि में हजारों वर्षों से रह रहे एक राष्ट्र में अनेक राष्ट्र, अनेक राष्ट्रीयताओं और अनेक संस्कृतियों का बीज बोने वाले सत्तावादी राजनेताओं ने अपनी इस स्थापना, अपने इस प्रचार, अपने तथ्यहीन तर्कों और उनमें से जन्म लेने वाले दुष्परिणामों के विषय एवं संदर्भ में सोचा होता तो संसद से लेकर सड़क तक अस्तित्वहीन 'बाबरी मस्जिद' की रक्षा के लिए अपना सिर कटा देने की कसमें न खाते।

विभाजन की आधारशिला

श्रीराम मंदिर के जीर्णोद्धार का विरोध और अस्तित्वहीन कल्पित मस्जिद की रक्षा करने के अभियान के अनेक आयाम हैं, और हर आयाम उतना ही घातक है जितना भारत का विभाजन, कश्मीर में पाकिस्तान जिन्दाबाद, पंजाब तथा असम में आतंकवाद और हत्या। हिन्दू और मुसलमानों को मंदिर-मस्जिद की दो समानान्तर राष्ट्रभूमि पर खड़ा करना भविष्य में भारत की भूमि पर एक और मजहबी राज्य के निर्माण की आधार-शिला रखना है। यदि 15 अगस्त, 1947 को देश की आजादी के पूर्व मजहबी आधार पर पाकिस्तान नाम का इस्लामी राष्ट्र स्वीकार करने की गलती न की गई होती, तो इस देश का मुसलमान यहां एक समानान्तर राष्ट्रधारा के रूप में नहीं, एकरस राष्ट्रीय धारा बनकर रहता, तो पंजाब में खालिस्तानी आतंकवाद न पनपता, तो सिख अपने प्रथम गुरु गोविन्द सिंह द्वारा नित्य भजे जाने वाले 'राम के पुत्तर' के रूप में एकात्म होकर रहने में गर्व का अनुभव करते, तो सिखों की इस राममयता को कोई स्वार्थी राजनीति, कोई पड़ोसी पाकिस्तान अलगाववादी आतंक की आग में जलाने का साहस करना तो दूर रहा, ऐसा करने की सोचता तक नहीं। तब न

कश्मीर में पाकिस्तानी मुद्रा भारतीय मुद्रा को हकलाती, न अनन्तनाग को इस्लामाबाद के नाम से पुकारा जाता, न श्रीनगर में भारत के राष्ट्रध्वज को जलाया और पाकिस्तान का झण्डा फहराया जाता, न वहां के हिन्दू भगाए जाते, न भारत के मुसलमान कश्मीर में पाकिस्तान प्रेरित आतंकवाद, हत्या, बलात्कार और मंदिरों को तोड़ने का कभी मौन तो कभी मुखर समर्थन करते।

श्रीराम जन्मभूमि पर राम मंदिर बनाने को मस्जिद तोड़ना प्रचारित करने का संताप आंतरिक ही नहीं, बाहरी भी है। यह केवल मुसलमानों को खुश करके उनका वोट प्राप्त कर लेने, देश के अंदर तथाकथित उदारवादी होने का पदक प्राप्त कर लेने, किसी इस या उस दल या नेता को सांप्रदायिक या कट्टरपंथी कहकर बदनाम कर देने तक ही सीमित नहीं है। इसके कारण दुनिया के दूसरे देशों, राजनेताओं, सरकारों, बुद्धिजीवियों और मुस्लिम देशों को ये संदेश और संकेत मिल रहे हैं कि भारत में मुसलमान सुरक्षित नहीं हैं। भारत के मुसलमान सांविधानिक संरक्षण से वंचित हैं। सेकुलर भारत में सांप्रदायिक आचरण किया जाता है। बहुसंख्यक हिन्दू समाज ने अल्पसंख्यक, अर्थात् मुस्लिम समाज का जीना, रहना, रोजा और नमाज दूभर कर दिया है, भारत में मस्जिद और कुरान का अपमान किया जाता है। जबकि तथ्य उसके विपरीत है। तथ्य यह है कि भारत के अल्पसंख्यक अर्थात् मुसलमान बहुसंख्यक अर्थात् हिन्दुओं की कीमत पर, हिन्दुओं से भी अधिक सुरक्षित और स्वतंत्र हैं। कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि भारत में केवल मुसलमान आजाद हैं, हिन्दुओं को आजादी मिलना अभी शेष है। मुसलमान 'समान नागरिक कानून' नहीं चाहते, तो भारतीय संसद संविधान प्रेरित यह कदम नहीं उठाती। सर्वोच्च न्यायालय उन्हें राष्ट्रीय धारा और सामाजिक संरचना में शामिल करने का निर्णय सुनाता है तो सर्वोच्च न्यायालय और संविधान की मर्यादा की अवमानना करके भी मुसलमानों को खुश करने के लिए कानून बदल दिया जाता है, संविधान में संशोधन कर दिया जाता है। सरकार की मुस्लिम सापेक्षता हिन्दुओं के अपमान, हिन्दू विरोध और राष्ट्र के विघटन की पृष्ठभूमि में रूपान्तरित होने लगती है।

सहनशीलता का अपमान

अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि पर मस्जिद तोड़कर मंदिर बनाने के प्रयास की निन्दा और रामभक्तों को कट्टरपंथी हिन्दू आतंकवादी कहने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि उनका यह कथन केवल हिन्दुओं को ही नहीं, संपूर्ण भारत देश और राष्ट्र को आतंकवादी तथा कट्टरपंथी सिद्ध करता है। देश की 85 प्रतिशत जनसंख्या की भावनाओं को बहुसंख्यक सांप्रदायिकता कहना अपनी राष्ट्रीयता को सांप्रदायिक कहना है। भारत के राष्ट्रीय समाज पर मस्जिद तोड़कर मंदिर बनाने के आरोप इतिहास और अनुभव के विपरीत एवं विरुद्ध हैं। राम मंदिर आंदोलन की प्रतिक्रिया में मुसलमानों

द्वारा मंदिर तोड़ने का अभियान तो चला, किन्तु हिन्दुओं ने रामभक्तों की हत्या, मुसलमान नेताओं तथा बुद्धिजीवियों द्वारा अपमानजनक आरोप लगाने और उत्तेजना उत्पन्न किए जाने के बाद भी प्रतिशोध या बदले की भावना से प्रेरित होकर किसी मस्जिद को हाथ नहीं लगाया। हिन्दू युवतियों और नारियों के साथ बलात्कार करने का बदला मुस्लिम महिलाओं के साथ बलात्कार करके नहीं लिया, मुस्लिम बहुल क्षेत्रों से हिन्दुओं को निकाले जाने के प्रतिशोध में हिन्दू बहुल क्षेत्रों से मुसलमानों को नहीं भगाया। भारत राष्ट्र के साथ रक्त-मांस की तरह रचे बसे हिन्दुओं द्वारा भारत के राष्ट्र देवता श्रीराम प्रभु का उनके अवतरण स्थल पर स्थित जीर्ण मंदिर का जीर्णोद्धार करने को मस्जिद तोड़ना कहने वाले लोग मुसलमानों द्वारा मादरों को तोड़े जाने, हिन्दुओं को भगाए जाने, हिन्दु महिलाओं के साथ बलात्कार, हत्या और हिंसा पर केवल मौन ही नहीं रहते, अपितु उसे आर्थिक असंतुलन और बेरोजगारी की सहज निष्पत्ति बताकर उसका औचित्य भी सिद्ध करते हैं।

होना तो यह चाहिए था, किन्तु हुआ नहीं और इस समय जो कुछ चल रहा है उसके चलते यह होगा भी नहीं कि देश और दुनिया को यह बताया जाता, इतिहास के पृष्ठ सही-सही पढ़ाए जाते, देशी बुद्धिजीवी, समाजसेवी राजनेता, सत्ता-प्रतिष्ठान और विदेश स्थित दूतावासों के भारतीय राजदूत देश और दुनिया को यह बताते और समझाते कि मस्जिद नहीं तोड़ी जा रही है, मन्दिर का जीर्णोद्वार किया जा रहा है। श्रीराम मन्दिर के पुनर्निर्माण को साम्प्रदायिक और एक अस्तित्वहीन काल्पनिक मस्जिद की रक्षा का शोर मचाना ही सेकुलर होना जिनकी मानसिकता है, एक राष्ट्रीय धारा में एक समाज, एक जन और एक संस्कृति के रूप में अलग-अलग समुदायों द्वारा अपनी अलग-अलग पूजा-पद्धतियां और पहचान बनाए रखकर एक राष्ट्रके रूप में स्वाभिमान के साथ रहने के आग्रह को राष्ट्रीय अखण्डता के लिए खतरा मानना और अलग-अलग मजहबों एवं कर्मकाण्डों को मानने वालों द्वारा अलग-अलग राष्ट्र के रूप में स्थापित होने के लिए चल रहे आन्दोलनों को संतुष्ट करके राष्ट्रीय अखण्डता को पुष्ट करना जिनकी सोच है, वे यही करेंगे जो कर रहे हैं।

अर्थ बदलने की साजिश

बाबरी मस्जिद आन्दोलन केवल पांच वर्ष पुराना है। एक फरवरी, 1986 के बाद इसका जन्म हुआ। यदि श्रीराम को अपने ही मन्दिर में ताले में कैद रहने दिया गया होता, तो जिसे कुछ लोग बाबरी मस्जिद कहते हैं, उसको कोई स्मरण तक न करता। जन्मभूमि स्थित मन्दिर की याद तो देश के करोड़ों लोगों को सैकड़ों वर्षों से थी, वे उसकी पुनर्प्रतिष्ठा के लिए जूझते और मरते-जीते आए थे। किन्तु एक फरवरी, 1985 तक किसी भी मुसलमान को बाबरी मस्जिद की याद नहीं आई। किसी भी मुसलमान नेता ने इसके पूर्व वहां जाकर नमाज नहीं पढ़ी। किसी नमाजी और किसी भी इमाम

ने खण्डहर होती जा रही उस इमारत की मरम्मत करने की न योजना बनाई, न मांग की। 'मुस्लिम वक्फ बोर्ड' ने भी उसकी देखभाल करने का कोई उजागर प्रयास नहीं किया।

और हिन्दू ?

हिन्दू सैकड़ों वर्ष से वहां पूजा करते आ रहे हैं। उसी स्थान पर श्रीराम प्रकटोत्सव मानते आ रहे हैं। वहां पूजा और अखण्ड कीर्तन करते आ रहे हैं और जब मन्दिर के उस नित्य छीजते ढांचे को राष्ट्रीय गरिमा में रूपान्तरित करने का प्रयास किया जाता है। तो कहते है कि मस्जिद तोड़ी जा रही है।

श्री राम मन्दिर को मस्जिद कहने वालों में अधिकांश लोग ऐसे हैं, जिन्होंने वह स्थान तो दूर, अभी तक अयोध्या भी नहीं देखा है। मस्जिद के पक्षधर वाममार्गियों, छद्म सेकुलरिस्ट बुद्धिजीवियों और राजनेताओं में अधिकाश लोग ऐसे हैं, जो बिना देखे-जाने राम मन्दिर को मस्जिद कहकर देश को दुनिया में बदनाम करते नहीं थकते। किन्तु जो वहां जाते हैं वे मेरी ही तरह आसपास के लोगों से पूछते हैं कि मन्दिर तो देख लिया, किन्तु वह बाबरी मस्जिद कहां है, जिसे तोड़ा जाने वाला है। और इसका सबसे मजेदार पक्ष यह होता है, कि वे वही लोग होते हैं जो मस्जिद की रक्षा करने के लिए अपना शरीर और अपनी सरकार कुर्बान कर देने का दावा करते हैं। और वे लोग ही यह कहते है कि "अरे भाई, वहां मस्जिद है ही कहां ?"

बहुत हो चुका अपने देश को दुनिया में बदनाम करने और उनके सामने राष्ट्रीय समाज की भावना और सम्मान की पुनर्प्रतिष्ठा के प्रयास को कट्टरपंथी और साम्प्रदायिक सिद्ध करने का यह राष्ट्रविरोधी और आत्मघाती कार्य। इसे यथाशीघ्र बन्द कर देने में ही अब भलाई है। हत्या-हिंसा और आतंक में ही जिनका जीवन है, मस्जिद और चर्च के लिए हत्या, हिंसा और आगजनी करना जिनका इतिहास है , वे आज भी यही काम कर रहे हैं।

एक राष्ट्र, एक जन, एक संस्कृति, विभिन्न विचारों और सम्प्रदायों को सम्मिलत एवं समरस भूमि पर रहना है तो यहां के राष्ट्रीय मन और राष्ट्रीयता का अपमान करते रहने का यह सलसिला समाप्त करना ही होगा।

श्रीराम मन्दिर को मस्जिद कहने वाले अपने कथन की प्रतिक्रिया के आयामों पर विचार करें। उनका राजनीतिक स्वार्थ और यह आत्मछल राष्ट्रीय हित के विपरीत राष्ट्रीय धारा को अपवित्र, राष्ट्रीय अस्मिता को अपमानित, राष्ट्रीय प्रतीकों को प्रताड़ित, राष्ट्रीय इतिहास को अस्वीकार करके भारत के वर्तमान एवं भविष्य पर अति गंभीर, घातक और मारक आघात है। हीनता और पराजय बोध से पीड़ित, अपमानित, कुंठित तथा अपनी ही जन्मभूमि में तिरस्कृत समाज में देश के उज्ज्वल, श्रेष्ठ और गौरवशाली भविष्य का निर्माण करने की आकांक्षा की अपेक्षा करना सर्वथा अकल्पनीय है। अयोध्या में राम जन्मभूमि पर राम मन्दिर के न होने और वहां बाबरी मस्जिद

होना मान लिए जाने का अर्थ है भारत का भी न होना। भारत की राष्ट्रीय अस्मिता की अस्तित्वहीनता को स्वीकार कर लेना। क्या चाहते हैं हम, अर्थात् मन्दिर को बाबरी मस्जिद कहने वाले लोग ?

2 फरवरी 1992

ऐसे रचा गया इतिहास

छब्बीस जनवरी, 1992। समय प्रातः आठ बजकर पच्चीस मिनट। तीन अम्बेसडर कारें धड़धड़ाती हुई आईं और श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर) के लाल चौक पर आकर ठहर गईं। एक कार से कश्मीरी सलवार और लम्बा झांगडा पहले एक व्यक्ति उतरा और ठीक उसी स्थान की ओर बढ़ा जहां पाकिस्तान जिन्दाबाद के साथ गत वर्ष भारत के चक्रांकित राष्ट्रध्वज का अपमान किया गया था, उसे बूटों से कुचला गया था, जलाया गया था। वह व्यक्ति सहसा पहचान में न आता यदि उसके सहयोगी श्री नरेन्द्र मोदी उसके पीछे-पीछे आते दिखाई न देते। वह व्यक्ति था भारतीय जनता पार्टी का अध्यक्ष, कन्याकुमारी से कश्मीर तक की राष्ट्रीय एकता यात्रा का यात्री और महानायक डाक्टर मुरली मनोहर जोशी

डा० जोशी लाल चौक आए। प्रथमतः कन्याकुमारी में पूजित और करोड़ों भारतीयों द्वारा अभिनन्दित राष्ट्रध्वज फहराया, तत्पश्चात् स्तम्भ पर निगडित राष्ट्रध्वज की डोर खींचकर भारतीय गणतंत्र की सार्वभौमिक गरिमा को धरती से आकाश तक स्थापित किया।

मैं इस ऐतिहासिक क्षण और इस गौरवपूर्ण इतिहास का प्रत्यक्षदर्शी था। अभी इस सबको अपनी आंखों में भर भी नहीं पाया था कि अंग्रेजी भाषा के महान साहित्यकार शेक्सपियर की यह उक्ति मेरे सामने लिख सी उठी थी कि--एण्ड ऑल दि एलीमेन्ट्स ऑफ दि नेचर विल स्टैण्ड एण्ड से "दिस इज दि मैन" और तत्काल मेरे मन ने इसको विस्तार दिया था कि 'एण्ड दिस मैन हैज डन इट'

समस्त भारतीय राष्ट्रजन के अन्तःकरण में राष्ट्रीय स्वाभिमान की तेजोधारा प्रवाहित करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध इस राष्ट्रीय एकता यात्री के छियालीस दिवसीय अनुष्ठान का यह उद्‌यापन था।

कश्मीर घाटी के श्रीनगर के लाल चौक पर भारत का तिरंगा तो फहराया, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत की राष्ट्रीय अस्मिता वहां सुरक्षित है, भारत की राष्ट्रीय अस्मिता वहां अक्षत है और कश्मीर घाटी पर वस्तुतः भारत की राजनीतिक संप्रभुता स्थापित है। सत्य यह है और इस सत्य को यथाशीघ्र स्वीकार कर लेने में ही

भारत का हित है कि अब कश्मीर वस्तुतः भारत में नहीं रह गया है। कश्मीर घाटी अब किसी और के अधिकार में है। उसे अपनी सार्वभौम सत्ता के अन्तर्गत लाने के लिए भारत को इस पर पुनः अधिकार (Recapture) करना होगा।

यथार्थ का अनुभव

यह आकलन या निष्कर्ष मेरा अपना नहीं यह वह यथार्थ है, जिसे मैंने पच्चीस और छब्बीस जनवरी, 1992 को स्वयं देखा और अनुभव किया है।

—पच्चीस जनवरी, 1922 को दो बजे अपरान्ह हम जम्मू के हवाई अड्डे से श्रीनगर की ओर उड़े थे तो समझ रहे थे कि हम अपने नन्दनवन के उस केन्द्र में जा रहे हैं, जो भारत को विधाता का दान है और जहां साक्षात् अवतरित होकर मां शारदा ने भारत की अखिलता, अखण्डता और एकात्मकता की अनुभूति कराने के लिए उसे 'श्री' विद्या का सूत्रपात किया था, जिसके द्वारा हमारे आत्मीय जन हमारी संज्ञा को सुशोभित करने के पश्चात् ही हमें सम्बोधित करते हैं, उसके कारण कश्मीर से कन्याकुमारी और कामाख्या से द्वारिका तक के समस्त भारतवासियों के नाम के पूर्व सहज भाव से श्री जोड़ा जाता है और किसी भी भारतीय पंथ, जाति या क्षेत्र के व्यक्ति को कोई आपत्ति नहीं होती। यदि आपत्ति होती भी है तो 'श्री' विहीन नामोच्चार पर। 'श्री' हीन नाम को भारत में अपशकुन और अपमान जनक माना जाता है।

तो फिर हमें मिला क्या वहां ? और कुछ नहीं केवल सन्नाटा। कुछ सन्नाटे का भय, और कुछ भय का सन्नाटा। भारतीय सुरक्षा बल के जवानों, विमान के चालकों और कमचारियों के अतिरिक्त हमें वहां और कुछ भी न दिखा, न मिला।

और जो मिले, जिन्हें हमने देखा, हम उनके लिए और हमारे लिए वे कैसे थे ? हवाई अड्डे के छज्जे पर एकत्र होकर हमारी ओर झांक रहे कर्मचारियों के चेहरों पर हमारे और उनके स्वयं के प्रति एक अजीब सी बेचारगी थी, एक अजीब सा सन्देह था, एक अजीब सा दया का भाव और एक अजीब सी दयनीयता थी। और उनकी ओर देखकर हमें भी ऐसा लगा था कि वे कुछ कहना चाहते थे किन्तु कह नहीं पा रहे थे, वे कुछ करना चाहते है किन्तु कर पा नहीं रहे हैं। वे अपने देश की भूमि पर पराए जैसे खड़े हैं। शब्द शून्यता तो थी, किन्तु भाव प्रवणता भी थी, बोलने का कार्य उनकी वाणी नहीं, आंखें कर रही थीं।

कुछ मिनट हम हवाई अड्डे के भवन में खड़े रहे कि सीमा सुरक्षा बल की तीन बसें आईं, शब्द से नहीं संकेत से निर्देश दिया कि हम उन बसों में बैठ जाएं। धीरे से किसी ने कहा प्रत्येक बस में बीस-बीस की संख्या में बैठें। बसों में बैठ जाने के बाद पहली आवाज सुनाई दी थी कि, "यदि रास्ते में गोली चले तो आप लोग आतंकित न हों। बस की फर्श पर लेट जाएं या झुक जाएं। 'यद्यपि इसकी सम्भावना

कम है, किन्तु सतकर्ता जरूरी है।"

भारतीय वायुसेना और सीमा सुरक्षा बल की छावनी के बीच से हम लोग श्रीनगर की ओर बढ़े तो गोलियों की शब्द ध्वनि ने सन्नाटा तोड़ा। आसपास के क्षेत्रों से रह-रहकर गोलियों की आवाजें आतीं और ऐसा लगता कि कहीं मुकाबला हो रहा है। द्वार बन्द मकानों के सामने और जनशून्य सड़कों से होकर हम ले जाए गए वहां, जहां कश्मीर घाटी के आतंकवादियों को पकड़ कर पूछताछ के लिए लाया जाता है। ढलते सूरज और बढ़ते अंधेरे के साथ-साथ गोलियों की आवाज भी बढ़ने लगी और एक समय तो ऐसा लगा कि जैसे दीपावली के पर्व पर पटाखे फोड़े जा रहे हों।

सच से हुआ सामना

शाम को हमें सूचना मिली कि हम सड़क पर बाहर टहल सकते हैं, किन्तु मुख्यद्वार के बाहर न जाएं। मैं और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ज्ञानचन्द्र द्विवेदी सड़क पर टहल रहे थे कि किनारे पर दो महिलाएं हमारी ओर निहारती खड़ी मिलीं। हम उनके पास पहुंचे तो पहले तो वे सहमीं, किन्तु बाद में संकोच से पूछा; आप लोग कहां से आए हैं ? द्विवेदी जी ने बताया—"दिल्ली और इलाहाबाद से। ये हैं पत्रकार भानुप्रताप शुक्ल और मैं एडवोकेट ज्ञानचन्द्र द्विवेदी।"

उनका दूसरा प्रश्न था, 'क्या आप एकता यात्री हैं , हमारा उत्तर था, 'जी हां।' उन्होंने पूछा, 'क्या आप दोनों हमारे घर चलेंगे ?'

इस प्रश्न पर हम दोनों चुप रहे। हमारे मन में संदेह और भय उठा। क्या कहें; कैसे छुटकारा पाएं ? तभी वे दोनों एक साथ ही बोलीं, 'चलिए एक कप चाय पी लीजिए हमारे यहां, फिर आपको यहीं पहुंचा जाएंगे। उनमें से एक थी श्रीमती पुष्पा शर्मा और दूसरी थी श्रीमती निर्मल कौर। पंथा चौक क्षेत्र में उनका एक छोटा सा मकान है। एक के पति इंनजिनियर हैं, दूसरे के पति कार्यालय में काम करते हैं। हम उनके घर पहुंचे तो वे आनन्द से भर उठे। बोले, 'हमारा भाग्य कि आप हमारे घर आए। हम लोग आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब एकता यात्री आएं और लाल चौक पर झण्डा गाड़ें।

एक चाय बनाने गई, तो दूसरी लड्डू लाने दौड़ी। दो बड़े गिलासों में चाय आई। द्विवेदी जी ने मेरे बारे में टोकना चाहा कि ये चाय नहीं पीते। मैंने उनका हाथ दबाया, 'आज पियूंगा चाय।' और एक नहीं दो गिलास चाय पिया, कई लड्डू और खूब बादाम खाया। केवल इसलिए कि उन दोनों बहनों की इच्छा थी, कि हम खाएं और खाते ही जाएं। उनका उल्लास हमें उत्साह प्रदान कर रहा था। मैंने पूछा, 'बहन जी, तुम इतनी खुश क्यों हो ? धड़ाधड़ गोलियां चल रही हैं और तुम हंस रही हो। वे दोनों एक साथ बोलीं, 'हम खुश इसलिए हैं कि आप लोग यहां आए हैं। कोई ऐसा तो है, जो इस हिस्से को भी अपना देश मानता है। रही हंसने की बात तो गोलियों

की आवाज सुनने की हमें आदत पड़ गई है। दो वर्ष से लगातार दिन-रात हम दीवाली के पटाखों की तरह गोलियों की आवाजें सुनते आ रहे हैं। आप भी यहां रहें तो पन्द्रह दिन में आपको भी ऐसा लगने लगेगा कि जैसे कहीं कुछ भी नहीं हो रहा है।

और फिर उन दोनों ने जो कुछ बताया वह कश्मीर घाटी का वह यथार्थ है, जिसको लिखना और जिसके विषय में बोलना शायद भारत सरकार की गोपनीयता को भंग करना माना जाएगा।

वे दोनों कभी साथ-साथ तो कभी अकेले बोलतीं, 'भैय्या ! हमारी कोई सुध नहीं लेता। तुम्हारी दिल्ली झूठों की बस्ती है। वहां सभी झूठ बोलते हैं। भारतीय संसद में झूठ बोला जाता है। पत्रकार झूठ लिखते हैं। दूरदर्शन और रेडियो पर झूठ बोला जाता है। प्रधानमंत्री और गृहमन्त्री झूठ बोलते हैं। कश्मीर घाटी का मामला खत्म हो चुका है। श्रीनगर कहने भर को भारत के अधिकार में है। भारत की यहां कुछ भी नहीं चलती। हम लोग यहां कैदी की तरह हैं। कहीं आ-जा नहीं सकते। बच्चे स्कूल नहीं जा पाते। सुरक्षा बलों की बसों पर गोलियां दागी जाती है। समय हो और अनुमति मिले, तो सेना के अस्पताल में जाकर उन सैनिकों को देख आइए जो आंतकवादियों की गोली वर्षा के शिकार हुए हैं। किसी की टांग गायब है, तो किसी का हाथ। इसका सबसे दुखदाई पक्ष यह है कि यदि जवान मारे जाते या घायल होते हैं तो कोई पत्रकार या लेखक कुछ नहीं बोलता, और यदि आंतंकवादी मारा जाता है, तो इतना शोर मचाया जाता है कि जैसे भारतीय सुरक्षा बल और सैनिक कश्मीर घाटी के मासूम नागरिकों की हत्या कर रहे हों। हमारे जवानों की मजबूर मौत को कश्मीर को भारत में मिलाए रखने का मूल्य माना जाता है। आप लोग वापस जाकर दिल्ली को बताइए कि वह कश्मीर का सच स्वीकार कर लें।

कुछ रुककर फिर बोली—एक निवेदन है भैय्या। हम लोग तीन दिन से आप लोगों के लिए मंगल कामना कर रहे हैं, कि आप लोग यहां से सुरक्षित वापस चले जाएं। कल आप लाल चौक जाएंगे, वहां क्या होगा, कोई कुछ नहीं कह सकता। वहां से आप लोग इधर वापस न आकर शायद सीधे जम्मू चले जाएं। हम आपसे प्रार्थना करती हैं कि आप जिस किसी देवता को मानते हों, उसका नाम स्मरण करके लाल चौक जाएं, और बच जाएं तो वापस जाकर उस देवता की पूजा करके प्रसाद अवश्य बांटे। आपने प्रसाद बांटा है, इसकी सूचना हमें श्रीयुत पुष्पा शर्मा, श्रीमती निर्मल कौर, सीमा सुरक्षा बल मुख्यालय, पंथा चौक, श्रीनगर के पते पर अवश्य दें। आप सबके मंगल समाचार की हम प्रतीक्षा करेंगे।

श्रीनगर की पंथा चौक की इन दोनों बहनों और कई परिवार को ही नहीं, हमने जम्मू में पचास मुसलमानों को भी डाक्टर जोशी की सफलता के लिए नमाज पढ़ते और दुआ करते देखा। सिखों को अरदास करते सुना। भिखारियों तक ने कहा,

भगवान रक्षा करें इन एकता यात्रियों की।'

अटल निर्णय

कश्मीर घाटी और श्रीनगर का यथार्थ केवल इतना ही नहीं है। जम्मू का अशोक होटल कमरा नं० 309 । मेरा निवास। चौबीस जनवरी की रात। एक के बाद एक दो अधिकारी मेरे कमरे में आए। दोनों का कहना था कि 'आप डाक्टर जोशी को समझाएं कि वे श्रीनगर न जाएं। स्थिति बहुत गम्भीर है। उनको बचा पाना असम्भव नहीं है, तो आसान भी नहीं है। वे जिद्द किए बैठे हैं, कि कुछ भी हो श्रीनगर जाएंगे और अपने समस्त यात्रियों के साथ जाएंगे। कश्मीर घाटी की सीमा और आसपास के क्षेत्रों में कल तीन-चार हजार प्रशिक्षित आतंकवादी घुस आए हैं। गुप्तचर उनकी तलाश में हैं। सुरक्षा बलों को उस ओर तैनात किया जा रहा है तो स्वाभाविक रूप से इस ओर ध्यान कम हो जाएगा। हमारी क्षमता दो-तीन बसों को ही सुरक्षा प्रदान करने की है। उससे लम्बे किसी भी कारवां की रक्षा हम नहीं कर सकते। मौसम भी खराब है और यदि मौसम ठीक रहा तो भी भारी संख्या में सड़क के रास्ते श्रीनगर जाना कदापि सम्भव नहीं है। जोशी जी कहते हैं कि "हम मार दि जाएं यह हमें स्वीकार है, किन्तु जीवित रहते श्रीनगर न जाना हमें स्वीकार नहीं है। मुझे समझाने में समय नष्ट न करके यदि आप लोग सुरक्षा व्यवस्था कर सकें तो करें, नहीं तो मुझे और मेरे साथियों को भगवान भरोसे छोड़े दें।"

यह कहते-कहते वे दोनों अफसर बहुत भावुक हो उठे। भावुकता में वे यहां तक कह गए कि मैं कैसे कहूं, कैसे बताऊं कि कश्मीर घाटी और श्रीनगर पूरी तरह हमारे कब्जे में नहीं है। वहां की पूरी आबादी विद्रोही हो गई है। घाटी के सत्तर प्रतिशत कश्मीरी स्वतंत्र, स्वायत्त और सार्वभौम कश्मीरी राष्ट्र कि लिए सशस्त्र संघर्ष करने में जी-जान से लगे हैं, बीस प्रतिशत ऐसे हैं जो कश्मीर को पाकिस्तान से मिला देने की मुहिम चला रहे हैं, केवल दस प्रतिशत आबादी भारत के साथ है, किन्तु वह इतनी भयभीत है कि दुआ करने के अलावा कुछ नहीं कर सकती। नागरिक प्रशासन का कोई भरोसा नहीं है। आज ही पुलिस मुख्यालय को बम से उड़ा दिया गया। महानिदेशक गंभीर रूप से घायल हो गए। कौन आंतकवादी है और कौन भारत के साथ है, इसका पता कर पाना कठिन है। कश्मीर घाटी में भारतीय मुद्रा का कोई महत्व नहीं है। सीमा से सटे गावों में केवल पाकिस्तानी नोट चलते हैं। सेना को सैनिक कार्रवाई करने की छूट नहीं है। विद्रोहियों के साथ राजनीतिक वार्ता करने और प्रक्रिया चलाने की दलीलों से उन्हें वैधता प्राप्त होती है, उनका मनोबल बढ़ता है। देशवासियों को हम यह सच्चाई कैसे बताएं। भारत सरकार जानती सब कुछ है, करती कुछ भी नहीं। हमें बताया गया कि हम आपसे मिलें। आप एक राष्ट्रीय साप्ताहिक , उस राष्ट्रीय साप्ताहिक के सलाहकार सम्पादक हैं, जिसका कश्मीर की पीड़ा को देश

की पीड़ा बनाने में बहुत बड़ा योगदान है। हम पाञ्चजन्य को गीता की तरह पढ़ते हैं। आप हमारे ऊपर कृपा करें, हजारों देशभक्तों को आतंकवादियों की गोली से मार दिए जाने से बचाएं। जोशी जी मान जाएं, तो बहुत बड़ा संकट टाला जा सकता है।'

सच्चाई पर पर्दा

वे कहते जा रहे थे—"हमारे नेता, लेखक, पत्रकार, बुद्धिजीवी, किसी को भी कुछ भी पता नहीं है। जिन्हें पता है वे सच्चाई पर परदा डालने में ही अपनी कुशलता मानते हैं। डा० जोशी और भाजपा ने देश को कश्मीर के साथ जोड़कर बहुत बड़ा काम किया है। किन्तु कश्मीर घाटी की समस्या का समाधान श्रीनगर में जन-मोर्चा लगाकर नहीं, दिल्ली पर दबाव डालकर किया जा सकता है। यदि डा० जोशी यहां के लाखों लोगों को दिल्ली की ओर मोड़ दें तो ही कश्मीर बच सकता है। तभी कश्मीर घाटी को भारत के साथ रखा जा सकता है। कश्मीर घाटी को बचाने का अब एकमेव उपाय है—"भगा दो या भून दो।" अर्थात् जो लोग कश्मीर सहित भारत में नहीं रहना चाहते, उन्हें बता दिया जाए कि वे जहां चाहें चले जाएं, वे यहां से भाग जाएं और जो लोग भारत से अलग कश्मीर चाहते हैं, स्वतंत्र और सार्वभौम कश्मीर के लिए गोला, बारूद, बन्दूक और मिसाइलों का प्रयोग कर रहे हैं, उन्हें भून दिया जाए। और कोई रास्ता नहीं है, कश्मीर सहित भारत का अखण्ड चित्र बचाए रखने का। जहां हमारे जवान ही असुरक्षित हैं, वहां आम जनता की रक्षा कैसे पर पाएंगे हम। क्या देशभक्तों को इस तरह मार दिया जाना या उन्हें मरवा देना देशहित में होगा ?"

बहुत बोले थे वे दोनों अफसर। वे बोलते गए थे। "सर ! सच मानिए, कश्मीर घाटी में पाकिस्तान ने अघोषित युद्ध छेड़ रखा है और हमने इसे आतंकवाद तथा कानून-व्यवस्था की समस्या मान रखा है। गोली चलाने और मिसाइल दागने वाले लोग पाकिस्तान में प्रशिक्षित कश्मीरी नहीं पाकिस्तानी सैनिक हैं। यह कश्मीरी बेरोजगारी और भूखों का आंदोलन नहीं पाकिस्तानी आक्रमण है। हमारी सेना और सुरक्षा बल का वहां होना कश्मीर का भारत में होने का केवल आभास देता है, यह यथार्थ नहीं है। यथार्थ यह है कि कश्मीर पर पूरी तरह हमारा अधिकार नहीं है। भारत सरकार को चाहिए वह यह आदेश दे कि कश्मीर पर अपना खोया अधिकार तत्काल प्राप्त किया जाए। सेना का कार्य जनता नहीं कर सकती।"

बातें और भी हैं। कश्मीर घाटी का सच इससे भी कटु है। किन्तु काश ! मै। कुछ कर पाता।

डा० जोशी श्रीनगर के लाल चौक पर भारत का राष्ट्रध्वज फहराने के अपने संकल्प पर अडिग थे। कोई भी विश्लेषण, कोई भय, कोई भी दैवी और मानवीय अवरोध उन्हें रोक पाने में सफल न हुआ। सभी विवश थे। प्रकृति ने भूस्खलन करके

मार्ग रोका तो वे आकाश मार्ग से श्रीनगर पहुंच गए। और यदि वे न पहुंच पाते तो भी लाल चौक पर झण्डा फहराता ही। क्योंकि भाजपा की केसरिया वाहिनी के 200 देशभक्त युवक एक सप्ताह पूर्व राष्ट्रध्वज के साथ श्रीनगर पहुंच चुके थे। यदि देशद्रोही और पाकिस्तानी आतंकवादी लुप-छिपकर घाटी में घुस सकते हैं, तो देशमाता का गौरव बढ़ाने के लिए वह खतरा मोल लेने में पीछे क्यों रहते ? डा० जोशी की दृढ़ता और संकल्प का ही यह परिणाम था कि भारत सरकार सुरक्षा और साधन प्रदान करने के लिए विवश हो गई थी।

आ ही गया वह क्षण

पच्चीस जनवरी की रात भर हम गोलियों की आवाज सुनते रहे। छब्बीस जनवरी का सबेरा सन्नाटे से भरा था। हम लाल चौक जाने के लिए बाहर निकले तो सैनिकों को पंक्तिबद्ध खड़ा देखा। उनकी आंखों में हमारे प्रति स्नेह और श्रद्धा थी। उनके चेहरे पर अंकित भाव पढ़ पाना कठिन नहीं था कि, "जाओ भाइयों राष्ट्र का छिना गौरव पुनः स्थापित करो। उनका हाव-भाव यह संकेत दे रहा था कि हम सर्वथा अनिश्चत किन्तु गौरवपूर्ण भविष्य और लक्ष्य की ओर जा रहे हैं। पंथा चौक से लाल चौक तक केवल सुरक्षा बल के जवान खड़े थे। न कोई नागरिक, न कोई आवाज।

प्रातः आठ बजकर दस मिनट पर हम लाल चौक पहुंचे। देखा ध्वज स्तम्भ पर तिरंगा लिपटा है। भूमि पर कालीन बिछा है। सुरक्षाबलों का घेरा है। मकान और दुकानें बन्द हैं। श्रीनगर के किसी निवासी ने यह आवश्यक नहीं समझा था कि वह जिलाधिकारी से कर्फ्यू पास लेकर भारतीय गणतंत्र दिवस के समारोह में शामिल होने का प्रयास करता। भारत के राष्ट्रध्वज और गणतंत्र पर्व को लाल चौक की हर दुकान, और हर मकान से एक मौन चुनौती सी मिलती दिखाई दे रही थी।

सर्वश्री मदनलाल खुराना और कृष्ण लाल शर्मा ने लाल चौक के सन्नाटे को तोड़ा। बोले, 'बन्देमातरम्' और उनके साथियों ने इतने जोर से बन्देमातरम् का उद्घोष किया कि वह आवाज बड़ी देर तक लाल चौक में प्रतिध्वनित होती रही। 'भारतमाता की जय, राष्ट्रध्वज की जय, गणतंत्र दिवस की जय, डा० जोशी की जय, जहां हुए बलिदान मुखर्जी, वह कश्मीर हमारा है, जो कश्मीर हमारा है, वह सारे का सारा है।' का उद्घोष और नारा इतनी बार और इतने जोर से लगा कि जैसे कोई अपनी अतृप्त प्यास बुझा रहा हो। वहां का माहौल बता रहा था कि उसे बहुत दिनों से इसकी प्रतीक्षा थी कि, कोई आए और ठीक उसी स्थान पर भारत माता की जय बोले, जहां उसे गालियां दी गई थीं, 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' बोला गया था और भारत के राष्ट्रध्वज को जलाकर, कुचलकर पाकिस्तानी झण्डा फहराया गया था।

डा० जोशी आए। कन्याकुमारी में पूजित राष्ट्रध्वज स्तम्भ में बांधा और राष्ट्रध्वज फहराकर भारतमाता की जय का घोष किया। 'जन-गण-मन अधिनायक'

समवेत स्वर में गाया और समस्त विश्व एवं पाकिस्तान परस्त कश्मीरियों को चेतावनी दिया कि, "सारी दुनिया और पाकिस्तान सुन ले कि यदि कश्मीर घाटी के आतंकवादी और पाकिस्तान के नेता यह कहते हैं कि कश्मीर के बिना पाकिस्तान अधूरा है तो पाकिस्तान के बिना भारत भी अधूरा है। आज श्रीनगर के लाल चौक से हम भारत की अखण्डता का अनुष्ठान आरम्भ कर रहे हैं।"

ध्वजरोहण हुआ, हम चलने लगे तो मैंने डा० जोशी से पूछा, "आप तो वापस जा रहे हैं, कश्मीर घाटी में यतीम इस राष्ट्र ध्वज का क्या होगा ? कौन करेगा इसकी रक्षा ?" वे तमक कर बोले, "यह हमारे राष्ट्रदेवता का प्रतीक है। यह हमारा रक्षक है। इसकी रक्षा इस देश की 85 करोड़ जनता की ओर से हमारे वीर जवान करेंगे। यह देश की आन-बान-शान है। देश की आन-बान-शान के रक्षक एक अफसर को बुलाकर डा० जोशी ने कहा, "मैं देश का यह सम्मान आप के हाथों में सौंप कर जा रहा हूं। आप सैनिक सम्मान के साथ सायंकाल इस राष्ट्रध्वज का अवतरण करके इसकी रक्षा करें और प्रत्येक राष्ट्रीय प्रसंग पर इस स्थान पर अवश्य फहराएं।" सैनिक अधिकारी ने 'जी सर' कह कर अभिवादन किया। और हम चले हवाई अड्डे की ओर।

वीरोचित अभिवादन

श्रीनगर के लाल चौक, छब्बीस जनवरी और राष्ट्र के ध्वजारोहण से जुड़ी बात अभी समाप्त नहीं हुई। बस में आगे की सीट पर मैं और मेरी बगल में बैठे थे राजस्थान पत्रिका के गोपाल शर्मा। सड़क के दोनों ओर खड़े थे सीमा सुरक्षा बल के जवान। मैंने उनके अभिवादन में हाथ हिलाया तो उनका मौन मुस्कुराहट में मुखर हुआ। उन्होंने एक हाथ में अपना हथियार संभाला और दूसरा हाथ उठाकर हमारे अभिवादन का उत्तर दिया। वह क्रम लाल चौक से श्रीनगर हवाई अड्डे तक चलता रहा। वे जवान हमारा अभिवादन कुछ इस तरह करते रहे, मानों हम किसी शत्रु देश को पराजित करके, वहां अपना राष्ट्रध्वज फहरा कर वापस आ रहे हैं। सैनिक द्वारा देश की जनता का वीरोचित अभिवादन करने का यह दृश्य सम्भवतः पहला ही था।

हमें देश रक्षक और अपने मित्र के रूप में पाकर जवान फूले नहीं समा रहे थे। हमारी बस में बैठे एक जवान से हमने पूछा, 'आपको कैसा लग रहा है ?' वह बोला, 'बहुत अच्छा।' हमने फिर पूछा, "बहुत अच्छा, यानि क्या ?"

वह बोला, "हमारे राष्ट्रध्वज के फहराए जाने से अच्छा और क्या हो सकता है?" हमने कहा, 'यह ध्वज तो आप भी फहरा सकते थे ?' उसका उत्तर था—'श्रीनगर के लाल चौक पर राष्ट्र का ध्वज आज की परिस्थिति में फहराए जाने का अर्थ क्या होता है इसे आप समझते ही होंगे ? यही मुझे अच्छा लगने का कारण है। हम हमारी छावनी में ध्वज लगाते हैं, आपने राष्ट्र का ध्वज राष्ट्र की जनता के प्रतिनिधि के रूप में लगाकर जो संदेश दिया है, देश और देशभक्तों को; वह उन सभी को अच्छा

लगेगा जो देश के हैं और देश जिनका है।' सीमा सुरक्षा बल के जवानों को जैसे नया जीवन, नया उत्साह और नया आत्मबल मिला हो।

हम हवाई अड्डे पर विमान में बैठने की तैयारी में थे कि हैलिकाप्टर से डा० जोशी उतरे। सभी से गले मिले, सभी की आंखें गीली हो गईं। पत्रकारों ने पुनः पूछा, "डा० जोशी आपको कैसा लग रहा है ?" उनका उत्तर था, "मैं अतीव संतुष्ट हूं। जिस ध्वज के अभिवादन में रात भर पाकिस्तानी गोला बारूद और मिसाइलें चलती रहीं, उसे श्रीनगर के लाल चौक पर फहराने के सौभाग्य पर संतोष और गर्व का होना सहज और स्वाभाविक है।"

हम विमान में बैठ गए थे। किन्तु विमान उड़ान नहीं ले रहा था। पूछा क्या बात है ? कप्तान ओसवाल ने श्रीमदनलाल खुराना और कृष्णलाल शर्मा को काकपिट में बुलाया। कहा, 'सुनिए ? रनवे पर गोलियां दागी जा रही हैं। एक बम भी फूटा है। तनिक प्रतीक्षा कर लें, फिर उड़ेंगे। इस विमान पर भावी भारत का नियन्ता बैठा है। आप सब भारतमाता की अमोल निधि हैं। कृपया थोड़ा इंतजार और कर लें।"

हमारा विमान उड़ा तो जम्मू के पास आते-आते कप्तान ओसवाल की आवाज गूंजी, 'इस विमान का चालक होने का मुझे गर्व है। आप सबने लाल चौक पर राष्ट्र ध्वज फहरा कर भारतमाता के गौरव और राष्ट्रीय स्वाभिमान की पुनः स्थापना की है। काश ! यह कार्य बहुत पहले हुआ होता। काश ! इस महान राष्ट्रीय कार्य में शामिल होने का सौभाग्य मुझे भी मिला होता। हमारी शुभकामनाएं आपके साथ हैं। भारत राष्ट्र के मंगल और उज्ज्वल भविष्य के प्रतिनिधि के रूप में मैं डाक्टर जोशी का अभिनन्दन करता हूं। जय हिन्द, जय भारतमाता, वन्देमारतम्, जय श्रीराम।

आस्लादकारी क्षण

हम जम्मू हवाई अड्डे पर उतरे। वहां सर्वश्री लाल कृष्ण आडवाणी, अटल बिहारी वाजपेयी, जगदीश प्रसाद माथुर, राजमाता सिंधिया, सुन्दर सिंह भण्डारी आदि नेता भावविभोर मित्रों के साथ खड़े थे। श्री आडवाणी जी ने जोशी जी को अपनी छाती से लगाया और आंखे बरस पड़ीं। अटलजी ने आलिंगन किया, तो रो पड़े। जगदीश माथुर मिले तो उनकी हिचकियां बंध गई। राजमाता का स्नेह आंसू में बदल गया। ऐसा लग रहा था कि डा० जोशी जैसे अपने नन्दनवन के श्रीनगर से नहीं, किसी शत्रु देश या मौत के मुंह से बच कर आए हों। जम्मू हवाई अड्डे पर किसी अश्वमेध यज्ञ के समापन समारोह का सा दृश्य था, किसी शत्रुजयी परंतप योद्धा की आगवानी करते वहां उपस्थित सभी जन गौरव और गर्व से परिपूर्ण थे और हम पत्रकार और डा० मुरली मनोहर जोशी के अन्य साथी एक इतिहास का साक्षी और इतिहास निर्माण करने वालों की पंक्ति में शामिल होने के सौभाग्य पर फूले नहीं समा रहे थे।

मैं कहूं कि शेक्सपियर की वही पंक्ति जम्मू के हवाई अड्डे के भी आकाश पर

एक बार पुनः उभरी दिखी कि

एण्ड आल दि एलीमेन्ट्स
आफ दि नेचर
विल स्टैण्ड
एण्ड से

'दिस इज दि मैन' और मैंने पुनः इसे विस्तार दिया था कि, "एण्ड दिस मैन हैज डन इट" अर्थात् इस सृष्टि के समस्त तत्व समवेत स्वर में कहेंगे कि, 'यही वह व्यक्ति है, और मैंने कहा, कि इस व्यक्ति ने जो कुछ सोचा था, उसे कर दिखाया।

9 फरवरी 1992

एकता यात्रा पर प्रहार : प्रेरणा और प्रश्न ?

डाक्टर मुरली मनोहर जोशी की एकता यात्रा से जुड़े कई प्रश्न उभरे हैं। यथा वे कौन लोग हैं जो श्रीनगर के लाल चौक पर जाने और वहां राष्ट्रध्वज लगाने से अलग-थलग और आहत हुए? कश्मीर भारत राष्ट्र का रक्त-मांस अर्थात् भारत है कि एक स्वायत्त और मजहबी मुस्लिम राज्य? लोकतांत्रिक ढंग से जन-प्रशिक्षण और जन-सम्पर्क द्वारा देशवासियों को देश-दशा से अवगत करना क्या देश को तोड़ना होता है? आतंकवाद और अलगाववाद के विरूद्ध देशवासियों को जागृत और संगठित करना क्या देश की राष्ट्रीय और सामाजिक एकरसता को आघात पहुंचाना है? पाकिस्तान की भारत विरोधी गतिविधियों की आलोचना और कश्मीर तथा पंजाब में रक्तपात करने के लिए उसे उत्तरदायी ठहराने से किसी को दुःख और अपने प्रति दुश्मनी का अहसास क्यों होता है? साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता और अलगाववाद किसकी देन हैं? क्या हिन्दू और हिन्दू प्रतीक साम्प्रदायिक हैं और गैर साम्प्रदायिक होने के लिए हिन्दुओं और हिन्दू प्रतीकों का बहिष्कार आवश्यक है? क्या भारत की राष्ट्रीय एकता केवल राजनीति और दलों के तालमेल के कारण है कि इसकी एकता और अखण्डता का मूलाधार यहां की संस्कृति तथा समान सुख-दुख का बोध एवं समान राष्ट्रीय आकांक्षाएं हैं ?

अनुत्तरित सवाल

देश के कुछ राजनीतिक नेता, कुछ बुद्धिजीवी और कुछ पत्रकार मूल विषय से कतरा कर इधर-उधर की बातें क्यों करते हैं, वे इस प्रश्न का वस्तुपरक उत्तर क्यों नहीं देना चाहते कि कश्मीर घाटी में आतंकवादी आन्दोलन क्यों हो रहा है? कश्मीर के लाल चौक पर ध्वज फहराने और कन्याकुमारी से कश्मीर की यात्रा करने के राष्ट्रीय अनुष्ठान को कश्मीरियों को यातना देने वाला अभियान बताने के पीछे की मानसिकता क्या है? गत 24 जनवरी को श्रीनगर में कर्फ्यू क्यों लगाना पड़ा? कश्मीर घाटी के लोगों का मन जीतने की समस्या का जन्म क्यों हुआ? जम्मू-कश्मीर में राजनीतिक प्रक्रिया क्यों रुकी? कश्मीर घाटी के लोगों का मन जीतने की समस्या का जन्म क्यों हुआ? जम्मू-कश्मीर घाटी में कानून और व्यवस्था को किसने बिगाड़ा, किन

लोगों और किसके कारण कश्मीर घाटी के ढाई लाख नागरिकों को अपने ही देश में विस्थापित बनना पड़ा? बनिहाल के बाद कश्मीर घाटी की स्थिति का अनुमान लगा पाना सरल और सम्भव क्यों नहीं है? घाटी के लोग कई-कई दिन तक घरों से क्यों नहीं निकल पाते? वे कौन लोग हैं कि जन्होंने जनाधिकारों को बन्दूक की नोक पर टांग रखा है? भारत की अखण्डता के रक्षक सुरक्षा बलों को अपना शत्रु मानने वालों को किस श्रेणी में रखा जाना चाहिए? अपने देश की रक्षा करने के प्रयास को मुस्लिम विरोधी क्यों माना जाना चाहिए? इसके कारण साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न होने की आशंकाएं व्यक्त किए जाने का अर्थ क्या है? जिन लोगों को एकता यात्रा को असफल सिद्ध करने के अपने जी तोड़ प्रयास में प्रसन्नता का अनुभव होता है, उनको किस नाम से पुकारा जाए, वे किसके पक्षधर हैं, भारत राष्ट्र की एकता और अखण्डता के या आतंकवादियों, अलगाववादियों, साम्प्रदायिक तत्वों और देश की जनता से केवल वोट मांगने वालों के? क्या जो लोग मार रहे हैं केवल वे ही कश्मीरी हैं और जो लोग मारे जा रहे हैं, जो मार दिए है, भगा दिए वे कश्मीरी नहीं हैं? अपने ही देश के किसी भाग में राष्ट्र ध्वज फहराने के लिए अपने जीवन का मूल्य चुकाने की स्थिति क्यों आई? क्या कश्मीर केवल संविधान की धारा 370 है? क्या कश्मीर को केवल इस कारण विशेष दर्जा दिया जाना चाहिए कि वहां एक विशिष्ट सम्प्रदाय के लोगों का बहुमत है? भारत की राष्ट्रीय अखण्डता को किसी सम्प्रदाय या समुदाय की शर्तों का बंधक बना देना और उसकी मनुहार करते रहना क्या देश को विघटित होने से बचा पाएगा ?

भारत की सार्वभौम सत्ता कश्मीर घाटी के अलगाववादियों के सामने बौनी क्यों बन गई? भारत के गृहमन्त्री को बार-बार यह क्यों कहना पड़ता है कि कश्मीर घाटी के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है? वह अपने ही देश में, अपने ही नागरिकों को, अपने ही देश के किसी भाग में न जाने की सलाह क्यों देता है और यदि कोई जाना चाहे तो उसकी सुरक्षा की गारन्टी देने में असमर्थ क्यों हो जाता है? कश्मीर, पंजाब, असम, आन्ध्र और तमिलनाडु में बंदूक की फसल किस कारण उगी? वे कौन सी नीतियां और कौन सी वह मानसिकता थी जिसके कारण देश को विभाजन के दौर से गुजरना पड़ रहा है? भारत की वैचारिक विकलांगता और आर्थिक कंगाली किसकी देन है ?

प्रश्न पर प्रश्न उभरते हैं किन्तु यथार्थ को स्वीकारने और प्रश्नों का उत्तर देने का साहस दिखाई नहीं देता। भारत के सार्वजनिक जीवन में एक पाखण्ड चला आ रहा है - समस्या को टालने और प्रत्येक समस्या का राजनीतिक समाधान तलाशने की बात करने का। जबकि समस्या का कारण केवल राजनीति है - वोट-राजनीति। यदि आजादी के बाद वोट-राजनीति से भिन्न कोई राष्ट्रनीति बनी होती, यदि देशवासियों को उनकी सांस्कृतिक विरासत से जोड़ा जाता, यदि उन्हें उनकी परम्पराओं,

प्रेरणा-पुरूषों, राष्ट्रीय प्रज्ञा और दायित्व का बोध कराया गया होता तो एक और अखण्ड भारत राष्ट्र को अनेक राष्ट्रों का संघ मानने की बहस चलाने की स्थिति निर्माण न होती। तब कोई प्रकाश सिंह बादल या भारत का कोई बुद्धि राक्षस यह न कहता कि रूस की तरह भारत में भी स्वतंत्र और सार्वभौम राज्यों का संघ बना कर यहां की आहत क्षेत्रीयता पर मरहम लगाया जाए।

इतिहास किसी को क्षमा नहीं करता। आज नहीं तो कल इतिहास के पन्ने पढ़े जाएंगे तो उन पर दो बातें दर्ज होंगी। (1) देश, देशद्रोहियों एवं देश के शत्रुओं की हमारी नादानी पर प्रसन्नता और (2) देशभक्त नागरिकों की शर्मिन्दगी और अपमान। भावी पीढ़ी के लोग बार-बार पूछेंगे कि कैसे थे वे लोग जो विघटनवादियों की सफलता की कामना करते थे और जिन्हें राष्ट्रीय एकता के अनुष्ठान पर शर्म आती थी ?

एकता-यात्रा ने कई स्तरों पर कई लोगों को नंगा किया है? विश्लेषण के स्तर पर बुद्धि राक्षस नंगे हुए तो समाचार के स्तर पर पत्रकार। राष्ट्रीयता और राष्ट्रभक्ति के स्तर पर एक सम्प्रदाय विशेष के लोग और उसके पक्षधर नंगे हुए तो राजनीतिक स्तर पर कई राजनीतिक दल और नेता। सत्ता प्रतिष्ठान के संचालकों का वोट राजनीति सापेक्ष सतही सोच उजागर हुआ तो राष्ट्रीय अखण्डता और साम्प्रदायिक सद्भाव का खोल ओढ़कर अलगाववादियों की दलाली करने वालों का चेहरा भी उघड़ गया। भाजपा की परम्परागत राष्ट्र-निष्ठा प्रगट हुई तो उसके विरोधियों का राजनीतिक चरित्र एक बार पुनः सामने आया।

ऐसा नहीं है कि यह कार्य पहली बार हुआ है। यह कई बार हुआ है किन्तु इस बार यह एक साथ और एक मुश्त हुआ है कि देश हितैषी लोग और देशघाती तत्व साफ-तौर पर सामने आए। किसी ने जानबूझकर नियोजित ढंग से देश हित पर चोट किया तो किसी ने अनजाने में या अपने आकाओं के दबाव में आकर।

स्मरण रहे कि देशभक्ति का उपहास करने का कार्य केवल भारत में ही सम्भव है दूसरे देश में नहीं। इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री जान मेजर अपने देश में मुसलमानों द्वारा मुस्लिम संसद बनाए जाने पर यह कह सकता है कि जिसे विशिष्ट आकार चाहिए, वह इंग्लैण्ड छोड़कर चला जाए, किन्तु भारत का प्रधानमंत्री यह नहीं कह सकता। जॉन मेजर द्वारा यह घोषणा करने के बावजूद इंग्लैण्ड की सेकुलरिटी सुरक्षित रहती है किन्तु समान देशभक्ति की चर्चा मात्र से भारत की सेकुलरिटी खतरे में क्यों पड़ जाती है? भारत के बुद्धिराक्षस इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री की घोषणा में प्रखर राष्ट्रभक्ति देखते हैं किन्तु उसी विचार को भारत में साम्प्रदायिक शत्रुता और देश को तोड़ने वाला प्रतिक्रियावादी कहा जाता है। अपराधियों और देश-तोड़कों को संरक्षण देने को मानवाधिकारों की रक्षा करना माना जाता है ?

भ्रम फैलाने की कोशिश

एकता यात्रा का आयोजन किया गया था कश्मीर सहित समस्त देश में व्याप्त आतंकवाद और विभाजन के खतरे की ओर देश और दुनिया का ध्यान आकृष्ट करने के लिए। लाल चौक पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने का अर्थ था कन्याकुमारी से कश्मीर तक एक और एकात्म राष्ट्र की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति। किन्तु बहस इस पर नहीं की गई। मूल मुद्दे को दबाने में अपनी-अपनी कुशलता का परिचय दिया गया। पहले कहा गया कि इसके कारण साम्प्रदायिक दंगे होंगें। उसके पश्चात् प्रचार किया गया कि एकता यात्रा के कारण देश और कश्मीर के मुसलमान भयभीत होंगे। कुछ लोगों ने इसे कश्मीर के मुसलमानों पर हिन्दुओं का आक्रमण कहा। कुछ लोग उदासीन रहे, कुछ लोगों ने उपेक्षा की। कुछ लोगों ने इसे अनावश्यक बताया। समाचार पत्रों के संवाददाताओं ने जो देखा, वह नहीं, सम्पादकों, मालिकों और सरकार ने जो कहा, वह लिखा। निष्पक्ष और स्वतंत्र पत्रकारिता के झंडावाहक सम्पादकों ने नकारात्मक प्रचार तो किया, आरोप तो लगाए, समाचारों को बिगाड़ा, किन्तु उसका प्रतिवाद और दूसरे पक्ष का प्रकाशन अस्वीकार कर दिया। श्रीनगर के लाल चौक पर राष्ट्रध्वज फहरा दिया गया तो देशवासियों की प्रसन्नता, उनके आत्मविश्वास और आत्मबल को बढ़ाने में सहभागी न होकर उस पर अपनी आलोचना का दिठोना लगाया कि "डा० जोशी अपने रथ से श्रीनगर क्यों नहीं गए ? वे विमान से क्यों गए ? उन्होंने सरकारी हैलीकाप्टर का उपयोग क्यों किया ? लाल चौक पर केवल 13 मिनट क्यों रूके ? वहां तो झण्डा पहले से फहरा रहा था। हजारों की संख्या में जो लोग जम्मू में जमा थे, उन सभी को साथ क्यों नहीं ले गए? उनके साथ विश्वासघात क्यों किया गया? केवल प्रतीक रूप में झण्डा फहराने का क्या लाभ? सुरक्षा बलों का सहयोग क्यों लिया ?"

इन आलोचकों को जम्मू में जमा हजारों लोगों का वह उत्सर्ग-भाव दिखाई नहीं दिया जो हर कीमत पर, प्रत्येक परिस्थिति में श्रीनगर जाने के लिए मचल रहे थे ? जो भाजपा नेताओं के रोकने पर भी रूकने के लिए तैयार नहीं थे। जो भूस्खलन के कारण हुए पथावरोध को अपनी आंखों से देखकर ही वापस लौटे थे। इनकी दृष्टि में ध्वजारोहण और उसके कारण आतंकवादियों को मिली राष्ट्रीय चुनौती का महत्व नहीं है। ये महत्व देते हैं मार्ग को, संख्या को, सफलता पर पर्दा डालकर असफलता का प्रतिपादन करने को। इस तथ्य पर परदा डालने में उन्होंने अपनी कुशलता माना कि यदि पथावरोध को हटाने तक प्रतीक्षा करते और एकता रथ से ही जाते तो डा० मुरली मनोहर जोशी छब्बीस जनवरी को श्रीनगर पहुंचते ही नहीं। वे यह तथ्य भी नहीं बताते कि श्रीनगर घाटी आतंकवादियों के नियंत्रण में हैं। कश्मीर भारत में है तो कश्मीर घाटी में रह रहे शेष लोगों के कारण नहीं, भारत के सुरक्षा बलों के कारण है।

श्रीनगर और कश्मीर घाटी की पहाड़ियों पर पाकिस्तानी झण्डा उन्हें स्वीकार है, परन्तु लाल चौक पर भारत का राष्ट्रध्वज लगाने को राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती के रूप में प्रस्तुत करके वे अपनी निराधार और थोथी आशंकाओं एवं असत्य स्थापनाओं की सत्यता प्रमाणित करने में लगे हैं। उन्हें आतंकवादियों की एकजुटता तो दिखाई देती है किन्तु भारत के करोड़ों नागरिकों की एकता दिखाई नहीं देती। यदि 26 जनवरी को लाल चौक पर राष्ट्रध्वज न फहराता तो ये लोग प्रसन्न होते, ध्वज फहर गया तो अपनी समस्त अपेक्षाओं और आशंकाओं को फलीभूत हुआ न पाकर दुखी हैं। शायद भाजपा के प्रति अपने पूर्वाग्रह और द्वेष के कारण वे राष्ट्रीय यथार्थ को अस्वीकार करने के लिए विवश हैं।

अपनी स्थापनाओं का बन्दी होने के कारण किसी नवीन अवधारणा के उदय को हजम न कर पाकर ये लोग अपना कलुष उगल रहे हैं। किसी दल के प्रति अपने राजनीतिक द्वेष के रूप में बदल देने की 'बुद्धिजीविता' कोई इनसे सीखे। एकता यात्रा पर पत्थरबाजी करने वाले बुद्धिराक्षसों, पत्रकारों और राजनेताओं का 'दल-द्वेष' इतना प्रबल है कि उन्हें देश, दिखाई ही नहीं देता। ये लोग उस अवसर की प्रतीक्षा में थे कि श्रीनगर के मार्ग में हजारों लोगों की हत्या की जाती, एकता यात्री श्रीनगर न पहुंच पाते, लाल चौक पर भारत का राष्ट्रध्वज न फहराता, तो वे भाजपा को कोसते, कि उसने हजारों लोगों की हत्या करा दी, फिर भी ध्वज नहीं लगा। उन्हें प्रतीक्षा थी कि देश के कोने-कोने से श्रीनगर जाने के लिए आए हजारों लोग अपने नेताओं का अनुरोध न मानकर, अनुशासन तोड़कर श्रीनगर की ओर बढ़ते, अराजकता फैलाते, लूटपाट और आगजनी करते, सुरक्षा बलों के साथ उलझते तो उनका मनचाहा समाचार बनता। यह सब नहीं हुआ। उनका मनचाहा समाचार नहीं बना। प्राकृतिक बाधा के बावजूद डा० जोशी अपने राष्ट्रीय लक्ष्य तक पहुंचे। पहले कन्याकुमारी से चला और करोड़ों देशभक्त नागरिकों द्वारा पूजित राष्ट्रध्वज को लालचौक पर फहराया, फिर वहां सुनियोजित रूप से निगड़ित राष्ट्रध्वज को फहराकर राष्ट्रीय एकता का संकल्प व्यक्त किया और चेतावनी दी कि "यदि पाकिस्तान और आतंकवादी तत्व कश्मीर के बिना पाकिस्तान को अधूरा मानते हैं, तो हम भारतवासी भी पाकिस्तान के बिना भारत को अधूरा मानते हैं" यही लालचौक पर करना था, यही डा० जोशी और एकता यात्रियों ने किया।

किन्तु विघ्नसंतोषी बुद्धिराक्षस, पत्रकार और राजनेता इससे प्रसन्न नहीं हुए। अपनी प्रसन्नता का सूत्र एकता यात्रा की असफलता के रूप में तलाश न कर पाकर निराश और दुखी हैं भारत के ये बुद्धिराक्षस, पत्रकार और राजनेता।

कैसी विडम्बना है यह कि देश का आम आदमी जिस घटना से प्रसन्न है, देश का सुरक्षा बल जिसके कारण नई ऊर्जा का अनुभव कर रहा है, देश के ये विघ्न संतोषी मातम मना रहे हैं कि डा० जोशी श्रीनगर क्यों पहुंच गए? राष्ट्रध्वज

फहराने में सफल क्यों हो गए? देश के कोने-कोने से आकर जम्मू में एकत्र हजारों एकता यात्रियों ने आगजनी, लूटपाट, हिंसा और बलात्कार क्यों नहीं किया? देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे क्यों नही हुए?

आप भी आगे आएं

एकता यात्रा ने देशभक्त नागरिकों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों और समाजशास्त्रियों के समक्ष जो राष्ट्रीय एजेंडा प्रस्तुत किया है, बहस करनी है तो इस एजेंडे पर बहस की जाए। भाजपा के आह्वान पर जम्मू में यदि हजारों लोग जमा न होते, यदि बाधाओं और खतरों के बावजूद वे लोग अपनी जान जोखिम में डालकर श्रीनगर जाने के लिए मचले न होते, यदि देश की करोड़ों जनता की निगाहें छब्बीस जनवरी को लाल चौक की ओर न लगी होतीं, यदि कश्मीर और आतंकवाद पर आमतौर से राष्ट्रीय बहस न छिड़ी होती तो मान लेते कि एकता यात्रा असफल हो गई।

अब समय आ गया है कि छद्म एकतावादी, छद्म सेकुलरिस्ट, अपने मालिकों के यहां अपनी आजाद कलम को गिरवी रखकर स्वतंत्र पत्रकारिता के झण्डावाहक, अपने दल को ही देश और दलहित को ही देशहित मानने वाले राजनेता, अपनी पूर्व स्थापनाओं और पूर्वाग्रह के बन्दी बुद्धिराक्षस देश की वास्तविकता के साथ दो-चार होने का साहस दिखाएं। देश के मन और देशवासियों की व्यथा के साथ जुड़ें। यदि डा० जोशी के लाल चौक जाने और उसके पूर्व देश की जनता से सम्पर्क साधने से उन्हें अपने नेतृत्व और अस्तित्व को खतरा दिखाई देता है तो यह कार्य करने से उन्हें किसने रोका था? किसे कहा था कि वे राष्ट्रध्वज लेकर श्रीनगर न जाएं क्योंकि राष्ट्रीय एकता अभियान केवल भाजपा और डा० जोशी की बपौती है? किसने रोका है उन्हें कश्मीरी विस्थापितों की व्यथा सुनने और उनकी सहायता करने से?

अपनी पराजित मानसिकता से उबरे बिना राष्ट्रीय जय यात्रा करना और राष्ट्रीय यथार्थ को समझ पाना सम्भव ही नहीं है। देशमाता की परिक्रमा करना आसान कार्य नहीं है, इसके लिए अपराजेय आत्मबल और समर्पित भक्ति की जरूरत होती है। वोट बटोरने और लाशें गिनने की राजनीति, पूर्वाग्रहपूर्ण लेखन और विचार राष्ट्र को जोड़ते नहीं, तोड़ते हैं। यही विचार प्रक्रिया आज देश को तोड़ रही है और भविष्य में भी तोड़ेगी। जाति, सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्र एवं वोट राजनीति निरपेक्ष राष्ट्रनीति और राष्ट्र की आराधना में ही सुखी, समृद्ध, पंथ-निरपेक्ष, एकात्म और अखिल भारत का वास है। एकता यात्रा ने इस तथ्य को असंदिग्ध रूप से उजागर किया है। जो इस राष्ट्रीय यथार्थ की अभिव्यक्ति से घबड़ाते हैं, वे ही अपने पंख फड़फड़ा रहे हैं। जिन्हें प्रकाश नहीं सुहाता, वे ही सूर्य को कोस रहे हैं। उन्हें किस नाम से पुकारें?

काश! डाक्टर जोशी के साथ प्रधानमंत्री और दूसरे दलों के नेता एकजुट होकर

लाल चौक पर पहुंचे होते? परन्तु देश के एकता की भावना और देशभक्ति भी उन्हें दल के दल-दल से बाहर नहीं खींच सकी। अभी कितना और अपनी स्वतंत्रता का दुरूपयोग करेंगे इस देश के बुद्धिराक्षस?

16 फरवरी, 1992

स्वदेश में स्वदेशी होना अर्थात्... ?

संत कबीरदास का करधा और महात्मा गांधी का चरखा, महामना मदन मोहन मालवीय का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विश्व भारती शांति निकेतन भारत के 'स्व' की, आत्मा की अभिव्यक्ति थे। कबीरदास अपने करधे की खुण्डी में बैठकर देश के 'स्व' का तानाबाना बनाते और बुनते रहे। गांधी अपने चरखे से इंग्लैण्ड के मैनचेस्टर को चुनौती देते रहे कि 'हम अपने श्रम से, कौशल से, प्रतिभा से अपनी जिन्दगी का तानाबाना बना लेंगे, अपने श्रम से अपने शील का कवच बनाएंगे, हमें नहीं चाहिए मुगलिया और मेनचेस्टर के नफीस वस्त्र, हम अपने खुरदरे खद्दर से ही अपना काम चला लेंगे। अपने देश में हम अपने अनुसार अपनी जिन्दगी जीएंगे, उधार और दया की जिन्दगी हमारे लिए लानत है, अपमानजनक है।

गांधी जी ने नमक आन्दोलन चलाया था, दाण्डी मार्च किया था तो वे यह भली-भांति जानते थे कि समुद्र तट पर एक मुट्ठी प्रतीक नमक बनाकर देश की आवश्यकता की पूर्ति नहीं की जा सकती, लेकिन उस एक मुट्ठी नमक के साथ देश की अस्मिता, स्वावलम्बन, स्वाभिमान, स्वराज्य और स्वदेश का गौरव जुड़ा हुआ था, वह दासता ओर परजीविता को, स्वावलम्बन की चुनौती थी।

अपने करधे की खुण्डी में बैठकर कही गई कबीर की उलटबांसियों ने देश की चित्तभूमि को बुहार कर साफ किया था। 'नदिया नाव में डूबी जाए' सरीखी साखियों में भारत की चेतना निहित थी कि सृष्टि की इस सर्वोत्तम रचना, विराट के इस प्रत्यक्ष विग्रह भारत को लघुता निगल रही है और हम हैं कि अपनी 'नदी' को नाव में तमाशबीन की तरह डूबते देख रहे हैं।'

मीराबाई ने 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई' कुम्भन दास ने 'मोहे कहा सीकरी सो काम', कहकर अपने जिस राष्ट्रीय 'स्व' का प्रगटीकरण किया था, वही भारत राष्ट्र की प्राणध्वनि है। तुलसीदास के 'पराधीन सपनेहु सुख नाही' ने देश को झकझोरा था कि 'उठो, जागो अपने आत्म से जुड़ो। आत्मसाक्षात्कार करो। स्वराज्य लाओ। सुराज की स्थापना करो। देश को उसका स्वत्व प्रदान करो। उसे अपने और अपने को उसके 'स्व' के साथ एकात्म करके अपने राष्ट्र जीवन का स्वदेशी

ताना-बाना बुनो।'

किन्तु कबीर और गांधी का सोच केवल वस्तु, वस्त्र और नमक से ही जुड़ा सोच नहीं था। मीरा, कुम्भन, रहीम, रसखान, जायसी और तुलसीदास आदि केवल भजन गाने वाले भक्त नहीं थे। राम और कृष्ण की भक्ति को भी उन्होंने राष्ट्र की शक्ति में रूपान्तरित करने का प्रयास किया था। वैष्णवजन ने पराई पीड़ा को अपनी पीड़ा मानने की संवेदना की अनुभूति कराई थी। भारत की मूल राष्ट्रीय धारा को 'स्व' के रसायन से शुद्ध किया था।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का शिकंजा

कालान्तर से हुआ यह कि देश की दासता से लड़ते-लड़ते स्वराज्य तो मिला, किन्तु 'स्व' को सूली पर चढ़ा कर। कबीर का करघा और गांधी का चरखा अब केवल कर्मकाण्ड था। संतों की भक्ति को 'सम्प्रदाय' मान लिया गया। स्वदेशी को केवल भौतिकता के साथ सम्बद्ध किया गया और कहा गया कि यदि देश को आगे बढ़ाना है तो हमें अपने प्रतीक और प्रतिमान बदलने होंगे। प्रतीक और प्रतिमान बदला गया। स्वदेश को परदेश के प्रतिमानों पर प्रतिष्ठित किया गया तो परिणाम में पाया एक लाख साठ हजार करोड़ रूपए का विदेशी ऋण, उद्योगों की बन्दी, बेराजगारों की फौज, कंगाली और आर्थिक गुलामी में जकड़ा, चरित्र के संकट से ग्रस्त एक भ्रष्ट देश। स्थिति अब यह बन गई है कि अपनी राजनीतिक आजादी की रक्षा कर पाना भी शायद संभव न हो।

यह आशंका और सम्भावना निराधार नहीं है। अनुभव और इतिहास सिद्ध है। केवल 400 वर्ष पूर्व की बात है। सन् 1600 में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना हुई थी। अंग्रेजों की यह कम्पनी भारत आई थी केवल व्यापार करने। सन् 1612 में शाहजहां को प्रसन्न करके इसने व्यापार करने की अनुमति और सुविधा प्राप्त की थी और व्यापार करते-करते एक दिन भारत को अंग्रेजों की गुलामी में जकड़ दिया था।

सन् 1992 के भारत की स्थिति सन् 1612 की स्थिति से बहुत अधिक गंभीर है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोश, विश्व बैंक और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की शर्तों का शिकंजा हमारे देश पर इस कदर जकड़ता जा रहा है कि निकट भविष्य में हमारी स्वाधीनता केवल कहने के लिए होगी, वस्तुतः हम विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोश और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की आर्थिक गुलामी की ओट में अमरीका के गुलाम होंगे, पश्चिमी देशों के पिछलग्गू होंगे, जापान की 'जमींदारी' में उसकी प्रजा की तरह रहने के लिए विवश होंगे।

विदेशी चमक-दमक के प्रति हम इतने अधिक मुग्ध हैं कि स्वदेश की हर वस्तु हमें नकारा लगने लगी है। हमें इस बात से तनिक भी दुःख नहीं होता कि कालगेट नाम के केवल 'दातून' बेचकर एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी प्रतिवर्ष हमसे 14000 करोड़

रुपए का लाभ कमाती है और उसी में से 300 करोड़ रूपए हमें मुग्ध करने के लिए विज्ञापन पर खर्च करती हैं। अपने घर का दीप बुझाकर हम दूसरे के घर के प्रकाश को दीपावली का उत्सव मान रहे हैं।

स्वदेशी भूमि और विदेशी खाद

हम केवल कहने के लिए स्वाधीन हैं। हमारी स्वाधीनता में स्वराज्य तो है, स्व-तंत्र नहीं है। भारत हमारा स्वदेश तो है, यहां स्वदेशी नहीं है। स्वदेशी का अर्थ है, देश के चित्त के साथ देशवासियों का चित्त एकात्म होना। केवल वस्तुनिष्ठता, केवल भौतिक समृद्धि का किसी न किसी प्रकार से सृजन करना ही स्वदेशी नहीं है, स्वदेशी का अर्थ है कि प्रत्येक देशवासी देश का भार ग्रहण करके गर्व और गौरव का अनुभव करे। जो लोग भारत को केवल यंत्र से, केवल सम्पत्ति से, केवल वस्तु से चलाना चाहते हैं वे भारत की संतान नहीं, शत्रु हैं। देशवासियों के हृदय सम्बंधों का देश के साथ एकरस होना ही स्वदेशी होना है। यदि ऐसा है, यदि ऐसा हुआ तो स्वदेशी-विदेशी का भेद, परिणाम और दुष्परिणाम बताने की आवश्यकता ही नहीं होगी, सब कुछ सहजभाव से स्वदेश का होगा।

हमारे संतों, भक्तों और मनीषियों ने हमें बार-बार चेताया है कि "मनुष्य और देश का चित्त स्रोत नदी की तरह होता है। हमारी और हमारे कारण देश की भी चित्तधारा अपने मूल से दूर हट गई है। इसीलिए यहां के मंदिर आज जीर्णप्रायः हैं। जलाशय दूषित हो गए हैं। अट्टालिकाएं परित्यक्त हैं, वहां उत्सव की आनन्दध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। जो वृक्ष अपने फूल अपने आप खिलाता था वह अपनी क्षीण और शुष्क शाखाओं को उठाकर आकाश में पुष्प दान की प्रार्थना कर रहा है। गांव की नदी यदि किसी दिन अचानक अपने स्रोत से कटकर दूसरा पथ प्रवाह ढूंढ लेती है तो उस गांव में जल की कमी होती ही है। फसल नष्ट होती है। जन स्वास्थ्य गिरता है, वाणिज्य-व्यवसाय को आघात लगता है। उस गांव के बागीचों में जंगल उगता है, उसकी बीती हुई समृद्धि के भग्नावशेष अपनी टूटी दीवारों में बरगद और पीपल की जड़ों को आश्रय देते हैं। वह गांव चमगादड़ों का स्थल बन जाता है।"

यही दशा है आज स्वदेश की। स्वदेश की चित्त-भूमि बंजर हो गई है। विदेशी 'खाद' ने उसकी उर्वरा शक्ति सोख ली है। हमारे पास वस्तुतः सब कुछ होते हुए भी अब कुछ भी नहीं रहा है। हम मन के स्तर पर कंगाल हैं, आचरण के स्तर पर भिखारी। हमारे एक हाथ में भीख का कटोरा है, दूसरा हाथ दाता के पांवों में है। क्या करें हम? भगवान ने दो ही हाथ तो दिए हैं, देश का काम करने के लिए कोई हाथ है ही नहीं। अपने दोनों हाथ देश के लिए होना और अपने दोनों हाथों से देश का काम करना ही स्वदेशी होना है। बाहर से अर्जन करना अनर्थ करना नहीं है। बाहर का अर्थ अन्दर आना अनर्थ होता है तब, जब उसका हमारे घर में संचय नहीं होता, जब

बाहर का 'धन' हमारे घर के धन को लूटने लगता है। हृदय को घर में रखकर बाहर से संचय करेंगे तो ही स्वाभिमान के साथ रह सकेंगे अन्यथा हमारे दोनों हाथ फंसे ही रहेंगे।

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 1905 में स्वदेश की दशा का जो विश्लेषण किया था, उसमें आज भी कोई परिवर्तन नहीं आया है। उन्होंने कहा था—

घर कइनु बाहिर, बाहिर कइनु घर,
पर कइनु आपन, आपन कइनु पर।

अर्थात् घर को हमने बाहर बना दिया और बाहर को घर, पराए को अपना बना लिया और अपने को पराया। इसी कारण हम टूटे और निर्मूल वृक्ष की तरह बाढ़ में दिशाहीन बहे जा रहे हैं।

स्वदेशी प्रतिभा पर अविश्वास

अपने पराए का भेद और ज्ञान न होना ही भारत देश का दुःख है। अपने प्रति आत्मग्लानि और पराए के प्रति गौरव का भाव ही हमारी परजीविता का कारण है। हमें हमारे सिंहद्वार से धकेला जा रहा है और हमने यह धकेला जाना इसलिए स्वीकार कर लिया कि हमें आधुनिक बनना है, हमारी अंधता समाप्त करके हमें दृष्टिदान दिया जा रहा है। यह धक्काशाही हमें स्वजीवी से परजीवी बना रही है। हमारी प्राणमयी मां की ऊर्जा निचोड़ रही है। वे बछड़े को उसका दाय न देकर सारा का सारा दूध दूह ले रहे हैं। आत्म-निर्भरता के नाम पर हमें आत्महीन बनाया जा रहा है। हमें भिखारी बनाकर बलपूर्वक कहा जा रहा है कि तुम आत्मनिर्भर बन रहे हो और हम भी कहते हैं कि हम आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहे हैं। किन्तु दूसरों के अनुग्रह की भीख मांगना आत्मनिर्भरता का लक्षण है। गले में झोली लटका कर भीख मांगने के अतिरिक्त यदि हमारी और कोई गति है ही नहीं तो वह कैसी आत्मनिर्भरता? जिनका स्वदेश पर भरोसा ही नहीं है, जिन्हें स्वदेशी प्रज्ञा और प्रतिभा पर विश्वास ही नहीं है, वे आत्मशक्ति का आदर कर ही नहीं सकते। वे स्वदेशी प्रतिभा को प्रतिष्ठित नहीं कर सकते, जबकि उसके बिना स्वदेश को स्वावलम्बी बनाकर उसके स्वाभिमान की रक्षा कर पाना सर्वथा असम्भव है।

हम स्वाधीन तो हुए, हमें स्वराज्य तो मिला किन्तु विधाता के निर्देश की हमने अवहेलना की। विधाता का निर्देश है कि 'उसकी सृष्टि के समस्त जन को अपनी-अपनी प्रतिभा और प्रज्ञा, प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार और अनुरूप स्वराज्य निर्माण करने का अधिकार है। उनके इस अधिकार का क्रियान्वयन ही स्वराज्य है - ठीक वैसे जैसे मेरा सृष्टि निर्माण करने के अधिकार का क्रियान्वयन मेरा स्वराज्य है।'

स्वाधीन भारत के हम लोगों ने स्वराज्य निर्माण करने का अपना अधिकार परायों को सौंप दिया। अपनी परम्परा, अपने शास्त्र, अनुभवों, संतों और ऋषियों को हाशिए

पर धकेल कर उन्हें घृणा की दृष्टि से स्वयं ही नहीं देखा बल्कि दुनिया को भी बताया कि वे घृणास्पद हैं। प्रगतिगामी हैं। अंध-युग के प्रतिनिधि हैं। अपने मंगलमय भव्य राम-मंदिरों की नालियां और नापदान तो उन्हें दिखाया किन्तु देवता का विग्रह और गर्भगृह नहीं दिखाया। परिणामस्वरूप, अब हमारे देश में मनुष्यों का जन्म तो होता है, किन्तु वे देश की सृष्टि नहीं करते। यहां का मनुष्य अब देश के अनिष्ट में अपना अनिष्ट नहीं मानता। हम अपने राष्ट्र सत्य को आयतन और आकार में नापने लगे हैं। हम यह भूल गए हैं कि हमारा सत्य आयतन में ही नहीं हमारी आत्मा में है और देश की इसी आत्माभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम स्वदेशी है, स्वदेशवासी होना है।

जड़ों से कटता देश

देश के साथ जन के संबंधों के यथार्थ का बोध न होने के कारण हमने कई गलतियां की हैं। इसी कारण हमसे बार-बार यह कहा गया था कि पहले स्वराज्य प्राप्त करो, उसके बाद ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के स्वाभाविक संबंधों की चर्चा की जाएगी। यह तो कुछ ऐसा ही था जैसे किसी बच्चे को यह सलाह दे कि 'बेटा! पहले धन कमाओ फिर मां को स्वीकार करो।' भौतिक भूख ने हमें भिखारी और परजीवी तो बनाया ही है, स्वदेश के प्रति हमारे स्वाभाविक संबंधों का दारिद्रय भी पैदा किया है। हमारे भौतिक अभाव और भावात्मक अकाल का निवारण करने की क्षमता केवल स्वदेशी में ही है। स्वदेशी अर्थात् स्वदेशी पूंजी, स्वदेशी श्रम, स्वदेशी उत्पादन। धन के अभाव और धन के प्रभाव से मुक्त स्वदेशी समाज का निर्माण, जमाखोरी और मुनाफाखोरी को अमानवीय कृत्य और अपराध मानने का राष्ट्रीय दायित्व बोध।

यदि हमें अपने देश का भावी महाकाव्य लिखना है तो अपने मान को स्वदेश के साथ जोड़ना होगा। भूख लगे तो मांग कर खाओ, बीमार हो तो दूसरों की दया पर पड़े रहो, किसी का बाजार बनकर और किसी के उपभोक्ता की तरह रहो की स्थिति किसी गुलाम और बंधक की तो हो सकती है, किसी स्वाधीन और स्वावलम्बी राष्ट्र की नहीं ? स्वावलम्बी देश की निर्माण प्रक्रिया सशर्त नहीं, बिना शर्त चलती है। बाधाओं का रोना लोभी कायर रोते हैं। पराक्रमी और प्रज्ञावान लोग प्रयत्न करते हैं। अपना कार्म कौशल दिखाते हें। वे इस प्रकार की आत्म विडम्बनाजनक बातें नहीं करते कि 'पहले बाहर की बाधाओं से छुटकारा मिले, उसके पश्चात् आन्तरिक बाधाओं को पार करके हम परिपूर्ण शक्ति से देश को संकटमुक्त करने में संलग्न होंगे।' हमारे देश के मनीषीयों ने इस प्रकार के लोगों को फटकारा है 'कि इस तरह की आत्म विडम्बनाजनक बातें हमें नहीं करनी चाहिएं। जो व्यक्ति कहता है कि पहले फाउन्टेन पैन मिले तब महाकाव्य लिखने बैठूं उसका लोभ निश्चय ही फाउन्टेन पैन के प्रति होता है, महाकाव्य के प्रति नहीं।'

15 अगस्त, 1947 से आज तक की हमारी भौतिक और भावात्मक यात्रा अत्यन्त

भटकाव भरी और दुखमय रही है। देश के भविष्य और भाग्य निर्माण को हमारे नेताओं ने आम आदमी के साथ नहीं जोड़ा । हमारा देश अपनी नस नाड़ी से कट गया। उसका रक्त संचार रुक गया। कहा गया है और यह सच भी है कि देश के निर्माण में यदि जनसाधारण सम्मिलित होता है तो निर्माण क्रिया सजीव और स्थायी हो जाती है। 'जो नेता अपने एक नायकत्व पर लुब्ध होता है वह दूसरों के मन को जड़ बना देता है। देश का भाग्य यदि जनसाधारण की इच्छा और प्रकृति के अनुरूप निर्मित और पोषित न होता तो वह एक पिंजरा जैसा हो जाता है, उसमें दाना-पानी तो पर्याप्त मात्रा में मिल सकता है लेकिन उसे हम घोंसला नहीं कह सकते। वहां रहते-रहते पंख निर्जीव हो जाते हैं।'

एक नायकत्व के दुष्परिणाम

हम आजाद तो हुए किन्तु अपने देश को हमने देश की तरह नहीं कारखाने की तरह चलाया। भारत को कभी रूस तो कभी अमरीका, कभी पश्चिम देशों तो कभी जापान की खरल में घोंट कर भौतिक समृद्धि का रसायन बनाने का उपक्रम चलाया। एक दल और एक नेता को देश का महाप्रबन्धक मानकर उसे सब कुछ सौंप दिया। वह एक ऐसा नेता था जो अपने नायकत्व को ही देश मानता था, जबकि हमारे देश ने एक नायकत्व का निषेध ही नहीं उसकी निन्दा भी की है। हमारे ऋषियों का स्पष्ट निर्देश है कि 'एक नायकत्व जहां भी हो, शास्त्र में, गुरु में या राष्ट्रनेता में, उससे मनुष्यत्व और राष्ट्र की हानि होती है, नायकचलित देश मोहाच्छन्न हो जाता है, जब एक 'जादूगर' उससे विदा होता है तो कोई और 'जादूगर' किसी और मंत्र की सृष्टि करके उसे मोहाविष्ट कर देता है। आजादी के बाद से अब तक हमारे देश में यही होता आ रहा है। एक के बाद दूसरा जादूगर आता है और आधुनिकता एवं आर्थिक समृद्धि के नाम पर हमें नयी-नयी यातनाओं के नर्क में धकेल कर चला जाता है।

धीरे-धीरे यह स्थिति आती जा रही है कि निकट भविष्य में हमारा कहने योग्य सम्भवतः कुछ भी शेष नहीं रहेगा। हमारे देश पर हो रहे आर्थिक और सांस्कृतिक आक्रमण को झेल पाना हमारे लिए सम्भवतः असम्भव हो जाएगा। हम स्वदेशी होने की तुलना में विदेशी होना अच्छा और गौरवपूर्ण मानने लगे हैं। खान-पान, रहन-सहन, संबंध, सम्बोधन, उत्पादन, उपभोग, साहित्य और रंगमंच, सभी पर पश्चिमी छाप होना हम सभ्य और प्रगतिशील होना मानने लगे हैं। पश्चिमी तर्ज पर जीवन जीने को ही हमारा आधुनिक होना है। यदि कोई विदेशी हमसे हमारी संस्कृति के विषय में कुछ पूछता है तो हम बगलें झांकने लगते हैं। हमारी शिक्षा ए० बी० सी० डी० में सिमट गई है।

हम मानसिक रूप से भयभीत हैं, मानसिकहीनता से ग्रस्त हैं। हमारा सारा शरीर तापग्रस्त है और हमारे नेता हथेली को माथे से ठण्डा बताकर हमें सान्त्वना देते हैं कि

शरीर का ताप नकली है। हम पहले नियोजित अर्थ-व्यवस्था द्वारा देश का भाग्य निर्माण करने के लिए उतावले थे, अब खुली अर्थ-व्यवस्था द्वारा बिगड़ी बनाने के लिए बेचैन हैं। हमने पहले सोवियत रूस की कीर्ति को अपनी कीर्ति बनाना चाहा था, अब अमरीकी कीर्ति को अपनी कीर्ति बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। भौतिक रूप से अमरीका, विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोश और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर हमारी निर्भरता जिस मात्रा में बढ़ती जा रही है, आन्तरिक रूप से उसी मात्रा में हम अपना देश खोते जा रहे हैं। गड्ढे से निकलकर कुएं में गिरने जैसी स्थिति है।

यदि हमें अपने देश को खोने नहीं देना है तो उसे स्वदेशी की भाव भूमि पर प्रतिष्ठित करना ही होगा। स्वदेशी अपने कर्म, कौशल और प्रज्ञा द्वारा देश को अपना और महान बनाने का आह्वान है। स्वराज्य का अर्थ केवल अपना करघा, अपना चरखा, अपना कपड़ा, अपना साबुन, अपनी घड़ी और अपनी दवाई आदि का उत्पादन नहीं है, स्वराज्य का अर्थ है हमारे देश देवता की हमारे मन मन्दिर के गर्भ में प्राण-प्रतिष्ठा। स्वदेश की आधारभूमि हैं मन और स्वदेशी उस मन की भौतिक सृष्टि है। पहले मन स्वदेशी बने, पहले मन को स्वदेश के प्रति समपित करें। वस्त्र और वस्तुओं का स्वदेशी सृजन स्वतः होगा, हमारे मन का संकट ही स्वदेश का संकट है।

यह हमारा यथार्थ है। हम इस यथार्थ को स्वीकार करें कि हमने अपना 'स्व' बेचकर स्वावलम्बन खरीदना चाहा और परावलम्बी बन गए। किन्तु यह भी यथार्थ है और हमारे पूर्वजों द्वारा बताए गए इस यथार्थ को भी हमें स्वीकार करना चाहिए कि 'भारत का चिर जागृत' चिर तरूण भगवान, हमारी आत्मा का आह्वान कर रहा है। उस आत्मा को जो अपरिमेय है, अपराजेय है, जिसका अमृतघट अक्षय है, अमृतलोक पर जिसका अनन्त अधिकार है, लेकिन जो अपमानित होकर अपना मुंह छिपा रहा है। आघात पर आघात, विपदा पर विपदा देकर हमारे भारत का भाग्य-भगवान हमें पुकार रहा है— 'आत्मानं विद्धिः'— 'अपने आपको जानो— पहचानो'। यही है देश का देशवासियों को स्वदेशी का मंत्र। हमारा भारत विशाल है, हमारा इतिहास महान है, हम पृथ्वी के प्रथम राष्ट्र हैं, हमने भूमि का प्रत्यक्ष दर्शन किया है। हमारी मातृभूमि शक्ति रथ पर बैठकर राजपथ पर निकल पड़ी है, रोग-ताप विपद मृत्यु की कोई बाधा अब उसे रोक नहीं पाएगी।

बाहर के भौतिक एवं सांस्कृतिक आक्रमणों का प्रतिकार और भौतिक भोग के तामसिक लोभ का त्याग तथा प्रायश्चित का आरम्भ बिन्दु है, 'आत्मानं विद्धिः' अपने आप को जानना अर्थात् स्वदेश की प्रतिभा और प्रज्ञा के प्रकाश में स्वदेशी की भावना का सृजन और भौतिक समृद्धि का निर्माण अपने स्वाधीन देश को आर्थिक दासता के जबड़े में जाने से बचाने का स्वदेशी ही एकमेव मार्ग है। कबीर के करघे और गांधी के चरखे को केवल वस्तु और वस्त्र उत्पादक यंत्र न मानकर यदि उसे राष्ट्रजन के मन का परिष्कार और संस्कार करने का साधन माना गया होता तो यहां केवल

स्वराज्य ही नहीं स्वतंत्र एवं सुराज भी होता और अपना देश अब तक सभी क्षेत्रों में स्वावलम्बी बन चुका होता।

23 फरवरी 1992

भारत के सशक्त 'स्व' का उद्‌भव

मुझे एक बुद्धिजीवी मिले। उन्हें बुद्धिजीवीं कहना ही उचित होगा, क्योंकि वे अपनी बुद्धि और अक्षर बेचकर अपनी रोटी कमाते हैं। वहीं लिखते है, जहां पैसा मिलता है और वही लिखते और बोलते हैं जो पैसे वाला कहता या चाहता है। पैसे वाले को वे अद्वैतभाव से देखते हैं, स्वदेशी और विदेशी में कोई भेद नहीं मानते। वे बुद्धिजीवी पूर्वाञ्चल, कश्मीर और पाकिस्तान होकर आए थे। इन क्षेत्रों की समस्याओं की चर्चा चली तो उन्होंने अपना समाधान प्रस्तुत किया – 'भारत और बंगलादेश के बीच 'तीन बीघा' क्षेत्र के विवाद को हल करने का एकमेव उपाय है, कि वहां की चालीस हजार भारतीय आबादी को हटा कर वह भूखण्ड बंगलादेश को सौंप दिया जाए। बंगलादेश से मैत्री बनाए रखना है तो 'तीन बीघा' जैसी 'पांच सेन्टीमीटर' जमीन के लिए जिद्द करना उचित नही है।

पूर्वाञ्चल के समस्त राज्यों की अपनी-अपनी विशिष्ट संस्कृति है। वे एक अलग राष्ट्र जैसे हैं। उनकी इस वास्तविकता के आधार पर उन्हें स्वतन्त्र और सार्वभौम राष्ट्र की मान्यता प्रदान करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। पूर्वाञ्चल के राज्यों को भारत ने अनावाश्यक रूप से अपना सिरदर्द बना रखा है।

कश्मीर घाटी की आबादी यदि स्वायत्तता चाहती है, यदि वहां के लोग अपना एक अलग राष्ट्र-राज्य बनाना चाहते हैं, या वे पाकिस्तान के साथ रहना चाहते हैं तो लोकतांत्रिक भारत को उनकी इस लोकतांत्रिक मांग की पूर्ति करने में परेशान क्यों होना चाहिए ? कश्मीर घाटी की जनता की राय लेकर निर्णय कर लेना चाहिए। वहां के कुछ लाख लोग भारत में रहें या अलग हो जाएं तो इससे पच्चासी करोड़ की जनसंख्या पर क्या और कितना प्रभाव पड़ेगा ? करोड़ों में से कुछ लाख निकल ही जाएंगे तो क्या ? कनखजूरे की एक टांग रहे या न रहे उसकी गति में क्या कोई अन्तर पड़ता है ?

फिर आए देश की आर्थिक स्थिति पर। बोले -- भारत को आर्थिक विकास करना है। गरीबी और अभाव से मुक्त होना है। देश दिवालिया हो गया है। भूख का शमन, दवाई और पढ़ाई की व्यवस्था कर पाना कठिन हो गया है। बहुराष्ट्रीय

कम्पनियों को भारत का आर्थिक उद्धार करने का अवसर दिए जाने को कुछ लोग देश की आर्थिक गुलामी को आमंत्रण बता रहे हैं। क्या अन्तर पड़ता है इससे। हमें वस्तु और प्राविधि चाहिए, वह मिल रही है। जो वस्तु हमें सहज उपलब्ध हो रही हो उसके उत्पादन में अपना समय, शक्ति और प्रतिभा हम क्यों खर्च करें ? हम पहले से ही गंभीर आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त हैं। ऐसे समय कुछ लोग स्वदेशी का आन्दोलन चलाकर हमारी समस्याओं को और अधिक गंभीर बना रहे हैं। यदि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने यहां अपने और उद्योग लगाने से इनकार कर दिया तो क्या होगा इस देश का ?

किस परम्परा के प्रतिनिधि ?

ये हैं भारत के बुद्धिजीवी। इन्हें भारतीय प्रज्ञा का प्रतिनिधि कहें कि विदेशी कम्पनियों और पूंजी के प्रतिनिधि। इन्हें विचार से लेकर वस्तु तक सब कुछ विदेशी ही चाहिए। इन्हें देश का भूगोल भारी लगता है। ये भारत की आत्माभिव्यक्ति को भारत के लिए संकट मानते हैं। इनका भारतीय संस्कृति का आग्रह भारत की अनेकता पर आक्रमण है। इनकी मान्यता है कि यदि भारत में हिन्दू जीवन दर्शन का पुनरोदय हुआ तो यहां की विभिन्न मजहबी, सांस्कृतिक और भाषाई पहचान पर प्रश्न चिन्ह लग जाएगा। ये भारत को एक, एकात्म, एकरस और जैविक इकाई नहीं, युनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमरीका की तरह युनाइटेड स्टेट्स ऑफ इण्डिया मानते हैं। हमारा संवि-धान इनकी इस मान्यता में मददगार है। संविधान के प्रथम भाग का यह प्रथम वाक्य कि 'भारत अर्थात् इण्डिया राज्यों का संघ होगा' भारत की एक राष्ट्रीयता और अखिल भारतीयता को चुनौती देने का अवसर प्रदान करता है।

जिस देश के ऋषिवर्ग (बुद्धिजीवी) को अपने देश का भूगोल भारी लगता हो, जो स्वदेशी को अपनी सुख-सुविधा के लिए चुनौती मानता हो, जो विदेशी ज्ञान-विज्ञान, प्राविधि और उत्पाद पर अपनी निर्भरता को आत्मनिर्भर और आधुनिक हुआ मानते हों, उनका 'स्वदेश ' कौन सा है ? वे किस देश की प्रतिभा, प्रज्ञा और परम्परा के प्रतिनिधि हैं ? भारत का प्रतिनिधित्व वे निश्चित ही नहीं करते।

प्रश्न यह है कि 'हम भारत के लोग' किस प्रकार की जिन्दगी जीना चाहते हैं ? प्रश्न यह भी है कि भारत की अनेकता और विविधता यहां की साम्प्रदायिक पांथिक स्वायत्तता किस कारण और क्यों है ? भारत क्यों एकात्म है और भारत क्यों टूट रहा है ? क्या केवल किसी का बाजार, किसी कम्पनी के उत्पाद का उपभोक्ता और किसी देश की दया पर अर्थात् परजीवी राष्ट्र के रूप में रहना प्रगति और आधुनिक होने का लक्षण है या सबल, समृद्ध और आधुनिक राष्ट्र बनने में भारत की आत्मशक्ति की भी कोई भूमिका हो सकती है ?

जब बाड़ ही खेत खाने लगे तो फसल की रक्षा कर पाना संभव नहीं होता। जब

आत्मनिषेध, आत्मविस्मृति और आत्मनिन्दा को प्रगतिशील एवंआधुनिक होना बताया जाने लगता है तो देश का गुलाम हो जाना अवश्यम्भावी हो जाता है।

हम गुलाम हो नहीं रहे हैं, गुलाम हैं। भारत की राजनीतिक आजादी और भौगोलिक विभाजन के बाद हमने भौतिक समृद्धि का निर्माण करने का जो ताना-बाना बुना उसका आधार हमारी अपनी प्रतिभा, प्रकृति, प्रवृत्ति, परम्परा और भारत की राष्ट्रीय चिति नहीं रूस की नियोजित अर्थव्यवस्था थी। देश, समाज, व्यक्ति और व्यवस्था का सरकारीकरण उसकी मूल चेतना थी। परिणामस्वरूप सोवियत संघ तो कंगाल हुआ ही, भारत भी दिवालिया हो गया। कम्युनिस्ट अर्थव्यवस्था के प्रति हमारा मोह भंग हुआ तो पूंजीवादी देशों के द्वार पर हमने अपनी चादर बिछा दी। किसी वैकल्पिक व्यवस्था का निर्माण करने की बात न हमने तब सोची और न अब सोच रहे हैं। और यदि कोई इस संदर्भ में कुछ सोचता, बोलता या कुछ करने का प्रयास करता है तो उसे प्रतिगामी, आधुनिकता का दुश्मन, वैज्ञानिक तथा प्राविधिक विकास में बाधक कहकर बदनाम किया जाता है।

इनके कुतर्क देखिए

प्रगतिशीलता और बुद्धि के ये ठेकेदार यह भूल जाते हैं कि भारत की अनेकता, साम्प्रदायिकता और मजहबी स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता, सम्प्रदायनिरपेक्ष चरित्र, राष्ट्रीय एकता और अखण्डता केवल इसलिए है कि यह देश हिन्दू बहुल है। भारत की सांस्कृतिक धारा में अनेकता में एकता का अमृतत्व है। क्या इसकी अनेकता और एकता की रक्षा वे लोग कर सकते हैं जो इसे एक नहीं अनेक राष्ट्रों का संघ या समुदाय मानते हैं ? क्या भारत की विविधता किसी एक पुस्तक, किसी एक पैगम्बर या किसी एक उपासना पद्धति के प्रति प्रतिबद्ध लोगों के कारण बनी और अक्षुण्ण है? इसी प्रकार क्या वे लोग भारत को स्वावलम्बी बनाने का कोई अनुष्ठान प्रारम्भ कर सकते हैं जो परजीवी हैं और परजीविता ही जिनका जीवन है ? केवल उपभोक्ता बने रहना और सुवधाभोगी जीवन जीना ही जिनका जीवनोद्देश्य हो, वह लोग क्या स्वावलम्बी बनने का खतरा उठा सकते हैं ? आत्मा का मूल्य देकर 'अर्थ' अर्जित करने वाले लोग पराधीन ही होंगे, स्वावलम्बी और स्वाधीन नहीं। जिन्हें परायों का मुंह जोहना असह्य नहीं होता, दूसरों के टुकड़ों पर पलने और परायों के संकेत पर दुम हिलाने की स्वामिभक्ति जिसका स्वभाव होता है, उनसे आत्मसंयम और उदात्त उद्देश्य के प्रति समर्पण की अपेक्षा करना मूर्खता है।

गत लगभग पचास वर्षों से हम यही मूर्खता करते और इसी को 'राष्ट्रीय समझ' मानते आ रहे हैं। हमने अपनी राष्ट्रीय प्रतिभा और पौरूष को नहीं टटोला। भारतीय प्रतिभा और ऊर्जा-विदेशों की ओर बह गई। हमारी अपनी प्रतिभा का उपयोग विदेशी अपने वैभव का निर्माण करने और हमें उपभोक्ता बनाने में कर रहे हैं। हमारी भौतिक

एवं भाव भूमि बंजर बन गई है। हम अनुदेशी जिन्दगी जीने को विवश हैं और वे हमारा शोषण करके हमारा ही रक्त-मांस हमें बेच कर दयावान कहलाने का हर संभव प्रयास कर रहे हैं। हमारी सोच इतनी विकृत हो गई है कि 'स्वदेशी' के आग्रह को हम आर्थिक विकास के लिए चुनौती मानने लगे हैं। तर्क-कुतर्क का विचार किए बिना भारत के ये बुद्धिवादी भारतीय होने, भारतीय वस्तुओं का उपयोग करने और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के खतरे से सावधान रहने के सुझाव और संकेत का विरोध करते हैं। एक बुद्धिजीवी का कहना है कि 'स्वदेशी पर बल देने वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग पहले नेकर पहनना बन्द करें, फिर स्वदेशी की बात करें, क्योंकि नेकर पश्चिम की देन है ?' यह भी कहते हैं कि जीन का उपयोग छोड़ें। डा० जोशी और आडवाणी इलेक्ट्रानिक डायरी रखना बन्द करें। यदि यह अभियान सफल हो गया तो दूरदर्शन सहित नित्य के जीवन में आने वाले साबुन, मंजन, क्रीम, पाउडर आदि अनेक वस्तुओं से देश वंचित हो जाएगा। स्वदेशी अभियान चलाने वाले ये हिन्दू राष्ट्रवादी विदेशी प्राविधि तो चाहते हैं किन्तु विदेशी उत्पाद और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विरोध करते हैं। इस पाखण्ड से देश को बचाना होगा।

पराजित एवं परजीवी मानसिकता

अद्भुत और आश्चर्यजनक तर्क है यह। प्रश्न जीन पहनने या छोड़ने का नहीं है, प्रश्न है अपने उपयोग की आवश्यक वस्तुएं अपने देश में अपनी आवश्यकता के अनुरूप और अनुसार निर्माण करने का। प्रश्न है देश को बहुराष्ट्रीय विदेशी कम्पनियों का चरागाह और बाजार बनने से बचाने का। प्रश्न है भारत राष्ट्र का आर्थिक विकास करके इसे विश्व के बाजार की प्रतियोगिता में शामिल करने का। प्रश्न है प्राविध या भारतीयकरण करने का। प्रश्न यह है कि यदि भारत के लोगों को जीन पहनना, इलेक्ट्रानिक डायरी रखना, मंजन, क्रीम, पाउडर और ब्लेड का उपयोग करना है तो इन और इन जैसी समस्त वस्तुओं का भारत में निर्माण करने का। स्वदेशी का अर्थ दुनिया से अलग-थलग होना या अन्तरराष्ट्रीय धारा से कट जाना नहीं है, स्वदेशी का अर्थ है अपने देश को आर्थिक दासता के चंगुल में फंसने से बचाकर आर्थिक रूप से विकसित देशों की बराबरी में प्रतिष्ठित करना। अमरीका, जर्मनी, इंग्लैण्ड, जापान और कोरिया के बाजार केवल हम ही क्यों बने, इन्हें भी भारत का बाजार और भारतीय उत्पाद का उपभोक्ता बनने को विवश क्यों न होना पड़े।

जिन्हें भीख मांगने में ही गर्व का अनुभव होता है, या जो लोग आयातित सुविधाओं के बन्दी हैं, स्वदेशी की भावना से उनका परेशान होना स्वाभाविक है। क्या यह इनकी बुद्धिजीविता की बिडम्बना नहीं है कि विदेशी पूंजी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पाद का बन्दी बनने में इन्हें लज्जा नहीं आती किन्तु स्वदेशी का अनुष्ठान इन्हें बोझ मालूम देता है। ये अपना स्वराज्य, अपनी स्वतंत्रता, अपनी

प्रतिभा और अपना कर्म-कौशल उस 'किसी' के द्वार पर दुम हिलाते रहने में सुरक्षित और प्रतिफलित मानते हैं जो इनके 'पेट का पानी' हिले बिना इन्हें दो जून की रोटी, रहने को बंगला, चलने को कार, फिल्म देखने के लिए दूरदर्शन और वी०सी०आर० प्रदान करता हो, इनके नंगेपन को मौजमस्ती की चादर से ढकता हो और इनकी पराजित और परजीवी सोच को प्रगतिशीलता एवं आधुनिकता का जामा पहनाता हो। इनकी बुद्धि में यह तर्क नहीं समाता कि यदि बहुराष्ट्रीय विदेशी कम्पनियों को अपने देश में न आने देकर भी जापान आर्थिक उन्नति कर सकता है, तो यह कार्य भारत अपने बलबूते पर क्यों नहीं कर सकता ?

देश आजाद हुआ तो हमारी पहली आवश्यकता थी अपनी विरासत को टटोलने की। अपनी आत्मसृष्टि से देश की सृष्टि करने की। अपनी युग-अर्जित विद्या का विकास करने की और जो कुछ कम पड़ता, उसे सीखने की। यदि हमने यह किया होता, हमारे देश के विज्ञानियों और उद्योगशील लोगों ने अपने देश का तो औद्योगिक विकास किया होता, दुनिया के बाजारों पर भी जापान, जर्मनी, अमरीका और कोरिया आदि की तरह अधिकार कर लिया होता। तब हम भिखारी नहीं, दाता होते। तब विश्व का व्यापार और भुगतान संतुलन हमारी शर्तों और सिक्कों के आधार पर बनता-बिगड़ता। तब विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष हमारे सामने कर्ज देने की शर्त न रखते, वे हमारी शर्तों पर कार्य कर रहे होते। तब हमने अपना विकास तो किया ही होता, दूसरों का विकास करने में भी अपना योगदान दे रहे होते। तब हम केवल उपभोक्ता नहीं उत्पादक होते। ऋणी नहीं ऋणदाता होते।

गौरवशाली समृद्धि का मूलमंत्र

भारत को यदि अपना आत्म गौरव प्राप्त करना है, आत्मनिर्भर बनना है, दुनिया के देशों की बराबरी करनी है तो उसे अपनी भूमिका बदलनी होगी, अपनी सोच और आचरण का परिष्कार करना होगा। भारतीय प्रतिभा और प्रज्ञा को प्रमुखता देकर भारत के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ करनी होगी। देशवासियों को स्वदेश से जोड़ना ही होगा।

देशवासियों का 'स्व' और 'आत्म' से कटा होने के कारण ही यहां के बुद्धिवादियों को देश की भूमि को छोटे-बड़े टुकड़े, उपयोगिता और निरूपयोगिता की कसौटी पर कसने और उसकी कीमत चुका कर पड़ोसी से शान्ति और मैत्री खरीदने का सुझाव देने में लज्जा का अनुभव नहीं होता। देश के किसी हिस्से की आबादी को इसी देश की भूमि पर एक आजाद और संप्रभु राष्ट्र-राज्य बनाने की दलील भी इसी कटाव का प्रतिफल है। इसी कारण हम भारत के कुछ लोगों को विदेशियों की आर्थिक गुलामी में फंसना कोई विशेष बात नहीं लगती। इसी कारण अत्यन्त सहज भाव से वे

किसी का भी बाजार और अनुदेशी राष्ट्र बनने के लिए तैयार हैं। और उन्हें ऐसा लगता ही नहीं कि हम भी कुछ ऐसा करें कि दुनिया के देश हमें लूटने के लिए नहीं हमारी कृपा प्राप्त करने के लिए हमारी ओर दौड़ें, हमारी परनिर्भरता समाप्त हो और हम आत्मनिर्भर बनें। अपनी विविधता और अनेकता को अक्षुण्ण रखते हुए हम एकात्म समरस और समृद्ध राष्ट्र के रूप में विश्व के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हों।

मृत आकांक्षा, विकृत बुद्धि और परजीविता के अभ्यस्त अपने ही लोगों द्वारा अपने ही देश का अहित करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं बुद्धि लगाने से बड़ी विडम्बना एवं दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ? जिन्हें स्वदेश और स्वदेशी असह्य लगने लगे, वे दया के नहीं दण्ड के पात्र होते हैं। ये मानसिक गुलाम ही नही मानसिक रोगी भी हैं।

इस समय देशवासियों को राष्ट्रीय 'स्व' का साक्षात्कार कराकर देश को स्वावलम्बी बनाने और इसकी स्वाधीनता एवं स्वराज्य में सुराज का रंग घोलने का एक ऐतिहासिक और सौभाग्यपूर्ण अवसर उपस्थित है। यह समय चुनौतियों और चेतावनियों से भरा हुआ है। अपने श्रम, अपनी साधना, अपने संकल्प और समर्पण द्वारा अपने राष्ट्र को गौरवशाली और समृद्ध बनाने, इसे अखण्ड और अक्षत रखने का एक और अवसर आया है। यह भारत, बिके हुए सुविधाभोगी, परजीवी बुद्धिजीवियों, जिन्हें बुद्धिराक्षस कहना अधिक उपयुक्त होगा, के लेखों और समाचार पत्रों से छप रहे समाचारों में नहीं, खेतों और खलिहानों मे व्यस्त किसानों, कल-कारखानों में व्यस्त कारीगरों, कर्मचारियों और इंजीनियरों, विद्यालयों के अध्यापकों और छात्रों, देश के दूर-दराज में रह रहे उन अर्द्धनग्न, भूखे और अभावग्रस्त लोगों के हृदय में है, जो इसी की माटी से बने हैं और इसी माटी में मिल जाने की साध लेकर जी रहे हैं। इनका हृदय, इनकी प्रज्ञा, इनकी चाह, सब कुछ इस देश की माटी की सुगन्ध से रचा-बसा है। वह अपने देश के विषय में कभी अन्यथा नहीं सोचता-बोलता। वह न अपने खेत की 'मेड़' किसी को तोड़ने देता है, न देश की सीमाओं का सौदा करना उसे स्वीकार और सहन होता है। वह अपने देवता की पूजा तो करता है किन्तु दूसरे के देवता का भी उतना ही सम्मान करता है। उसकी स्वदेशीवाणी विदेशी विरूदावलि नहीं गाती। उसकी श्रम-साधना किसी को गुलाम बनाने के लिए नहीं सर्व के मंगल के लिए होती है। उसका लक्ष्य केवल अपना पेट भरना या केवल बहुजन हिताय नहीं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' है।

इन अघाए किन्तु चिरभूखे शब्द व्यापारियों का 'स्वदेश' स्वदेशी कम, विदेशी अधिक है। विदेश के अहित और विदेशी हानि-लाभ में ये देश का बिगड़ता और देशीय हानि-लाभ देखते हैं। इनकी इन स्थापनाओं के कारण ही देश को कंगाली का संताप भोगना पड़ा। इनके बुद्धिवाद ने ही भारत के 'स्व' को तिरस्कृत किया है। ये ही

भारत की आत्माभिव्यक्ति में अवरोधक हैं। स्वदेशी अनुष्ठान और अभियान के कारण उत्पन्न इनकी घबड़ाहट भारत के सशक्त'स्व' के उद्भव का संकेत है।

1 मार्च 1992

यथार्थ से कटा पंजाब का चुनाव

सन्1985 में पंजाब विधान सभा का चुनाव हुआ था। राजीव-लोगोंवाल समझौता चुनाव का आधार बना था। समझौते के बाद लोगोंवाल की हत्या कर दी गई थी। सरदार सुरजीत सिंह बरनाला के नेतृत्व में अकाली दल (लोगोंवाल) ने चुनाव लड़ा था। चुनाव में अकाली दल (लोगोंवाल) को बहुमत मिला था। बरनाला के नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ था। राजीव की इन्दिरा कांग्रेस ने अपनी पराजय को भारतमाता की विजय बताया था। बरनाला सरकार को बीच-बीच में राजीव का चरित्र प्रमाण-पत्र मिलता रहा है। कई बार बरनाला सरकार की कुशलता और क्षमता की प्रशंसा की गई थी। लोक सभा में राजीव ने कहा था कि बरनाला सरकार ठीक दिशा में प्रभावपूर्ण ढंग से बढ़ रही है।

किन्तु अभी लगभग दो वर्ष ही बीते थे और बरनाला को कुशलता और सक्षमता का प्रमाण-पत्र मिले केवल दो ही महीने हुए थे कि राजीव सरकार ने बरनाला सरकार को भंग कर करके पंजाब में राष्ट्रपति शासन यह कहकर लागू कर दिया था कि वह कानून और व्यवस्था बनाये रखने, साम्प्रदायिक सद्भावना और आतंकवाद का मुकाबला करने में अक्षम एवं असफल रही है। बरनाला सरकार पर राजीव का यह आरोप किसी भी स्तर पर जड़ नहीं जमा पाया था।

कारण ?

1987 में हरियाणा विधानसभा के चुनाव हो रहे थे। चुनाव जीतने के लिए हरियाणा के हिन्दुओं को आकर्षित करना आवश्यक था। 1984 में हुई इंदिरा गांधी की हत्या की स्मृति जगाने के लिए उन्हें सिख-विरोधी माहौल बनाना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बरनाला सरकार को बलि का बकरा बनाया गया। 1987 से 1992 तक पंजाब केन्द्र सरकार के अधीन रहा। राष्ट्रपति शासन की आड़ में केन्द्रीय सरकारें (कभी राजीव, कभी विश्वनाथ प्रताप सिंह, कभी चन्द्रशेखर) पंजाब पर शासन करती रहीं। हत्या, हिंसा, आतंकवाद और अलगाववाद अपनी जड़ों को गहरा और व्यापक बनाते रहे।

यथार्थ की उपेक्षा

यही है गत सात वर्षों की पंजाब की कहानी। अब तक पंजाब को आतंकवाद और अलगाववाद से मुक्त करने के जितने भी प्रयास किए गए हैं, पंजाब की जनता को राष्ट्र की लोकतांत्रिक और राजनीतिक धारा में शामिल करने के लिए जो भी उपाय अपनाए गए, वे सर्वथा असफल रहे हैं। 19 फरवरी,1992 को सम्पन्न चुनाव परिणामों और सरकार के गठन के बाद भी कोई आशाजनक संकेत नहीं मिला। न चुनाव और उसके परिणामों के प्रति किसी कोने में कोई उत्साह दिखाई दिया न समस्या के समाधान के प्रति कोई विश्वास।

क्यों ?

इस प्रश्न का उत्तर या तो खोजा नहीं जाता या फिर अपनी-अपनी राजनीतिक विवशताओं के कारण सत्ता प्रतिष्ठान और उससे जुड़े लोग उसकी गहराई में उतरकर यथार्थ का सामना करने से कतराते हैं। जो आचरण या अपथ्य रोग का कारण होता है, उसे ही अपनाए रखकर आरोग्य लाभ करने जैसा प्रयास ही पंजाब समस्या का समाधान करने के लिए भी किया जाता है। जिस चुनावी राजनीति ने पंजाब में भिण्डरवाले को जन्म दिया, उसका पालन-पोषण किया, जिसके कारण स्वर्ण मन्दिर और अकाल तख्त पर इंदिरा जी को आक्रमण करने के लिए विवश होना पड़ा था, जिस विवशता ने राजीव लोगोंवाल के बीच समझौता कराया था, जिस राजनीतिक प्रवृत्ति ने बरनाला सरकार को भंग कराया था और निहित राजनीतिक स्वार्थ की जीप पर सवार होकर विश्वनाथ प्रताप अमृतसर की सड़कों पर घूमकर सब कुछ ठीक-ठाक कर देने का संकेत देकर प्रसन्न थे उसका चरित्र और हेतु समझे बिना पंजाब में आतंकवाद का अंत करने के सभी प्रयासों का असफल होना अवश्यम्भावी है।

किसके भाग्य का फैसला

एक बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि अपने देश के सार्वजनिक जीवन में सत्यान्वेषण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो गई है। यथार्थ का कथन और विश्लेषण हानिकर माना जाने लगा है। लीपापोती समस्याओं का समाधान बन गई है। यदि ऐसा न होता तो पंजाब में ही नहीं देश के दूसरे भागों यथा, असम, पूर्वांचल के दूसरे प्रदेशों, बिहार, तमिलनाडु, आन्ध्र आदि कई राज्यों में जो कुछ हो रहा है वह न होता।

पंजाब का यथार्थ यह नहीं है कि वह आतंकवाद की आग में जल रहा है? उसका यथार्थ यह भी नहीं है कि पंजाबियों के मन में अलगाववाद पल रहा है। उसका यथार्थ सिख और सिखेतर समाज के बीच साम्प्रदायिकता शत्रुता और द्वेष भी नहीं है। पंजाब का यथार्थ है उसको उसके मूल से काटने का प्रयास। उसका यथार्थ है वहां के लोगों को हिन्दू-सिख सम्प्रदाय में विभाजित करने वाला सोच। भारत राष्ट्र की अखिल सत्ता से अलग सिख अस्मिता और पहचान स्थापित करने का जो

सुनियोजित षड्यंत्र गत सौ से भी अधिक वर्षों से चला आ रहा है और जिसे हमारे ही देश के हमारे अपने ही बुद्धिराक्षस, राजनेता तथा पत्रकार बल प्रदान करते आ रहें हैं, उस षड्यंत्र को समझे बिना, उसका निराकरण किए बिना, तथा पंजाब के सिखों के मानस में बैठाई जा रही भारत से भिन्न एक अलग समानान्तर सिख राष्ट्र की उत्तेजक अवधारणा का यथार्थ समझे बिना पंजाब में पल और बढ़ रही समस्या का समाधान प्राप्त कर पाना सर्वथा असंभव है।

यदि केवल चुनाव और चुनावों से मिली सीटों की संख्या में समस्याओं को हल करने की शक्ति होती तो भारत सर्वथा समस्यामुक्त होता। यदि चुनाव हिंसा व हत्या, आतंक और अलगाव का उत्तर होता तो हिंसा-हत्या और अलगाव इतिहास के कूड़ेदान में सड़कर अब तक समाप्त हो गया होता।

आजादी के बाद से अब तक लोकसभा के दस और अलग-अलग विधानसभओं के कई चुनाव हो चुके हैं। देशवासियों को चुनाव का अजीर्ण हो चुका है। राजनीतिक दल चुनाव से घबड़ाने लगे हैं। अपने राष्ट्रीय संदर्भ से कटकर चुनाव जाति, सम्प्रदाय, भाषा और क्षेत्र के हिताहित की संकरी गली में खो गए हैं। चुनाव में अपनी विजय को सुनिश्चित बनाने के लिए उचित-अनुचित सभी प्रयासों का प्रयोग करने का रिवाज बन गया है। इसी चुनावी राजनीति , इसी वोट राजनीति के रिवाज में से निकले परिणामों को लोकमानस की स्वस्थ अभिव्यक्ति और लोकतंत्र मान लेने के संतोष ने देश को इतना खोखला बना दिया है कि आज हमारे देश का हर व्यक्ति भयभीत है। देश का प्रत्येक कोना आतंकित है और यथार्थ की ओर से मुंह मोड़कर अपनी आंखें बन्द किए हम खड़े हैं कि हम नहीं देखेंगें तो या तो तूफान आएगा ही नहीं और यदि आएगा भी तो शान्तिपूर्वक गुजर जाएगा।

प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने पंजाब के चुनाव के पूर्व कहा था कि 'बस अब बहुत हो चुका। हत्या-हिंसा के भय से पंजाब में लोकतांत्रिक एवं राजनीतिक प्रक्रिया को अब रोककर नहीं रखा जा सकता। पंजाब में चुनाव होंगे और वहां की जनता अपने भाग्य का फैसला स्वयं करेगी।'प्रधानमंत्री की इस घोषणा में 'अन्यथा' कुछ भी नहीं था, केवल इस बात के कि क्या मतदान के पूर्व वे पंजाब में ऐसा माहौल बना पाएंगे कि वहां के मतदाता भयमुक्त होकर मतदान कर सकें ? यह 'अन्यथा' समुचे चुनाव काल में पंजाब ही नहीं सम्पूर्ण देश के सामने एक बहुत बड़ा चिन्ह बनकर खड़ा रहा और दुःख इस बात का है कि चुनाव के बाद वह और अधिक गहरा तथा गम्भीर हो गया। पंजाब का भयभीत बहुमत मतदान केन्द्र तक नहीं आ पाया। सुरक्षा बलों की उपस्थिति भी उन्हे भयमुक्त नहीं कर सकी। पंजाब के 1,31,69,795, मतदाताओं में से लगभग 24.23 प्रतिशत लोगों ने मतदान किया और केवल 14 लाख (10.49 प्रतिशत) मत प्राप्त करके नरसिंह राव की इंदिरा कांग्रेस तीन-चौथाई सीटें जीतीं। 1,31,69,795 मतदाताओं में से एक करोड़ मतदाताओं ने या तो चुनाव का

बहिष्कार किया या भयातंकित अपने घरों में बैठे रहे। जिन 28,42,480 मतदाताओं ने मतदान किया उनमें से एक लाख अड़तालीस हजार वोट रद्द किए गए। जिस चुनाव में कुल मतदाताओं का केवल चौबीस प्रतिशत हिस्सा भाग ले (सरकार ने 28 प्रतिशत बताया है) जिनमें (कुल संख्या 1,31करोड़) से केवल दस प्रतिशत से कुछ अधिक मत प्राप्त करके किसी दल को तीन-चौथाई बहुमत मिल जाए, उस चुनाव की वैधता और चुनाव परिणामों के प्रति विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लगना सहज और स्वाभाविक है।

अनुत्तरित सवाल

उन्नीस फरवरी, 1992 को हुए पंजाब के चुनावों में देश ने पाया कम, खोया अधिक। प्राप्ति खाते में केवल चुनाव है। किन्तु आशंकाओं की सूची बहुत बड़ी है कि क्या पंजाब के चुनाव परिणाम और नवगठित सरकार समस्या का समाधान कर सकेगी? प्रश्न यह भी है कि इस चुनाव के दौरान देश के सुरक्षाबलों के समक्ष आतंकवादी हतबल हुए कि नहीं? यह भी पूछा जाना अनुचित नहीं है कि जिस प्रक्रिया में शामिल होने से किसी प्रदेश या देश की अस्सी प्रतिशत आबादी अस्वीकार कर दे, रुठकर बैठ जाए या उदासीन हो जाए तो क्या उसका अपेक्षित प्रभाव और परिणाम सम्भव है ? क्या लगभग 24 प्रतिशत मतदान में से लगभग छः प्रतिशत वोट पाकर बनी सरकार पंजाब की जनता का प्रतिनीधित्व कर सकेगी ? क्या चुनावी कर्मकाण्ड ही लोकतंत्र है? क्या अब तक के प्रयासों और प्रक्रियाओं से यह प्रयास और प्रक्रिया भिन्न थी ? क्या पंजाब की समस्या का समाधान कांग्रेस कर पाएगी ? यदि नहीं तो पंजाब के मतदाताओं ने किसी दूसरे दल को विकल्प के रूप में न अपनाकर इस समस्या की मां इंदिरा कांग्रेस को अपना सर्मथन क्यों दिया ?

स्थिति यह है कि चुनाव के बाद इन्दिरा कोंग्रेस और पंजाबवासी दोनों भयभीत हैं। इंदिरा कांग्रेस अपनी जीत से भयभीत है तो पंजाबवासी इस आशंका से ग्रस्त हैं कि सुरक्षाबलों की वापसी के बाद उनका क्या होगा ? जिन्होंने मतदान किया वे अपनी-अपनी अंगुलियों पर लगे स्याही के निशान यथाशीघ्र मिटाने में लगे हैं। एक-एक विधायक की रक्षा करने के लिए एक-एक दर्जन बन्दूकधारी नियुक्त हैं, जबकि एक गांव की रक्षा करने के लिए पुलिस का केवल एक जवान पर्याप्त माना गया है। पंजाब के बारह हजार गांवों में से दो हजार गांव आतंकवादियों के चंगुल में हैं। शेष गांवों पर भी आतंकवाद की परछाई पड़ने लगी है। नागरिक प्रशासन प्रभावहीन है। नवगठित बेअन्त सिंह सरकार इन्दिरा कांग्रेस का प्रतिनिधित्व भले ही करती हो, पंजाब का प्रतिनिधित्व नहीं करती। जो दल और जो लोग पंजाब का प्रतिनिधित्व कर सकते थे वे या तो चुनाव के मैदान से हट गए या उन्हें जनसमर्थन नहीं मिला। प्रश्न यह है कि वे चुनाव मैदान से हटे क्यों? केवल इसलिए कि

आतंकवादियों का दबाव झेल पाना उनके बस की बात नहीं थी। जिन्हें समर्थन नहीं मिला उन्होंने अपनी जमीन स्वयं गवां दी थी। यदि भाजपा के पीछे इन्दिरा कांग्रेस के साथ मिलकर चुनाव लड़ने और उसके साथ साझा सरकार बनाने का पुछल्ला न लगाया गया होता यदि भाजपा ने केवल आतंकवाद ही नहीं आतंकवाद की जननी इन्दिरा कांग्रेस पर भी असिंदिग्ध रूप से आक्रमण किया होता तो पंजाब के चुनाव परिणाम भी भिन्न आए होते और मतदान का प्रतिशत भी बढ़ा होता। जो भी मतदाता मतदान केन्द्र तक गए या जा पाए उनके सामने प्रमुख प्रश्न यह था कि यदि कांग्रेस को ही या उसके साथ मिलकर ही समाधान निकल सकता या निकाला जा सकता है तो उसी का सर्मथन क्यों न किया जाए ? ऐसी स्थिति में दिल्ली और चण्डीगढ़ में क्या एक ही दल की सरकार रहे तो अच्छा होगा ? पंजाब के इस चुनाव में वहां के मतदाताओं को अपनी सम्पूर्ण प्रामाणकिता के बाद भी भाजपा केवल छायायुद्ध करती दिखाई दी। शेष दलों में अखिल भारतीयता का अभाव था। ऐसी स्थिति में मतदाता क्या करते ? नरसिंहराव की इन्दिरा कांग्रेस की विजय मतदाताओं की विवशता और स्पष्ट विकल्प के अभाव का परिणाम है। इस विवशता में मतदाताओं ने जिस विवेक का परिचय दिया वह स्तुत्य है।

क्या होगा स्थाई समाधान

राष्ट्रपति शासन के पांच साल बाद चण्डीगढ़ में बेअन्त सिंह की चुनी हुई सरकार बन जाने मात्र से स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। पहले भी पंजाब की समस्या का समाधान दिल्ली को खोजना था अब भी समाधान दिल्ली को ही खोजना होगा। बेअन्त सिंह को सामने करके नरसिंहराव अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकेंगे। दलीय हिताहित में ही देश का हिताहित मानने का कांग्रेसी सोच और अधिक गंभीर संकटों को जन्म देगा और अपने मूल दायित्व से कतराने का आभास देने वाला भाजपा का तरीका देश को और अधिक कमजोर करेगा केवल इसलिए कि भाजपा जिस बारीक प्रतिपक्षीय राजनीतिक चरित्र का निर्माण करना चाहती है उसके लिए यह समय उपयुक्त नहीं है। भारतीय मतदाताओं का मानस आर-पार की बात तो समझता है, किन्तु सहयोग और सहमति की राजनीति को वह मिलीभगत मानता है; किसी स्पष्ट छवि के अभाव में वह किसी दूसरे को अपनाने से घबड़ाता है। पंजाब के चुनाव में उसे यह स्पष्टता नहीं मिली इसलिए एक करोड़ एकतीस लाख मतदाताओं ने कांग्रेस को चुना शेष सत्रह लाख मतदाता इधर-उधर बंट गए। यदि उनके सामने कोई स्पष्ट विकल्प होता तो निश्चित की चौदह लाख की तुलना में सत्रह लाख मतदाताओं का फैसला कोई और परिणाम लेकर सामने आया होता। सम्भवतः तब पंजाब को आंतकवाद से मुक्त करने की कोई नई प्रक्रिया प्रारम्भ हो पाती।

अपने यथार्थ से कटा यह चुनाव पंजाब के सत्य से मुंह मोड़ कर प्रारम्भ की गई

समस्या का समाधान तलाशने की यह राजनीतिक प्रक्रिया, लोक मानस से कटा लोकतंत्र अब तक के अनुभव और अपने मूलदायित्व से हटता दिखाई देता मुख्य प्रतिपक्ष कोई सुखद एवं समाधानकारक संकेत नहीं देते। पंजाब और कश्मीर में आतंकवाद की सप्लाई लाइन काट पाने की क्षमता, इच्छाशक्ति और सम्भावना इस चुनाव परिणाम और विजयी दल की रीति-नीति में दिखाई नहीं देती। आतंक और अविश्वास के वातावरण में किसी सकारात्मक समाधान तक पहुंच पाना संभव नहीं होता। अतः जब तक पंजाब भयमुक्त नहीं होता, तब तक किसी सार्थक समाधान की आशा करना मात्र दिवास्वप्न होगा और केवल आर्थिक और राजनीतिक समाधान निकालने की प्रत्येक प्रक्रिया का आरम्भ होने के पूर्व की भांति अकाल अन्त होता रहेगा।

8 मार्च, 1992

बजट – आर्थिक उपनिवेशवाद को न्यौता

गत उन्तीस फरवरी, 1992 को 1992-93 का बजट प्रस्तुत किया गया। दूरदर्शन और आकाशवाणी को देख-सुनकर ऐसा लगा कि अपना देश स्वर्ण युग में प्रवेश कर चुका है। भारत सरकार, सत्तारूढ़ नरसिंह राव की इंदिरा कांग्रेस, उसके सभी सांसद, छोटे-बड़े नेता, समाज का एक विशिष्ट वर्ग, अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोश, विश्व बैंक, भारत सहित विकासशील समस्त तृतीय विश्व को अपना आर्थिक उपनिवेश बनाने के लिए प्रयत्नशील पश्चिमी, पूर्वी देश और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने यह सिद्ध करने का हर संभव प्रयास किया है कि भारत की राजनितिक प्रभुसत्ता ने अपने आर्थिक स्वावलम्बन का पुष्ट आधार प्राप्त कर लिया है।

वित्तमंत्री के बजट भाषण, बजटीय आंकड़ों की जादूगरी, वित्तीय बारीकियों का तत्व न समझ पाने की अक्षमता और आर्थिक उपनिवेशवाद का प्रत्यक्ष वित्तीय आक्रमण दिखाई न देने के कारण हमें यह बताया जा रहा है और 1993-94 का बजट आने तक बताया जाता रहेगा कि 'हम आर्थिक समृद्धि की ओर बढ़ रहे हैं। हमारा विदेशी मुद्राकोश बढ़ रहा है। औद्योगिक उत्पादन बढ़ रहा है, विदेश व्यापार प्रगति पर है। कृषि उत्पादों में वृद्धि हुई है और गत वर्षों की तुलना में इस वर्ष हमारा व्यापार और भुगतान संतुलन सुधरा है।'

आर्थिक आंकड़े और वित्तीय विश्लेषण एक ऐसा मायाजाल है कि इसको जान पाना सहज संभव नहीं होता। यह कुछ विशिष्ट बौद्धिकों द्वारा जन-सामान्य की कीमत पर खेला जाने वाला एक ऐसा बौद्धिक खेल है जिसमें केवल बातों से बाजी भी पलट जाती है और स्थिति भी यथावत् बनी रहती है। यथार्थ की भूमि पर नहीं कागज की जमीन पर आंकड़ों की फसल उगाकर सब कुछ ठीक-ठाक होने का आभास देते रहना इस खेल का आनन्द और इसकी विलासिता है।

अच्छे बजट का मतलब

देश के आम आदमी को आंकड़े नहीं, अन्न चाहिए। विश्लेषण नहीं वस्त्र चाहिए। सिर छिपाने के लिए छत, बीमारी के लिए दवाई और बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था चाहिए। बेराजगारों को रोजगार और सामाजिक सुरक्षा चाहिए। बजट का

अच्छा या बुरा होना इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या इस बजट के बाद कंगाली की रेखा मिटेगी? क्या इस गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या घटेगी? क्या देश का ऋण-भार हल्का होगा? क्या आयात की तुलना में निर्यात बढ़ेगा? क्या भारतीय उत्पाद विदेशियों को आकृष्ट करने योग्य हो सकेगा? क्या यह बजट भारतीय प्रतिभा का पलायन रोक पाएगा? क्या हमारे सिक्के की साख बढ़ेगी ?

गत चालीस वर्षों का हमारा अनुभव अर्थ-समीक्षकों के निष्कर्षों और आर्थिक आंकड़ों से भिन्न है। जिन लोगों ने प्रचलित अर्थ परम्परा से भिन्न विश्लेषण, आंकड़े और निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया, उनको अनसुना करके ठकुर सुहाती सुना, लिखा और बोला गया। हुआ यह कि 'प्रगति' करते-करते हम भूख-बीमारी और कर्ज के चंगुल में फंसते गए। स्वदेशी महाजनी मिटाते-मिटाते विदेशी महाजनों के बंधक बन गए।

हम परायों के साथ अच्छा बनते हैं और अपनों के साथ चालाकी करते हैं। दूसरे लोग हमारे साथ चालाकी करते हैं और अपनों के प्रति अच्छे होते हैं। केन्द्रीय वित्तमंत्री ने देशवासियों के साथ पुनः आर्थिक आंकड़ों की चालाकी की। आर्थिक यक्ष्मा से पीड़ित देशवासियों को पौष्टिकता प्रदान करने की व्यवस्था न करके प्रयास यह किया कि विदेशियों के लिए थल, जल और नभ के द्वार पूरी तरह खोल दिए जाएं। वे हमारा रक्त चूसकर अपनी समृद्धि की वृद्धि करें और हम उनकी ओर विवश भाव से टुकुर-टुकुर देखते रहें। गरीबों को भगवान के भरोसे छोड़कर धनिकों को और अधिक धन्ना सेठ बनाएगा यह बजट।

दुःख और चिन्ता का विषय है कि हमारे वित्तमंत्री और अर्थ विशेषज्ञों की अर्थशास्त्र की समझ केवल किताबी है। इन्हें दूर-दराज के जंगलों में बैठे वनवासी, गांव की मेड़ पर बैठे किसान, हाट बाजार में बैठे दुकानदार और लोकोक्तियां सुनाते घूमते सुजान जितनी भी समझ नहीं है।

चादर के अनुसार पांव फैलाने की उक्ति अर्थव्यवस्था का मर्म है। एक घटना बताता हूं। मैं एक दुकान पर बैठा था। शाम का समय था। दुकान बन्द करने का समय हुआ तो मालिक ने मुनीम से पूछा, "मुनीम जी, आज का हिसाब क्या है?" मुनीम जी लम्बा-चौड़ा बोलने लगे तो मालिक ने टोका — "मुनीम जी, ये बातें आप बाद में बताइएगा। पहले यह बताइए कि दुकान खुलने और बढ़ाते (बन्द) समय की रोकड़ी का अन्तर क्या है? सवेरे हमारी संदूक में क्या था, शाम को रोकड़ी कितनी है?"

अर्थव्यवस्था का मर्म है व्यय के पूर्व आय का हिसाब। आगम और निगर्म का तालमेल। विनियोजन और व्यय की स्पष्टता। भारत की अर्थव्यवस्था में यह मूल तत्व अनुपस्थिति है। क्यों? इसलिए कि हमारा अर्थ-विचार और व्यवहार दोनों आयातित हैं। आयात के साथ केवल अर्थ और वस्तु ही नहीं आचरण और व्यवस्था भी आती

है। हमारी सरकार किसी आवारा व्यक्ति की तरह जो कुछ मिलता है उसे व्यय तो करती रहती है किन्तु अपनी संदूक का धन बढ़ाने की ओर ध्यान देने की आवश्यकता का अनुभव नहीं करती। वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने देशवासियों को आर्थिक वास्तविकता न बताकर धोखे से भरा बजट प्रस्तुत करके उनके साथ छल-कपट और चालाकी करने का अपराध किया है। उन्होंने आय के जो स्रोत बताए हैं, व्यापार और भुगतान संतुलन में सुधार लाने का जो आश्वासन दिया है, विदेशी मुद्रा कोश में वृद्धि का जो संतोष व्यक्त किया है, मुद्रास्फीति में कमी होने का जो वादा किया है, यह सब केवल कल्पना ही नहीं, आर्थक छल भी है। विदेशी मुद्रा का अर्जन कैसे हुआ? कहां से हुआ? वह धन किसका है? उसमें कितनी मुद्रा अनिवासी भारतीयों की है, और कितनी मुद्रा व्यापार द्वारा अर्जित की गई है? व्यापार और भुगतान संतुलन का रहस्य क्या है, इस तुला की डांडी किसके हाथ में है? हमारे मुद्रा कोश में कितनी मुद्रा विदेशी और कितनी स्वदेशी है? देश को आंकड़ों के ज़ंगल में भटकाना बन्द करके यह क्यों नहीं बताया गया कि देश इस समय विदेशी और देशी मिलाकर लगभग तीन लाख करोड़ रूपए का कर्जदार है। विदेशी कर्ज पर हम तीस प्रतिशत तक ब्याज देने के लिए विवश क्यों हैं? दुनिया के दूसरे देश 15 से 20 प्रतिशत ही ब्याज देते हैं तो भारत को तीस प्रतिशत ब्याज क्यों देना पड़ रहा है? स्वदेशी ऋण का ब्याज चक्रवृद्धि क्यों बन रहा है? अपने स्वदेशी ऋण का एक भी पैसा सरकार चुकता नहीं कर पा रही है। इस लगभग तीन लाख करोड़ ऋण में विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोश से लिया जाने वाला ताजा कर्ज शमिल नहीं है। कर्जदार की क्या आय और क्या व्यय? यह अर्थव्यवस्था नहीं किसी भिखारी की आकाशवृत्ति है कि मिलता है तो खाता है नहीं तो सड़क के किनारे बैठकर दाता के नाम पर रोता बैठता है।

विदेशीकरण का जहर

कुछ लोग खुशियां मना रहे हैं और अपनी छलिया खुशी में संपूर्ण देश को शामिल मान रहे हैं कि इस बार किसानों और गरीबों पर कोई नया कर नहीं लगाया गया। जीवनोपयोगी वस्तुओं पर दया की गई। सामान्य बजट में सामान्य आदमी पर कर नहीं बढ़ाया या लगाया गया यह तो ठीक है? किन्तु बजट के पूर्व पैट्रोलियम उत्पादों, रेलभाड़ों और कोयले आदि की कीमतों में जो वृद्धि की गई थी उसका लेखा-जोखा क्या है? बजट के पूर्व और बजट के पश्चात् की आर्थिक पैंतरेबाजी का परिणाम कौन भोगता है ?

आयात आधारित अर्थव्यवस्था का प्रथम शिकार होती है — आत्मनिर्भरता। आत्मनिर्भरता के नाम पर आयात को बढ़ावा देने का यह प्रयास हमें किस सुखद भविष्य की ओर ले जाएगा ?

भारत की अर्थव्यवस्था को गुलामी की जिस यातना-गली में घुसाया जा रहा है,

उसका सांगोपांग विश्लेषण होना और उसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त करना अभी शेष है। अभी वह डंकल प्रस्ताव लागू होना है, जिसके बाद केवल हम होंगे और हमारी भूमि होगी, शेष सब विदेशी होगा। भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष डा० मुरली मनोहर जोशी के शब्दों में कहें तो भावी भारत की आर्थिक तस्वीर कुछ इस प्रकार बनती है, कि 'अब दांत स्वदेशी मंजन विदेशी; गाल स्वदेशी-ब्लेड विदेशी; पांव स्वदेशी जूता विदेशी; बच्चे स्वदेशी शिक्षा विदेशी; आंख स्वदेशी चश्मा विदेशी; बीमारी स्वदेशी इलाज विदेशी; खेत स्वदेशी बीज विदेशी; श्रम स्वदेशी लाभ विदेशी; उपभोक्ता स्वदेशी लाभ विदेशी और हम केवल शरीर से स्वदेशी कन्तु मन-मानस से विदेशी होंगे।' प्रस्तावित डंकल प्रस्ताव को मान्य करने का अर्थ यह होगा कि हम अपना बीज अपनी धरती में नहीं बो सकेंगे। विदेश से प्राप्त बीज से उत्पन्न फसल से नया बीज भी नहीं बना सकेंगे। जो वे कहेंगे वही बीज बोएंगे। जो फसल उगेगी उसे ही हमें खाना होगा। भारत के किसानों की आत्मनिर्भरता पर निर्भर भारत का केवल आर्थिक स्वावलम्बन ही नहीं, राजनीतिक स्वतंत्रता भी दांव पर लगी है और विडम्बना यह है कि भारत का जो वित्त मंत्रालय वर्ष 1992-93 के आर्थिक सर्वेक्षण में देश की आर्थिक स्थिति के अतीव गंभीर और चिन्ताजनक होने की बात कहता है, उसी का वित्तमंत्री दो दिन बाद प्रस्तुत किए गए अपने बजट में भारत को स्वर्णयुग में प्रवेश करता दिखाता है।

यह वास्तविकता है कि भारत की आवश्यकता थी और आज भी है कि अर्थव्यवस्था का उदारीकरण हो। भारतीय जनसंघ ने 1952 के अपने प्रथम अधिवेशन में इस आवश्यकता पर बल दिया था। उद्योगों का सरकारीकरण कोटा परमिट राज और लालफीताशाही को भारत की अर्थव्यवस्था के लिए घातक बताते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने जनाधारित अर्थव्यवस्था पर बल देते हुए कहा था कि सरकार उद्योग, उत्पादन और व्यापार की व्यवस्था करे। जनाधारित अर्थात् नौकर-शाही और लालफीताशाही से मुक्त सर्वसुलभ अर्थव्यवस्था। जनसंघ के बाद भाजपा भी 1980 से लालफीताशाही से मुक्त अर्थव्यवस्था पर बल देती आ रही है। किन्तु समाजवादी व्यवस्था के नाम पर चालीस साल से इस अर्थ-विचार को पूंजीपतियों का एजेण्ट कह कर लगातार कोसा, भारतीय उद्योग में लगे व्यक्तियों एवं घरानों को शोषक एवं बेईमान कहते हुए अर्थव्यवस्था का सरकारीकरण किया जाता रहा। अब होश आया तो दूसरी नासमझी की गई। लालफीताशाही से मुक्ति का अर्थ लगाया गए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए भारत के उद्योग-व्यापार के द्वार खोल देना। इस मुक्त अर्थ-व्यापार विचार ने विदेशी पूंजी और प्राविधि को आमंत्रण तो दिया किन्तु उनका कार्यक्षेत्र निर्धारित न करके संपूर्ण देश को उनकी इच्छा पर छोड़ दिया। हमें अधुनातन तकनीकी ज्ञान प्रदान करके वे हमारे लिए केवल उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण करेंगे। हमें जो चाहिए वह नहीं, वे जो चाहेंगे उसका केवल उत्पादन ही नहीं करेंगे किन्तु

उपभोग करने के लिए हमें विवश भी करेंगे। भारत उनके लिए केवल बाजार होगा और हम भारत के लोग अपनी भूमि पर विदेशी बाजार में माल खरीदने वाली भेड़े होगें। अन्तरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ तालमेल बिठाना यदि विदेशी धनपतियों और कम्पनियों का मोहताज होना है तो अपनी गरीबी और पिछड़ेपन में ही संतुष्ट रहना हमारे हित में होगा।

आत्म छल या आत्मनिर्भरता

भारत सरकार की अर्थ नीति भारत की अर्थनीति नहीं कर्जदाताओं की अर्थनीति है। नरसिंह राव सरकार में कर्ज लेने की इच्छा शक्ति तो है, किन्तु स्वावलम्बी बनने के लिए भारतीय प्रजा और प्रज्ञा को पुकारने की प्राण-शक्ति नहीं है। कर्ज और अधिक कर्ज, परावलम्बिता और अधिक परावलम्बिता, मंहगाई और अधिक मंहगाई, भारतीय मुद्रा का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अवमूल्यन इस सरकार की अर्थनीति में से उपजे इस बजट का संकेत है। कर्ज लेकर सब कुछ ठीक-ठाक होने के आत्म छल को यदि कोई आत्मनिर्भरता मानना चाहे तो मान ले, किन्तु यह भी स्मरण रखें कि यह भोलापन भारत को अपनी आजादी गवां देने की सीमा तक मंहगा पड़ सकता है।

15 मार्च, 1992

सकारात्मक प्रतिपक्ष का श्रीगणेश

महामहिम राष्ट्रपति के अभिभाषण पर प्रस्तुत किए गए धन्यवाद के प्रस्ताव पर भाजपा का संशोधन लोकसभा द्वारा अस्वीकार कर दिया जाना अप्रत्याशित नहीं था। इस संशोधन पर सरकार को नहीं, संशोधन को ही गिराना था और वह गिर गया। यह एक लोकतांत्रिक प्रक्रियात्मक एवम् प्रतीकात्मक कार्य था। क्या संशाधन अस्वीकृत हो जाने का अर्थ यह माना जाना चाहिए कि मंहगाई, बेरोजगारी और मुद्रास्फीति की कोई समस्या नहीं है? बहुमत का निर्णय यथार्थ से कितना कटा हुआ होता है, यह घटना इसका प्रमाण है।

संशोधन तो गिर गया, किन्तु भारतीय राजनति का यथार्थ उघड़ गया। इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए भी अब बहुत अधिक सोच-विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि भाजपा का संशोधन क्यों गिरा? और सरकार क्यों बच गई? संशोधन गिरा इसलिए कि देशवासी और कोई भी दल यह नहीं चाहता था कि लोकसभा भाजपा द्वारा प्रस्तुत किया गया संशोधन स्वीकार कर ले और केन्द्रीय सरकार गिर जाए। मार्क्सवादी कम्युनिट पार्टी सहित समस्त वामपंथी, जनता दल सहित राष्ट्रीय मोर्चा के समस्त घटक, बहुजन समाज पार्टी सहित समस्त फुटकर दलों और स्वयं भाजपा ने भी सरकार को गिराने का गम्भीर प्रयास नहीं किया और यदि यह प्रयास किया भी होता तो भी उन्हें सफलता नहीं मिलती। कारण? कारण सर्वज्ञात है - चुनाव का भय और चुनाव के साथ जुड़ा नरसिंह राव की इंदिरा कांग्रेस समेत समस्त दलों का अनिश्चित भविष्य। दल और देश दोनों इस समय और इतना शीघ्र चुनाव नहीं चाहते, अतएव लोकसभा में नरसिंह राव की सरकार अपने संख्या बल के कारण नहीं, राजनीतिक दलों और जनसामान्य में व्याप्त इस अन्तर्भूत भाव के कारण बच गई।

अपने-अपने कटोरे

विपक्ष की कमजोरी सत्तापक्ष की शक्ति बनी हुई है। जनता दल अपनी आन्तरिक कलह से ग्रस्त है, तो वामपंथी अपने आदर्श और अस्तित्व की रक्षा करने के संघर्ष में व्यस्त हैं। केवल विरोध के लिए विरोध की राजनीति स्वयं उन्हें और देश को भी उनके अस्तित्व का अहसास कराती है। समन्वय और सहमति की राजनीतिक

प्रक्रिया को वे अपने अस्तित्व के लिए खतरा मानते हैं। अतएव वे सदा चीखते ही रहते हैं कि लोग यह जानते रहें कि वे अभी जीवित हैं।

देश की केन्द्रीय राजनीति की स्थिति यह है कि संसद के बाहर तो विकल्प है किन्तु संसद के अन्दर विकल्प का अभाव है। और यदि लज्जामिश्रित प्रतिपक्षीय मानसिकता के संयुक्त प्रयास से सरकार गिर भी जाती तो वैकल्पिक सरकार का गठन करने की स्थिति और क्षमता किसी भी एक दल, गठबन्धन या समीकरण में नही थी। जनता दल और वामपंथियों के नकारात्मक विरोध की राजनीति के कारण राजनीतिक और वैचारिक छुआछूत घृणा का मार्ग तय करते हुए अब शत्रुता की मंजिल की ओर बढ़ रही है। विश्वनाथ प्रताप सिंह और उनके सहयोगी दलों को देश की कम अपने दल की खोई जमीन पुनः प्राप्त करने की चिन्ता अधिक है। ये राजनीतिक गुट अपने प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति प्रतिशोध की आग में जल रहे हैं।

सामाजिक न्याय दिलाने और साम्प्रदायिक सद्भावना स्थापित करने के उनके घोषित युद्ध की समर भूमि अन्याय या साम्प्रदायिकता नहीं, भाजपा है। यदि भाजपा को पराजित करने के लिए ये दल उचित-अनुचित का विचार किए बिना हर उपाय अपना सकते हैं। जाति युद्ध से लेकर साम्प्रदायिक दंगा कराने, देश को बेच देने या बिक जाने का भयांतक निर्माण करने और क्षेत्रीय उन्माद बढ़ाकर देश में आन्तरिक अराजकता उत्पन्न करने से भी इन्हें कोई परहेज नहीं होगा।

वामपंथी दल अभी अपने अतीत से उबर नहीं पाए हैं। वे अभी तक लेनिन, स्टालिन और ब्रेझनेव द्वारा रचित संसार में ही रह रहे हैं। भारत के वामपंथियों के स्वामी सोवियत रूस की मृत्यु हो गई किन्तु उनकी स्वामिभक्ति अभी जीवित है। रूस सहित सोवियत संघ के साथ संयुक्त समस्त गणराज्यों और देशों ने दमन की राजनीति और मृत अर्थव्यवस्था के संताप से मुक्त होकर अपनी नई व्यवस्था का निर्माण करना प्राऱम्भ कर दिया है, किन्तु भारत के कम्युनिस्ट अभी तक अपनी वही पुरानी पुस्तक रट रहे हैं, जिसके विषय में स्वयं मार्क्स ने कहा था कि 'ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद कि मैं मार्क्सवादी नहीं हूं।'

भारत के वामपंथी गत चार दशकों के भारत और सात दशकों के सोवियत रूस के अनुभव से यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि जिस अर्थतंत्र और आदर्श को स्वीकार करके वे भूख और गरीबी, अन्याय और असमानता का अन्त करके समाजवादी शासन व्यवस्था का निर्माण करने चले थे वह अंशतः नहीं पूर्णतः असफल सिद्ध हुई है कि उसी के कारण सामरिक महाशक्ति बन जाने के बाद भी रूस के लोग रोटी के टुकड़े के लिए तड़प और भटक रहे हैं और उसी के कारण भारत की भी राजनीतिक संप्रभुता पर आर्थिक गुलामी का संकट छाया हुआ है।

यह समय है देश की स्वतंत्रता और संप्रभुता को बचाने का। सरकार और समाज के कार्यक्षेत्रों को परिभाषित करने का। यह कार्य अब तक नहीं किया गया और यदि

यह किया गया होता तो भारत, चीन और सोवियत रूस के करोड़ों नागरिक सरकार जीवी न बने होते। पराक्रम और उद्यम करने की उनकी प्रेरणाएं मृतप्राय न हो गई होतीं। वे केवल उपभोक्ता ही नहीं, उत्पादक भी होते। यदि देश के संसदीय लोकतंत्र की मर्यादा का ध्यान रखा गया होता तो सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच अविश्वास, संघर्ष, तनाव और मारामारी की स्थिति न पैदा हुई होती। यदि केवल चुनाव को लोकतंत्र मानकर सत्ता का खेल न खेला गया होता तो लोकतांत्रिक संस्थाओं की गरिमा और विश्वसनीयता का अवमूल्यन न हुआ होता। यदि सत्ता पक्ष और प्रतिपक्ष अपने-अपने आचरण कर्तव्य का ध्यान रखते तो केवल विरोध की राजनीति ही प्रतिपक्ष की पहचान न बनी होती।

असली मुद्दा

प्रतिपक्ष का संकट है लोकतांत्रिक विपक्ष की भूमिका का समझ न पाना। सत्तादल का संकट है लोकतंत्र को अपना बंधक बना कर रखने की प्रवृत्ति। भारत का प्रतिपक्ष केवल विरोध करता है और सत्तापक्ष प्रतिपक्ष का अनादर और अस्वीकार। यही कारण है प्रतिपक्ष के नेता श्री लालकृष्ण आडवाणी के नेतृत्व में भाजपा सांसद श्री प्रेम कुमार धूमल ने राष्ट्रपति के अभिभाषण में संशाधन करने का प्रस्ताव रखा तो सत्तापक्ष और विपक्ष, समाचार पत्रों और जनता में भी 'सरकार गिराओ और सरकार बचाओ' की खलबली मच गई। सभी पक्ष अपनी-अपनी दलीय राजनीतिक निष्ठा का प्रमाण पत्र लेकर चौराहे पर खड़े हो गए।

विचारणीय विषय यह नहीं है कि 'नरसिंह राव की सरकार रहे या जाए?' चिन्ता का विषय यह भी होना चाहिए कि सरकार गिर जाती या जाएगी तो चुनाव कराने पड़ते या कराने पड़ेंगे। इस सन्दर्भ में यह दलील देने की भी आवश्यकता नहीं है कि देशवासी इस समय चुनाव नहीं चाहते। यह बहस भी अर्थहीन है कि लोकसभा का संख्या समीकरण नरसिंह राव के पक्ष में है, या विपक्ष में? विचारणीय प्रश्न यह है कि श्री नरसिंह राव जिस सरकार के प्रधानमंत्री और जिस दल के अध्यक्ष हैं और चुनाव के पूर्व जारी किया गया जिसका घोषण पत्र स्वयं नरसिंह राव का बनाया हुआ था, उसमें सौ दिन में महंगाई कम करने, मुद्रास्फीति घटाने और एक वर्ष में एक करोड़ रोजगार पैदा करने के देशवासियों को दिए गए आश्वासनों का क्या हुआ ?

नरसिंह राव की इस प्रतिज्ञा की ओर क्या सरकार और देश का ध्यान आकृष्ट करना प्रतिपक्ष का दायित्व नहीं है? यदि प्रतिपक्ष अपने इस दायित्व का निर्वाह करे और सत्ता पक्ष के अपने आश्वासनों को पूरा करने में असफल होने के कारण सरकार सदन में पराजित हो जाए और सत्तारूढ़ दल सत्ता से हट जाए तो इससे घबड़ाहट क्यों होनी चाहिए? क्या चुनाव के भय के कारण सरकार को महंगाई, बेरोजगारी और दूसरे आर्थिक-सामाजिक संकटों को बढ़ाने देना चाहिए? यदि देशवासी चुनाव नहीं

चाहते तो क्या उन्हें महंगाई और बेरोजगारी, आतंक और अराजकता में वृद्धि होते रहना स्वीकार है ? बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, विश्व बैंक और अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष की गुलामी और चुनाव के बीच किसी एक को चुनना होगा तो क्या देशवासी चुनाव के भय से आर्थिक गुलामी का तौंक लगा लेंगे? महत्वपूर्ण चुनाव नहीं, महत्वपूर्ण है देश की समस्याओं का समाधान।

देश की समस्याओं का समाधान यदि चुनाव से होता हो तो चुनाव से भयभीत क्यों होना चाहिए? यदि यह सरकार देश की आर्थिक तबाही, मंहगाई और बेरोजगारी, बीमारी और भूख से मुक्ति या राहत नहीं दे पा रही है और यदि सदन के अन्दर विकल्प का अभाव है तो इस मामले को देशवासियों के सामने रखने से कतराना क्या लोकतंत्र को मजबूत करेगा? क्या इससे राजनीतिक दलों और नेताओं का आचरण सुधरेगा? एक बार महंगाई और बेरोजगारी के मुद्दे पर ही चुनाव क्यों न करा लिया जाए? क्या देशवासियों के सामने यह अवसर प्रस्तुत करना अनुचित होगा कि जो दल व्यावहारिक और अनुभव सिद्ध कार्ययोजना प्रस्तुत करे, देशवासी उसे अपना समर्थन दें और घोषित निश्चित अवधि में वह अपना आवश्वासन पूर्ण करें। किन्तु इस समय प्रश्न चुनाव कराने या चुनाव न कराने अथवा सरकार गिराने का नहीं, कुछ मुद्दों पर केवल बल देने का था।

एक प्रश्न और भी है। यह चर्चा चल पड़ी है कि नरसिंह राव सरकार भाजपा के कार्यक्रम और नीतियों को अपनाकर उसकी राजनीतिक जमीन पर अधिकार करती जा रही है। एक दिन ऐसा आएगा कि भाजपा के पास बोलने के कोई मुद्दा बचेगा ही नहीं तो वह किस आधार पर इंका के विरूद्ध वोट मांगेगी, लोग उसे अपना समर्थन क्यों देंगे। सरकार यदि भाजपा की सलाह मान ले, यदि उसके घोषणा पत्र में कही गई बातों को सत्तारूढ़ दल, प्रधानमन्त्री और वित्तमंत्री स्वीकार लें तो भाजपा के समर्थकों, देशवासियों और दूसरे दलों को परेशान क्यों होना चाहिए ? भाजपा की जिस अर्थनीति को गत चालीस वर्ष से समस्त समाजवादी कांग्रेसी कुनबा, गाली देता आ रहा था, यदि अपनी असफलता और अनुभव के कारण वह भाजपा की अर्थनीति की सार्थकता को अंशतः ही सही स्वीकार करने लगा है, तो वह भाजपा के समर्थकों के लिए दुःखी होने की नहीं गर्व की बात है। "हमारा ही मुर्गा बांग दे तो सवेरा हो" की मानसिकता और राजनीतिक कठमुल्लापन राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में साधक नहीं, बाधक होता है।

सतही चिन्तन

विश्वनाथ प्रताप सिंह का जनता दल, रामाराव का राष्ट्रीय मोर्चा, सोमनाथ और इन्द्रजीत का वामपंथी मोर्चा और नरसिह राव की इन्दिरा कांग्रेस अपने राजनीतिक कठमुल्लेपन से ग्रस्त एवं पीड़ित न होते तो वे भारत राष्ट्र और उसके राजनीतिक,

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ का सामना करने से घबड़ाते नहीं, उसे स्वीकार करते। तब विश्वनाथ प्रताप सिंह सामाजिक न्याय की प्रक्रिया पर अपनी जातिवादी बपौती स्थापित करने का खतरनाक प्रयास न करते। तब वामपंथी अर्थ-चिन्तन पर अपना एकाधिकार होने की चीख-पुकार न करते और तब नरसिंह राव स्पष्ट शब्दों में कहते कि गत चालीस वर्षों से हमने जिस आर्थिक व्यवस्था को अपना रखा था वह असफल हो गई। नेहरू जी के जिस नमूने को हमने देश आर्थिक विकास का एकमेव उपाय मान रखा था वह धोखा सिद्ध हुए और अब भारतीय जनसंघ के पंडित दीनदयाल उपाध्याय, भाजपा के लालकृष्ण आडवाणी, डा० मुरली मनोहर जोशी आदि ने अपनी घोषण पत्र में जो सुझाव दिए हैं उन कुछ सुझावों का हम प्रयोग कर रहे हैं। वामपंथियों, जनतादलीयों और कांग्रेस की जिन नीतियों के कारण देश आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक नरककुण्ड जैसा बन गया है उन्हीं नीतियों की लकीर पीटते रहना क्या विवेक और दूरदर्शिता का लक्षण है। जो लोग यह कहते हैं कि नरसिंह राव द्वारा एक-एक करके भाजपा के आर्थिक और सामाजिक मुद्‌दे छीनते जाने के कारण भाजपा के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लगता जा रहा है, वे दया के पात्र हैं। जिन्हें देश बनाना है, वे दल हित के संदर्भ में विचार नहीं करते। देशहित ही जिनका दलहित भी होता है वे ही लोकतंत्र के रथ को राजपथ पर बिना किसी घबड़ाहट के चला सकते हैं। जिनका चिन्तन समय और अनुभव की कसौटी पर खरा उतरा होता है, वे शोर नहीं सृजन के नए-नए प्रतिमान तैयार करने की तपस्या करते हैं

प्रतिपक्ष के नेता लालकृष्ण आडवाणी के नेतृत्व में प्रस्तुत किए गए संशोधनों के प्रकाश में भारतीय राजनीति, प्रतिपक्ष और सत्तापक्ष के चरित्र का लेख-जोखा और विश्लेषण जिस दिशा और जिस गहराई के विश्लेषण के साथ किया जाना चाहिए था वैसा नहीं किया गया। भारतीय राजनतिज्ञों की तरह भारतीय बौद्धिकों का चिन्तन भी अत्यन्त सतही है। उनके भी अर्थ और राजनीति के गणित का सार केवल आंकड़े होते हैं। उनका भी सोच केवल चुनाव और संख्या के आस-पास घूमता है। उनकी वैकल्पिकता वैचारिक नहीं, केवल सांख्यिक होती है। यह माना कि लोकतंत्र संख्या का खेल है। बहुमत अल्पमत के आधार पर सरकारों का गठन और पतन होता है। किन्तु हम यह भी क्यों नहीं मानते कि केवल संख्या का इधर या उधर हो जाना, केवल इस या उस व्यक्ति अथवा दल का सत्ताहीन हो जाना ही परिवर्तन होना नहीं होता है। इससे केवल सरकारें बदलती हैं समाज नहीं बदलता। समस्याएं हल नहीं होतीं। समस्या सरकारें बदलने या बनाने की नहीं, समाज को बदलने और देश को बनाने की है और यह निश्चित है कि कोई भी कठमुल्लापन और कोई भी पूर्वाग्रह देश की मूलधारा, देश के प्राणपिण्ड, देश की चिति, उसके प्रतिमानों, प्रेरणाओं, उसकी भाव-भूमि में यहां की जलवायु के विपरीत लगाई गई कोई भी 'कलम', बोया गया

कोई भी बीज नहीं उगेगा। इस प्रकार का कोई भी प्रयास समाज और देश को नहीं बदल सकेगा। कांग्रेस और कांग्रसी, वामपंथी और समाजवादी बिना संस्कारित किए अब तक देशी-भूमि में विदेशी बीज बोकर 'स्वदेशी' पौधा उगा रहे थे। यह प्रयोग राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और शैक्षणिक सभी क्षेत्रों में किया गया और नाकाम रहा। यही कारण है कि भारतीय राजनीति ने अपनी विश्वसनीयता खो दी। लोकतंत्र लोक जीवन को भयभीत करने लगा। सत्ता सापेक्षता उसका मूलभाव बन गया। प्रतिपक्ष का कार्य केवल विरोध करना और शोर मचाना रह गया। सत्तापक्ष और प्रतिपक्ष को बांहे-चढ़ाए आमने-सामने खड़ा देखने की देशवासियों को आदत पड़ गई। यदि किसी मुद्दे पर धीमा सा भी सहमति का स्वर सुनाई दिया तो इस बात को हम विलय और विसर्जन तक ले भागते हैं। हमारा तत्काल और सहज निष्कर्ष होता है कि अब यह दल मरा। क्योंकि इसका सत्तापक्ष से या सत्तापक्ष का इससे गठबन्धन हो गया। सत्ता पक्ष और प्रतिपक्ष को जन्मजात एवं प्राकृत शत्रु मानने का यह सोच बहुत ही घातक है। भारत के संसदीय लोकतंत्र में भारतीय जनता पार्टी शोर, प्रतिशोध और शत्रुता की नहीं सकारात्मक प्रतिपक्ष की भूमिका स्थापित करने का प्रयास कर रही है, किनतु देशवासी अपने अभ्यासवश इसे ठीक नहीं मान रहे हैं। उनका मानना है कि यदि भाजपा को संघर्ष नहीं करना है तो कांग्रेस ही भली। वह कांग्रेस में विलीन हो जाए। देशवासी प्रतिपक्ष को सत्ता पक्ष के साथ उचित-अनुचित का भेद किए बिना सतत लड़ते भी देखना चाहते हैं और राजनीतिक अस्थिरता का रोना भी रोते हैं। यही सोच अधिकांश राजनीतिक दलों के नेताओं, पत्रकारों और राजनीतिक समीक्षकों की भी है। नौ मार्च 1992 को लोकसभा में भाजपा का संधोधन गिर जाने के संदर्भ में नौ मार्च के पूर्व और पश्चात् की समीक्षा और समाचार इसके साक्षी हैं।

किन्तु एक प्रश्न शेष है कि यदि सरकार गिर जाती तो क्या होता? क्या मात्र इतना ही कि यदि चुनाव होता तो किसी दल को बहुमत मिलता कि नहीं मिलता, अथवा इस दल की संख्या बढ़ती और उस दल की संख्या घटती? कुछ लोग इससे भिन्न सोचते हैं। उनका मानना है यदि नौ मार्च को सरकार का पतन हो जाता, उसके परिणामस्वरूप लोकसभा भंग कर दी जाती और चुनाव होते तो इस बार का चुनाव अपनी मुद्दा आधारित लोकतांत्रिक सार्थकता प्राप्त कर लेता। यह चुनाव किसी एक मुद्दे पर होता। चुनाव के पश्चात् केवल संख्या पर ही नहीं मुद्दों और मूल्यों पर आधारित संसदीय लोकतंत्र का शुभारंभ होता। यह न भूलें कि लोकतंत्र जीवन दर्शन नहीं, केवल एक राजनीतिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में परम्परा सहयोग, समन्वय और सर्वानुमति का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। सर्वानुमति न भी हो सके तो भी इस प्रक्रिया में सहमति के अधिकतम बिन्दुओं की तलाश की अनन्त सम्भावनाएं निहित हैं। भारत के संसदीय इतिहास में नौ मार्च एक सकारात्मक मोड़ सिद्ध हो सकता है।

सरकार को गिराना भी नहीं था, वह गिरी भी नहीं, किन्तु देश की राजनीति और भारत सरकार को भाजपा मुद्दों की ओर आकृष्ट करने के अपने प्रयास में पूरी तरह सफल रही। क्या यह कुछ कम संतोष की बात है कि अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए केवल शोर, संघर्ष, घृणा, प्रतिशोध, और शत्रुता की राजनीति करने वाले दलों के बीच किसी दल ने सकारात्मक प्रतिपक्ष का श्रीगणेश तो किया

22 मार्च, 1992

इस्लाम का इतिहास और 'सच्चे मुसलमान ?'

पी०एन० ओक की पुस्तक 'सम ब्लन्डर्स इन इण्डियन हिस्टारिकल रिसर्च (भारतीय इतिहास के शोध में कुछ भूलें) को लोकसभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने संसद के पुस्तकालय से निकाल दिया। जनता दल के राज्यसभा सदस्य मुहम्मद अफजल, उसी दल के लोकसभा सदस्य शहाबुद्दीन, मुस्लिम लीग के सुलेमान सेठ तथा इत्तहादुल मुसलमीन के ओवेसी को आपत्ति थी कि इस पुस्तक में अल्पसंख्यक समुदाय की भावनाओं को ठेस पहुंचाई गई है। भाजपा के श्री लालकृष्ण आडवाणी के अतिरिक्त अधिकांश सदस्य इस विषय में मौन रहे। उनके इस मौन को आश्चर्यजनक या समर्थन दोनों माना जा सकता है। इस संदर्भ में वे समर्थन, मतभेद, विरोध और आश्चर्य की सीमा रेखा पर थे—'किंकर्तव्य विमूढ़।'

मुहम्मद अफजल, शहाबुद्दीन, सुलेमान सेठ और ओवेसी ने इस्लाम का चरित्र एक बार पुनः उजागर किया कि 'इस्लाम और मुसलमानों विशेषकर भारत के मुसलमानों को, वह सब अमान्य और उनके लिए वह सब अपमानजनक है, जो कुरान में नहीं है और जो कुरान के विपरीत है। इस्लाम और उसके पूर्व के इतिहास का शोध और उसकी समीक्षा को वे इस्लाम पर आक्रमण और मुसलमानों के लिए चुनौती मानते हैं। उनकी मान्यता है कि जो कुछ कुरान में लिखा है वही अंतिम सत्य है। जो कुछ मुहम्मद पैगम्बर ने कहा है वही सनातन है। जहां से इस्लाम चला है वही इतिहास है। उसके पूर्व के संसार का सफर उनके लिए बेमानी है।

भारत का आह्वान

भारत की संसद देश की सर्वोच्च जनप्रतिनिधी संस्था है। यह विश्वास किया जाता है कि संसद के मुंह से भारत बोलता है। यह समझा जाता है कि वह भारत की परम्परा, प्रेरणा, इतिहास, प्रज्ञा और प्रतिभा का पूंजीभूत स्वरूप है। यह मान्यता है कि संसद भारत की विविधता में एकता की साकार अभिव्यक्ति है। किन्तु यह समझ और मान्यता वास्तविकता के साथ मेल नहीं खाती। यदि भारतीय संसद का आचरण भारतीय मनीषा और मान्यता के अनुरूप होता तो शहाबुद्दीन, अफजल, सुलेमान और ओवेसी के दबाव में आकर लोकसभा अध्यक्ष ने उपरोक्त पुस्तक को संसद के

पुस्तकालय से निकाल देने का आदेश न दिया होता। इतिहास को किसी मजहबी मान्यता की सूली पर टांग देना, किसी को प्रसन्न करने के लिए उसके तथ्यों को बदल देना, किसी को अच्छा नहीं लगता इसलिए इतिहास का शोध और साहित्य पर बहस न करने देना, किसी के तुष्टीकरण के लिए राष्ट्र की प्रज्ञा को बंदी बनाकर रखना भारत की दृष्टि और भारतीय दर्शन के विरूद्ध है। भारत का आह्वान है कि अंतिम सत्य को जानने के लिए आओ हम सब एक साथ चलें, साथ-साथ सम्वाद करें। शोध करें। साधना करें। उसके समस्त पहलुओं और पर्तों को उघाड़ें। अनेक निष्कर्षों में से किसी सर्वमान्य निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास करें। और प्रयास की यह प्रक्रिया सतत चलाते रहें कि कालबाह्य और कालसापेक्ष निष्कर्ष सनातन सत्य को क्षति न पहुंचा सके कि किसी विशिष्ट देश—काल और परिस्थिति के संदर्भ से जुड़ा निष्कर्ष ही त्रिकाल सत्य बन जाए।

पी० एन० ओक के इस शोध के कारण कि काबा कभी हिन्दू मंदिर था और पैगम्बर मुहम्मद साहब स्वयं मुसलमान नहीं थे किसी को बेचैन क्यों होना चाहिए ? यदि यह सत्य नहीं है तो इसका सप्रमाण प्रतिवाद किया जाए और यदि सत्य है, यदि इतिहास में इसकी पुष्टि के प्रमाण और संकेत प्राप्त हैं और यदि इतिहास यह कहता है कि इस्लाम के प्रारंभ के पूर्व मक्का में हजारों मूर्तियां थीं और यदि हदीस आदि इस्लामी साहित्य इसकी पुष्टि करते हैं तो उचित तो यह होता कि इस विषय पर एक लम्बी, गहरी और निर्णायक बहस की जाती। किसी एक पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाकर, किसी लेखक को फांसी देकर, किसी विचार प्रवाह और शोध प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करके सत्य को सामने न आने देना मनुष्य को प्रदत्त ईश्वरीय प्रतिभा का अपमान है। मनुष्य का यह दायित्व है कि वह अपना अतीत जाने, अपने भविष्य की रचना करे और अतीत वर्तमान तथा भविष्य कों ग्रथित करने वाले सूत्रों की केवल तलाश ही न करे अपितु उनको पुष्ट भी करे। ईश्वर ने मनुष्य को अनादि और अनन्त के मध्य खड़ा ही इसीलिए किया है कि वह अपने बीते कल का स्वागत करने के लिए आगे बढ़ता रहे। कल और कल के बीच ऐसे इतिहास सेतु का निर्माण करे कि आने वाली पीढ़ियां अपने वर्त्तमान में अतीत और भविष्य दोनों दिशाओं में समान रूप से बढ़ सकें। इतिहास के साथ गुण्डागर्दी करना, इतिहास के विध्वंस और समय की पर्तों को खोलने के प्रयासों का निषेध अमानवीय कार्य है। यही अमानवीय कार्य गत 11 मार्च 1992 को भारत की सर्वोच्च्व संस्था संसद में लोकसभा के अध्यक्ष ने किया।

मुस्लिम मानस की पहचान

ऐसा नहीं था कि उस समय संसद को किसी ने उचित सलाह या कोई सकारात्मक सुझाव नहीं दिया। लोकसभा में विपक्ष के नेता श्री लालकृष्ण आडवाणी ने संसद की सहायता करने का प्रयास किया। किन्तु उनकी 'विदुर वाणी' लोकसभा और

समूचे संसद में खो गई। श्री आडवाणी के इस कथन पर विचार किया जाना चाहिये था कि चाहे जितना हास्यास्पद क्यों न हो इतिहास के भाष्य पर रोक नहीं लगाना चाहिये। डा० अम्बेदकर की विवादास्पद पुस्तक 'रिडिल्स आफ राम' (राम की पहेलियां) पर रोक लगाए जाने का भी मैंने विरोध किया था। और इस पुस्तक का प्रबल विरोध किए जाने के बावजूद सरकार ने इस पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया था। यदि इस संदर्भ में दोहरा मापदण्ड अपनाया गया तो वह तनाव और संघर्ष को जन्म देगा। इसके कारण पुस्तकालयों से पुस्तकों को निकाले जाने का सिलसिला शुरू हो जाएगा।

यह मामला केवल एक पुस्तक या कुछ पुस्तकों का नहीं है। यह समस्या और पहचान है मुस्लिम मानस की। इस विषय पर 'अपवादी संदर्भ' में नहीं इसकी समग्रता में विचार किया जाना चाहिए, कि सम्पूर्ण देश, समस्त विचार प्रणालियों और विचारधाराओं को अपनी शर्तों पर चलाने, अपनी शर्तों पर देश की मूलधारा से अलग रहने, संपूर्ण सांविधानिक सुविधाओं और विशेषाधिकारों का भोग करते रहने की इस प्रवृत्ति का कारण और परिणाम क्या होगा, और अब तक इसके क्या परिणाम निकले हैं ? देश, राजनीति, समाज, सम्प्रदाय, शिक्षा, साहित्य, इतिहास, विधि-न्याय, कर्मकाण्ड और उपासना स्थल आदि जीवन के जितने भी पक्ष हैं क्या वे किसी एक मजहब की मान्यताओं के बन्दी रहेंगे ? क्या किसी एक सम्प्रदाय विशेष की ठोकरें खाते रहना ही अब भारतीय मुक्त चिन्तन की नियति है ?

मक्का, मदीना, इस्लाम, कुरान और पैगम्बर मुहम्मद का इतिहास अभी इतना पुराना नहीं है कि वेदों की तरह उसे अपौरुषेय कहने के लिए बाध्य होना पड़े या रामायण और महाभारत की काल गणना करने की तरह धरती को बहुत गहरा खोदना और काल की अनन्त पर्तें उघाड़ना पड़े। इन प्रश्नों का उत्तर तो चाहिये ही कि क्या इस्लाम की स्थापना के पूर्व मक्का में मूर्तियां नहीं तोड़ी गईं थीं ? क्या वे मूर्तियां हिन्दुओं के देवी देवताओं की मूर्तियों के समान नहीं थीं ? क्या अपने जन्म के पूर्व ही मुहम्मद साहब मुसलमान बन गये थे ? मुहम्मद साहब ने काबा की जिन मूर्तियों को तोड़े जाने का अभियान चलाया था। उन मूर्तियों के भक्त और पुजारी कौन थे ? मक्का में स्थापित 'संगे अस्वद' क्या है ? मूर्तिभंजक और मूर्तिपूजा के विरोधी मुसलमान 'शिव लिंग' जैसा दिखाई देने वाले उस 'पत्थर' को चूम कर कयामत के बाद अपने बहिश्त (स्वर्ग) का मार्ग खुल जाने के विश्वास से क्यों भर उठते हैं ? यदि कोई इन प्रश्नों का उत्तर खोजे, इस्लाम के जन्म के पूर्व का इतिहास खोजे, प्राप्त प्रमाणों का भाष्य करे तो उसे अपने मजहब पर आक्रमण और मजहब विरोधी क्यों कहना चाहिये ? इसी सड़ी गली मजहबी मानसिकता का परिणाम भारत भुगत रहा है।

स्वतंत्र भारत के सत्ताजीवी राजपुरुष, बौद्धिक दासता से ग्रस्त बुद्धिजीवी, मजहबी कठमुल्लेपन के पोषक तथाकथित उदारतावादी लोग इसी मानसिकता के

पोषण और आचरण को सेकुलरिटी, पंथ या सम्प्रदाय निरपेक्ष होना मानते हैं। क्या मजहबी कट्टरवाद की इसी पोषक प्रवृत्ति ने मजहबी द्विराष्ट्रवाद की तलवार से तराश कर पाकिस्तान का सार्वभौम इस्लामी राष्ट्र स्थापित नहीं किया है ? क्या इसी प्रवृत्ति ने शाहबानो के मामले में संसद से सर्वोच्च न्यायालय का अपमान कराकर शरीयत के शूल से संविधान का सिरच्छेद नहीं कराया है ? क्या इसी प्रवृत्ति ने उपासना स्थल कानून बनाकर इतिहास के विध्वंस और अपमान को स्थायित्व प्रदान नहीं किया है ? क्या इसी प्रवृत्ति के कारण कश्मीर घाटी के लगभग सभी हिन्दुओं को अपने ही देश में विस्थापित बनने के लिए विवश नहीं होना पड़ा है ? क्या इसी प्रवृत्ति ने देश के एकजन को अल्पसंख्यक बहुसंख्यक में नहीं बांटा है ? क्या इसी के कारण यह कहने में कोई संकोच, लज्जा, या भय नहीं होता कि कश्मीर घाटी में मुसलमानों का बहुमत है अतएव उनके भाग्य और भविष्य का निर्णय करने का अधिकार वहां के मुसलमानों के हाथों में सौंप देना चाहिये ? इसी तरह की प्रवृत्ति और सोच ही क्या यहां के राष्ट्रीय समाज को गाली देकर, उन्हें साम्प्रदायिक उन्माद भड़काने का अपराधी ठहराकर उन्हीं के खून लिखा सेकुलरिटी का प्रमाण पत्र जारी नहीं करता है ? यह सोच और इस सोच के पोषक सलमान रुश्दी और पी० एन० ओक की पुस्तक केवल इसलिए पढ़ने नहीं देना चाहते कि इस्लाम और पैगम्बर के इतिहास का सत्य उजागर हो जाएगा। ये लोग यह भूल जाते हैं कि सड़ांध्र चाहे वस्तु की हो, समाज की, साहित्य की या इतिहास की, उसकी दुर्गन्ध को छिपाने या दबाने से दूर नहीं होती। दुर्गन्ध दूर होती है सफाई से। भारत के राष्ट्रीय समाज में यह सफाई और सुधार करते रहने का प्रयास एक सतत् प्रक्रिया रही है और आज भी है।

भारत का बल

भारत देश को सुधारना अर्थात हिन्दू समाज को सुधारना माना गया है। हिन्दू समाज का बल भारत का बल है। हिन्दू समाज का विस्तार भारत का विस्तार और हिन्दू समाज का सिमटना भारत का सिमटना होता है। कोई भी विदेशी यहां की संस्कृति, साहित्य, राजनीति और देश की परंपरा का शोध और अध्ययन करने आता है तो वह कुरान और बाइबल, इस्लाम या ईसाई साहित्य, मुहम्मद और ईसीमसीह का जीवन चरित्रं नहीं, वैदिक काल से अब तक का भारतीय अर्थात हिन्दू वांङमय मांगता है। भारत और हिन्दू रक्त मांस की तरह रचे बसे, एक और पर्यायवाची है। भारत पर हिन्दूओं के एकाधिकार हाने के बाद भी हिन्दुओं ने किसी मत-पंथों, सम्प्रदाय या विचारधारा का निषेध नहीं किया। हिन्दुओं ने विस्थापित होकर यहां आए मुसलमानों, ईसाईयों, पारसियों और यहूदियों आदि का स्वागत किया। उनके उपासना गृह बनवाए। उन्हें व्यापार, व्यवसाय और जीवनयापन के अवसर प्रदान किऐ। अपने विचार का प्रसार प्रचार करने का निर्बाध अवसर प्रदान किया। भारत ने अपने खुलेपन

को बन्द करने के प्रत्येक प्रयास को रोका भी और अमान्य भी किया। किन्तु कुछ लोग और कुछ सम्प्रदाय अपने पैगम्बर के चंगुल और अपनी पुस्तक के किले में भारत को कैद करना चाहते हैं। भारत को अपने मजहब का बंदी बनाने का यह अभियान अभी और आज का नहीं, शताब्दियों पुराना है।

शहाबुद्दीनों, अफजलों, सुलेमानों और ओवेसियों ने जो कुछ कहा है, जो कुछ इन सबके नेतृत्व में किया जा रहा है, उसे अलग-थलग करके टुकड़े-टुकड़े में नहीं अपितु शताब्दियों से चले आ रहे राजनीतिक और मजहबी आक्रमण की समग्रता में देखा समझा जाना चाहिए। भारत ने उनकी मस्जिदें बनवाईं, उन्होंने भारत के देवालयों तोड़े। देवालयों में स्थापित देवताओं की मूतियां के नाक-कान काटकर अपमानित किया। भारत ने उनकी बहू-बेटियों को अपनी मां-बेटी माना, युद्धकाल में भी उन्हें उनके पिता, पति और पुत्र के साथ ससम्मान पहुंचाया, उन्होंने भारत की कन्याओं के साथ बलात्कार किया, उनको बलात् अपनी बेगम बनाया। उन्होंने भारत का धन और धरती तो लूटा ही, धर्म को लूटने में भी कोई कसर नहीं की। यदि भारत का समाज और राष्ट्रधर्म सनातन सत्ता से न जुड़ा होकर केवल पूजा-पद्धति, पुस्तक और किसी पैगम्बर के साथ जुड़ा होता तो सम्भवतः शहाबुद्दीनी सोच उसे समाप्त करने में सफल हो जाती। भारत में आने के बाद से ही वे मजहब का जंग लड़ते रहे, मजहबी जेहाद करते रहे और भारत अपने राष्ट्रधर्म की रक्षा का युद्ध करता रहा। उनकी तलवार ने भारत की भूमि पर अधिकार तो किया किन्तु भारत की भावना को वे छू तक नहीं सके। वह अक्षत बनी रही। भारत भूमि को जीत कर भी इस्लाम भारत में हारा ही इसलिए कि वह यहां के राष्ट्रधर्म की मूलधारा से कटा हुआ था।

भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच का संघर्ष मजहब और पूजा पद्धति का संघर्ष नहीं राष्ट्रीयता और अराष्ट्रीयता के मध्य संघर्ष है। भारत की राष्ट्रीयता सत्ता और अस्मिता, विचार और उसके आयाम के लिए इस्लाम 712 ईस्वी के महमूद गजनवी और उसके बाद मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन, बाबर तथा औरंगजेब की तरह ही आज भी एक चुनौती के रूप में विद्यमान है। परन्तु इस सबके बाद भी भारत का राष्ट्रीय समाज यहां के समस्त मुसलमानों को अपना शत्रु नहीं रक्त बन्धु मानता है। किसी भी युद्ध, किसी भी मानवी या दानवी या दैवी आपदा में यहां का हिन्दू समाज अपने स्वाभाविक विवेक और राष्ट्र-बोध से च्युत नहीं हुआ। किसी हिन्दू ने युद्ध और उत्तेजना के किसी भी क्षण में किसी रहीम, रसखान, दादू, ताजबीबी, कबीर, बहादुर शाह जफर, पीर और फकीर की छाती में छुरा नहीं घोपा, किसी मस्जिद को हाथ नहीं लगाया। क्यों? केवल इसलिए कि भारत के राष्ट्रीय समाज की लड़ाई यहां के मुसलमानों से नहीं भारत के शत्रुओं से थी और वही जंग आज भी जारी है।

इस्लाम की तौहीन

भारत के मुसलमान-मुसलमान में अन्तर है। पाकिस्तान के विरुद्ध बोलने से

भारत के सभी मुसलमान मर्माहत होते हैं, जो मुसलमान पाकिस्तान की विजय पर प्रसन्नता व्यक्त करते और भारत की जीत पर मातम मनाते हैं वे मुसलमान भारत भक्त नहीं, भारत के शत्रु हैं। कश्मीर घाटी में पाकिस्तान जिन्दाबाद का स्वर जिन्हें सुखद लगता है, वहां भारत का चक्रंकित राष्ट्रध्वज फहराए जाने में जिन्हें गौरव का नहीं तौहीन का अनुभव होता है। वे उन मुसलमानों से भिन्न हैं जो अपने खून से भारत माता का अभिषेक करने के लिए खड़े मिलते हैं। जो मुसलमान भारत के 'श्रीराम' को अपने लिए चुनौती और बाबर को अपना इतिहास मानते हैं भारत की मनीषा और यहां तक कि मनुष्य को उनके साथ लड़ते ही रहना होगा।

शहाबुद्दीनी और अफजली सोच भारत की ही नहीं इस्लाम की भी तौहीन करता है। पी० एन० ओक और सलमान रुश्दी की पुस्तकों को प्रतिबंधित कराकर समय की गति को रोका नहीं जा सकता। इतिहास को सत्योद्घाटन करने के कठोर कर्तव्य से विरत नहीं किया जा सकता। मुहम्मद नामक गाड़ीवान के अर्न्तद्वंद्व की कहानी से भड़क कर किसी समाचार पत्र को जला कर सत्यासत्य विवेचन की प्रक्रिया रोक देने की सुख भ्रांति क्षणजीवी ही नहीं, मूर्खतापूर्ण भी है।

किन्तु क्या करें शहाबुद्दीन ? क्या करें अफजल, सुलेमान सेठ, ओवेसी, बुखारी और जीलानी जैसे मुसलमान। उनकी मजहबी मजबूरी है। इण्डोनेशिया और कुछ मात्रा में मलेशिया के अतिरिक्त इस्लाम कभी भी किसी भी देश की मूलधारा का जलकण नहीं बन पाया। वह हर जगह आक्रमणकारी ही बना रहा। राष्ट्रात्मा के साथ कहीं भी एकात्म नहीं हुआ। चीन, रूस, इंग्लैंड, अमरीका फ्रांस कहीं भी नहीं। सब जगह उसकी समानान्तरता विद्यमान है। सब जगह मुसलमान वहां की राष्ट्रीय अस्मिता के प्रभाव और अविर्भाव से आतंकित रहते हैं। इस पर विडम्बना यह है कि कोई भी इस्लामी राष्ट्र दूसरे इस्लामी राष्ट्र को अपना ही राष्ट्र नहीं मानता। कोई भी अपनी सीमा और सम्पत्ति अपने ही पैगम्बर की संतानों को बांटने के लिए तैयार नहीं है। इस्लामी विस्तारवाद भाईचारे की भी पुष्टि नहीं करता। वे दारुल हरब (गैर इस्लामी संसार) के विरुद्ध एकजुट हो सकते हैं। लेकिन दारुल इस्लाम (इस्लामी संसार) उनकी साझा समर भूमि है।

भारत को दारुल इस्लाम बनाने का जो जेहाद आज से बारह सौ वर्ष पूर्व शुरू किया गया था। शहाबुद्दीन, अफजल, सुलेमान, ओवेशी और बुखारी जैसे मुसलमान उसी जेहाद और जंग के सेनापति और सिपाही हैं। इनके कारण भारत के शेष मुसलमानों की राष्ट्रभक्ति संदिग्ध हो गई है ? यह सोच, इस सोचं को स्वर प्रदान करने वाले मुसलमान, इनकी समर्थक और पोषक समस्त प्रवृत्तियां दल और नेता भारत राष्ट्र की एकता, अस्मिता इनकी सनातन सत्ता और संस्कृति के समस्त सूत्रों को छिन्न भिन्न कर रहे हैं। कारण कुछ भी हो, इस कार्य में भारतीय संसद औ: लोकसभा अध्यक्ष भी सहभागी हुए हैं। इस वर्त्तमान को इतिहास अपने पन्नों मे

समेटेगा तो भविष्य में अतीत के शोधकर्ता इस पन्ने को पढ़कर स्तब्ध रह जाएंगे कि 11 मार्च 1992 को भारत की सर्वोच्च संस्था ने अपनी सनातन चिति और चेतना का निषेध करके किस प्रकार अपने बहुआयामी राष्ट्रीय प्रवृत्ति, राष्ट्रीय चिन्तन और प्रेरणा को अवरुद्ध कर दिया था। तब इस सबका परिणाम सामने होगा, इसलिए कारण की तलाश करने में शायद उन्हें अधिक कठिनाई और कष्ट का सामना नहीं करना पड़ेगा —ठीक उसी प्रकार जैसे पाकिस्तान का, कश्मीर घाटी की समस्या और शाहबानो का मामला और पूजा स्थल कानून का संदर्भ और कारण समझने के लिए अब किसी शोध ग्रंथ का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं रही है। पुराना अनुभव और वर्त्तमान का अहसास ही इसके लिए पर्याप्त है।

ग्यारह मार्च, 1992 हमें केवल जिन्नाओं और शहाबुद्दीनों से ही नहीं पैगम्बर मुहम्मद, कुरान और इस्लाम के उस सोच से भी जोड़ता है जहां सब कुछ बन्द है और उस बंद के दंद खोलने का अर्थ है जंग, रक्तपात, लूट और बलात्कार के चौदह सौ वर्षीय इतिहास को झेलना। इस्लाम के इस इतिहास को छिपाना ही शायद सच्चा मुसलमान होना है।

29 मार्च 1992

अयोध्या से आतंकित ये दल और लोग

क्या हुआ अयोध्या में ? क्या हो रहा है अयोध्या में कि भारत के गृहमंत्री श्री चव्हाण, जनता दल, कम्युनिस्ट पार्टियां, कुछ पत्रकार और बुद्धिजीवी सिर धुन कर, छाती पीट कर स्यापा कर रहे हैं ? कौन सा वज्रपात हो गया अयोध्या पर कि उसका निरीक्षण और अध्ययन करने के लिए नरसिंह राव की भारत सरकार को राष्ट्रीय एकता परिषद की स्थायी समिति और सांसदों का दल भेजने के लिए विवश होना पड़े?

किन्तु भारत की जनता की स्मृति इतनी क्षणजीवी नहीं है कि वह अभी इतिहास नहीं बन पाए वर्तमान को भूल जाए या केवल गत एक दशक का भोगा और भुगता गया अपना अतीत उसे स्मरण न हो। कम्युनिस्ट पार्टियां, जनता दल, समाजवादी जनता पार्टी, नरसिंह राव की इन्दिरा कांग्रेस, मुस्लिम लीग, वामपंथी बुद्धिजीवियों और भारत सरकार की परंपरा से सर्वथा अनभिज्ञ पत्रकारों ने कब क्या क्या कहा है और क्या-क्या किया है, इसका विवरण किसी एक का नहीं, एक बहुत ही बड़ी पुस्तक का विषय है ?

वस्तुस्थिति

अयोध्या स्थित श्रीराम जन्मभूमि पर हिन्दू शिल्प और देवी देवताओं के चित्रों से अंकित स्तम्भों पर मुगल आक्रमणकारी बाबर के सेनापति मीरबाकी द्वारा निर्मित एक ढांचा बनाया गया है जिसे बाबर की विजय और भारत की पराजय के प्रतीक के रूप में भारत के मुसलमान राजनेता, कुछ मौलवी, कुछ छद्‌म इतिहासकार, पत्रकार और मुस्लिम परस्त राजनेता बाबरी मस्जिद के नाम से पुकारते हैं। किन्तु सरकारी दस्तावेजों, नवाबों और बादशाहों के फरमानों एवं हिन्दू वांङ्.मय में श्रीराम जन्मभूमि के नाम से उसका उल्लेख है। सन 1528 में बाबर के सेनापति मीरबाकी खां द्वारा उसे तोड़े जाने के बाद से 31 अक्तूबर 1990 तक अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए रामभक्त सतहत्तर युद्ध लड़ चुके हैं। इन संघर्षों में लगभग तीन लाख हिन्दू अपनी प्राणाहुति दे चुके हैं और स्वतंत्र भारत में भी यह क्रम रुका नहीं है।

वहां जाने पर आज भी पुलिस चौकी राम जन्मभूमि और टेलीफोन राम जन्मभूमि लिखा मिलता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कहीं भी किसी भी रूप में बाबरी मस्जिद का कोई उल्लेख या चिन्ह वहां मौजूद नहीं है और न वहां कोई बाबरी

मस्जिद का नाम लेता है। गत तैंतालीस वर्षों से श्रीराम लला की सतत पूजा चल रही है। हजारों भक्त वहां प्रतिदिन आते हैं। मुसलमानों का प्रवेश न्यायालय द्वारा प्रतिबंधित है। कम से कम गत पांच दशकों में वहां किसी ने किसी मुसलमान को अजान देते और नमाज पढ़ते सुना देखा नहीं है।

बाबर के सेनापति मीरबाकी द्वारा ध्वंस किए गए श्रीराम लला के इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करने के लिए गत आठ वर्षों से श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति ने एक राष्ट्रीय अभियान और अनुष्ठान चला रखा है। वहां स्थित मन्दिर को बाबरी ढांचा बताकर उसकी रक्षा करने के नाम पर 31 अक्टूबर और 2 नवम्बर 1990 को तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव सैकड़ों कारसेवक रामभक्तों की हत्या करा चुके हैं। तत्कालीन प्रधानमंत्री विश्वनाथप्रताप सिंह, अब्दुल्ला बुखारी और दूसरे कठमुल्लों की थाप पर नाचते आए हैं। कम्युनिस्ट पार्टियां मस्जिद बनाम मंदिर का विवाद पैदा करके देश को हिन्दू-मुसलमान अर्थात् अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक में बांटने का हर संभव प्रयास करती रही हैं। इन्दिरा कांग्रेसी तब राजीव तथा बूटासिंह और अब नरसिंह राव और चव्हाण के नेतृत्व में मुस्लिम वोटों की फसल काटने का भरपूर प्रयास करते आ रहे हैं? इसी वोट राजनीति और छद्म सेकुलरिटी का परिणाम है 23 मार्च 1992 से पुनः प्रारम्भ हुई चीख-पुकार। इसमें तनिक सा अन्तर यह है कि तब यह चीखना-चिल्लाना मस्जिद के नाम पर किया जाता था, अब मन्दिर तोड़े जाने के नाम पर राजनीतिक बवण्डर बनाया गया है।

क्या घटित हुआ अयोध्या में? यही कि यात्रियों को सुविधा प्रदान करने के लिए श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर के पास की लगभग तीन एकड़ भूमि उत्तर प्रदेश सरकार ने अधिगृहीत कर ली। न्यायालय ने अधिग्रहण को न्यायोचित ठहराया और उस भूमि पर बने मकानों को हटाने का अधिकार स्वीकार किया। उस ऊबड़-खाबड़ स्थान का केवल समलीतकरण किया गया। उस भूमि पर बनाये गए मकानों के मालिकों को मुआवजा देकर मकान खाली कराए गए। जिस भवन में श्री साक्षी गोपाल का मन्दिर स्थित था, उसके मन्दिर भाग के अतिरिक्त शेष भवन को मुआवजा देकर हटाया गया। संकट मोचन मन्दिर में विराजमान श्रीहनुमान जी की सीमेंट की मूति उस मन्दिर के मालिक चौबुर्जी के महन्त श्रीराम आसरे दास ने पूजा आरती करके विधि-विधान पूर्वक अपनें चौबुर्जी देवी के मन्दिर में स्थापित कर दी। श्रीहनुमान जी की मूर्ति के स्थानान्तरण की प्रक्रिया में उनके पांव में कुछ चोट आई थी, जिसका उपचार कराया गया। वहां केवल ये दो मन्दिर ही थे। इसके अतिरिक्त न वहां कोई मन्दिर था, और न कोई पुजारी।

अयोध्या भारत में एकमेव ऐसा तीर्थ है जहां के प्रत्येक भवन में श्रीराम का विग्रह है, यहां के प्रत्येक निजी भवन में श्रीराम की झांकी होना सहज और स्वाभाविक परम्परा है, अपनी श्रद्धा और सुविधा के अनुसार मकान मालिक उसको स्थानान्तरित

करते और बदलते रहते हैं। वह सार्वजनिक रूप से प्राण प्रतिष्ठित सार्वजनिक मन्दिर नहीं होता।

यह तो हुआ अयोध्या की आज तक की स्थिति का संक्षिप्त विवरण। अब उन प्रवृत्तियों, व्यक्तियों और भाजपा सरकार द्वारा अयोध्या के मन्दिर तोड़े जाने का वितण्डा खड़ा करने वालों के चरित्र का विचार करें जो श्रीराम मन्दिर का निर्माण कार्य रोकना और आक्रमणकारी द्वारा किए गए देश के अपमान का चिन्ह बनाए रखना चाहते हैं।

गृहमंत्री का चरित्र व स्वभाव

इन्दिरा कांग्रेस की सरकार के गृहमंत्री एस० बी० चव्हाण का चरित्र और चिन्तन क्या है? यही नहीं कि मनुष्य के रूप में ये झूठ के झण्डावाहक हैं। राजनेता के रूप में वे राक्षसी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं। मन्दिर तोड़ने का झूठा आरोप लगाकर उत्तर प्रदेश सरकार को बर्खास्त करने की धमकी उनके लिए बहुत सरल बात है। बुद्धि की बंजरता और स्वभाव की क्रूरता उनका मूल चरित्र और व्यक्तित्व है।

जून, 1975 से मार्च, 1977 के बीच इन्दिरा की आपातकालीन तानाशाही के एक प्रवक्ता ये भी थे। राष्ट्र और विशेषकर महाराष्ट्र में घूम-घूमकर इन्दिरा जी की सदाशयता का उल्लेख और विरुदगान करते हुए इन्होंने ही कहा था कि इन्दिरा जी कितनी दयामयी हैं कि उन्होंने जयप्रकाश नारायण और मोरारजी देसाई जैसे नेताओं को केवल नजरबन्द किया है जबकि इन सबको सरेआम गोली मार देनी चाहिए थी। गत वर्ष एक दिन भारतीय संसद में बोले कि उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री मुलायम सिह के सुरक्षा प्रहरियों को भाजपा के वर्त्तमान मुख्यमंत्री कल्याणसिंह ने अपनी पहल पर वापस लिया है। जबकि दस्तावेजी तथ्य यह था कि केन्द्रीय गृह मंत्रालय के निर्देश पर यह कार्य किया गया था। गृहमंत्री का निर्देश था कि देश की बिगड़ती आन्तरिक स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि सुरक्षा बलों की कमी को पूरा करने के लिए मुख्यमंत्री के रूप में श्री मुलायम सिंह यादव को दिए गए केन्द्रिय सुरक्षा प्रहरी वापस भेज दिए जाएँ। उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री कल्याण सिंह को लिखा गया चव्हाण का यह पत्र समाचार पत्रों में छपा भी था, किन्तु यह झूठा आरोप लगाने से ये फिर भी बाज नहीं आए थे।

असम के उग्रवादी संगठन अल्फा का एक दल श्री चव्हाण से बातचीत करने के लिए उन्हीं के आमंत्रण पर दिल्ली में मौजूद था। वह दल उनके सम्पर्क में था, तो भी इस सम्बन्ध में पूछे जाने पर वे साफ-साफ मुकर गए थे कि उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं है।

और अभी जब उन्होंने संविधान की धारा 356 के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश सरकार के विरुद्ध कार्रवाई करने की धमकी दी और संसद में यह कहा कि उत्तर प्रदेश

सरकार से तथ्यों की जानकारी मंगाई गई है, उनका अध्ययन करने के बाद ही कोई निश्चित उत्तर दिया जा सकेगा, तो यह धमकी देने के 14 घंटे पूर्व सम्पूर्ण तथ्य उत्तर प्रदेश सरकार उनके पास भेज चुकी थी और उनके मंत्रालय ने उसकी प्राप्ति को स्वीकार भी किया था किन्तु श्री चव्हाण ने इस तथ्य को अस्वीकार करके भाजपा सांसद प्रमोद महाजन को चुनौती दी कि उनको यह जानकारी कहां से मिली कि उत्तर प्रदेश सरकार ने संपूर्ण तथ्य मेरे पास भेज दिए हैं। श्री चव्हाण ने पहले श्री प्रमोद महाजन की जानकारी के स्रोत का प्रश्न उठाकर सत्य पर पर्दा डालने का हर संभव प्रयास किया और बाद में राज्यसभा के सभापति को एक पत्र लिखकर स्वीकार किया कि उत्तर प्रदेश सरकार ने तथ्य तो भेज दिए थे किन्तु विराधी दलों के नेताओं के साथ बातचीत और व्यस्तता के कारण मुझे उसकी जानकारी नहीं मिल पाई थी ।

तथ्य से परे लेखन

ये हैं भारत के गृहमंत्री। आज अयोध्या के विषय में तथ्यों से अनभिज्ञ होकर झूठ बोलते हैं तो कल कश्मीर, पंजाब, पूर्वांचल , झारखण्ड और दूसरे राज्यों की आन्तरिक स्थिति के विषय में भी क्या वे अयोध्या की तरह ही गलतबयानी अथवा देश को गुमराह नहीं कर रहे हैं ?

श्रीराम मन्दिर विरोधी दूसरे दलों के नेताओं का भी चरित्र इससे भिन्न नहीं है। झूठ बोलना और निराधार आरोप लगाना उनके राजनीतिक मजहब का मुख्य आधार है। जनतादलीयों, कम्युनिस्टों, कांग्रेसियों और इसी राजनीतिक संस्कृति के कुनबे वाले दूसरे लोगों की मंदिर भक्ति का रहस्योद्घाटन किया है संविधान तथा न्यायालय का अपमान करने और संपूर्ण उत्तर प्रदेश को सैनिक छावनी में बदल देने वाले उत्तर प्रदेश के समाजवादी जनता पार्टी के नेता तथा पूर्व मुख्यमंत्री मुलायम सिंह ने। लखनऊ में एक संवाददाता से उन्होंने कहा कि अब हम भाजपा के ही मंदिर मोर्चे पर उसे चुनौती देंगे। भाजपा की मंदिर भक्ति को बेनकाब करने के लिए जन आन्दोलन प्रारंभ करेंगे। हिन्दू मंदिरों का तोड़ा जाना हम कदापि बर्दाश्त नहीं करेंगे। मुलायम सिंह का यह राजनीतिक दर्प उन समस्त सेकुलरिस्टों पर समान रूप से लागू होता है, जो श्रीराम जन्मभूमि परिसर से हटाए गए भवनों को मंदिर तोड़ा जाना बताकर अपनी राजनीतिक रोटी सेंकना चाहते हैं।

गत 22 मार्च से 26 मार्च तक मैं अयोध्या में था। उस समय श्रीराम जन्मभूमि के सामने की भूमि पर जो कुछ किया गया, उसने पत्रकारों के शब्द और शब्दार्थ के ज्ञान के अकाल को भी उजागर किया है। यदि वे शब्दों के अर्थों के अकाल से पीड़ित न होते तो 'हटाने' को 'गिराना' और समतलीकरण को 'ध्वस्तीकरण' न लिखते। नियमानुसार हटाने और समतलीकरण की प्रक्रिया की कार्य परिभाषा का ज्ञान उन्हें होता तो वे देश के करोड़ों लोगों के मन मानस में तनाव उत्पन्न करने का तथ्यहीन

पत्रकारीय अपराध न करते। पत्रकारिता की मर्यादाओं और शुद्धता का ध्यान होता तो धन देकर सरकार और विश्व हिन्दू परिषद के विरुद्ध बोलने के लिए लोगों को उकसाने का घृणित प्रयास न करते। 'जैसा देखो वैसा लिखो' पत्रकारिता का मानदण्ड है। यह मानदण्ड भी कुछ अपवादों के अतिरिक्त अधिकांश पत्रकारों ने तोड़कर फेंक दिया। इन्हें मंदिर और मकान का अन्तर तक पता नहीं है ?

दोहरा चरित्र

उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार पर मुलायम सिंह और विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा लगाया गया यह आरोप कितना सत्य और हास्यास्पद है कि 'कल्याण सिंह समस्त लोकतांत्रिक मर्यादाओं को मटियामेट कर रहे हैं।' वे शायद यह मानते होंगे कि 1990 में उन्होंने जो कुछ किया था, उन पर न्यायालय की अवमानना के जो सौ से अधिक मामले बनते हैं, देशवासियों के आवागमन और आराधना पूजा के जिन मौलिक अधिकारों का उन्होंने अपहरण कर लिया था, वह मर्यादा को मटियामेट करना नहीं, मर्यादा पुरुषोत्तम होना है, और देशवासी उसे भूल गए होंगे।'

और अब मंदिर और हनुमान भक्ति का प्रश्न ? केवल मस्जिद और मुसलमानों को देश की सेकुलरिटी, सामाजिक एवं साम्प्रदायिक शांति सद्भाव का मूलाधार मानने वालों की छद्म सेकुलरिटी की ही भांति उनकी मंदिर भक्ति भी राजनीतिक और घटिया है। पूजास्थल विधेयक 1991 इसका ताजा पक्ष है कि मुस्लिम लीग ने मांग की, राजीव ने माल ली और नरसिंह राव ने उसे पूरा कर दिया।

शाहबानो के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को कानून बनाकर निरस्त किया जाना, कलकत्ता उच्च न्यायालय में कुरान की कुछ आयतों पर चल रहे मुकदमे की वापसी, समान नागरिक संहिता का निर्माण न करना, अल्पसंख्यकता के नाम पर मुस्लिमों का तुष्टीकरण, देश की 85 प्रतिशत आबादी को अपमानित करते रहने और यह अपमान सहते रहने का भी अनुभव देशवासियों को है। देशवासी यह भी नहीं भूले हैं कि 1983 में कश्मीर घाटी में सैंकड़ों मंदिर ध्वंस करके देवी देवताओं की मूर्तियां तोड़ दी गई हैं और अल्लाह हो अकबर तथा पाकिस्तान जिन्दाबाद के नारों के साथ यह कहा गया था और आज भी कहा जा रहा है कि 'हिन्दू कुत्तों कश्मीर छोड़ दो, इण्डिया की गुलामी कश्मीर और अधिक नहीं बर्दाश्त करेगा।'

श्रीनगर और कश्मीर घाटी से ढाई लाख से अधिक हिन्दुओं को अपना मंदिर, देवता, मकान और दुकान छोड़कर भागना तथा अपने ही देश में विस्थापित एवं शरणार्थी होना पड़ा, किन्तु अयोध्या के श्रीराम जन्मभूमि परिसर में मकान हटाए जाने को मदिर तोड़ना कहने वालों में से कोई भी मंदिर भक्त और 'सेकुलरिस्ट' कश्मीर नहीं गया। किसी ने भी संसद, विधानसभा या जनसभा में शोर नहीं मचाया कि अपने ही देश के इस भाग में देवालय तोड़े जा रहे हैं, वहां के निवासी अपनी बहू बेटियों

का शील हरण देखने के लिए विवश किए जा रहे हैं। देश की बेटियां पाकिस्तान जिन्दाबाद का नारा अपने स्तनों, जंघाओं और गुप्तांगों में छिपाए बैठी हैं। श्रीराम जन्मभूमि परिसर के मकानों को मंदिर मानने वाले ये दल और ये लोग कश्मीर के मंदिरों को मंदिर और मूर्तियां को देवता मानने के लिए तैयार नहीं हैं। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद और भाजपा अर्थात् संघ परिवार की संस्थाओं के अतिरिक्त इन 'मंदिर भक्तों' में से कोई भी दल, कोई भी नेता और कोई भी प्रधानमंत्री न कश्मीर के देवालयों और देवताओं का विध्वंसीकरण देखने गया और न इसकी निन्दा ही की है। 1983 से अब तक अर्थात् इन्दिरा गांधी से लेकर नरसिंहराव तक किसी भी प्रधानमंत्री ने कश्मीर में तोड़े गए मंदिरों का सत्य जानने के लिए संसदीय दल या राष्ट्रीय एकता परिषद के सदस्यों को भेजने की जरूरत नहीं समझी। वहां संसदीय दल भेजे जाने की मांग करने पर भी नहीं माना गया। क्या केवल इसलिए कि उन मंदिरों को अनन्तनाग को इस्लामाबाद कहने वालों ने तोड़ा था या इसलिए कि यदि सरकार उन देवालयों का सत्य देश और दुनिया को बता देती तो उसके थोक मतदाता अर्थात् मुसलमान नाराज हो जाते ?

भाजपा की भूमिका

श्रीराम जन्मभूमि के विषय में भाजपा सरकार ने कुछ भी छिपाया नहीं। भाजपा ने श्रीराम जन्मभूमि पर श्री रामलला का मंदिर निर्माण करने के मार्ग में आने वाली समस्त बाधाओं को दूर करने की सार्वजनिक घोषणा की है। चुनाव अभियान में अपनी इस प्रतिबद्धता को बार-बार दोहराया है। यह प्रतिबद्धता उसके घोषणा पत्र में भी दर्ज है। मुलायम सिंह सरकार को हटाकर उसने सर्वप्रथम राजनीतिक बाधा दूर की, अब कानूनी और साम्पत्तिक अधिकारों की बाधाएं दूर करने का प्रयास कर रही है। राम जन्मभूमि मन्दिर के सामने की लगभग तीन एकड़ भूमि का अधिग्रहण और उसका समतलीकरण इस प्रयास का एक अंग है। राम जन्मभूमि परिसर के पास ही राजीव की इन्दिरा कांग्रेस के मुख्यमंत्री वीर बहादुर सिंह द्वारा राम कथा पार्क बनाने के लिए अधिगृहीत जो बावन एकड़ भूमि नारायण दत्त तिवारी और मुलायम सिंह के कार्यकाल में उपेक्षित पड़ी थी, धनाभाव के कारण सरकार जिसका निर्माण कर पाने में असमर्थता अनुभव कर रही थी, उस भूमि को श्रीराम जन्मभूमि न्यास को सौंप कर भाजपा सरकार ने दोहरा कार्य किया है। एक आर्थिक भार से मुक्ति और दूसरा—राम कथा पार्क के कल्पित प्रकल्प का श्रीराम जन्मभूमि न्यास के माध्यम से प्रारंभ।

जिस राम दीवार को बहस का मुद्दा बनाया गया है, उसका निर्माण करने की सलाह सरकार द्वारा गठित एक विशेष समिति ने दी थी। इस पर आपत्ति का कारण गृहमंत्री ने केवल यह बताया है कि इसका निर्माण विशेष शैली पर किया जा रहा है। यदि यह दीवार ऊबड खाबड़ ढंग से बेतरतीब बनाई जाती तो इन्हें आपत्ति न होती।

प्रश्न यह भी है कि मुस्लिम लीग से किए गए अपने चुनावी वायदे को पूरा करने के लिए नरसिंह राव सरकार ने अपने पूजा स्थल विधेयक 1991 की परिधि से श्रीराम जन्मभूमि को मुक्त क्यों किया गया था, क्या केवल इसलिए नहीं कि वह एक स्वयं सिद्ध सत्य है और देशवासी उस पर अपना निर्णय दे चुके हैं ? इस विषय को न्यायालय की परिधि से क्यों नहीं निकाला जाता ? गत 43 वर्षों से यह मामला न्यायालय में अनिर्णीत क्यों पड़ा है ?

केन्द्र सरकार के संसदीय कार्यमंत्री गुलाम नबी आजाद का कहना है कि मंदिर मस्जिद की दीवार साझी होनी चाहिए ? यह सुझाव अच्छा और कर्णप्रिय लगता है। किन्तु वास्तविकता और अनुभव इसके विपरीत हैं। राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए यह प्रयोग 1947 में भारत माता का मंदिर तोड़कर पाकिस्तान का निर्माण करके किया गया था। परिणाम में क्या मिला भारतवासियों को ?

यह प्रयोग किए जाने का सुझाव देने के पूर्व क्या श्री गुलाम नबी आजाद ने मुसलमानों और मौलवियों की स्वीकृति प्राप्त कर ली है, कि वे मंदिर की आरती और मस्जिद की अजान एक साथ सुनने के लिए तैयार हैं ? इस प्रयोग का प्रारंभ अयोध्या से ही क्यों श्रीनगर की हजरत वल मस्जिद या दिल्ली की जामा मस्जिद से भी तो किया जा सकता है ? किसी मंदिर या मस्जिद के अतिरिक्त किसी नवीन भूमि पर भी किया जा सकता है । अयोध्या के संबंध में हिन्दू यदि यह प्रश्न पूछें कि इस प्रकार की प्रयोग भूमि हिन्दुओं की धरती को ही क्यों बनाया जाता है तो इसका क्या उत्तर देंगे गुलाम नबी आजाद सरीखे लोग ? जो गुलाम नबी आजाद और इनका दल कश्मीर घाटी में हिन्दु मुसलमानों को साथ-साथ नहीं रख पाए वे ही श्रीराम जन्मभूमि के मंदिर की दीवार को मस्जिद की साझी दीवार बनाने का फार्मूला प्रस्तुत करें इससे बड़ी हास्यास्पद बात और क्या हो सकती है ?

अयोध्या में श्रीराम मंदिर बनाने के मार्ग में राजनीतिक और भूमि संबंधी बाधा भाजपा सरकार ने हटा दी हैं। केवल कानूनी बाधा शेष है। इस समय न रुकने वाली मंदिर निर्माण की प्रक्रिया चल रही है। भूमि समतलीकरण के पश्चात् भूमि परीक्षण, नींव की खुदाई ओर अन्य कार्य भी प्रारंभ होंगे। केन्द्र सरकार, कांग्रेसी, लीगी, वामपंथी और जनता दलीय लोग यदि संविधान के नाम पर कोई राजनीतिक बाधा पुनः खड़ी करने का प्रयास करेंगे तो सम्भव है उन्हें अपने इस किए का राजनीतिक दुष्परिणाम भी ठीक उसी प्रकार भोगना पड़े, जैसे उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह को भोगना पड़ा था।

नरसिंह राव की सरकार ?

अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ और संसद के केन्द्रीय कक्ष में गर्मागर्म चर्चाएं चलने लगी हैं कि कितने दिन और चलेगी नरसिंह राव की सरकार ? इस चर्चा में इंकाई सांसद, मंत्री, पत्रकार और कुछ मंत्रियों के ज्योतिषी और तांत्रिक भी शामिल हैं। इंकाई सांसद दो-तीन खेमों में बंटे दिखाई देते हैं। खबरखोजी पत्रकार कभी इस गुट को हवा देते हैं, कभी उस गुट को। मंत्रियों के ज्योतिषी और तांत्रिक निरपेक्ष भाव से अपने यजमानों का भविष्य पढ़ते हैं। नरसिंह राव का झण्डा चन्द्रास्वामी के दूतों ने सम्हाल रखा है। इन झण्डावाहकों में सुब्रह्मण्यम स्वामी भी हैं और चन्द्रशेखर दोनों के गुरुभाई होने के धर्म का निर्वाह कर रहे है। ज्योतिषी और तांत्रिक तारक-मारक ग्रहों का विश्लेषण करके प्रचारित कर रहे हैं किसका कौन-सा महीना अच्छा है, कौन-सा महीना बुरा है। किसका राजयोग है, किसका मृत्युयोग। नरसिंह राव विरोधी लगभग सभी कांग्रेसी और उनके ज्योतिषी इस बात पर आमतौर से सहमत दिखाई देते हैं कि अधिक से अधिक अक्तूबर तक ही नरसिंह राव का राज्य रहेगा। उन पर कुटिल ग्रहों की कुदृष्टि है। राजयोग की दृष्टि से ज्योतिषी अपने-अपने यजमानों का नाम कुछ इस प्रकार लेते हैं कि उन्होंने अब तक जिन सांसदों और मंत्रियों की जन्मपत्री देखी है उनमें अमुक -अमुक नेता के ग्रह प्रबंल है।। उनके भारत का प्रधानमन्त्री बनने का योग है।

कभी-कभी यह अनुमान आंशिक रूप से सच भी लगने लगता है। कांग्रेसी सांसदों और मंत्रियों क़ी जन्मपत्री के साथ उनकी कर्मपत्री का मेल बैठता दिखाई देता है। अब यह स्पष्ट होने लगा है कि आज नहीं तो कल इंका एक नहीं कई खेमों में बंटेगी। पार्टी विभाजन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई तो नरसिंह राव हर सम्भव मूल्य चुकाकर सदन में अपना बहुमत बनाए रखने का प्रयत्न करेंगे। उनकी कोशिश होगी कि इंका टूटे तो विपक्ष को तोड़कर उसका मुकाबला किया जा सके।

अनोखी आम सहमति

गत दस महीने से जो लोग नरसिंह राव की आम सहमति की राजनीति के प्रति मोहासक्त थे उनका अब मोहभंग होने लगा है। नरसिंह राव की आम सहमति का

अर्थ है उनके अनुकूल सहमति। नहीं तो वे चुपचाप रहकर मनमानी करते हैं। उपासना स्थल विधेयक, मेघालय और नागालैण्ड में राष्ट्रपति शासन, गृहमंत्री चव्हाण को मनचाहा बोलने की छूट, अयोध्या अध्ययन दल भेजने की कार्रवाई पर चुप्पी, आतंकवादी को उकसाने वाले वक्तव्यों के लिए अपने गृहमंत्री को न टोकना-रोकना, भाजपा को देशद्रोही कहे जाने को मौन स्वीकृति आदि अनेक प्रसंग इसकी पुष्टि करते हैं। राजीव के प्रथम वर्ष से नरसिंह राव के प्रथम वर्ष की तुलना प्रारम्भ हो गई है। शुरू-शुरू में राजीव भी संघर्ष की राजनीति छोड़कर सहमति या आम सहमति के मार्ग पर चलते दिखाई दिए थे किन्तु धीरे-धीरे उनकी 'बाबा लोग' राजनीति अपने पूर्व प्रधानमंत्रियों के पुराने रास्ते पर चल पड़ी थी। जवाहरलाल नेहरू और इन्दिरा गांधी की तरह नरसिंह राव भी अपनी छवि के प्रति बहुत सतर्क हैं। इसके लिए वे अपने किसी भी साथी और सहयोगी की राजनीतिक बलि चढ़ाने से नहीं चूकते। पहले अपने सहयोगियों को छूट देते हैं फिर उनके किए बोले के प्रभाव और परिणाम का अनुमान लगाकर ऐसा कदम उठाते हैं कि लोग उनकी वाह-वाह करने लगें। उनकी यह वाह-वाह उनके सहयोगियों को अब अखरने लगी है। वे अब यह बोलने लगे हैं कि उनका खून चूस कर नरसिंह राव मोटे होते जा रहे हैं।

माधव सिंह सोलंकी काण्ड के पश्चात् इंका में नरसिंह राव विरोधी खेमा मुखर हो गया है। इस खेमे ने अभियान चला रखा है कि जो प्रधानमंत्री अपने सहयोगी मंत्री का बचाव नहीं कर सकता, मौका आने पर पीछे हट जाता है उसका क्या भरोसा।' इंका के कई मंत्री और सांसद क्षुभित मुद्रा में अलग-अलग किन्तु एक ही प्रश्न पूछते हैं—'क्या आपको पता है कि माधव सिंह सोलंकी का वह वक्तव्य जिसके कारण उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा, किसने लिखा था ?' और स्वयं ही उत्तर भी देते हैं कि 'वह वक्तव्य प्रधानमंत्री नरसिंह राव की उपस्थिति में संसदीय कार्य और विधि राज्यमंत्री कुमार मंगलम ने तैयार किया था। माधव सिंह सोलंकी प्रधानमंत्री के कपट जाल में फंस गए। उनके सामने त्यागपत्र के अतिरिक्त और कोई विकल्प रह ही नहीं गया था। यदि सोलंकी प्रधानमंत्री नरसिंह राव द्वारा तैयार कराया गया वक्तव्य न पढ़ते तो भी त्यागपत्र देना पड़ता और पढ़ते तो भी। संभवतः उन्होंने सोचा होगा कि यदि प्रधानमंत्री उनसे वक्तव्य पढ़ा रहे हैं तो वे उनका बचाव भी करेंगे। वक्तव्य न पढ़ने से मंत्रिमण्डल से निकाला जाना निश्चित था, लेकिन वक्तव्य पढ़ने में आशा की किरण थी कि प्रधानमंत्री इनका बचाव करेंगे। किन्तु नरसिंह राव ने सोलंकी का बचाव नहीं किया। संसद के दोनों सदनों में बोफोर्स पर हुई बहस का उत्तर देकर उन्होंने अपनी छवि बना ली। एक वरिष्ठ सांसद यह कहते घूम रहे हैं कि "मैं एक रहस्य की बात बताता हूं। क्या आप जानते हैं कि उस वकीलनुमा अज्ञात व्यक्ति से वह पत्र लेने और उचित स्थान तक पहुंचाने का निर्देश सोलंकी को किसने दिया था?" और स्वयं ही उत्तर भी देते हैं कि "दस जनपथ के निर्देश पर प्रधानमंत्री के

सचिवालय ने।" पाप कराया प्रधानमंत्री ने और फल भोगना पड़ा सोलंकी को। ऐसा कब तक चलेगा ? सोलंकी को बोलने नहीं दिया जा रहा है। एक न एक दिन विवश होकर उन्हें बोलना ही पड़ेगा। जिस दिन वे बोलेंगे उसी दिन नरसिंह राव की सहमति की राजनीति का भाण्डा फूट जाएगा।"

केवल सोलंकी प्रकरण के प्रसंग में ही नहीं, पार्टी के चुनाव के प्रसंग में भी इंकाई नरसिंह राव की खाल खींचने से नहीं चूकते। कहते हैं पार्टी का चुनाव हुआ ही कहां है ? चुनाव के नाम पर राजीव के समर्थकों को नीचा दिखाने का नाटक किया गया। अब भी वही हो रहा है जो अब तक होता आया था। पार्टी के अधिकांश प्रदेशाध्यक्ष निर्वाचित नहीं मनोनीत हैं। इतना ही नहीं उनका मनोनयन सर्शत किया गया है।

इंका की आन्तरिक राजनीति इस समय कई ध्रुवों में बंटी है। एक ध्रुव है अर्जुन सिंह, दूसरा शरद पवार और तीसरा उन सांसदों का जो इन दोनों के विरोधी तो हैं किन्तु नरसिंह राव के पक्षधर नहीं हैं। पार्टियां तोड़ो और दल-बदल करोओ की राजनीति नरसिंह राव की विवशता बन गई है। जनता दल सहित राष्ट्रीय मोर्चा के घटकों को तोड़ने का अमूर्त्त अभियान अखण्डता से चल रहा है। कम्युनिस्ट पार्टियों के साथ मालमेल बढ़ाने के लिए ज्योति बसु को माध्यम बनाया गया है। भाजपा की सकारात्मक विपक्ष की भूमिका को नरसिंह राव अपने लिए वरदान मानते हैं। भाजपा का विरोध वे स्वयं नहीं करते, अपने गृहमन्त्री चव्हाण और अर्जुन सिंह सरीखें मंत्रियों से कराते हैं। इंकाई सांसद और पार्टी के वरिष्ट नेता चव्हाण और अर्जुन सिंह के मांत्रित्व की आयु की भी उल्टी गिनती करने लगे हैं। उनका विश्वास है कि एक दिन चव्हाण और अर्जुन सिंह का भी 'माधव सिंह सोलंकी' होना निश्चित है।

अपने-अपने तीर

इंकाई परिवार में अलग-अलग बैठकें हो रहीं हैं। सम्भावनाएं तलाशी जा रही हैं कि नरसिंह राव को कब और किस मुद्दे पर मात दी जा सकती है। इंका के एक रणनीति विशारद का मत है कि तिरुपति में महाधिवेशन करके नरसिंह राव नें अपनी राजनीतिक अन्त की प्रक्रिया आरम्भ कर दी है। वे स्मरण कराते हैं कि उस घटना का जब इसी तिरुपति में कामराज, संजीव रेड्डी, अतुल्य घोष और निजलिंगप्पा आदि कांग्रेसियों ने एकत्र होकर सिंडीकेट का गठन किया था और बंगलौर में हुई कांग्रेस की बैठक के बाद प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी और सिण्डीकेट के बीच संघर्ष शुरू हो गया था तब भी कांग्रेस के विभाजन का मुद्दा राष्ट्रपति का चुनाव बना था और अब भी यदि राष्ट्रपति का चुनाव ही पुनः मुख्य मुद्दा बन जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। तिरुपति सम्मेलन ने इंका के सभी ध्रुवों को अपनी-अपनी शक्ति का जायजा लेने का अवसर दे दिया।

अर्जुन सिंह खेमे ने दक्षिण के सांसदों का दलनिरपेक्ष समर्थन प्राप्त करने की रणनीति बनाई। गुजरात के चिमनभाई पटेल और राजस्थान के दिग्विजय सिंह को पटाया जा रहा है कि वे इंका में शामिल हो जाएं। माधव सिंह सोलंकी काण्ड से चिमनभाई को राजनीतिक शक्ति मिली है। वे अर्जुन सिंह और नरसिंह राव दोनों के सम्पर्क में हैं। तिरुपति सम्मेलन के पश्चात् इंका में आने और अपना संरक्षक निश्चित करने का फैसला करेंगे। राजस्थान में हरिदेव जोशी और दिग्विजय सिंह की दोस्ती कराने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रयास में अर्जुन सिंह और शरद पवार अलग-अलग किन्तु समानरूप से शामिल हैं। मध्य प्रदेश में माधव राव सिंधिया को मात देने के बाद अर्जुन सिंह की निगाह उत्तर प्रदेश पर है कि वह भी उनके प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। स्वयं को राजीव-लोंगोवाल समझौते का जनक बताकर उन्होंने पंजाब के सांसदों, विधायकों और मुख्यमंत्री को अपनी ओर आकर्षित किया है।

शरद पवार का प्रयास अर्जुन सिंह के प्रयास से भिन्न है। शरद पवार बोलते नहीं, मौन रहते हैं। किसी भी विरोधी दल के विरुद्ध किसी भी अभियान में वे शामिल दिखाई नहीं देते। इंका और विपक्षी दलों का शरीर वे दीमक की तरह खोखला बनाने में लगे हैं। दक्षिण भारत के समस्त सांसदों, गुजरात और राजस्थान के नेताओं को अपने विश्वास में ले रहे हैं। महाराष्ट्र के लोगों के मन में वे यह भावना जगा रहे हैं कि एक बार उनका भी प्रधानमंत्री होना चाहिए। अर्जुन सिंह को उज्जैन के मौनी बाबा के तंत्र-मंत्र का सहारा है तो शरद पवार की शक्ति है चन्द्रास्वामी। यदि इंका के विभाजन अथवा स्वास्थ्य के कारण उनके शिष्य नरसिंह राव को सत्ता से हटना पड़ा तो चन्द्रास्वामी शरद पवार की पीठ पर सवार होकर अपने राजगुरु पद को सुरक्षित रखने का हर सम्भव उपाय करेंगे। इस प्रकार की समस्त सम्भावनाओं को अपने पक्ष में मोड़ने के लिए सभी दलों में उन्होंने अपने दूत नियुक्त कर रखे हैं। चन्द्रशेखर और उनके कुछ समाजवादी मित्र विकल्प के रूप में शरद पवार को अपना सकते हैं तो अर्जुन सिंह ने विश्वनाथ प्रताप सिंह, अब्दुल्ला बुखारी और मुस्लिम लीग के साथ गठजोड़ कर रखा है। मुलायम सिंह और विश्वनाथ प्रताप का तालमेल और लालू यादव को मना कर एक बड़ा मोर्चा गठित करने की कई अनौपचारिक वार्त्ताएं होने की पुष्टि विश्वनाथ प्रताप और अर्जुन सिंह दोनों के दूतों ने 'हमें कुछ भी पता नहीं' कहते हुए की है । उनका तर्क है कि "यदि ऐसा है तो इसमें हर्ज क्या है ?" इस समीकरण या मोर्चे में यदि कम्युनिस्ट पार्टियां भी शामिल हो जाएं तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यह एक गैर कांग्रेसी और भाजपा विरोधी मोर्चा होगा।

जो गुथ जाए वही मोती

नरसिंह राव की जो छवि सरकार और दल के बाहर है, वह दल और सरकार के अन्दर नहीं है। हर कांग्रेसी उन्हें अनिर्णय का बन्दी, साहसहीन और डरपोक कहता

है। अपने राजनीतिक घर में उनकी छवि 'जो गुथ जाए उसे ही मोती' मान लेने जैसी है। वे पहल नहीं केवल प्रतीक्षा करते हैं, और उस प्रतीक्षा को आम सहमति या सहमति की राजनीति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। शासन का कोई भी सूत्र उनके साथ में नहीं है। इंकाईयों की विवशता और देशवासियों की नेहरू खानदान से मुक्ति की लालसा की पूर्ति ही उनकी शक्ति है। उन्होंने अभी तक देश की किसी भी समस्या का समाधान करने की पहल नहीं की है। पंजाब के चुनाव क्यों और किन परिस्थितियों में कराए गए इस रहस्य को लोकसभा में यह कह कर छिपा गए कि 'समय आने पर सब कुछ बता दूंगा।' जम्मू-कश्मीर की स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ रही है। वहां तैनात सुरक्षा बल असंतुष्ट हैं। गत दो वर्षों से सुरक्षा अधिकारी वहां के खेतों का परीक्षण करने केवल इसलिए नहीं गए कि उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी लेने के लिए कोई तैयार नहीं है। असम, आंध्र, तमिलनाडु और झारखण्ड में कभी लेन-देन तो कभी प्रतिकार की बात की जाती है। समस्याओं के प्रति उदासीनता को शालीनता और सहमति की राजनीति मानने की आत्मवंचना से देशवासियों को उबारने और नरसिंह राव के नेतृत्व के प्रति विद्रोह एवं विद्वेष उत्पन्न करने के नियोजत प्रयास में इंकाई लगे हुए हैं। धन और साधन प्रदान किए जा रहे हैं, कि आम जनता की ओर से नरसिंह राव विरोधी अभियान- चले और उचित समय पर उसका नेतृत्व करके सत्ता हथिया ली जाए।

इंका की घरेलू राजनीति का यह चरित्र नया नहीं है। उसकी अनिवार्यता है सत्ता। यह सत्ता मिलती हो तो किसी भी स्तर तक जाकर, कोई भी कार्य करने या उपाय अपनाने में इंकाई संकोच नहीं करते। नरसिंह राव, अर्जुन सिंह, शरद पवार आदि सभी नेता कांग्रेस की सत्तावादी राजनीति का ही इंदिरा संस्करण हैं। नरसिंह राव के पांव पूरी तरह जमने के पूर्व ही उसके नीचे की जमीन खिसका देने की चतुर्मुखी योजना बन चुकी है। समर्थकों की संख्या बढ़ा कर शीघ्र चुनाव की आशंकाओं को जिस दिन दूर कर पाने में सफलता मिल जाएगी उसी दिन नरसिंह राव की सरकार गिरा दी जाएगी। इंका के विभिन्न खेमे के लोग यह समय बजट सत्र के पश्चात् या मानसून सत्र के बीच का बताते हैं। इंकाई कांग्रेसी और विरोधी दलों के सत्तावादी नेता जो राजनीतिक ताना-बाना बुन रहे हैं उसे देखकर-सुनकर ऐसा लगता है कि देश एक बार पुनः राजनीतिक अस्थिरता और अराजकता के दौर से गुजरने के लिए विवश होगा।

19 अप्रैल 1992

तिरुपति -- पाप-प्रतिनिधित्व और नेतृत्व

अपेक्षा थी कि नेहरू वंश की प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के शिकंजे से मुक्त होने के पश्चात् कांग्रेस (इंदिरा) का चरित्र बदलेगा। संघर्ष और तनाव की राजनीति का अन्त और सहयोग एवं सहमति की राजनीति का आरम्भ होगा। शव और वोट गिनने की राजनीति मुद्दों और समस्याओं की ओर मुड़ेगी। मतभेद और शत्रुता का अन्तर स्पष्ट होगा। जातिप्रथा और जातिवादी राजनीति से मुक्त, भारतीय जनतंत्र में जनाधिकार सुरक्षित होंगे, राजनीति के अपराधीकरण और अपराधों के राजनीतिकरण की प्रक्रिया थमेगी। सम्प्रदाय, मजहब और धर्म सम्बन्धी विवेक जागृत होगा। सरकारें गिराने-हटाने का कांग्रेस का परम्परागत शत्रुतापूर्ण कार्य रुकेगा। संसद और विधानसभाओं को सड़क बनने से बचाया जाएगा। सकारात्मक विचार-विमर्श का सार्थक सिलसिला शुरू होगा। दल और नेता निरपेक्ष, देश और समाज सापेक्ष निर्णय होंगे। उसी के अनुरूप योजनाएं बनेंगी। विविधताओं से युक्त बहुआयामी भारत के विभिन्न राज्यों में विविध प्रकार के प्रयोगों को पूर्ण अवसर मिलेगा। कांग्रेस और देश को पर्यायवाची या समानार्थी घोषित करने वाले कांग्रेसी अपने दरबारी चरित्र और गुमाश्तापन का त्याग करके स्वयं को तो सुधारेंगे ही, कांग्रेस को भी सुधारेंगे और देश को भी।

गलत धारणा

इस प्रकार की अपेक्षाएं अकारण नहीं थीं। इनका सबल आधार था। गत एक सौ सात वर्षों में देश में जिस राजनीतिक धारा, जिस राजनीतिक चरित्र, जिस राजनीतिक मर्यादा, राजनीतिक आचरण और आकांक्षा का निर्माण हुआ है, उसे ही भारतीय राजनीति की मुख्यधारा माना गया। क्योंकि इस धारा का निर्माण कांग्रेस ने किया है, इसलिए सहज ही यह मान लिया गया कि 'कांग्रेस सुधरेगी तो देश सुधरेगा।' कांग्रेस संगठित और सबल रहेगी तो देश भी संगठित एवं सबल रहेगा। कांग्रेस का नेतृत्व ही देश का नेतृत्व है।

यह बात और है कि कांग्रेस का प्राणतंतु भारत का नहीं, पराया और पश्चिम का है। यह सब जानते हुए भी लोग चुप थे कि कांग्रेस भारत की चेतना, भारत के चिन्तन, चरित्र, अर्थात् चिति अर्थात् उसके हजारों वर्ष के परम्परागत वैशिष्ट्य को हाशिए पर रखकर भारत को सोवियत रूस, यूरोप और अमरीका की चासनी में एक ऐसा मुरब्बा बनाना चाहती है या बना रही है कि जिसकी कोई विशिष्ट पहचान न हो

और जो कभी समाजवादी, कभी पूंजीवादी, कभी मध्यमार्गी और कभी पिकासो की आधुनिक कला की तरह दिखे, कि किसी की समझ में ही न आए कि यह क्या है, कि जिसकी जैसी समझ हो, वह वैसा समझ ले या उसे बनाने वाला उसके विषय में जो कहे और बताए वह उसे वैसा ही स्वीकार कर ले।

देशवासियों ने तिलक और गांधी जी आदि नेताओं पर विश्वास करके कांग्रेस की राजनीतिक संस्कृति को राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा मन से माना था। आत्म प्रवंचना करने का खतरा मोल लेकर इस तथाकथित तथ्य को स्वीकार किया था। भारत के लोगों ने भूख, बीमारी, गरीबी, बेरोजगारी, अपराध, आतंक और अलगाव, का संत्राश दिन-प्रतिदिन बढ़ते देखा किन्तु कांग्रेस का साथ नहीं छोड़ा। देश की भूमि और भावना को कांग्रेस ने बांटा, तोड़ा और भ्रष्ट किया। किन्तु उसकी एकमेवता और अपरिहार्यता के प्रति यहां की जनता ने अपना मोह भंग नहीं होने दिया। भारत के जनतंत्र को जाति, सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्र और मजहब का मजबूर कैदी बनाया जाता देखा, फिर भी देशवासी आशान्वित रहे।

आशा टूटी

इस आशा, अपेक्षा, विश्वास और अकूत समर्थन के बाद भी अस्मिता, भारतीय मन की आस्था, राष्ट्रीय प्रेरणा, परम्परागत वैशिष्ट्य और विरासत से जुड़ी राजनीति और लोकांक्षा के अनुरूप लोकतांत्रिक व्यवस्था का निर्माण नहीं हो पाया। भारत की आत्मा, आत्म-विश्वास, आत्मनिर्भरता और आत्मबल को किसी 'इस' या 'उस' देश की व्यवस्था का मोहताज बनना पड़ा। यही कारण है कि सोवियत रूस का सत्तर साला कम्युनिस्ट प्रयोग विफल हुआ तो शेष संसार के लोगों की तरह हम भारत के लोग भी वैचारिक शून्यता का अनुभव करने लगे। किसी विचार को दी गई संज्ञा की असफलता को विचारों की विफलता मान कर हम भी अपना सिर धुनने लगे कि अब क्या होगा? रूसियों से अधिक हम रोए और चीखे कि सोवियत संघ की धुरी समाप्त होने के बाद विश्व का संतुलन बिगड़ गया। अब दुनिया केवल एक खम्भे पर खड़ी है। वह खम्भा टूटते ही प्रलय हो जाएगी।

यह सोच और वैचारिक शून्यता का यह संताप हम भारत के लोगों पर कांग्रेस और उससे जुड़े तथा उसमें से निकल कर बने वामपंथी बौद्धिकों, गिरोहबंद लेखकों, पत्रकारों और संचार माध्यमों द्वारा थोपा गया। कांग्रेस यदि भारत की विचार-भूमि की उपज होती, भारत के कम्युनिस्ट यदि भारत की प्रकृति और प्रवृत्ति के साथ वैचारिक बलात्कार न करने और समस्त विश्व को केवल दो प्रतिक्रियावादी वादों (पूंजीवाद और समाजवाद) में बाटने की भूल न की गई होती और हम भारत के लोगों ने विश्व को वादों के अस्वाभाविक और शत्रुतापूर्ण घरौंदे में बांटा जाना स्वीकार न किया होता तो विश्व की वैचारिक कंगाली की काली छाया हम पर न पड़ी होती।

भारत विविध विचारों की प्रयोगशाला है। परस्पर विरोधी विचारों का सह-अस्तित्व इसकी विवशता नहीं, सहज प्रकृति है। किसी एक विचार के आसपास या उसके आधार पर बनी व्यवस्था के विफल हो जाने पर वैचारिक शून्यता की विवशता का अनुभव भारत ने कभी नहीं किया। भारत समस्त विश्व का आह्वान करता आया है कि 'हमारे पास आओ, हमारे उद्यान में अपनी-अपनी बोली बोलो, यहां अपनी-अपनी सुगन्ध बिखेरो, जो सबके हित में हो, वह करो, सर्वे सुखिनः संतु सर्वे संतु निरामयाः की साधना साथ-साथ करो।'

किन्तु कांग्रेस ने भारत की वाणी नहीं सुनी। यदि उसमें भारत, भारत की वाणी सुनने की क्षमता नहीं थी तो, यदि वह गांधी जी की ही सुन लेती तो देश को दुर्दिन न देखने पड़ते। यदि कांग्रेस ने रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द और तिलक आदि की तपः ज्योति से प्रकाश प्राप्त करने का अवसर गवां देने की नादानी की थी तो, यदि उसने भारत के गांवों में रह रहे अनपढ़ और निरक्षर किसानों एवं आम आदमी के परम्परागत अनुभवों से ही कुछ सीख लिया होता तो भारत अब तक आधुनिक विश्व का विकल्प बन गया होता।

हम पीछे मुड़कर देखें और वर्त्तमान का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि कांग्रेस ने देशवासियों को देश से नहीं, स्वार्थ से जोड़ा। समाज को देश नहीं, सत्ता से जोड़ा। देशवासियों को स्वदेश का देशभक्त नागरिक, भारतीय गणतन्त्र की चैतन्य आत्मा, 'जन' न बनाकर केवल मतदाता बनाया। मतदाताओं को लोकतांत्रिक मर्म से न जोड़कर उनमें जाति और सम्प्रदाय का अहसास एवं अहंकार जागृत किया। लोकतंत्र को केवल चुनाव बनाकर रख दिया। तंत्र के सुचालन में लोक की भूमिका को मतदान केन्द्र से आगे बढ़ने ही नहीं दिया गया। इंग्लैण्ड की संसदीय प्रणाली को 'मां' मानकर अपनी गणतंत्रीय, गणराज्यीय और नैतिक धुरी पर टिकी जनाधारित राज्य व्यवस्था अर्थात् रामराज्य की परिकल्पना का शोध एवं प्रयोग करने की आवश्यकता ही नहीं समझी गई। इंग्लैंड सबकी, विशेष कर यूरोप और अमरीका की मां हो सकता है, किन्तु उसे भारत की मां होने का सौभाग्य प्रदान करना आत्मनाश को न्योता देना था। अपनी पद्धतियों और प्रयोगों को आधुनिक एवं कालसापेक्ष बनाने का प्रयोग और प्रयास न करके हमने पहले से बना बनाया एक ऐसा नमूना अपनाया जो किसी और की परिस्थिति, प्रकृति, प्रवृत्ति, परम्परा और आवश्यकता के अनुरूप बनाया गया था और हमने उसका मर्म नहीं केवल चर्म लिया।

इसलिए उन सभी लोगों का निराश होना अवश्यम्भावी और अपरिहार्य है जो कांग्रेस के सुधरने या कांग्रेस को सुधार कर देश को सुधारने और समस्याओं का समाधान करने की आशा एवं अपेक्षा रखते हैं। कांग्रेस ने जो व्यवस्था बनाई है, उसने जिस राजनीतिक सोच को जन्म दिया है, वहां अपराध और भ्रष्टाचार, विश्वासघात और लूट, आतंक और अलगाव, भय और संताप, अभाव और असुरक्षा, परजीविता

और कंगाली, भूख और बीमारी, बन्दूक और बारूद का जंगल ही उगेगा। उसके पास वह जमीन ही नहीं, जिसमें सदभाव, सहयोग, सहमति, सह-अस्तित्व और सह-चिन्तन का उद्यान उगाया जा सके

केवल रोटी और रोजगार की तलाश जिस देश का जीवन मंत्र बना दिया गया हो, वहां देशभक्त और देशभक्ति का अज्ञातवासी हो जाना अपरिहार्य है। प्राथमिकताएं बदलती हैं तो परिणाम भी बदलते हैं।

प्राथमिकता का अंतर परिणामों को आमूलचूल परिवर्तित करता है। एक उदाहरण है भक्त रैदास का। देश और दुनिया में जूता बनाने वाले मोचियों में भगवत भक्त बहुत हैं। किन्तु केवल रैदास की ही भक्ति क्यों सफल हुई? केवल इसलिए कि रैदास भजन करते-करते जूता बनाते थे और दूसरे मोची जूता बनाते-बनाते भजन करते है। जूता दोनों बनाते हैं। भजन करते-करते जूता बनाने और जूता बनाते-बनाते भजन करने के परिणाम में जो अंतर हुआ और होता है, ठीक उसी प्रकार का अंतर देशभक्ति करते-करते, देश की सोचते-सोचते, रोजी-रोटी तलाशने तथा उसे प्राप्त करने और रोजी-रोटी तलाशते एवं प्राप्त करने का प्रयास करते-करते देशभक्ति करने में है। अर्थात् रोजी-रोटी मिलती हो तो हम देशभक्त हैं, तो हम देश माता की सन्तान हैं—और न मिलती हो तो आग लगा देंगे देश को, काट और बांट देंगे देश माता को।

'स्व' के बिना अभ्युदय नहीं

नरसिंह राव जिस राजनीतिक जमीन की उपज हैं, उस जमीन में रह रहे कबीले के रिवाज को बदलना उनके बूते की बात नहीं है। वे अब तक के उन कांग्रेसियों से भिन्न नहीं हैं, जिनके कारण देश दुर्दशाग्रस्त हुआ है। नेहरू जी और उनके बाद इन्दिरा और राजीव ने देश को सोवियत रूस के नमूने का भारत बनाना चाहा था तो देश भिखारी और कंगाल बन गया। सोवियत रूस बिखरा और कम्युनिस्ट व्यवस्था असफल हो गई तो नरसिंह राव ने उसे अमरीकी और पश्चिमी पूंजीवाद के भेड़ियों के सामने फेंक दिया है। नेहरू, इन्दिरा और राजीव की राजनीति का सिलसिला नरसिंह राव के नेतृत्व में भी अटूट है।

तब कांग्रेस केवल कर्ज लेती थी, नरसिंह राव आर्थिक गुलामी स्वीकार करने के लिए सिद्ध हैं। तब नेहरू, इन्दिरा और राजीव की ताकत कांग्रेस की ताकत थी अब नरसिंह राव की कमजोरी, उसकी शक्ति है। यदि कमजोरी का शक्ति और संतुलन तत्व बन जाने का दुष्परिणाम भोगते रहना है तो नरसिंह राव और उनकी इन्दिरा कांग्रेस से अपेक्षा अवश्य की जाय और यदि प्राथमिकताएं बदलनी हैं, शक्ति संतुलन सशक्त और सार्थक हाथों में ही रखने का प्रकृति विहित कार्य करना है तो विचार और व्यवस्था के स्तर पर किसी उस विकल्प को अपनाना आवश्यक होगा जिसकी जड़ें भारत की अस्मिता भूमि में गहराई तक गई हों और जो भारत की सनातन चिति, चेतना और परंपरागत-सर्वे सुखिनः संतु के शिव संकल्प के साथ संबद्ध हो।

तिरुपति में नरसिंह राव के नेतृत्व में बनाया गया राजनीतिक और आर्थिक मार्ग ही इस दिशा में नहीं जाता। इस समय जो कांग्रेसेतर राजनीतिक प्रयोग हो रहे हैं वे सीमित और अलग-अलग प्रक्रियाएं मात्र हैं। कांग्रेसी रीति-नीति व्यवस्था निर्वाह करना उनकी विवशता है। अखिल भारतीयता की समग्रता के बिना किसी भिन्न विचार एवं वैकल्पिक व्यवस्था का प्रयोग संभव ही नहीं है। ऽतएव, जब भी होगा यह कार्य अखिल भारतीय स्तर पर ही होगा। कांग्रेस से भिन्न राजनीतिक संस्कृति और किसी वैकल्पिक व्यवस्था का निर्माण राज्य स्तर पर कर पाना कठिन ही नहीं असंभव भी है। इसके लिए कांग्रेस ही नहीं, कांग्रेस संस्कृति को भी पूर्णतः हटाना और मिटाना होगा।

दिसंबर, 1985 में व्योमेशचन्द्र चटर्जी की अध्यक्षता में बम्बई में संपन्न कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन और 15-16-17 अप्रैल, 1992 को नरसिंह राव की अध्यक्षता में तिरुपति में संपन्न कांग्रेस (इंदिरा) के 79वें महाविधवेशन के बीच कालान्तर तो है, किन्तु उसकी राजनीतिक कुटिलता, शब्दछल, अपनी असफलताओं का दोषी ढूंढने और उसे बलि का बकरा बनाकर उसी के खून से अपना राजतिलक करते रहने की उसकी राजनीतिक परंपरा यथावत् और अक्षत है।

नरसिंह राव की सहमति से बने और उन्हीं की अध्यक्षता में पारित प्रस्ताव इस स्थापना की पुष्टि के लिए पर्याप्त है। स्वयं को पवित्र गंगाजल मानकर शेष दलों को राजनीतिक प्रदूषण उत्पन्न करने वाली गंदगी घोषित करके नरसिंह राव ने कांग्रेस (इंदिरा) का ही नहीं, अपना भी राजनीतिक चरित्र एक बार पुनः उजागर कर दिया है।

राजनीतिक मतभेद को राजनीतिक शत्रुता मानने की नीति और आचरण को बल प्रदान किया है, उसे पुनः मान्यता दी है। जिस नेहरू सांचे में ढली देश की पैंतालीस वर्षीय आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था ने देश को बर्बादी के बियाबान में डाल दिया है, उसकी असफलता का सत्य स्वीकार न करके देशवासियों को डराया गया है कि देश अत्यन्त नाजुक दौर में है। अब केवल दो ही विकल्प हैं—निर्माण या विनाश। किन्तु वे, उनकी पार्टी , सरकार और समर्थक इस विनाश का दायित्व स्वीकार करने और इससे जुड़े प्रश्नों का उत्तर देने से कतरा जाते है कि देश को विनाश के गड्ढे में धकेलने का अपराध किसने किया ?

नरसिंह राव में यदि अपने दल, अपने नेता और अपनी राजनीति में से पैदा हुए दुष्परिणामों का सत्य स्वीकार करने की सदाशयता, समय और क्षमता होती तो वे भाजपा को सांप्रदायिक और दूसरे विरोधी दलों को जातिवादी आदि ठहराकर स्वयं और अपने दल को भी पापमुक्त न मान लेते। यह इतिहास और अनुभव सत्य है कि देश की वर्त्तमान दुर्दशा कांग्रेस के जिन पापों का परिणाम है नरसिंह राव उन्हीं पापों का न केवल प्रतिनिधित्व, अपतु नेतृत्व भी कर रहे हैं और इसकी विडंबना यह है कि इन्हें यह करते हुए जरा-सी शर्म भी नहीं आती।

26 अप्रैल 1992

सच को मारने के महासमर

मेरे एक विद्वान और बुद्धिजीवी मित्र हैं। वे बहुत ही वार्त्ता-लोलुप हैं। बात और बहस करना सीखना हो, तो कोई उनसे सीखे। वे विविध विषयों पर गंभीर और गहरी बहस करते हैं। विचारों से प्रगतिशील हैं, देखने में 18 वीं शताब्दी के प्रतिनिधि जैसे लगते हैं। एक दिन हिन्दु समाज पर बरस पड़े—"कहां है हिन्दू समाज ? किसे कहें हिन्दू समाज ? अमूर्त्त को सगुण मान लेने का दुराग्रह छोड़ना होगा, नहीं तो एक दिन देश बिखर जाएगा।"

मैंने पूछा — "किसके बिखर जाने से देश बिखरेगा ?"

वे शायद अनवधानता में स्वाभाविक रूप में बोले थे—"हिन्दू समाज के।"

हिन्दू समाज की अदृश्य शक्ति

मैंने कहा—"क्या हिन्दू समाज के होने के लिए मात्र इतना प्रमाण पर्याप्त नहीं है कि वह इस देश की मिट्टी की गंध के रूप में रचा-बसा एक ऐसा भाव जगत है, जिसके बिखर जाने से देश के बंट जाने और राष्ट्र के मिट जाने का खतरा पैदा हो जाता है ?"

वे चुप तो हो गए, किन्तु उनका समाधान नहीं हुआ। मैंने पूछा—आपने कभी नदी, तालाब या सागर में स्नान किया है ? वे बोले हां, अनेक बार नदी में स्नान किया है ? इस पर मैंने प्रश्न किया—स्नान करते समय डुबकियां भी लगाई होंगी ? उत्तर मिला—जी हां, एक नहीं अनेक डुबकियां, अनेक बार लगाई हैं। मैंने जानना चाहा कि डुबकी लगाते समय क्या उन्होंने किसी भार का अनुभव किया ? वे बोले—बिल्कुल नहीं। लेकिन यह तो आप मानेंगे कि जल में भार होता है ? उनका उत्तर था—जी हां, होता है, और इसे निर्विवाद रूप से सभी स्वीकार भी करते है। मैंने पुनः पूछा—तो फिर स्नान करते समय आपके ऊपर कई टन जल का भार अवश्य रहा होगा। वे पहले सोच में पड़ गए, फिर बोले—हां, रहा तो होगा, किन्तु मैंने उस जल राशि के भार का अनुभव नहीं किया ?

मैंने कहा—सरोवर में जल है, जल का भार भी है, किन्तु डुबकी लगाने वाला उसका अनुभव नहीं करता और डुबकी लगाते समय वस्तुतः इस सत्य का भी स्मरण नहीं रहता कि वह किसी सरोवर में डुबकी लगा रहा है। ठीक यही स्थिति हिन्दू समाज की भी है। वह है, यह सच है; किन्तु वह प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता, यह भी सच

है। हिन्दु समाज की परिभाषा तो है, किन्तु हिन्दू समाज का मजहबी स्थूल स्वरूप नहीं है। जिस प्रकार नदी में स्नान करते समय टनों जल का भार नदी का जल स्वयं सम्हाले रहता है, ठीक उसी प्रकार हिन्दू समाज के स्थूल स्वरूप का भार उसकी सामाजिकता भी स्वयं सम्हाल कर रखती है।

विषय का विश्लेषण सूक्ष्मता की ओर बढ़ने लगा तो मैंने पूछा कि आपने स्व० जैनेन्द्र कुमार जी की लिखी 'जंगल' कहानी पढ़ी है। उन्होंने कहा—नहीं, मैंने नहीं पढ़ी।

एक दृष्टांत – जंगल कथा और हिन्दू समाज

वे बुद्धिजीवी थे न। कहानी और कविता पढ़ने से उनका बुद्धि-संसार बिगड़ने लगता है।

मैंने कहा कि ठीक है। जैनेन्द्र जी की 'जंगल' कहानी मैं सुनाता हूं। आप धैर्य के साथ सुनिए, संभवतः हिन्दू समाज और भारत की एकता का रहस्य पा लें।

मैंने जैनेन्द्र जी की जंगल की कथा कही।

दो शिकारी किसी जंगल में शिकार करने गए, किन्तु हाथ कुछ भी न आया। थक कर वे एक बरगद के नीचे बैठ गए। बातचीत करने लगे। पहला बोला—"जंगल बीहड़ है, बहुत घना है, बहुत भयंकर है।" दूसरे ने समर्थन किया—"हां भाई, बहुत डरावना है।"

वे दोनों कुछ देर तक उस बरगद के नीचे बैठे रहे, थकान कम हुई तो उठकर चले गए। उनके जाते ही शीशम का पेड़ सहमा हुआ सा बोला—"बरगद बाबा, आपके पास जो दो पशु आए थे, वे कौन थे ?" बरगद ने उत्तर दिया—"भाई, मैं बचपन से ही उन्हें देखता आया हूं। उनको मनुष्य कहते हैं। इन बेचारों के पत्ते नहीं होते, बस तने से निकली दो शाखाएं हैं, और दूसरी दो शाखाओं के सहारे इधर-उधर खिसकते हैं।" शीशम ने पूछा, "क्या वे हमेशा इसी प्रकार बौने और सिकुड़े से रहते हैं ? कभी ऊंचा नहीं उठते ?" बरगद गम्भीर बुद्धिजीवी की तरह बोला—"कैसे उठ सकते हैं। उनकी जड़ें ही कहां हैं, वे हर समय इधर-उधर खिसकते रहते हैं तो फिर वे जमें तो कैसे जमें ? जो मूलहीन होता है वह ऊँचा नहीं उठता।"

अब बांस की बारी थी। उसने पूछा—"बरगद दादा ! आप इतने वर्षों से यहां रहते हैं, क्या आप बताएंगे कि जंगल क्या है ? क्या आपने कभी जंगल देखा है ? वे दोनों कह रहे थे कि जंगल बहुत डरावना है।" शीशम ने बांस का साथ दिया कि "हां, यह तो मैंने भी सुना था, तभी से सोच रहा हूं कि कहां है वह जंगल, जो डरावना है।" बरगद बोला—"मैं इतने वर्षों से यहां रह रहा हूं, लेकिन मैंने अभी तक जंगल को यहां आते-जाते नहीं देखा। मैंने बाघ, चीते देखे, शेर-हाथी देखे, भालू और भेड़िए देखे, लेकिन जंगल नाम का जानवर कभी नहीं देखा।" एक दूसरे वृक्ष ने कहा—"दादा!

ऐसा लगता है कि यह जानवर शेर और चीते से भी अधिक खूंखार होता है। नहीं तो वे दोनों जंगल से क्यों डरते ?"

बरगद ने चिन्तन की मुद्रा में अपनी राय दी, "जब आदमी जैसा बुद्धिमान प्राणी कहता है, तो जंगल जरूर होगा और जंगल नाम का यह जीव बहुत ही भयानक भी होगा। आदमी के पास एक टहनी जैसी कोई वस्तु होती है, जिससे वह शेर, चीते और हाथी को मार सकता है। मैंने मरा हुआ शेर तो देखा है, लेकिन मरा हुआ जंगल नहीं देखा। शायद उसके भय के कारण आदमी भाग जाते हैं।"

सभी पेड़ों में यह चर्चा और चिन्ता व्याप गई कि जंगल क्या होता है ? बरगद ने घास से पूछा, "तू तो हर जगह घूमती रहती है, क्या तूने कभी जंगल देखा है।" घास ने कहा—"दादा। मैंने जंगल को कभी नहीं देखा। मैं तो हवा के सामने झुकती हूं, हवा की बातें सुनती और उसी में मगन रहती हूं, किन्तु कभी जंगल का नाम तक नहीं सुना।"

उधर से मृगराज गुजरे तो बरगद ने उन्हें रोका। पूछा—"भाई शेर। आप तो सबके राजा हो, हमने सुना है कि कोई ऐसा भयंकर प्राणी होता है, जिसका नाम जंगल है ? क्या आपने उसे देखा है ?'' शेर दहाड़ा और बोला—"यह जंगल कौन है, उसे मेरे सामने लाओ। मैं उसे ठीक करूंगा।'' निराश बरगद ने प्रश्न किया "तो आपने भी जंगल को नहीं देखा है ?" शेर ने कहा "यदि वह मेरे सामने आ जाए, तो मैं उसका काम तमाम कर दूंगा।"

शेर की दहाड़ से पक्षी आकाश में उड़ गए, वृक्ष सिहर उठे। बरगद ने कहा—"आप राजा हो। आपके डर से जंगल कहीं छिप गया होगा। शायद भूमिगत हो गया हो।"

शाम हो गई, कोई समाधान नहीं निकला—जंगल के होने या न होने का। वृक्षों के सम्मेलन में सोच-विचार चल ही रहा था कि सरसराता हुआ सांप आया। बरगद ने उससे जंगल के विषय में पूछा तो वह बोला—"जमीन के नीचे पाताल तक मैं घूम आया हूं, जंगल नाम का कोई प्राणी वहां नहीं था। वह कोई हवाई प्राणी हो सकता है।"

वृक्षों और झाड़-झंखाड़ों की चिन्ता बढ़ती गई। वे चर्चा करते रहे और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संभवतः जंगल का कोई अस्तित्व नहीं है। वह आदमी नामक प्राणी की कल्पना मात्र है।

बरगद ने अपना निर्णय सुनाया—"मित्रों ! जंगल की बात कर-करके हम उसे अपना दुश्मन नहीं बनाएंगे। वह भयंकर और डरावना है। क्या मालूम वह हमारे साथ, कैसा व्यवहार करे ? दो पांव वालों को आने दो, हम उनसे ही पूछेंगे। सच्चाई जाने बिना छोड़ेंगे नहीं।"

कुछ दिनों बाद वे दोनों शिकारी जंगल में पुनः आए। सभी पशु और वृक्ष उन्हें

घेर कर खड़े हो गए। अचकचा कर उन दोनों ने बंदूकें तान ली, परन्तु बरगद दादा ने कहा—"मारकाट से कुछ नहीं होगा। हम शांतिपूर्वक बात करना चाहते हैं। तुम हमें यह बताओ कि जंगल नाम का प्राणी कौन सा है और वह कहां रहता है ?"

दोनों शिकारी एक-दूसरे का मुंह देखने लगे, तो बरगद बोला—"उस दिन तुम मेरी छाया में बैठकर कह रहे थे न कि जंगल बीहड़ है, डरावना है, तो वह कहां है ?"

शिकारियों की जान में जान आई। उनमें से एक बोला—"तुम सब ही तो जंगल हो।"

बरगद गुस्से में बोला—"क्या खूब कहा आपने। आप हमें जंगल कह रहे हैं। मैं जंगल नहीं बरगद हूं।" बांस बोला—"मेरा रेशा-रेशा बताता है कि मैं जगल नहीं हूं बांस हूं। जंगल कहां से घुस पड़ा ?"

सभी वृक्षों और पशुओं ने अपना अलग-अलग अस्तित्व होने की बात तो स्वीकार की, किन्तु जंगल होना किसी ने नहीं माना। यही स्थिति हिन्दू समाज के अस्तित्व और भारत देश की एकता की भी है।

मेरे वे बुद्धिजीवी मित्र कुछ सहमत होते से लगे तो एक और बात निकली कि "क्या हिन्दू समाज उस 'किराने की दुकान' की तरह नहीं है, जिसमें किराना के अतिरिक्त सब कुछ मिलता है। दुकान किराने के नाम से जानी जाती है, किन्तु किराना नाम की कोई वस्तु नहीं है, न मांगने से मिलती ही है। जंगल द्वारा जंगल की तलाश करने जैसी बात है, हिन्दू समाज के अस्तित्व की खोज।

समग्रता ही मूल है

अनु बहन ने जंगल की कहानी का जो निष्कर्ष निकाला है वह कुछ इस प्रकार है कि 'हमारी दशा भी जंगल के उन अबोध वृक्षों सी है। हम सम्प्रदायों और जातियों और जातियों के अस्तित्व को लेकर उलझ पड़ते हैं और हिन्दू समाज के होने या न होने पर चर्चा करते हैं। हम पंजाब को लेकर, महाराष्ट्र को लेकर, इस राष्ट्र के छोटे-बड़े सभी प्रदेशों को लेकर जंगल के वृक्षों की तरह उलझन में पड़े रहते हैं, उलझ पड़ते हैं और उस विशाल भारत को, जिसके हम अंग और अंश हैं, भूल जाते हैं। काश ! कोई हमारी आंख में अंगुली देकर हमें हमारी मातृभूमि और हिन्दू समाज के समग्र व्यक्तित्व की अनुभूमि करा सकता ? हमें अपने छोटे-छोटे घरौंदों से निकालकर भारत माता के विशाल भवन में प्रविष्ट करा सकता। जंगल उन असंख्य वृक्षों का संघभूत स्वरूप है, जिसका व्यक्तित्व विशाल बनकर मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणी को भी सहमा देता है, इसी प्रकार जब देश के छोटे-बड़े अंग एकताबद्ध होकर, अपनी छोटी-छोटी और अलग-अलग पहचान को बनाए रखते हुए अपनी बड़ी और शाश्वत पहचान के साथ जुड़कर संसार के सामने एक इकाई बनकर खड़े होंगे तो ही हिन्दू समाज और भारत देश भी एक दुर्घर्ष और अजेय राष्ट्र के रूप में संसार में

विशिष्ट स्थान बना पाएंगे।

यही है हिन्दू समाज की पहचान, उसकी रचना, मानसिकता और उसके अस्तित्व की अन्तर्कथा। यही भारत देश और राष्ट्र की अस्तित्व और एकता का बीजमंत्र भी है। यही है भारत राष्ट्र और हिन्दू समाज का सत्य और सत्य किसी के कहने, सुनने, मानने या न मानने का मोहताज नहीं होता। यदि ऐसा होता तो सत्य सचमुच अब तक मर गया होता या सच नाम की कोई कल्पना अथवा अनुभूति होती ही नहीं। किन्तु जैसे अनादि काल से सत्य की जीवन-यात्रा चली आ रही है, सच को मारने के महासमर सच के साम्राज्य की स्थापना का माध्यम बनते आए हैं, ठीक वही स्थिति हिन्दू समाज और भारत देश की भी है।

हिन्दू समाज को मिटाने और मारने के प्रयासों का इतिहास हजारों वर्षों की निरन्तरता लिए हुए है, किन्तु हिन्दू समाज मरा नहीं, इसे मारा नहीं जा सका और अतीत से भी अधिक बलशाली होकर इनकी अस्मिता और अस्तित्व आलोकित होती आई है। उपेक्षा, उदासीनता, निन्दा, आक्रमण, दमन और गुलामी, पतन और पराजयों के पश्चात् भी भारत और उसका हिन्दू समाज जीवित भी है और विकासमान भी। वह निराकार भी है और साकार भी। नदी जल के भार की तरह भी है और जलराशि भी है।

पता नहीं, मेरे उस मित्र ने हिन्दू समाज और भारत राष्ट्र की एकता के विषय में अपनी धारणा अन्तिम समय बदली कि नहीं, किन्तु उस दिन सहमत होते से लगे थे। यदि वे अपनी निराधार धारणा बदल लेंगे, तो निश्चित ही उन्हें हिन्दू समाज और भारत राष्ट्रका सूत्रबद्ध, इतिहाससिद्ध अस्तित्व एवं उसकी अस्मिता का साक्षात्कार होगा। यह केवल उन 'प्रगतिवादी' बुद्धिजीवी मित्र पर ही नहीं, उन दूसरे लोगों के लिए भी सच है, सच को अस्वीकार करते रहना ही जिनकी बुद्धिजीविता का मूल और कर्म है।

3 मई 1992

विकृत सेकुलरवाद की दलदल में धंसा देश

प्रधानमंत्री ने साम्प्रदायिकता और धर्म (सम्प्रदाय) निरपेक्षता पर राष्ट्रीय बहस का आह्वान किया है। यह आह्वान नया नहीं है। बत्तीस वर्ष पूर्व सन् 1953 में, भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष और संसद में संयुक्त विपक्ष के नेता डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने लोकसभा में नेहरू जी को चुनौती दी थी कि यदि साहस हो तो वे साम्प्रदायिकता और धर्म-निरपेक्षता पर राष्ट्रीय सार्वजनिक बहस कर लें।

डा० मुखर्जी की इस चुनौती को स्वीकार किए बिना नेहरू जी सदंन से उठकर चले गये थे। क्यों ? यह प्रश्न भी अभी तक अनुत्तरित है। केवल तभी से नहीं इसके पूर्व से ही सम्प्रदाय, साम्प्रदायिकता, धर्म, धर्म-निरपेक्षता और सम्प्रदाय या पंथ निरपेक्षता आदि शब्दों की सांसत की जा रही है। इस शब्द का अप्रासंगिक, संदर्भ और अर्थहीन उपयोग और दुरुपयोग लगातार चलता चला आ रहा है। अतएव यदि किसी को यह आशा हो कि नरसिंह राव, उनके इंदिरा कांग्रेसी, कम्युनिस्ट और परजीवी बुद्धिराक्षस इस विषय पर सार्थक शास्त्रार्थ का शुभारम्भ करेंगे तो उन्हें निराश ही होना पड़ेगा।

इनकी सेकुलरिटी अनीश्वरवादी या आध्यात्मिक दर्शन, उदारवादी सामाजिक संवेग या अन्तःप्रेरणा नहीं, केवल मुसलमानों और ईसाइयों का वोट प्राप्त करने की राजनीति है। नेहरूवादियों, कम्युनिस्टों, उनसे प्रेरित राजनीतिज्ञों, पश्चिमी स्कूल में पढ़े और पले बुद्धिराक्षसों को हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं एकरसता रास नहीं आती। 'बांटो और राज करो' का मुहावरा अंग्रेजों का ही आविष्कार नहीं है। यह उन सभी के लिए एक अपरिहार्य मार्ग है जो अपने दल और स्वार्थ को देश से ऊपर मानते हैं और यह चाहते हैं कि उन्हीं का दल सदैव सत्तासीन रहे, उन्हीं के नेता के हाथ में सत्ता के सूत्र सदैव बने रहें। यही कारण है कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी सत्ता राजनीति के खेल के इस नियम में कोई परिवर्तन नहीं आया। अंग्रेजों क भूरे उत्तराधिकारी आज भी इसी नियम के अनुसार अपना राजनीतिक खेल खेल रहे हैं। देशवासियों को विभिन्न खेमों और सम्प्रदायों में बांट कर रखने और इस विभाजन को बढ़ाते रहने में उनका निहित स्वार्थ है।

इस स्थापना को पुष्ट करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। 'अनुभव' से बड़ा विश्वसनीय कोई दूसरा प्रमाण नहीं होता। इसकी पुष्टि के लिए गत

45 वर्षों का अनुभव पर्याप्त है। फिर भी एक-दो उदाहरण देता हूं।

तीन घटनाएं

स्वर्गीय राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के निकटतम सहयोगी और सचिव श्री फजल अहमद रहमानी ने अपनी पुस्तक **'फखरुद्दीन अली अहमद के साथ मेरे ग्यारह वर्ष'** में एक रोचक प्रसंग का उल्लेख किया है। वह लिखते हैं कि 1975 के आपात्काल में जमाते इस्लामी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों को एक ही जेल में साथ-साथ कैद कर दिया गया था। जमाते इस्लामी के सदस्य संघ के 'स्वयंसेवकों के साथ घुल-मिल कर रहने लगे तो उन्होंने यह अनुभव किया कि कांग्रेस और वामपंथियों के संघ विषयक प्रचार और वास्तविकता में धरती-आकाश का अंतर है। उन्हें यह बताया गया था कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग दानव हैं, वे मुसलमानों को देखते ही उन्हें खा जाते हैं।' उनका यह भ्रम टूटा। संघ, हिन्दुओं और हिन्दुत्व के विषय में उनकी पूर्व धारणाएं बदलने लगीं। यह समाचार जेल के बाहर गया तो राष्ट्रवादी नेता और कठमुल्ला मौलवी आतंकित हो उठे। जमायतुल उलेमा-ए-हिन्द के मौलवियों के एक प्रतिनिमण्डल ने राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से मिलकर दोनों समुदायों के बीच बढ़ती घनिष्ठता पर चिन्ता व्यक्त की। मौलवियों की यह चिन्ता अपशकुनी और हक्का-बक्का करने वाली थी तो भी राष्ट्रपति जी ने प्रतिनिधिमण्डल को यह आश्वासन दिया कि वे इस घातक विकासक्रम के विषय में इन्दिरा जी से बात करेंगे और इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था करेंगे कि इस देश के मुसलमान-मुसलमान ही बने रहें।

एक और प्रसंग है सन् 1978 का। अमदाबाद (कर्णावती) और अलीगढ़ के मुसलमानों के दो प्रतिनिधिमण्डलों ने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई से अलग-अलग मिल कर दंगों में मारे गए मुसलमानों और मुस्लिम समुदाय के मन में व्याप्त असुरक्षा एवं भय के विषय में ज्ञापन दिया। मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच बढ़ती साम्प्रदायिक शत्रुता और अविश्वास की ओर ध्यान दिलाते हुए प्रतिनिधिमण्डल के सदस्यों ने कहा, कि अब ऐसा लगता है कि भारत में मुसलमानों के लिए कोई स्थान नहीं है, मुसलमानों की पहचान के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया है।

मोरारजी भाई पहले तो चुप रहे, फिर बोले—'यदि आप लोगों का यही अनुभव है कि इस देश में मुसलमानों के लिए कोई स्थान नहीं है तो आप अपने लिए किसी सुरक्षित स्थान की तलाश करने के लिए स्वतंत्र हैं। आप बताएं कि इस सम्बंध में आपकी क्या सहायता कर सकता हूं। जहां तक हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच अविश्वास, घृणा और बढ़ती शत्रुता की समस्या है तो इसका समाधान बहुत ही आसान है। मुसलमानों को चाहिए कि वे हिन्दुओं का विश्वास प्राप्त करें। मुसलमानों का विश्वास और प्रेम प्राप्त करने के लिए हिन्दुओं ने भारत माता का एक हिस्सा

काट कर सौंप दिया, किन्तु भारत में रह गए शेष मुसलमानों ने इसका कोई ऐसा प्रत्यक्ष प्रत्यत्तर नहीं दिया जिससे कि यहां के हिन्दुओं के मन में यह अहसास होता कि जो मुसलमान पाकिस्तान न जाकर भारत में रह गए हैं, वे उनके भाई हैं। देश-विभाजन के बाद होना यह चाहिए था कि गायों की हत्या करके हिन्दुओं का दिल दुखाने और मन्दिरों को तोड़ कर उनको अपमानित करने का सिलसिला रुक जाता। मन्दिर का घंटा बजने और मस्जिद की अजान साथ-साथ होने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होती। आज भी हिन्दुओं की शोभायात्रा मस्जिदों के सामने से नहीं जा सकती, किन्तु मंदिरों के सामने से ताजियों का जुलूस शान से गुजरता है। ऐसा ही आचरण आपकी ओर से भी क्यों नहीं होता ? हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना, स्थायी भाईचारे और आपसी विश्वास की प्राप्ति के लिए पहल आप लोगों को करनी चाहिए। मैं उपाय बताता हूँ। प्रथम यह है कि मुसलमान गोहत्या बन्द करके गोमांस खाना बन्द कर दें और दूसरा, अयोध्या की राम जन्मभूमि, काशी का विश्वनाथ मन्दिर और मथुरा की कृष्ण जन्मभूमि अपनी पहल पर एक भव्य समारोह करके आप लोग हिन्दुओं को सौंप दें। इन तीन मन्दिरों के एवज में मैं तीन सौ मस्जिदें बनवा दूंगा।

मुस्लिमों का यह प्रतिनिधिमण्डल मोरारजी को गालियां देता हुआ बाहर निकला तो पत्रकारों ने पूछा, 'क्या हुआ ?' उत्तर मिला—'मोरारजी काफिर ही नहीं, मुसलमानों का दुश्मन भी है। अगले चुनाव में हम जनता पार्टी को मजा चखा देंगे।'

तीसरी घटना है 1989 की। लोकसभा चुनाव के पूर्व विपक्षी दलों के बीच तालमेल करने का प्रयास चल रहा था। विश्वनाथ प्रताप का जनता दल, कम्युनिस्ट तथा राष्ट्रीय मोर्चे के दूसरे घटक वोट का गणित बैठा रहे थे। भाजपा को अलग-थलग रखा जा रहा था कि उसको प्रत्यक्ष रूप से साथ लेंगे तो मुसलमान वोट नहीं देंगे। विश्वनाथ प्रताप से इस सम्बंध में पूछा गया तो बोले—'हिन्दू' हिन्दू होने के नाते वोट नहीं देता, हिन्दू नाम का कोई भी थोक वोट नहीं है। मुसलमानों का थोक वोट है। मुसलमान, मुसलमान के नाते वोट देता हे। चुनाव जीतने के लिए यह जरूरी है कि कुछ प्रतिशत आधार वोट सुरक्षित हों।

फखरुद्दीन अली अहमद, मोरारजी देसाई और विश्वनाथ प्रताप सिंह के साथ जुड़े इन तीनों प्रसंगों का विश्लेषण क्या उसी निहित स्वार्थ की ओर संकेत नहीं करता जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है ? प्रश्न यह है कि इस देश का मुसलमान यहां की मुख्य राष्ट्रीय धारा का जलकण क्यों नहीं बनता ? प्रश्न यह भी है कि उसके हिन्दुओं के समीप आने और बंधुभाव में बंधने की किसी भी प्रक्रिया या संकेत से मुल्ला-मौलवी, मुस्लिम नेता और तथाकथित सेकुलरवादी आतंकित क्यों हो उठते हैं ? ये प्रश्न और इन प्रश्नों के उत्तर में ही सेकुलरिटी अर्थात् कथित धर्म निरपेक्षता का अर्थ-अनर्थ निहित है।

जिस सोच और आचरण के गर्भ से ये प्रश्न और बढ़े हैं, जिसके कारण भारत

का उपवन कंटीले कैक्टस का जंगल-सा दिखाई देता है उस सोच ने केवल पाकिस्तान को ही नहीं जन्मा है, उसने भारतमाता के समानान्तर उसकी सौत के रूप में असममाता, बंग माता, तेलुगू माता, तमिल माता, मलयाली माता, गुजराती माता, मराठी माता, पंजाबी माता, कश्मीरी आदि माताओं को भी गढ़ा है। उसी ने भारत को बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक, सवर्ण और अवर्ण, स्पृश्य और अस्पर्श्य तथा गरीबी को जाति और अगड़े-पिछड़े में विभाजित किया है। इसी सोच ने हम भारत के लोगों को अपने राष्ट्रीय अस्तित्व और अस्मिता को भूल जाने की जमीन तैयारी की है। इसी ने अपनी सेकुलरी कुदाल से भारत की भूमि को गोड़ा और उसमें अपने प्रति हीनता एवं अपराध बोध का बीज बोकर अलगाववाद का झाड़ झखोड़ उगाया। इसी सोच ने देश की संस्कृति को मजहब के पाखण्ड में लपेटकर मुस्लिम तुष्टीकरण को सेकुलरवाद कहा और उसी ने धीरे-धीरे अल्पसंख्यकवाद के रूप में स्थायित्व प्राप्त कर लिया।

दयानन्द, विवेकानन्द, गांधी और श्री अरविन्द आदि ने भारतीय संस्कृति की गहराई में उतर कर जिस राष्ट्रीय तथा सामाजिक एकता और एकात्मता का साक्षात्कार किया था, नेहरूवादियों ने उस एकात्मता को अपनी सेकुलरी तलवार से वोट की चौखट पर हलाल कर दिया।

हिन्दुओं को सेकुलरवाद का शत्रु ही नहीं घोषित किया गया बल्कि हिन्दुओं को गाली देने वालों को सेकुलर होने का प्रमाणपत्र प्रदान किया गया। देश की पच्चासी प्रतिशत आबादी की आस्था और विश्वास को बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता और आक्रमणकारियों के पक्षधरों, उनकी औलाद होने का गर्व करने वालों को राष्ट्रीय एकता का मेरुदण्ड बताया गया।

पं० नेहरू, कांग्रेसी संस्कृति, कम्युनिस्ट और 'प्रगतिशील' बुद्धिराक्षसी तर्क के खेत में उगी सेकुलरवाद की फसल आज का सर्वाधिक लाभप्रद राजनीति व्यवसाय है। इस धंधे ने सभी प्रकार के संदिग्ध धंधेबाजों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। राजनेता इसका उपयोग वोट प्राप्त करने के लिए करते हैं, साम्प्रदायिक बुद्धिजीवी अपनी प्रगतिशील छवि बनाने के लिए तो आक्रामक अल्पसंख्यक अर्थात् मुसलमानों के लिए उनके अभ्युदय का यह एकमेव आधार है।

उसी गलती का खतरा

गत पैंतालीस वर्षों से सेकुलरवाद का एकलयता के साथ किया जा रहा स्वरालाप अब अति जीर्ण-शीर्ण, अशिष्ट, दुष्टतापूर्ण और घिसा-पिटा तो लगता है किन्तु उसकी घातकता पूर्ववत् है। यह प्रलाप सुनते-सुनते राष्ट्रजन के कान पक गए हैं। इस विकृत सेकुलरवाद का परिणाम भोगते-भोगते भारत के लोगों को इस शब्द से घृणा होने लगी है। इसने मुसलमानों की राष्ट्रीयता और देशभक्ति को भी संदिग्ध बना दिया है। जिस सेकुलरवाद के कारण साम्प्रदायिक और मजहबी शत्रुता के कैंसर का कीटाणु देश को

खा रहा है, यदि नरसिंह राव इसी को आधार मानकर भारत को सर्व धर्म समादर के आसन पर प्रतिष्ठित करने के इच्छुक हैं तो वे अपना यह मुगालता त्याग दें और बताएं कि यहां का राष्ट्रीय समाज किसी भी मस्जिद और चर्च में जाने से किसी को भी नहीं रोकता और स्वयं भी वहां जाने में सुख और शांति का अनुभव करता किन्तु उसे ही बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता का पोषक बताकर वे कौन-सा सद्भाव अर्जित और निर्मित करना चाहते हैं। यहां के राष्ट्रीय अर्थात् बहुतसंख्यक अर्थात् हिन्दू समाज का साम्प्रदायिक होने का अर्थ क्या भारत राष्ट्र का साम्प्रदायिक हो जाना नहीं होगा ?

राजनीतिक व्यवसायवाद

राष्ट्रीय अस्मिता और सामाजिक समरसता को राजनीतिक व्यवसायवाद का शिकार बनाते रहने का धंधा बन्द किए बिना भारत अपने सनातन जीवन लक्ष्य की ओर न मुड़ेगा—न बढ़ेगा। उसके पांव जिस सेकुलरी दलदल में धंसे हुए हैं, वह दलदल नरसिंह राव के उन प्रेरणा पुरुषों की ही निर्मित है, जिनके उत्तरधिकारी के रूप में वे भारत के शासन का संचालन कर रहे हैं। भारतीय लोकतंत्र और जनजीवन को विकृत सेकुलरवाद की सूली पर उतार कर सद्भाव , बंधुत्व और विश्वास के आसन पर प्रतिष्ठित करना है तो इसके लिए केवल वोटोन्मुखी बहस काफी नहीं होगी। इसके लिए मन और मुंह का भेद मिटा कर वाणी और कर्म का संयोग बिठाना होगा।

साम्प्रदायिकता, साम्प्रदायिक सम्प्रदायवाद और राष्ट्रीय अस्मिता पर वोट राजनीति निरपेक्ष शास्त्रार्थ का भारत का प्रत्येक नागरिक स्वागत करेगा। किन्तु इस 'किन्तु' में निहित इन प्रश्नों के साथ ही इस शास्त्रार्थ का निर्णायक कौन होगा ? कौन निर्णय देगा कि इस शब्द का सही-सही अर्थ और अनर्थ क्या है ? क्या प्रधानमन्त्री और कांग्रेस का वचन आप्त होगा ? क्या कम्युनिस्ट जो कहते हैं वह सर्वमान्य होगा ? भारत के लोगों के भोगे और भुगते यथार्थ और संताप की मीमांसा का संदर्भ जिस सेकुलरवाद के साथ जुड़ा है, क्या इस बहस में उससे भिन्न किसी स्वरूप को उभरने दिया जाएगा ? और यदि वह शास्त्रार्थ भारत राष्ट्र और भारतीय संस्कृति के मूल सनातन स्वरूप की ओर मुड़ा तो क्या मजहबी राष्ट्रीयता और वोटवादी राजनीति के बंधक लोग इस शास्त्रार्थ को अंतिम परिणति तक पहुंचाने के प्रयास और प्रक्रिया के अंग बने रहेंगे ? क्या अनुभव और इतिहास के आधार पर बेबाक मन से अपनी भूल स्वीकार करने का नैतिक साहस इनमें है ? क्या फिर ये लोग केवल किसी बुखारी, किसी शहबुद्दीन, किसी सुलेमान की खुशामद और खुशी को सेकुलरवाद की सफलता की क्रसौटी मानना बन्द कर देंगे और समान आचरण का सिद्धान्त मान्य करके सभी को भारत का एकजन मानकर समान विधि-विधान का निर्माण करने की राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति करेंगे ? समानानतर राष्ट्रीय अस्मिताओं को जाने-अनजाने या विवशतावश प्रत्यक्ष या परोक्ष मान्यता प्रदान करते रहने की कुटिलताओं का त्याग कर

देंगे।

राष्ट्र का हिताहित किसी सम्प्रदाय विशेष के हित में निहित नहीं होता। जाति और सम्प्रदाय निरपेक्षता और सर्वजन क्या समानान्तर राष्ट्रीयहित की प्रथम शर्त है। हम भारत के लोगों के लिए सम्प्रदाय-पंथ या इस संदर्भ में प्रचलित धर्मनिपेक्षता कोई नई और पराई अवधारणा नहीं है। विभिन्न विचारों, चिन्तन धाराओं, पंथों और सम्प्रदायों के बीच सहज भाव से रहना हमारा सामान्य स्वभाव है। हिन्दू समाज की बहुकेन्द्रिकता (PLURALITY) इसकी साक्षी है। सम्प्रदाय और पंथ निरपेक्षता का अभ्यास वे करें और उन्हें कराया जाए जो लोग और जिनका जीवन किसी एक केन्द्र में बंधा हुआ है और दूसरे 'केन्द्र' को अपना शत्रु मानने का जिनका मजहबी स्वभाव ही नहीं साम्प्रदायिक रिवाज भी है। इसके लिए राष्ट्रीय अस्मिता का असंदिग्ध बोध ही नहीं प्रतिबद्धता की भी आवश्यकता है और यही वह बिन्दु है जहां से देश को गलत दिशा में मोड़ दिया जाता है।

10 मई, 1992

भारत का वर्तमान चुनौती और चेतावनी

जिस देश की भूमि पर वहां का राष्ट्र बनता है, उस देश की ही प्रकृति और प्रवृति राष्ट्र की भी प्रकृति और प्रवृत्ति होती है। राष्ट्र का जन्म देशमाता के गर्भ से होता है, इसलिए देश ही राष्ट्र का स्वभाव सुनिश्चित करता है। देश की प्राकृतिक संरचना ही राष्ट्र की भौतिक-अभौतिक समृद्धि, सभ्यता के विकास की दिशा और स्वरूप का निध ारिण करती है। राष्ट्र देशमाता के प्रति वहां के समाज की भाविक एकात्मता की भौतिक अभिव्यक्ति है। भावनाओं की इस भौतिक सृष्टि की रक्षा और उसको सतत् विकासमान रखने के लिए ही विभिन्न विधि-विधानोंऔर व्यस्थाओं का निर्माण किया जाता है। वे व्यवस्थाएं और विधि-विधान जब तक देशमाता की प्रवृत्ति, प्रकृति और विधि-निषेधों के साथ जुड़े रहते हैं राष्ट्र की मति अप्रदूषित और गति अप्रतिहत रहती है। न राष्ट्र थकता है, न प्रगति रुकती है, न प्रतिभा कुंठित होती है और न सनातन, पुरातन और अधुनातन के बीच कोई दुराव, कोई भेद या किसी संघर्ष का ही निर्माण होता है। देश के अतीत, आधुनिक और आगत को जो सूत्र एकात्म रखता है, जो उसकी कार्यशैली, जीवन शैली एवं जीवनोद्देश्य का निाधारिण और इसके मध्य सतत् तालमेल बनाकर रखती है उसी की अनुभूति संस्कृति के नाम में जाती है। और वही संस्कृति उस देश का राष्ट्र होती है।

दिशाहीन परिवर्तन

हमारी देशमाता ने हमारी राष्ट्रमाता का जो जीवनोद्देश्य निर्धारित किया था, जिस राष्ट्रीय स्वभाव का सृजन किया था, जिस कालनिरपेक्ष सनातन को कालसाप्रेक्षता प्रदान करने की प्रक्रिया का निर्माण किया था, अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों के प्रकाश में जिन परिवर्तनशील संरचनाओं का विधान बनाया था, कालान्तर से वे मिटती गईं। हम केवल परिवर्तित होते गए। हां, केवल परिवर्तित। इतना ही नहीं अपने मूल से कटे, दिशाहीन परिवर्तन को प्रगति मानने की भूल भी की। हमारी इस दिशाहीनता ने राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित ही नहीं प्रदूषित भी किया। इस प्रदूषण का प्रथम शिकार हुई देशमाता और हुआ यह कि देशमाता हमारी आराधना की नहीं, उपयोग की वस्तु बन गई, बना दी गई। क्योंकि जिस कार्यशैली और सोच को हमने

प्राथमिकता दी उसकी गति केवल उपभोग और उपयोग तक ही थी और है। उस सोच-संस्कृति में समाज, राष्ट्र, विश्व और ब्रह्माण्ड अर्थात् जड़-चेतन--सभी को केवल उपयोग और उपभोग की वस्तु माना गया है। उसकी सारी संरचनाओं और उसके समस्त भौतिक समृद्धि प्राप्त करने के प्रयासों ने शोषण की प्रवृत्ति को पनपाया। उसका पालन-पोषण किया। व्यक्ति की सृष्टि का प्रकृति अर्थात् दैवी सृष्टि के साथ सम्पर्क, संबंध या तालमेल तोड़ दिया। व्यक्ति और व्यवस्था के बीच मित्रता की भावना समाप्त हो गई। मनुष्य और प्रकृति के बीच केवल शोषक और शोषित का शत्रुतापूर्ण रिश्ता रह गया। परिणमस्वरूप, वर्त्तमान की प्रत्येक व्यवस्था जीवन के प्रत्येक मोड़ पर संघर्ष और संताप को जन्म देने लगी है।

प्रकृति, प्रवृत्ति और संस्कृति अर्थात् देशमाता अर्थात् राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्र-जीवन को व्यवस्थित रखने के लिए बनाए गए बाड़ और सघन विकास के लिए बनाए गए मेड़ फसल को खाने और भेद का निर्माण करने लगे। समाज को सुख प्रदान करने के लिए बनाई गई व्यवस्था व्यथा का कारण बन गई। देश का भूगोल, उसकी अभौतिक और भौतिक समृद्धि, भूख, बीमारी, गरीबी, कला, साहित्य, संस्कृति--सभी को राजनीतिक व्यवस्था का मोहताज बना दिया गया। देशमाता और राष्ट्र की स्वजात सार्वभौम अस्मिता को राज्य की भूमि में से उपजी फसल माना गया। एक राज्यीय सत्ता को राष्ट्र की अस्मिता के लिए अपरिहार्य मानने वालों ने भारत पर भी अपना फार्मूला लागू किया। क्योंकि उन्हें कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक ही प्रभुता सम्पन्न राजनीतिक सत्ता दिखाई नहीं दी, इसलिए उन्होंने भारत को एक राष्ट्र मानने से मना कर दिया और हमें बताया कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं रहा, वह अभी एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। यह हमारी (अंग्रेज जाति की) कृपा है कि हमने भारत के विभिन्न राज्यों और विभिन्न राष्ट्रीयताओं को एक राजनीतिक छाते के नीचे लाकर खड़ा कर दिया और अब भारत एक राष्ट्र बनेगा।

अर्थात् जब एक संपूर्ण भारत एक राजनीतिक छाते के नीचे नहीं था तब तक वह राष्ट्र नहीं था, राष्ट्र हो नहीं सकता था। अर्थात् उनके अनुसार एक राज्यीयता के अभाव में एक राष्ट्रीयता का कोई अर्थ नहीं होता। अर्थात् सुदूर दक्षिण कन्याकुमारी में अपर्णा पार्वती द्वारा, सुदूर उत्तर में कैलाशवासी शिव की आराधना का उनके लेखे कोई महत्व नहीं है। उन्हें गंगोत्री का जल रामेश्वरम ले जाने में भी किसी भावात्मक सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का तत्व दिखाई नहीं देता। सम्पूर्ण भारत देश में एक ही ऋचा, मातृभूमि की वंदना का समान भाव मंत्र, ऋषियों, संतों, संस्कृति और परम्पराओं के प्रति अगाध अनुराग को वे राष्ट्र होना नहीं मानते। उनके लिए प्रथम राज्य का होना आवश्यक है फिर राष्ट्र बनता है। वे महत्व बाड़ को देते हैं, खेत को नहीं।

हमारे आदर्श कौन ?

हम गुलाम हुए, हमें राज्य-राष्ट्र के जाल एवं जंजाल में फंसाकर हमारी समस्त

अस्मिताओं को मिटाने का जो भरपूर प्रयास किया गया, वही प्रयास स्वराज्य के बाद भी चल रहा है। हमारे स्वराज्य में राज्य तो है किन्तु 'स्व' अनुपस्थित है। हमारी अपनी व्यवस्था में व्यक्तियों के अतिरिक्त ऐसा कुछ भी नहीं है कि जिसे अपना कहा जा सके। व्यवस्था के नाम पर 'पूर्व मालिकों' द्वारा हमारे ऊपर जो कुछ थोप दिया गया उसी का बोझ हम ढो रहे हैं। विचार के नाम पर हमें जो बताया उसी को हम बोल रहे हैं और बहुत ही गर्व के साथ हम बोलते हैं कि ' अंग्रेजों की कृपा से हमें सर्वप्रथम एक राष्ट्र होने की अनुभूति हुई अन्यथा भारत तो अनेक हिस्सों में बंटा, अनेक राष्ट्रों का समूह था। अर्थात् वे यह सत्य भी भूल गए कि जिस भूमि और समाज को वे राष्ट्र नहीं मानते, उस समस्त भूमि और समाज को, उसकी समस्त विविधताओं एवं (Contd) केन्द्रयीताओं (Plutalities) के बावजूद भारत के नाम से आज नहीं अंग्रेजी जाति के जन्म से हजारों वर्ष पूर्व से पुकारा जाता है। नाम से, कर्म से, संस्कृति से, अलग-अलग क्षेत्रों में किन्तु समान राजकीय रीति-नीति और सामाजिक उद्देश्यों से प्रेरित जो देश एक था उसको राष्ट्र नाम क्या केवल इसलिए नहीं दिया जाना चाहिए कि उसका एक राज्य ध्वज नहीं था? माना कि राज्य ध्वज अनेक थे, किन्तु इसे कैसे अस्वीकार कर दें कि राष्ट्र और संस्कृति का ध्वज तो एक ही था। कश्मीर से कन्याकुमारी तक सर्वमान्य एक ही सांस्कृतिक भगवा पताका क्या भारत की एकता का दर्शन कराने के लिए पर्याप्त नहीं थी या पर्याप्त नहीं है?

प्रश्न भारत के राष्ट्र होने या न होने का नहीं है, प्रश्न है अनन्त से जुड़ी भारत की अस्मिता-बोध या विस्मरण का। प्रश्न है राज्य और राष्ट्र का भेद जानने या न जानने का? प्रश्न है देशमाता की कोख से राष्ट्र के जन्म की प्रक्रिया का ज्ञान होने या न होने का। प्रश्न है जो कुछ अब तक किया और बताया गया है, उसी में संतुष्ट रहने या कुछ अपना खोजने, अपना बनाने, अपने अनुसार संरचना, व्यवस्था अथवा कोई नमूना बनाने का? प्रश्न अतीत में जीने या अतीतजीवी होने का नहीं है, प्रश्न है आगत को समृद्ध एवं सुखद बनाने का।

सभी देशों का अपना-अपना अतीत, अपना-अपना वर्त्तमान और अपना-अपना विशिष्ट, भविष्य होता है। किसी एक देश अथवा किन्हीं देशों का अतीत, वर्तमान और भविष्य किसी दूसरे देश का अतीत, वर्त्तमान और भविष्य नहीं है। इसलिए जब हम आजाद हुए थे तो हमें अपने वर्तमान की भूमि पर उतर आना चाहिए था। किन्तु हम उतरे यूरोप, अमरीका और सोवियत रूस के वर्त्तमान के शिखर पर। परिणाम यह हुआ कि हम उनके द्वारा तैयार किये गए शिखरों पर टंग गए और हमारी अपनी भूमि पर हमारे पांव पड़े ही नहीं। जी हां, अंग्रेजों की राजनीतिक गुलामी से हमारी भूमि और भावना आंशिक रूप से मुक्त तो हुई किन्तु हमारी अपनी भूमि पर हमारे पांव नहीं पड़े, और आज भी हम अपनी भूमि पर स्थित नहीं हैं। गांधी जी, लोहिया जी, दीनदयाल जी, श्री गोलवलकर (श्री गुरुजी), इनके पूर्व की कहें ती विवेकानन्द,

अरविन्द, तिलक आदि अनेक दूरदर्शी पुरुषों के अनथक प्रयास के बाद भी हम अपनी भावभूमि पर न उतर कर अपनी प्रकृति, प्रवृत्ति, जलवायु, संस्कार और संस्कृति के विपरीत ही नहीं उसके विशुद्ध विदेशी जलवायु में पला पौधा अपनी भूमि में रोपा, और जलवायु की भिन्नता के कारण आज उसमें जो विषफल लग रहे हैं, उसके कारण एक बीमार राष्ट्र के भिखमंगे नागरिक के रूप में रहने के लिए हम विवश हैं।

भारत को पहचानिए

गांधीजी को कोई ज्ञान से, विज्ञान से, तंत्र व तकनीक और आधुनिकता से कटा अंधयुग का व्यक्ति माने या बताए तो उसकी बुद्धि पर तरस आनी चाहिए। डा० लोहिया को कोई प्रतिगामी कहे तो उसकी प्रगतिशीलता पर थूकने से भी परहेज करना होगा। दीनदयाल उपाध्याय को कोई सृष्टि सत्य, जीवन की विकास प्रक्रिया, विज्ञान और भौतिक-अभौतिक ज्ञान से अभिज्ञ व्यक्ति कहे तो यह किसी पागल के प्रलाप के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। इन सभी लोगों ने दुनिया देखी थी, भारत को परखा और पहचाना था, अपनी राष्ट्रीय अस्मिता का साक्षात्कार किया था। गांधी द्वारा भारत को राम से जोड़ा जाना, लोहिया द्वारा समाजवाद को राम-कृष्ण, गीता-गंगोत्री और द्रौपदी का आधार प्रदान किया जाना, दीनदयाल द्वारा व्यक्ति और व्यवस्था को टुकड़े-टुकड़े देखना, अमान्य करके व्यक्ति और ब्रह्माण्ड की एकात्मता का प्रतिपादन और संपूर्णता के साथ मनुष्य के तादात्मय का दर्शन निर्माण करना भारत की अपनी मनीषा, अपनी जिजीविषा, अपनी दृष्टि, अपने दर्शन, अपनी प्रकृति, प्रवृत्ति, अपनी जलवायु, अपने संस्कार और संस्कृति की भावभूमि से जुड़ा एक राष्ट्रीय प्रयास था। आधुनिक भारत के गांधी, लोहिया, दीनदयाल और श्री गुरु जी ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने भारत देश को उसकी इयत्ता, उसकी अस्मिता, और उसकी सनातन प्रेरणा से जोड़ने का अनुष्ठान रचा। डा० लोहिया के 'सुधारो या टूटो' के सिद्धान्त और 'जिन्दा कौमें पांच साल इन्तजार नहीं करतीं' के आह्वान में तीसरा विकल्प निर्माण करने की कसक निहित थी। किन्तु समय रहते हम सुधरे नहीं, इसलिए बिखर रहे हैं। हम जागते नहीं, ठीक समय पर अपनी जीवन्तता का सकारात्मक परिचय नहीं देते इसलिए दिन-दिन करके मर रहे हैं। गांधी जी ने लंगोटी लगा ली। देश और देश के आम आदमी होकर जीने का सिलसिला शुरू किया, संताप मुक्त भारत का निर्माण करने के लिए राम राज्य का सपना पुनः जगाया किन्तु हम गांधी की ओर नहीं माउन्टबेटन की ओर झुके। हमने अपने देश को गांधी जी की सनातन भारतीय राष्ट्रीय दृष्टि से नहीं, अमरीका और रूस की पूंजीवादी, समाजवादी दृष्टि से देखा। दीनदयाल जी ने देश में राष्ट्रीय संकल्प जगाने पर बल दिया। उसे भौतिक-अभौतिक दोनों पांवों पर खड़ा करने का दर्शन बनाया। एक हाथ से रोटी कमाने अर्थात् भौतिक समृद्धि का सृजन करने पर बल दिया तो दूसरे हाथ से राम की आराधना को अभौतिक प्रगति का

अपरिहार्य आधार बताया। 'कमाओ और खाओ' की पश्चिमी लीक से हटकर **'कमाओ और खाओ'** का भारतीय जनदर्शन निर्माण करने का आह्वान किया। किन्तु **हमने** किसी की नहीं सुनी।

कितने प्रश्न ?

प्रश्न केवल इतना ही नहीं है कि हमने अपने में किसी की नहीं सुनी, प्रश्न यह है कि क्या हम विश्व के समक्ष कोई नया नमूना या नया और तीसरा विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं? क्या हमारे अन्दर कुछ नया प्रस्तुत करने की इच्छा है ? क्या हमारे मन में अपने 'स्व' का आविष्कार करने की लालसा है? क्या गांधी, लोहिया, दीनदयाल और श्री गुरु जी के बाद भारतीय मनीषा मर गई कि उनके कहे का भाष्य, प्रयोग और अपने राष्ट्रीय मन का आविष्कार कर पाना अब संभव ही नहीं रहा? ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, सिद्धान्त नीति और आचरण का कालसापेक्ष प्रतिपादन करने और तदनुरूप व्यवस्था बनाते रहने की भारतीय प्रक्रिया का ऋषि-स्रोत क्या सूख गया? क्या हम पूर्णतः अंधे हो गए हैं कि हमारी अपनी दृष्टि रही ही नहीं कि हम अपनी देशमाता की चिरन्तन आभा देख सकें? क्या हम संवेदनशून्य हो गए हैं, एकदम मृत कि हमें अपनी जलवायु और अपने मौसम का अनुभव होना ही बन्द हो गया है?

चेतावनी और चुनौती

भारत का वर्त्तमान इसकी वर्त्तमान पीढ़ी के लिए चेतावनी भी है और चुनौती भी है। गांधी, लोहिया, दीनदयाल और गुरु जी के बाद अर्थात् आगे की बात बताने और कराने के दायित्व का निर्वाह उसे ही करना है। देश की राजनीति, देश की शिक्षा, देश की समृद्धि, न्याय, समाज और संस्कृति आदि व्यवस्था को केवल चुनाव से जोड़कर जिस भारत का निर्माण करने का प्रयास किया जा रहा है, वह भारत हमारा अपना भारत नहीं हमारे शत्रुओं का भारत है। क्योंकि देश को राजनीति का दास बना दिया गया है अतएव प्रथमतः राजनीति का चरित्र बदलना होगा। केवल एक चुनाव से दूसरे चुनाव तक की सोचते रहने की राजनीति और उसमें से जन्मी समस्त व्यवस्थाएं देशमाता को नोच-नोच कर खा रही हैं। आज हमें और विश्व को भी व्यवस्था का एक ऐसा वैकल्पिक नमूना चाहिए जो राज्य-राष्ट्र की प्रथमिकता को बदले। जो राष्ट्र से पहले राज्य की बात न सोचे।

आज की राजनीतिक मारामारी में राज्य-सत्ता का प्रभावी होते जाना और राष्ट्र की प्राथमिकता का सर्वथा अनुपस्थित होना, अत्यन्त ही खतरनाक संकेत है। राज्य की मारामारी राष्ट्र को बेचकर भी सुखार्जन करने की ओर धकेल रही है और भूतकाल में धकेला भी था। अपने देश की प्रकृति , प्रवृत्ति, जलवायु, परम्परा और अनुभव के अनुरूप सृष्टि और विकास के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करने वाली तीसरी

एकात्म व्यवस्था आज भी हमारी प्रथम आवश्यकता है। गत 45 वर्षों से हम जिस मार्ग पर चलते आए हैं, उसके परिणाम में प्रकृति, व्यक्ति, समाज और विकास व्यवस्था के बीच प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिशोध, प्रतिस्पर्धा, और शत्रुता के अतिरिक्त हमें और मिला ही क्या ? हम यह समझ लें कि जिस देश की भूमि पर यह भारत राष्ट्र जन्मा और बना है उस भूमि का परीक्षण करके उसकी गंध, उसकी उर्वरा शक्ति और प्रकृति के अनुरूप बीज बोएंगे तो ही समृद्धि का वटवृक्ष उगेगा, तभी मनुष्य अपने कल्पित भौतिक और अभौतिक सुख-शांति की ओर बढ़ेगा, अन्यथा संड़ाध को ही सुगन्ध मानते रहने का आत्मछल ही हमारे हाथ लगेगा।

17 मई, 1992

अयोध्या और बोफोर्स

अयोध्या और बोफोर्स देश की सत्ता राजनीति और राजनीतिक दलों की गले की हड्डी बने हुए हैं? बाफोर्स तोपें अभी भी भारतीय सीमा पर न पहुंची और न दगीं, किन्तु भारत की संसद में इसके गोले दगते रहते हैं। एक के बाद दूसरा नया सुराग सामने आता है और अपराधी को बचाने के लिए बेपांव का नया-नया झूठ बोलकर मामले को शांत हो गया मान लिया जाता है।

यह जानते हुए भी इस मामले को समाप्त हो गया माना जाता है कि झूठ में इतनी शक्ति नहीं होती कि वह सत्य को दबा दे। खैर, खून, खांसी, खुशी, बैर, प्रीति और मद्यपान जैसे कभी दबाए से नहीं दबते, ठीक वही हाल बोफोर्स के संदर्भ में देश की सुरक्षा के साथ की गई दलाली, राष्ट्रीय और आर्थिक अपराध का भी है। यदि पहले ही दिन राजीव ने अपनी भूल या गलती खुले मन से स्वीकार कर ली होती तो देशवासी इनके इस साहस की सराहना करते, उन्हें क्षमा दान देते और अब तक बोफोर्स का मामला अनेक चर्चाओं की तरह एक चर्चा मात्र बनकर अतीत के अंधकार में खो गया होता, उनकी सरकार भी बनी और बची रहती और अनेक नए राजनीतिक रोगों से बच गया होता।

कांग्रेसी विरासत

किन्तु प्रश्न यह है कि अपनी भूल या गलती को स्वीकार करने का नैतिक साहस कांग्रेसीनुमा मुख्य राजनीतिक धारा के लोगों के लिए सर्वथा अंजाना रहा है और आज भी वह अंजाना ही है। स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री सरीखे एक-दो अपवादों के अतिरिक्त कांग्रेस के लगभग एक सौ सात वर्षीय जीवन काल में अपनी असफलता और गलती स्वीकार करने के नैतिक साहस के उदाहरण बहुत नहीं हैं। यदि नैतिकता कांग्रेस के चरित्र का अंग होती तोआजादी प्राप्त होने के बाद गांधी जी की सलाह मान कर एक राजनीतिक दल के रूप में वह स्वयं को विसर्जित करके नए नाम से किसी नए दल का गठन करके दलीय राजनीति का आरम्भ करती। परन्तु कांग्रेस नेतृत्व ने ऐसा नहीं किया। राजनीतिक आजादी का युद्ध लड़ने के लिए कांग्रेस के नाम से उभरे राष्ट्रीय मोर्चे को सत्ताराजनीति का साधन बनाया और देशवासियों की

भावनाओं का शोषण करने की राजनीतिक कला को लोकप्रियता का विशेषण प्रदान किया । यही क्रम आज भी जारी है। आजादी के पश्चात् अनैतिकता की राजनीति ही कांग्रेस की विरासत है।

देशवासियों के साथ विश्वासघात करने से बड़ा क्या और कोई दूसरा गंभीर अपराध हो सकता है ? डा० लोहिया ने देश के विभाजन के अपराधियों के जो नाम गिनाए और चेहरे दिखाए हैं आज तक वही नाम और चेहरे, उनसे जुड़े लोग किसी न किसी रूप में देश का शासन चलाते आ रहे हैं। इन्हीं लोगों के राजनीतिक पुरखों ने देशमाता का दाहिना-बायां दोनों अंग काटकर उसे मजहबी आक्रामकों और आतंकवादियों के हाथ बेचकर और कई लाख भारतीयों के खून का मोल चुका कर खंडित आजादी खरीदी फिर भी न उन्हें और न इन्हें शर्म नहीं आई कि यह सब कार्य उन्होंने अपने वचन के विरूद्ध किया है। अपनी लाश पर देश का विभाजन और पाकिस्तान स्वीकार करने की घोषणा और अखंड भारत का आश्वासन देने वाले नेताओं ने अवसर आने पर लाखों शरीरों को शव बनवा कर अपना शरीर बचा लिया।

आजादी मिलने के पहले और बाद अब तक के ऐसे अनेक उदाहरण है कि उन्हें गिनने लग जाएं तो केवल उनकी सूचियों का एक बड़ा ग्रन्थ बन सकता है। देश की आजादी, युद्ध, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक शिक्षा, इतिहास आदि के क्षेत्र में किए गए अपराधों का पता सबको है। कई मंत्रियों को उनके अपराधों का दण्ड भी मिला है। किन्तु सहजभाव से नहीं, विवशतावश। जब अपराध दबाए नहीं दबे, हत्या, पद, और लोभ भी उन पर पर्दा डालने में असफल रहे तो प्रतीक रूप में कार्यवाही की गई, या करनी पड़ी। लेकिन कार्रवाई का संदर्भ नैतिकता नहीं, अपनी छवि की रक्षा करने के लिए दूसरे के रक्त की आवश्यकता और अपरिहार्यता के कारण वैसा किया गया। कृष्णामचारी, कृष्ण मैनन आदि के उदाहरण इस संदर्भ में गिनाए जा सकते हैं। डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी से लेकर दीनदयाल उपाध्याय, ललितनारायण मिश्र , नागरवाला, 1975 में आपातकाल के समय कराई गई हत्याओं और राष्ट्रीय नेताओं को देशद्रोहियों की कतार में खड़ा करने का घृणित कार्य भी कांग्रेस की अनैतिक राजनीति ने ही किया और कराया था।

यदि ऐसा होता

कांग्रेसी कुनबे और इस कुनबे से रूठे लोगों से बने दलों एवं नेताओं को अपराध में अपराध और अनैतिकता में अनैतिकता का भान होता ही नहीं। इन सबने मिलकर अपराध और अनैतिकता का राष्ट्रीयकरण कर दिया है। ये भारत के नागरिकों का भारतीयकरण करने और सभी का मन स्वदेशी बनाने का विरोध करते हैं, किन्तु अपराधों और अनैतिकताओं का राजनीतिक एवं राष्ट्रीयकरण करने को आम आदमी को राष्ट्रीय विकास में सहभागी बनाने के प्रयास और प्रक्रिया का अंग मानते हैं।

भारत के राष्ट्र पुरुष महात्मा गांधी की हत्या और उनकी चिता पर अपनी सत्ता-राजनीति की रोटी सेंकने का कुकृत्य तक जिस राजनीतिक विरासत में अमान्य और अनैतिक न हो उससे किसी नैतिक साहस और चरित्र की अपेक्षा करना मूर्खता, सचमुच मूर्खता होगी।

यही मूर्खतापूर्ण अपेक्षा देशवासियों ने राजीव गांधी, विश्वनाथप्रताप सिंह एवं चन्द्रशेखर से भी की थी और यही अपेक्षा नरसिंहराव से भी की जा रही है। दोष इन सबका नहीं, दोष उनका है जो विश्वासघात के बाद भी उन पर विश्वास करते हैं, कि आज नहीं तो कल ये सच बोलेंगे, और सच-सच बताएंगे। परन्तु उनका राजनीतिक संस्कार उन्हें सच बोलने से मना करता है और जब तक सच नहीं बोलेंगे और बताएंगे बोफोर्स ही नहीं गत 45 वर्षों में की गई राजनीतिक-आर्थिक अनैतिकताओं और अपराधों से जुड़े सवाल बीच-बीच में उभरते रहेंगे। क्योंकि प्रश्न उत्तर बनने और मिलने तक जीवित रहते हैं, कालान्तर के कारण उन्हें मर गया मान लेना अज्ञानता है। अनुत्तरित प्रश्न केवल वर्त्तमान को ही नहीं एक के बाद दूसरी पीढ़ियों को भी परेशान करते रहते हैं।

यह उपदेश नहीं, हमारा अनुभव है कि भारत विभाजन की एक भूल, उसके संदर्भ में की गई राजनीतिक अनैतिकता, अपराध और राष्ट्र के प्रति विश्वासघात को कांग्रेसी नेताओं ने खुले मन से खुले आम स्वीकार कर लिया होता तो आज देश अलगाव और आंतकवाद की आग में न जल रहा होता, तो देशमाता टुकड़े-टुकड़े हो जाने का संताप न झेल रही होती। यदि भारत के समानान्तर इस्लामी मजहबी राष्ट्र बनाने की साजिश के सामने घुटने टेककर कांग्रेस ने अपनी विवशता और राजनीतिक स्वार्थ के वशीभूत होकर कार्य न किया होता तो विभाजन के बाद भारत में रह गए शेष मुसलमान यहां की मुख्य राष्ट्रीय धारा का अंग और यहां के राष्ट्रजन बन कर रह रहे होते, तो दशहरा, दीवाली और होली पर दंगे न होते, मस्जिदों में अल्लाह की अजान और मंदिरों में भगवान की पुकार एक ही समय पर एक साथ गूंज रही होती। यदि केवल आर्थिक विकास को राष्ट्रीय विकास मानने एवं बताने की नादानी न की गई होती तो हम भारत के लोग भौतिक समृद्धि की साधना तो करते किन्तु आर्थिक अपराध न करते, तो भ्रष्टाचार विभिन्न रूप धारण करता और अनेक आयामों से गुजरता हुआ सर्वमान्य रिवाज न बन पाता। यदि देशद्रोह को उसके सही और मूल संदर्भ में देखा और परखा गया होता तो देशद्रोहियों को सम्मानित एवं देशभक्तों को तिरस्कृत एवं अपमानित न किया जाता, तो न भिण्डरवालों को संत की उपाधि दी गई होती और न 'फारूखों' को देशमित्र होने का गौरव प्रदान किया होता।

बोफोर्स का संदर्भ केवल स्वीडन की तोपों का सौदा और व्यावसायिक दलाली तक ही सीमित नहीं है, यह उन समस्त अनैतिकताओं और अपराधों का भी संदर्भ है, जिनके कारण देशवासियों को समय-समय पर एक 'लज्जा पर्व' को झेलना पड़ता है।

राम जन्मभूमि का अनुत्तरित प्रश्न

अयोध्या का संदर्भ भी ऐसा ही है। श्रीराम जन्मभूमि का अनुत्तरित प्रश्न गत 464 वर्षों से देश का अन्तर्मन लगातार मथता और मरोड़ता आ रहा है। मुगल आक्रमण द्वारा किए गए राष्ट्रीय अपमान की पीड़ा भारत राष्ट्र का अन्तर्यामी सहन नहीं कर पा रहा है। राष्ट्रीय पराजय के कलंक को पोंछने ओर धोने के लिए लाखों सिर उठे और काट दिए गए, रक्त की वर्षा की गई किन्तु उसे सुखा दिया गया।

भारत भूमि आजाद हुई तो हम भारत के लोगों को लगा कि राम की जन्मभूमि भी मुक्त होगी। देश आजाद और उसके राम कैदी रहें यह भारत राष्ट्र का आजाद होना नहीं आजादी का अंतर्विरोध था। होना तो यह चाहिए था कि आजादी के बाद सोमनाथ की तरह भारत के उन समस्त प्रमुख शक्ति और प्रेरणा पीठों को सर्वप्रथम उनका गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करा दिया जाता। हमारी राष्ट्रीय पराजय के प्रतीक के रूप में आक्रमणकारी शत्रु जिन्हें सुरक्षित रखकर हमें अपमानित कर रहे थे। परन्तु हो रहा है इसके विपरीत। आजादी के बाद के गत पैंतालीस वर्षों से राष्ट्रीय आत्मसम्मान की पुनः प्रतिष्ठापना के लिए चल रहे अनुष्ठानों और अभियानों को किसी न किसी मोड़ पर हिन्दू-मुसलमान, मजहब और सम्प्रदाय की शत्रुता का रूप प्रदान करके राष्ट्रीय मन को अपमानित किए जाने की कुटिलता किसी से छिपी नहीं है। विशेषकर गत आठ वर्षों का अनुभव ऐसा है कि भारत की राष्ट्रीय अस्मिता को अल्पसख्यकों अर्थात् मुसलमानों की दया का दास बनाने का कोई भी प्रयास और उपाय छोड़ा नहीं गया। भारत के संतों और लगभग समस्त सम्प्रदायों के धर्माचार्यों द्वारा आरम्भ किए गए राष्ट्र के जागरण और देश की भूमि पर भारत की गरिमा को पुनः स्थापित करने के सत्ता-राजनीति और वोट-निरपेक्ष अनुष्ठान को राजनीति की कीचड़ में घसीट कर पुनः साम्प्रदायिक तथा मजहबी विभाजन की जमीन बना दी है। श्रीराम अर्थात् भारत राष्ट्र की पहचान को यहां के मुसलामनों की पहचान के लिए चुनौती माना गया।

श्रीराम जन्मभूमि का इतिहास और राष्ट्र सत्य 'स्वीकार न करने का ही यह परिणाम है कि ठीक बोफोर्स की तरह ही यह मामला भी बीच-बीच में उभर उठता है। श्रीराम मन्दिर का विरोध करने का साहस किसी में नहीं है, किन्तु मन और मुख के बीच का अंतर सभी में साफ-साफ दिखाई देता है। इसका प्रमाण है गत सात अप्रैल, 1992 को राष्ट्रीय परिषद् के सदस्यों और कुछ सांसदों के एक दल की अयोध्या यात्रा। उस दल में कम्युनिस्ट भी थे और मुस्लिम लीगी भी। कांग्रेसी भी थे और समाजवादी भी। जनता दल के भी थे और समाजवादी जनता पार्टी के भी। यह दल गया था श्रीराम मन्दिर के बाहर की भूमि के समतलीकरण के संदर्भ, न्यायालय के निर्देश का उल्लंघन एवं उसकी अवमानना सम्बंधी तथ्य खोजने। किन्तु हुआ यह कि मणिशंकर और शहाबुद्दीन के अतिरिक्त दल के सभी सदस्यों में श्रीराम लला के

दर्शन करने की होड़ लग गई। इस दल के सदस्य तिलक लगवाने, प्रसाद लेने और रामनामी ओढ़ने का प्रथम गौरव प्राप्त करने के लिए धक्का-मुक्की करने लगे थे। इस धक्का-मुक्की में मार्क्सवादी सुरजीत और मुस्लिम लीगी सुलेमान शामिल थे। सभी ने श्री रामलला विराजमान के दर्शन किए, देवी-देवताओं की आकृतियों वाले उन कसौटी के पत्थरों के खम्भों को भी देखा जिन पर श्रीराम मन्दिर का विकृत ढांचा खड़ा है। श्रीराम मन्दिर के बाहर आए तो सभी ने अलग-अलग व्यक्तिगत रूप से स्वीकार किया यह मस्जिद नहीं मन्दिर है। एक पत्रकार ने पूछा, 'वह मस्जिद कहां है जिसे तोड़कर मन्दिर बनाए जाने का शोर मचाया जा रहा है,' तो उस ढांचे की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा, 'यही तो है।' पत्रकार का उत्तर था। 'तब तो आप लोग जितना शीघ्र सार्वजनिक रूप से इसे हिन्दुओं को सौंप दें उतना ही अच्छा।'

उस तथ्य खोजी दल के अधिकांश सदस्य अपनी रपट सरकार को देने के बाद भी एकान्त में उसे मन्दिर मानते हैं, किन्तु प्रगट में मस्जिद। इन लोगों में वे लोग भी शामिल हैं सामाजिक न्याय के नाम पर चूल्हे की आग को आत्मदाह और सामाजिक सद्भावना की चिताग्नि में बदल देने में जिन्हें कोई संकोच या किसी प्रकार का अपराधबोध नहीं हुआ था।

श्रीराम मन्दिर के सामने की भूमि के समतलीकरण में संविधान विरोधी और न्यायालय के निर्देश का उल्लंघन देखने वालों में वे सभी लोग समान रूप से और समान अहसास के साथ शामिल हैं, न्यायालय का अपमान और संविधान का दुरूपयोग करते रहना जिनका राजनीतिक मजहब है, जो उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को धमकी देते हैं, जो एक-दो बार नहीं सैकड़ों बार न्यायालय की अवमानना करने के अपराधी हैं, जो सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को अपनी राजनीतिक सुविधा-असुविधा के संदर्भ में बदलते रहते हैं। ये वे लोग हैं जो अयोध्या को लेकर सांविधानिक प्रक्रिया के भंग होने का शोर मचाते हैं, लेकिन बिहार और कश्मीर के संदर्भ में मौन साध लेते हैं।

अल्पसंख्यक मानसिकता का दोहन

भारत की रामधारा मुसलमानों को आक्रमणकारियों की औलाद नहीं केवल मजहब का परिवर्तन करने वाले भारतीय मानती है। यदि कोई मुसलामन आक्रमणकारी बाबर को अपना प्रेरणापुरूष बताकर तथाकथत बाबरी ढांचे को अपना श्रद्धास्थल मानता है तो वह आक्रमणकारियों की औलाद होना स्वयं सिद्ध करता है। और हम इसके लिए वे सभी लोग जिम्मेदार हैं जो मुसलमानों के लिए अल्पसंख्यक आयोग का गठन और मानवाधिकार आयोग का तिरस्कार करते हैं, जो बाबरी ढांचे की रक्षा करने के लिए अपने खून की प्रत्येक बूंद बहा देने के लिए उनको उत्तेजित करते हैं।

अयोध्या और बोफोर्स से जुड़े प्रश्नों का सार्थक उत्तर तब तक नहीं मिलेगा जब

तक इनकी ओर राजनीतिक दृष्टि से देखा और इन्हें दलीय हिताहित की कसौटी पर परखा जाता रहेगा। इन दोनों समस्याओं को राजनीति और मजहबनिरपेक्ष राष्ट्रीय संदर्भ प्रदान किए बिना इनका अतीत वर्त्तमान को आतंकित करता रहेगा। इन दोनों संदर्भों में पल रहे गम्भीर संकटों को समाप्त करने का एकमेव उपाय है श्रीराम जन्मभूमि को रामभक्त राष्ट्रीय समाज को सौंप दिया जाए और बोफोर्स पर पड़ा या डाला गया पर्दा सूर्य के प्रकाश में खुलेआम उठा दिया जाए।

यदि अयोध्या और बोफोर्स से जुड़े प्रश्न अनुत्तरित रह गए तो देश के राजनेताओं की इस कायरता और राजनीतिक विवशता के लिए भविष्य पीट-पीट कर भावी पीढ़ियों से हमारे किए गए अपराधों का जवाब मांगेगा। अतएव, देशवासी और राजनेता, सत्ता राजनीति की नहीं अपने राष्ट्र के अन्तर्यामी की बात सुनें और मुट्ठी भर लोगों की अनैतिकता और अपराध से देश को मुक्त करके उसको उसकी खोई हुई इयत्ता प्रदान करने के अपने राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह करें। यही राष्ट्रीय दायित्व बोध ही अयोध्या और बोफोर्स के प्रश्नों का समय रहते सार्थक उत्तर देगा। यही भारत में एक राष्ट्र एक जन, और एक सम्प्रदाय निरपेक्ष समाज का निर्माण करने में सक्षम होगा। शेष सब कुछ छलावा है, केवल छलावा।

24 मई, 1992

कश्मीर के इस्लामीकरण को मान्यता देने की प्रक्रिया

भारत की नरसिंह राव सरकार ने कश्मीर घाटी, वहां के पाकिस्तान परस्त मुसलमानों और पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षित आतंकवादियों को सौंपने का मन बना लिया है। आश्चर्य न करें, यह प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है। शांति खरीदने के लिए जम्मू और कश्मीर में चुनाव कराने, समस्या का राजनीतिक हल निकालने और वहां राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करने की आवश्यकता की घोषणा का और कोई अर्थ नहीं है। इन्दिरा कांग्रेस के प्रधानमन्त्री नरसिंह राव और उनके गृहमंत्री चव्हाण जिन नेताओं के साथ बात करके राजनीतिक प्रक्रिया की वापसी चाहते हैं, कश्मीर में उनका कोई अस्तित्व नहीं हैं वे कश्मीर घाटी के कट्टरपंथी, खूंखार और भारत को अपना शत्रु मानने वालों की कृपा की खूंटी पर टंगे लोग हैं। वे कश्मीर के उन डरे हुए लोगों में हैं, जिन्होंने पूरा राज्य आतंकवादियों को सौंप दिया है, जो अपनी सुरक्षा के लिए विदेशों में लगभग बस से गए हैं, जो कई महीनों और वर्षों से कश्मीर घाटी गए नहीं हैं, जिन्होंने आतंकवादियों की शर्तें स्वीकार कर ली हैं, जो दिल्ली में भारत भक्त और कश्मीर घाटी में केवल मुस्लिमपरस्त होते हैं।

मैं कोई भविष्यवाणी नहीं कर रहा हूं। गत 45 वर्ष के अनुभव के आधार पर आगाह कर रहा हूं कि जिस प्रकार एक समय आन्तरिक शांति और मुस्लिम सद्भावना के नाम पर भारत-विभाजन अर्थात् पाकिस्तान का जहर देशवासियों के गले के नीचे उतारा गया था, ठीक उसी प्रकार एक दिन एक ऐसे स्वायत्त कश्मीर राज्य की घोषणा कर दी जाएगी जहां केवल मुसलमान रहेंगे, और कश्मीर का इस्लामीकरण करने की प्रक्रिया को तथाकथित राजनीतिक प्रक्रिया द्वारा पूर्ण कर दिया जाएगा।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि ऐसा क्यों किया जाएगा ? इसका सीधा और सपाट सा उत्तर है कि केवल इसलिए कि कश्मीर घाटी मुस्लिम बहुल है और जहां मुसलामन बहुमत में होते हैं वहां उन्हें शरीयत और इस्लाम के अनुसार रहने एवं राज्य करने के सभी सामान्य और विशेषाधिकार देने को कांग्रेसी राजनीति-कोश में सेकुलरिटी, या 'धर्म निरपेक्षता' कहा गया है।

देशभक्ति का अपराध

गत आठ वर्षों में कश्मीर घाटी के हिन्दुओं के पांच हजार घर जला देने, छः हजार घर उजाड़ने, सात हजार खोखे ध्वस्त कर देने, सैकड़ों देवालयों को ध्वस्त कर देने, मूर्तियों के हाथ-पांव काट कर उन पर मल मूत्र विसर्जित करके उसे पुजारियों को प्रसाद रूप में खाने-पीने के लिए विवश करके, हिन्दू नारियों के साथ बलात्कार करके, उनके गुप्तांगों, छातियों और जांघों पर पाकिस्तान जिन्दाबाद लिखकर कुछ को निकाल देने और बहुतों को मुसलमान पैदा करने के लिए अपने पास रख लेने, सात लाख से अधिक हिन्दुओं को कश्मीर घाटी से निकाल कर स्वदेश ही नहीं, परदेश में विस्थापित के रूप में भटकते रहने के लिए विवश बना देने के बाद भी भारत की नरसिंह राव सरकार, जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक दल और नेता एवं देश की दूसरी पार्टियों ने मुंह नहीं खोला। कोई प्रधानमन्त्री इन पीड़ित देशवासियों की व्यथा-कथा सुनने और उनकी दशा देखने के लिए उनके पास नहीं गया। हजारों साल से कश्मीर घाटी में पल रही भारत की संस्कृति को कट्टरपंथी, खूंखार इस्लामी विस्तार ने निष्कासित करके विस्थापित बना दिया, किन्तु देश के सेकुलर दलों के नेताओं को रंच मात्र दया नहीं आई। उनका मन नहीं पसीजा कि वे आवाज उठाते, कोई ऐसी कार्रवाई करते कि विस्थापित अपने घरों में पुनः स्थापित होते। देश के किसी नेता ने गुरू तेग बहादुर की तरह अपना शीश देकर भारत के शीश कश्मीर की रक्षा करने की मुहिम शुरू नहीं की।

यह कार्य केवल इसलिए नहीं किया जा सका या किया जा सकता कि कश्मीर घाटी से निकले और भगाए गए लोग कश्मीरी पंडित अर्थात् हिन्दू अर्थात् भारत के देशभक्त नागरिक हैं। देशभक्ति की इतनी बड़ी सजा, देशभक्ति का अपराध बन जाने का इतना बड़ा आश्चर्य भारत, केवल भारत, केवल तथाकथित सेकुलर भारत, केवल उस भारत में ही सम्भव है जहां हिन्दू बहुमत में हैं और जहां केवल हिन्दुओं की ही भारत माता के प्रति एक्रमेव और एकान्तिक निष्ठा है।

समस्या की जड़

कश्मीर घाटी में उत्पन्न समस्या आज की और अभी की नहीं है। इसका सूत्रपात आजादी की लड़ाई के समय ही हो चुका था। आजादी मिली तो कांग्रेस की सत्तावादी राजनीति ने इसको स्थायित्व प्रदान किया और इस उस व्यक्ति और दल को अपने प्राण और अपनी प्रतिष्ठा की कीमत चुकानी पड़ी जिसने कश्मीर में किए जा रहे राष्ट्रीय एकता और सेकुलरी पाखण्ड की ओर अंगुली उठाई। इन अंगुली उठाने वालों में सरदार पटेल भी थे और डाक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी भी। सरदार पटेल को मुस्लिम विरोधी बताकर और शेख अब्दुल्ला की दोस्ती को वरीयता देकर नेहरू जी ने कश्मीर का मामला सरदार पटेल के कार्य और अधिकर क्षेत्र से बाहर कर दिया।

कश्मीर को विशेष दर्जा दिलाया गया। डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने आवाज उठाई तो उनकी हत्या करके मुंह बंद कर दिया गया। भारतीय जनसंघ ने 'एक देश में एक निशान, एक विधान, एक प्रधान' का देशव्यापी आन्दोलन किया तो उसे साम्प्रदायिक और मुसलामनों का दुश्मन कहा गया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद् और भारतीय जनता पार्टी ने विस्थापितों की सेवा एवं सहायता का कार्य प्रारम्भ किया तो उस पर विस्थापितों और कश्मीर समस्या का साम्प्रदायिकीकरण करने का आरोप लगाया गया। भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष डा० मुरली मनोहर जोशी द्वारा कन्याकुमारी से कश्मीर को जोड़ने के लिए की गई एकता-यात्रा और छब्बीस जनवरी, 1992 को श्रीनगर के लाल चौक, जहां पाकिस्तानी अलगाववादियों एवं आतंकवादियों ने पैरों से कुचलकर, जलाकर भारत का राष्ट्रध्वज फहराने की चुनौती दी थी, तिरंगा फ़हराया, तो उसे आतंकवादियों को उत्तेजित और संगठित करके देश को तोड़ने वाला कार्य कहा गया।

घायल घाटी के सुलगते सवाल

आतंकवादियों की गोलियों से घायल कश्मीर घाटी ने अनेक प्रश्न प्रस्तुत किए हैं। ये प्रश्न केवल रोजी-रोटी या किसी इस या उस सम्प्रदाय की पहचान से जुड़े प्रश्न नहीं हैं। ये प्रश्न हैं भारत की राष्ट्रीय अखण्डता और अस्मिता के। ये प्रश्न हैं भारत के हजारों वर्ष पुराने इतिहास और अतीत के, भारत के संविधान, यहां की नागरिकता और देशभक्ति को परिभाषित करने के। भारत की सेकुलरिटी से भी कई गंभीर प्रश्न पूछ रहा है कश्मीर। कश्मीर अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक अवधारणा की परख की कसौटी के रूप में हमारे सामने है। क्या कश्मीर से हिन्दू इसलिए भगा दिए गए हैं कि वहां रोजी-रोटी का अभाव है, और क्या वहां के हिन्दुओं को विस्थापित बना कर ही कश्मीर का आर्थक विकास किया जा सकता है ? क्या बेरोजगारी और भूख के कारण कश्मीर घाटी के मुसलमान वहां के हिन्दुओं को निकाल बाहर करके उसका इस्लामीकरण करना चाहते है ? क्या हिन्दू युवतियों का शीलहरण कश्मीर को समृद्ध बनाने का प्रयोग है ? क्या भारत में किसी संविधान का अस्तित्व है और यदि है तो क्या वह देश के किसी नागरिक या जनसमूह को किसी दूसरे जनसमूह के जनाधिकार का अपहरण करके उसे विस्थापित करने की अनुमति देता है। यदि भारत में संविधान नाम की कोई वस्तु है तो क्या यह अलग-अलग क्षेत्रों में, अलग-अलग समुदायों को अलग-अलग अधिकार प्रदान करती है ?

क्या हमारा संविधान सम्प्रदाय और मजहब सापेक्ष है ? क्या अल्पसंख्यक होने का अर्थ केवल मुसलमान होना होता है और क्या मुसलमान कहीं बहुमत में होता है तो भी वह वहां अल्पसंख्यक ही होता है ? क्या सेकुलर होने के लिए अनन्तनाग का इस्लामाबाद नामकरण स्वीकार करना आवश्यक है ? क्या केवल मुस्लिम सापेक्षता का

नाम सेकुलरिटी है ? क्या हिन्दुओं का खून करके लिखा गया शब्द और आलेख ही सेकुलर आख्यान होता है ? क्या मुसलामनों द्वारा हिन्दू देवालय तोड़े जाने की मौन स्वीकृति ही मुखर सेकुलरिटी है ? भारत की सार्वभौमिकता, राष्ट्रीय अखण्डता और अस्मिता क्या कश्मीर में निवास नहीं करती ? यदि कश्मीर भारत के सिर का मोर है तो इस मोर को लहूलुहान करके कूड़ेदान में फेंक देने की छूट देना क्या राष्ट्रीय अखण्डता को अक्षत रखना है ? क्या देशभक्ति का पुरस्कार देशभक्तों का निष्कासन है ?

कश्मीर घाटी का भारतीय अस्तित्व वहां मुसलमानों से नहीं, हिन्दुओं से है। इतिहास साक्षी है कि केवल आज ही नहीं, अतीत में भी वहां से हिन्दुओं को भगाने, उनका धर्मभ्रष्ट और उनका नरसंहार करके उन्हें नामशेष करने का सिलसिला सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा है। बीच-बीच में दिखाई देने वाली शांति वस्तुतः शांति नहीं होती, यह हिन्दुओं अर्थात् भारत पर मुस्लिम विस्तारवादी आक्रमण का केवल युद्ध विराम होता है और इसे ही हम कश्मीर घाटी की साम्प्रदायिक सद्भावना, साम्प्रदायिक सहअस्तित्व और सेकुलरिटी की शलाका मानते आ रहे हैं।

परीक्षा का समय

कश्मीर की समस्या को केवल कश्मीर के ही नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्रीय संदर्भ में देखना और परखना चाहिए। कश्मीर हमारी राष्ट्रीय मानसिकता की परीक्षा का प्रश्नपत्र है। इसके कारण श्रीनगर से तिरूअनन्तपुरम् तक का समूचा भूखण्ड आतंकित है। सुदूर केरल के गांवों में वहां के मुसलमानों द्वारा केरल को कश्मीर बना देने जैसे नारों का अर्थ समझे बिना कश्मीर समस्या को समझ पाना सम्भव ही नहीं है। कश्मीर घाटी से विस्थापित लाखों हिन्दुओं की पीड़ा की ओर ध्यान न दिए जाने का कारण जानना हो.तो भारतीय लोकतंत्र की चुनावी विवशता की मीमांसा और मतदान के केन्द्रों पर रखी मतपेटियों को खंगालना होगा। देश के जिस नागरिक या जिस समुदाय में देशभक्त बाद में, मतदाता पहले बनने की क्षमता होती है, भारत का राज्य, यहां की राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक दल उसी को प्राथमिकता देते हैं। भारत की राजनीति प्रक्रिया देशभक्त नहीं, केवल मतदाता निर्माण करती है। थोक वोट बैंक और अपने पक्ष में एकमुश्त मतदान कराने के लिए वह अल्पसंख्यक आयोग का निर्माण कराती है, उपासना स्थल (विशेष) कानून बनाती है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को कठमुल्लों के पक्ष में निरस्त कराती है। भारत के मुसलामनों को राष्ट्रीय धारा में शामिल होने से रोकती है। यही राजनीतिक मानस जामिया मिलिया इस्लामिया के प्रोफेसर हसन को सच बोलने की सजा दिलाती है, यही सुलेमान रूश्दी की पुस्तक 'शैतान की आयतों', पर रोक लगवाती और रूश्दी की हत्या करने के फरमान का स्वागत करती है। यही वह राजनीति है जो अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि

और श्रीराम का राजनीतिकरण करके उसे हिन्दू-मुस्लिम समस्या का रूप देती है और जब मुसलमान इस तथाकथित समस्या से स्वयं को मुक्त करने के लिए श्रीराम जन्मभूमि पर बने श्रीराम मन्दिर को हिन्दुओं को सौंपने के लिए आगे आते हैं तो उन्हें रोकती है कि वे वैसा न करें।

पच्चासी करोड़ की समस्या

कश्मीर अर्थात् भारत की अखण्डता तथा अस्मिता की रक्षा करनी है तो देश को इस राजनीतिक नपुंसकता से ही नहीं, सामाजिक और राष्ट्रीय उदासीनता से भी मुक्त करना होगा, तो राज्य को अपनी शक्ति का उपयोग करना होगा, तो संविधान को सर्वसामान्य के लिए सामान्यरूप से लागू करना होगा, तो देश के किसी भी भूभाग में रह रहे किसी भी समुदाय को मजहब के आधार पर विशिष्ट स्थान देने का सोच और प्रावधान समाप्त करना होगा, तब सम्पूर्ण देश को कश्मीर घाटी के लाखों विस्थापितों को केवल तीन या सात लाख नहीं, पच्चासी करोड़ मानना होगा। जिस दिन कश्मीर घाटी के तीन लाख विस्थापितों के साथ देश के पच्चासी करोड़ लोग एकजुट और एकात्म बनकर अपनी राष्ट्रीय पहचान का परिचय देंगे, उसी दिन वे अपने-अपने घरों में बिना किसी प्रयास के ही पुनः स्थापित हो जाएंगे। आज की समस्या केवल कश्मीर के हिन्दुओं की नहीं, भारत के पच्चासी करोड़ राष्ट्रीय समाज की समस्या है। कश्मीर घाटी के कुछ लाख मुस्लिम विस्तारवादियों का भारत के दस करोड़ मुसलमानों के रूप में दिखाई देना और भारत के पच्चासी प्रतिशत हिन्दुओं के रक्त-मांस तीन लाख कश्मीरी विस्थापितों का केवल तीन लाख बने रहना कश्मीर को आतंकवादियों को सौंपने की राजनीति विवशता बन गया है और यदि तीन लाख कश्मीरी हिन्दू विस्थापितों को देश के पच्चासी प्रतिशत हिन्दुओं के रूप में न देखा या उन्हें देश का पच्चासी प्रतिशत होना मानने के लिए मजबूर न किया गया तो एक दिन कश्मीर को एक स्वायत्तशासी इस्लामी राज्य मान लेना राष्ट्रीय विवशता भी बन जाएगी।

कांग्रेस की कोख से जन्मे देश के राजनेता, वामपंथी दल, राज्य व्यवस्था, सत्ता राजनीति, थोक वोट का लालच, यहां के बुद्धिजीवी, कश्मीर घाटी की मुस्लिम नौकरशाही, वहां का तथाकथित राजनीतिक नेतृत्व, पेट्रोडालर और अरब लीग आदि का संयुक्त अभियान कश्मीर को भारत से अलग करने की दिशा में बहुत ही तीव्र गति से बढ़ रहे हैं। राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करने के नाम पर भारत की नरसिंह राव सरकार कश्मीर मुस्लिम विस्तारवादियों को सौंपने और उसका इस्लामीकरण करने की छूट देने का मन बना चुकी है राजसत्ता और राजनीतिक प्रक्रियां कश्मीर अर्थात् राष्ट्र की रक्षा कर पाने में असफल हो रही है। अब परीक्षा है समाज की, सामाजिक समरसता, एकात्मता और मातृभूमि के प्रति उसके संवेदनात्मक समर्पण की, भारत की राष्ट्रीय जिजीविषा, चिति और चेतना की कि वह कदम-दर-कदम, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, भूमि

और भावना दोनों स्तरों पर इसी प्रकार भारत का पिटना और सिमटना स्वीकार एवं सहन करती रहेगी कि नपुंसक राज्य और राजनीति को उसके अपराधों का दण्ड देकर अपने उस अपराजेय राष्ट्रीय पौरूष को प्रकट करेगी तो यूनान, मिस्र और रोम आदि के मिट जाने के बाद भी हजारों वर्षों से जीवित-जाग्रत, दृश्यमान और वर्द्धमान है।

मैं पुनः दोहराता हूं कि कश्मीर अर्थात् भारत की राष्ट्रीय अखण्डता और अस्मिता की रक्षा करने की इच्छा शक्ति नरसिंह राव, उनकी इन्दिरा कांग्रेस और राजनीतिक सत्ता में नहीं है। वे पाकिस्तान स्वीकार कर लेने की तरह ही कश्मीर गवां कर शांति खरीदने का आभास देने की साजिश करने में लगे हैं।

7 जून, 1992

तीन बीघा

कोई बोल नहीं रहा है। सभी चुप थे। परेशान थी तो केवल भारतीय जनता पार्टी। हलचल थी केवल संघ परिवार में। समस्या थी भारत-बंगलादेश की सीमा पर स्थित तीन बीघा को बंगलादेश को नौ सौ निन्यानबे वर्ष के पट्टे पर सौंपे जाने सम्बन्धी समझौते के क्रियान्वयन की। 26 जून, 1992 को भारत की नरसिंह राव सरकार यह भारतीय भूखण्ड बंगलादेश को सौंपना चाहती थी। नरसिंह राव सरकार बंगलादेश से इसका मूल्य लेगी, एक रूपया प्रति वर्ग गज, प्रति वर्ष अर्थात् पन्द्रह हजार एक सौ तीस रूपए सालाना। अर्थात् इस भूखण्ड पर रह रहे बावन हजार भारतीयों के भविष्य का मूल्य हुआ पन्द्रह हजार एक सौ तीस रूपए प्रति वर्ष या बार सौ इकसठ रूपए प्रति माह। नौ सौ निन्यानबे वर्ष का पट्टा अर्थात् बंगलादेश की अघोषित सार्वभौम सम्प्रभुता की स्वीकृति।

बहाना बनाया गया 1958 में हुए जवाहरलाल नेहरू और फिरोज खां नून समझौते से लेकर 1982 तक इन्दिरा गांधी के साथ हुए समझौतों को प्रचारित किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय मान्य नियमों के तहत हमें इस समझौते को स्वीकार करना ही होगा। 1958 के प्रथम समझौते में जवाहर लाल नेहरू ने भारत के एक सौ छब्बीस अन्तः क्षेत्र अर्थात् इकतीस वर्ग मील भूमि फिरोज खां नून को देना स्वीकार की थी और यह भी निश्चय हुआ था कि पूर्वी पाकिस्तान का उन्नीस वर्गमील अन्तः क्षेत्र भारत को मिलेगा। क्योंकि नेहरू जी पाकिस्तान के प्रति बहुत ही सदाशय थे, इसलिए उन्होंने निर्विवाद भारतीय भूखण्ड दक्षिणी बेरूबारी का एक भाग भी पाकिस्तान को सौंप देने की हामी भर ली।

यह 1958 की बात है। तब भारतीय जनसंघ, भारत के सर्वोच्च न्यायालय और भारत की जनता ने इस समझौते का क्रियान्वयन नहीं होने दिया था। देश के कोने-कोने में नेहरू-नून समझौते का अग्निदाह किया गया था। भारतीय जनसंघ ने देशव्यापी आन्दोलन किया था कि 'रक्त देंगे, प्राण देंगे, बेरूबारी नहीं देंगे।' तब 1960 में नेहरू सरकार ने सर्वोच्च न्यायायल के उस निर्णय को, जिसमें कहा गया था कि भारत के किसी भी भू-भाग को किसी देश को सौंपने का अधिकार प्रधानमंत्री को

नहीं है, संविधान में संशोधन कर के निरस्त कर दिया था। किन्तु जन-न्यायालय का निर्णय उस संशोधन के विरूद्ध था। हजार कोशिशें कीं नेहरू जी ने, किन्तु बेरूबारी पूर्वी पाकिस्तान को नहीं दे पाए थे।

आज की स्थिति भी तब की स्थिति के समान ही थी। सभी कम्युनिस्ट पार्टियों, कांग्रेस और उसके वंशज राजनीतिक दल, क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक संस्थाएं बेचैन थीं कि कब 26 जून, 1992 आए, कब तीन बीघा का भारतीय भूभाग बंगला देश को पट्टे पर बेचकर अपनी अन्तरराष्ट्रीयता का प्रदर्शन करके भारत स्थित उन तत्त्वों को तुष्ट करे, जो यहां के चुनाव में थोक वोट माने जाते हैं जो अपने संख्या-बल के आधार पर भारत में सत्ता परिवर्तन अर्थात् सरकारें बनाने और गिराने का सार्वजनिक दावा करते हैं।

मैं पिता (नेहरू) और पुत्री (इंदिरा) द्वारा किए गए 1958, 1974 और 1982 के समझौतों के विस्तार में नहीं ज़ाता। क्योंकि इन सभी समझौतों का सार एक ही है—भारतमाता का मांस पाकिस्तानी और बंगलादेशी बकासुर को परोसना। इस कार्य में बाप से बेटी सवाई निकली। क्योंकि 1958 में भारतीय जनसंघ के नेतृत्व में संगठित होकर देशवासियों ने पं० नेहरू को बेरूबारी नून को सौंपने नहीं दिया था, इसलिए अपने पिता नेहरू के अपमान का बदला लेने के लिए बेटी इंदिरा ने मुजीब से गुपचुप समझौता कर लिया कि दाहाग्राम और अंगार पोता का वह भाग जिसे फिरोज खां नून ने भारत का भू-भाग माना था, को जोड़ने के लिए तीन बीघा क्षेत्र बंगलादेश को दे देगी। क्योंकि नरसिंह राव, नेहरू-इंदिरा और राजीव के सपनों का भारत साकार करने के लिए प्रतिबद्ध है, इसलिए वे तीन बीघा बंगला देश को सौंप कर केवल श्रद्धांजलि ही नहीं, इन तीनों की मृतात्मा को यह आश्वासन भी देना चाहते हैं कि भारत भूमि को छोटा करते रहने का उनका अधूरा कार्य पूरा करने का हर संभव प्रयास करते रहेंगे।

कांग्रेस पार्टी हो या कांग्रेसी और कांग्रेसी किसी भी दल में हों, किसी भी दल के हों, वामपंथी अर्थात् कम्युनिस्ट राजनीतिज्ञ हों, वामपंथी बुद्धिजीवी हों, श्रमजीवी हों, या किसी अन्य क्षेत्र में कार्यरत इनसे जुड़े लोग हों, वे घोषित भले ही न करें किन्तु उनके क्रियाकलाप भारत भूमि के प्रति उनकी मातृभक्ति-निरपेक्ष उपयोगितावादिता, देश की संस्कृति, परम्परा, इतिहास, राष्ट्रीय अखण्डता और एकता की वोट राजनीति संदर्भित मीमांसा, देश को जातियों, सम्प्रदायों, भाषाओं, रीति-रिवाजों के आधार पर विभिन्न राष्ट्रीयताओं में विभाजित करके देखना भारत की विधाता विहित विविधता को विभेद और भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयताएं मानना, अघोषित घोषणा है कि विशाल और विराट भारत को वे भारी बोझ मानते हैं।

'छोटा परिवार—सुखी परिवार' की तर्ज पर 'छोटा भारत—भला भारत', 'सीमित भारत—सुखी भारत' उनका अभीष्ट है। द्वारका से कामाख्या अथवा पेशावर से

प्राग्ज्योतिष और हिन्दूकुश से कन्याकुमारी तक विस्तृत भारत के विशाल भूभाग को वे अपनी सत्ता-राजनीति के लिए अभिशाप मानते हैं, देश जितना छोटा होगा समस्याएं उतनी कम होगीं। जितनी कम जनसंख्या उतनी कम परेशानी। अपनी परेशानी कम करने के लिए भारत को छोटा करना इनकी राजनीतिक-वंश परम्परा है अतएव तीन बीघा को पट्टे पर देने को इन सभी दलों और लोगों ने अपना सहज खानदानी दायित्व माना।

इसलिए परेशानी उन्हें नहीं, परेशानी उन्हें थी, जिनका राष्ट्रीय दायित्व और दाय उनसे भिन्न है, जिनके लिए विशाल भारत परेशानी का नहीं गौरव का विषय है।

'तीन बीघा' का संदर्भ एकदम नया नहीं था। यह उस संदर्भ का विस्तार था जिसके गर्भ से पाकिस्तान का बकासुर पैदा हुआ था। तीन बीघा एकांकी मामला नहीं था और न इस प्रकार की समस्या प्रथम बार प्रस्तुत हुई है। यह उस विकृत राष्ट्रीय अवधारणा, सत्तावादी राजनीतिक कपट और उन समस्त क्रियाकलापों का परिणाम था जिनके कारण भारतमाता के भूगोल को केवल रोटी, केवल भूख और केवल कुछ लोगों की भीड़ और केवल उस भीड़ के रूप में देखा गया, देखा जाता है, जो लोग भारत को, समय-समय पर यहां आए और बसते गए, अर्थात् 'कारवां आते गए और हिन्दोस्तां बसता गया' वाला मात्र इंडिया मानते हैं उनके लिए हजारों वर्ष के अज्ञात और ज्ञात अतीत का उत्तराधिकारी भारत का कोई अर्थ नहीं है। वे पश्चिम के उन लोगों के शब्द और अर्थ की दृष्टि से भारत की ओर देखते हैं जो विश्व सभ्यता और मानवी संस्कृति की यात्रा का आरम्भ अपने अक्षर ज्ञान के आरम्भ के साथ जोड़ते हैं, जो केवल लिखे गए को सभ्यता, संस्कृति और इतिहास मानते हैं, जिनके लिए अलिखित और मौखिक सम्प्रेषण का, शिल्प और कला का, तपस्या और समर्पण का, सृष्टि और सनातन के साक्षात्कार का कोई अर्थ नहीं है। जो किसी साक्षात् और जीवित व्यक्ति का जीवित होना तभी स्वीकार करते हैं जब कोई सरकारी अधिकारी, कोई न्यायाधीश, या कोई राजपत्रित कर्मचारी यह लिखे कि 'मैं प्रमाणित करता हूं कि 'अमुक' व्यक्ति जिन्दा है।' उनके लिए वह व्यक्ति पैदा ही नहीं हुआ होता जिसका नाम नगरपालिका या ग्राम सभा के रजिस्टर में दर्ज नहीं होता।

इन अक्षरियों की आंखें सत्य को केवल अक्षरों में देखती हैं, अनुभव और उसके साक्षात् स्वरूप में नहीं। यही कारण है कि भारत भूमि को वे बोझ समझते हैं। विशाल भारत उन्हें भारी लगता है। हज़ारों वर्ष पुराना इतिहास उन्हें पर्वत जैसा पोथा दिखाई देता है। भारत के अतीत को वे अभिशाप मानते हैं। यह सत्य उनके गले उतरता ही नहीं कि हम भारत के लोग हजारों वर्ष तक केवल वाणी से वैदिक ऋचाओं का सृजन और क़ेवल मस्तिष्क में उनकी स्मृति सुरक्षित रखते आए हैं।

वेदों की अपौरूषेयता का मर्म ये 'अक्षरदास' स्वीकार नहीं करते तो न करें किन्तु इस सृष्टि और कालसत्य को नकारा नहीं जा सकता कि भारत भूमि पर एक अति

प्राचीन राष्ट्र हजारों साल से अपनी अनन्त यात्रा पर है। उसी के बाद ब्रह्म और स्वर संवाद ने अक्षर और शब्द संसार की सृष्टि की है। यह अक्षर और शब्द सृष्टि भी भारत की चेतना और कर्म की भूमि पर ही सर्वप्रथम हुई है। यदि किसी की आत्महीनता उसे इस सत्य को स्वीकार न करने दे तो इसे हमारे इतिहास या हमारी अज्ञानता का दोष न माना जाए। भारत का सत्य 'कारवां आते गए, और हिन्दोस्तां बसता गया' नहीं, भारत बोध का यही अभाव भारत विभाजन का कारण बना था, इसी बोधबुद्धि के मद्धिम होने के साथ-साथ भारत का भूगोल समय-समय पर सिमटा और इसी के कारण प्रतिदिन 'तीन बीघा' हमारे सामने आकर खड़ा होता रहता है।

तीन बीघा केवल बंगलादेश और भारत की पूर्वी सीमा तक ही सीमित नहीं है। इसका व्यास लद्दाख और कश्मीर तक है। इसका सम्बन्ध केवल भूमि से नहीं, भावना से भी है। यह पौरूष और कायरता की कसौटी है। यह असंदिग्ध देशभक्ति और दाहक दासता का संधि-बिन्दु भी है। तीन बीघा देशमाता को उपयोगिता और उपभोग्य की वस्तु बनाने का कारखाना है। उपयोगितावाद के इसी कारखाने में पंडित नेहरू जैसे उन समस्त मनुष्यों का निर्माण हुआ है जो मातृभूमि की 'उपयोगिता' का आकलन वहां घास के उगने या न उगने के आधार पर करते हैं।

तीन बीघा उस पापी राजनीति के मृत्युलेख द्वारा हम भारत के लोगों को दिया गया, दाय दान है जिसने करोड़ों देशवासियों के साथ विश्वासघात करके लाखों देशभक्तों की हत्या कराकर देश की अधूरी आजादी को संपूर्ण होने का अहसास पाने का प्रयास किया था, जिसने अपनी कायरता को साम्प्रदायिक सद्भावना की पोशाक पहनाकर भारत को सदा-सर्वदा के लिए मजहबी और अल्पसंख्यकवाद की भट्ठी में जलने के लिए झोंक दिया था। तीन बीघा पाकिस्तान अधिकृत (गुलाम) कश्मीर को आजाद न करा पाने का ब्याज है। यदि ऐसा ही रहा तो अभी ऐसे अनेक भूखण्डों को 'तीन बीघा' बनना पड़ेगा जो पाकिस्तानी और बंगलादेशी बकासुरों के जबड़ों के समीप होंगे।

तीन बीघा स्थित मातृभूमि की संतानों को भारत माता की जय बोलने का केवल दण्ड ही नहीं दिया गया। अपितु यह उन समस्त भारत विरोधियों और देश के दुश्मनों को एक सबल संकेत भी था कि कुशल स्वाभिमान और सम्मान के साथ रहना है तो भारत की भूमि पर या भारत भूमि से अलग होकर स्वायत्तता या सार्वभौम भूखण्ड बनने का प्रयास करो। यह संकेत भारत की राष्ट्रीय अखण्डता और अस्मिता को चुनौती तो था ही, भारत की सीमा को समेटने का दुष्ट प्रयास भी था।

जो लोग अपनी निजी भूमि का इंच मात्र किसी को देने के लिए तैयार नहीं होते, जो अपना घर-द्वार अपने दिल में लिए घूमते हैं, उन्हें तीन-बीघा और वहां के बावन हजार भारतीयों के सम्मान का सौदा करने में तनिक भी दर्द, दुख या संकोच का अनुभव होता दिखाई नहीं दिया। उनके लिए संकुचित वे हैं जो देश की सीमा को

सिमटाने का विरोध करते हैं। उनके लिए वे देश विभाजक हैं जो पाकिस्तान और बंगलादेश सहित अखण्ड भारत का निर्माण करना चाहते हैं। उनके लिए वे साम्प्रदायिक हैं जो मजहब और सम्प्रदाय को नहीं, संस्कृति को राष्ट्र और राष्ट्रीयता का बीज मानते हैं। वे उन मजहबी अल्पसंख्यकों की मनुहार करते हैं, जिनके इस्लाम में राष्ट्रीय सीमाओं का कोई महत्व नहीं होता और जिसके अनुयायी मुसलमानों ने अपनी पहचान के लिए न केवल अलग-अलग राष्ट्र बना रखे हैं अर्थात् उसके विस्तार और वर्चस्व के लिए आपसी युद्ध भी करते हैं।

तीन बीघा बंगलादेश को दिया गया तो उसके साथ केवल कुछ वर्ग गज भूमि खण्ड ही नहीं, भारत की अखण्डता का एक टुकड़ा भी गया मानें। यह केवल अंगुली कटना नहीं, शरीर कटना है। जो लोग अुगंली को शरीर नहीं मानते, वे ही वे लोग हैं जिन्हें भारत भार लगता है। वे ही देशमाता को उसकी समग्रता में नहीं उसके अंग-अंग को पृथक्-पृथक् रूप में देखते हैं। वे ही भारत की संप्रभुता को राजनीतिक प्रक्रिया की सूली पर टांग कर समस्याओं का समाधान तलाशते हैं या समाधान हुआ मान लेते हैं।

26 जून 1992 को केवल तीन बीघा भूखण्ड और वहां के बावन हजार भारतवासियों के भाग्य और भविष्य का निर्णय करने का प्रयास ही नहीं किया गया, इस दिन एक बार पुनः हम भारत के लोगों की भारत भक्ति भी परखी गई। इतिहास पर दिखा, देशभक्ति की इस खराद पर खरा कौन उतरा? देशमाता शहीदी जत्थों में शामिल होने वाले अपने सपूतों को अपनी छाती से लगा ले और नरसिंह राव की संगीनों द्वारा उन्हें तीन बीघा में बिछी भारतमाता की गोद में अन्तिम रूप से सुला देने में तो कोई आश्चर्य नहीं, आश्चर्य तो होता कि भारत की जिस राज्य-व्यवस्था के राष्ट्रपति चीन के राष्ट्रपति और प्रधामंत्री के साथ चीन अधिकृत भारत की सीमा की चर्चा तक नहीं कर सके, जिस भारत की सरकार ने मध्यवर्ती राज्य तिब्बत पर चीन का अधिकार स्वीकार कर लिया, जो सरकार कश्मीर को आतंकवादियों को सौंपने का मन 'बना चुकी है, जिसने भारत भूमि पर एक और मुस्लिम राष्ट्र बनाने की आधारशिला रख दी है, वह तीन बीघा का पट्टा बंगलादेश को न देकर बंगलादेश को बता देती कि वह अपने घुसपैठियों को अमुक तिथि तक वापस बुला ले अन्यथा इसे भारत पर बंगलादेश का आबादी आक्रमण (Population aggression) मानकर जवाबी कार्रवाई की जाएगी।

बंगलादेश की प्रधामंत्री खालिदा जिया का दिल्ली आकर यह कहना कि भारत में एक भी बंगलादेशी घुसपैठिया नहीं है और भारत के प्रधानमंत्री का इस कथन को चुपचाप पचा जाना सुखद संकेत नहीं था। जो बंगलादेश म्यांमार (ब्रह्मदेश) से आ रहे केवल कुछ हजार मुस्लिम शरणार्थियों को शरण देने से कतरा गया। वही बंगलादेश चाहता है कि करोड़ों अवैध बंगलादेशियों को भारत अपना नागरिक मान

ले, कि भविष्य में भारत की भूमि पर एक और मुस्लिम राष्ट्र का निर्माण करने में मदद की जा सके। तीन बीघा पर भारत सरकार का पुनर्विचार और निर्णय यह निश्चित करेगा कि मजहब के आधार पर भारत का दूसरा विभाजन होगा कि रूकेगा।

तीन बीघा के संदर्भ में ये प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है कि क्यों कोई बोल नहीं रहा है। क्यों सभी चुप थे ? क्यों केवल संघ परिवार और भाजपा के लोग ही बेचैन थे। क्या वंश, वीर्य, रक्त, परम्परा, आत्मबोध, राष्ट्रबोध, भारतभूमि के प्रति संवेदना और अहसास के अन्तर के कारण? हम भारत के लोगों की देशभक्ति के रक्त के रंग की पहचान की तिथी थी 26 जून, 1992। प्रश्न पड़ोसी बंगलादेश को आवागमन के लिए केवल गलियारा देने का नहीं था। प्रश्न था एक-एक करके समूचे गांव (भारत) के लोगों को बकासुरों द्वारा निगल जाने से रोकने का।

14 जून, 1992

पापी ये नहीं हैं पापी हैं वे...

जाति और वर्ग-हीन, समता-ममता-युक्त, समरस-सम्प्रदाय- निरपेक्ष सर्वधर्म समभावी समाज और राष्ट्र की रचना भारत का घोषित लक्ष्य है। इस लक्ष्य का निर्धारण 15 अगस्त, 1947 या 26 जनवरी, 1950 को नहीं किया गया। ये भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जीवन का सहज स्वभाव है। भारत का यह स्वभाव किसी को बताना या बनाना नहीं पड़ा। इस देश ने व्यक्ति, समाज और सृष्टि को कभी टुकड़े-टुकड़े में देखा ही नहीं। भारत ने ही विश्व को व्यक्ति और उसकी समग्रता में, समाज को उसके सृष्टिगत दायित्व में, और सृष्टि को ब्रह्माण्ड के संदर्भ में देखने की दृष्टि का प्रथम दान दिया है। भारत विश्व को विधाता का दान है तो समग्र दृष्टि और दर्शन भारत की देन।

प्रगतिवाद का दंभ

आधुनिक बनने के नाम पर आज जो कुछ हो रहा है या जो कुछ सामाजिक , सांस्कृतिक, शैक्षणिक, साम्प्रदायिक और राजनीतिक स्तर पर किया जा रहा है वह भारत के सामाजिक मन द्वारा संस्थाओं--व्यक्तियों के लिए निर्धारित चरम लक्ष्य के सर्वथा विपरीत है। विकास के नाम पर विकारों और विकृतियों को प्रोत्साहन, सामाजिक जीवन में जाति का जहर घोलकर, जातीय अहंकार जाग्रत करके जाति विहीन समाज का निर्माण करने का पाखंडपूर्ण प्रयास करना, साम्प्रादायिक कटुता और मुल्लावाद को बढ़ावा देकर सम्प्रदाय निरपेक्ष होने का दम्भ भरना, देश की अर्थव्यवस्था को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोश का मोहताज बना देने को आर्थिक आत्मनिर्भरता का अनुष्ठान बताना, स्वदेशी मन और आचरण को प्रतिगामी और विदेशी प्रभाव को प्रगति का प्रतीक एवं परिचायक मानने की मानसिकता उत्पन्न करना ही आज का यथार्थ है। इस आधुनिकतावाद की परिभाषा में हमारा अपना राष्ट्रीय समाज आज भी अंधे युग में रह रहा माना गया है।

कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि सभ्यता के विकास में भारतीय वांड.मय, दर्शन, संस्कृति, समाज और व्यक्ति का मानो कोई योगदान है ही नहीं। इस देश की कुण्ठामुक्त सामाजिकता को कुण्ठाग्रस्त बनाने का हर संभव प्रयास किया जाता है।

भारत की संस्कृति को सम्प्रदाय के समानान्तर खड़ा करके धर्म को मजहब और मजहब को राष्ट्रीयता का आधार मानकर आधुनिक भारत राष्ट्र के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया चलाई जाती रही है।

इस कार्य में संविधान भी सहायक है और संसद भी। इसे राजनीतिक दल भी बल प्रदान कर रहे हैं और बुद्धिजीवी भी। चिन्तन और चरित्र के स्तर पर रीत गया सा लगता है अपना देश। ऐसा लगता है कि यह कपिल, कणाद्, गौतम और विवेकानन्द का देश है ही नहीं। यह भी है कि मानो यह देश किसी का नहीं है। यहां सभी बाहर से आए हैं। सभी बाहरी हैं, सभी आक्रमणकारी हैं। इसलिए जिसके हिस्से में जो कुछ आता है उस पर अधिकार कर लेता है। जिसे कुछ विशेष नहीं मिल पाता, अपना हिस्सा प्राप्त करने के लिए अभियान या आन्दोलन चलाने को राष्ट्रीय कर्तव्य मानता है। यहां के प्रत्येक नागरिक, प्रत्येक संस्था और प्रत्येक सम्प्रदाय की अलग-अलग राष्ट्रीयता को स्वीकृति ही नहीं बल भी प्रदान करना उदारता और सेकुलर होना माना गया है। अपनी विकृतियों को ही जीवन का यथार्थ मानकर आत्मप्रतारणा और आत्मनिन्दा करते रहकर राष्ट्रीय सद्‌गुणों और संस्कृति को नकार देना आधुनिक रिवाज बनता जा रहा है।

यह सब जो अब तक कहा है इस अमूर्त्त स्थापना को मूर्त्त में देखने की इच्छा हो सकती है, अर्थात् हम कह सकते हैं कि कोई उदाहरण देकर इसकी पुष्टि की जाए। दिन-प्रतिदिन के अनुभव को यद्यपि उदाहरण और प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, तो भी राष्ट्र जीवन के किसी भी क्षेत्र में झांक कर देखने से उसकी झलक मिल सकती है। एक उदाहरण है भावी राष्ट्रपति की चुनाव प्रक्रिया से जुड़ी बातों का, एक संदर्भ है बोध गया का, एक प्रसंग है जामिया मिलिया इसलामिया के मुशीरुल हसन का, एक प्रमाण है पटना के खुदा बख्श पुस्कालय के निदेशक का, एक प्रश्न है अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के याह्या खां का।

भारत का राष्ट्रपति राष्ट्र का सांविधानिक प्रमुख होता है। वह राष्ट्रीय एकता का प्रतिनिधित्व करता है। उसे जाति और सम्प्रदायनिरपेक्ष ही नहीं दल निरपेक्ष भी होना चाहिए। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम की क्षेत्रीय मानसिकता से उसे मुक्त होना चाहिए। किन्तु हो रहा है ठीक इसके विपरीत। देश के पूर्व प्रधानमंत्री, सामाजिक न्याय के 'योद्धा', जातिविहीन और समतायुक्त समाज को अपनी राजनीति की मुख्य धुरी घोषित करने वाले राजनेता विश्वनाथ प्रताप सिंह ने घोषणा की कि यदि उसके जनता दल ने किसी अनुसूचित जाति के व्यक्ति को राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी न बनाया तो वह लोकसभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे देंगे। भारत के एक दूसरे वयोवृद्ध, पूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी भाई देसाई ने सामाजिक न्याय के लिए किसी पिछड़े वर्ग के व्यक्ति का राष्ट्रपति चुना जाना आवश्यक माना। उनका मानना है कि जब तक पिछड़े वर्ग का कोई व्यक्ति राष्ट्रपति नहीं बनाया जाएगा पिछड़ेवर्ग में विश्वास नहीं जगाया

जा सकता।

झूठी शपथें

ये सभी लोग भारतीय संविधान के प्रति प्रतिबद्ध होने का दावा करते हैं। बार-बार अवसर खोजकर ही नहीं अवसर बनाकर भी संविधान और राष्ट्रीय एकता की शपथ लेते हैं। कभी गांधी जी की समाधि पर जाकर तो कभी इन्दिरा और राजीव की मजार पर, कभी संसद में तो कभी सरकारी दफ्तरों में यह प्रतिज्ञा कर्मकाण्ड चलता ही रहता है। इन प्रतिज्ञाओं शपथों की शब्द रचना देखिए।

"मैं सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूं कि देश की आजादी तथा एकता बनाए रखने और उसे मजबूत करने के लिए समर्पित होकर कार्य करूंगा।"

"मैं यह भी प्रतिज्ञा करता हूं कि कभी हिंसा का सहारा नहीं लूंगा और धर्म, भाषा, क्षेत्र से सम्बन्धित भेदभाव, झगड़ों और अन्य राजनीतिक या आर्थिक शिकायतों का निबटारा शांतिपूर्ण तथा सांविधानिक तरीकों से करने के लिए प्रयास करता रहूंगा"

(19 नवम्बर, 1991)।

"हम भारत के लोग अपने देश की अहिंसा और सहिष्णुता की परम्परा में अटूट विश्वास रखते हुए सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करते हैं कि हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सभी प्रकार के आतंकवाद और हिंसा का प्रतिरोध करेंगे। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सभी मनुष्यों के बीच शांति, सामाजिक समरसता और सहमति बनाए रखेंगे और उसका प्रोन्नयन करेंगे तथा मानव जीवन और मूल्यों के लिए खतरा पैदा करने वाली विध्वंसक शक्तियों से संघर्ष करेंगे।"

(21 मई, 1992)

ये ही नहीं, इसी प्रकार के और भी संकल्प, शपथ और प्रतिज्ञाएं हैं। किन्तु इसका परिणाम? इन शपथों का सार्थक क्रियान्वयन? ये प्रश्न इन संकल्प और शपथ लेने वालों के लिए असुविधाजनक हैं। ये लोग जिस भारतीय संविधान की शपथ लेते हैं उसमें राष्ट्रपति का चुनाव दलीय आधार पर किए जाने का प्रावधान नहीं है। राष्ट्रपति के पद की अर्हताओं में यह नहीं लिखा गया है कि उसके निर्वाचन में मजहबी, जातीय, भाषाई और क्षेत्रीय संतुलन का विचार किया जाए। किन्तु यह हो रहा है। हाथ में संविधान लेकर उसकी रक्षा करने के लिए जाति, मजहब और क्षेत्र के आधार पर राष्ट्रपति की खोज की जाती है। कहा गया है कि देश की एकता बनाए रखनी है तो यदि राष्ट्रपति उत्तर भारत का हो तो उप-राष्ट्रपति दक्षिण भारत का होना चहिए। यदि राष्ट्रपति हिन्दू हो तो उप-राष्ट्रपति का अल्पसंख्यक विशेषकर मुसलमान होना आवश्यक है। यदि उप-राष्ट्रपति सवर्ण हो तो राष्ट्रपति अनुसूचित जाति का होना ही चाहिए। दोनों में से किसी एक का अंग्रेजी भाषी होना आवश्यक है। क्या

यह देश की समान नागरिकता की सांविधानिक अवधारणा के अनुरूप है? क्या यह राज्य की पंथ-निरपेक्षता के साथ सुसंगत है? क्या इस प्रक्रिया में जातिविहीन, सम्प्रदाय निरपेक्ष और समरस राष्ट्र-राज्य का निर्माण करने का तत्त्व निहित है? क्या जातीय और क्षेत्रीय, मजहबी और भाषाई अहसास, अहंकार और अभिनिवेश जाग्रत करके समता और ममता से युक्त समाज का निर्माण किया जा सकता है? विश्वनाथ प्रताप हों, मोरारजी देसाई हों, या अर्जुन सिंह क्या इनकी घोषणाओं से जातीय और साम्प्रदायिक कटुता और शत्रुता का जन्म और उसे बल प्राप्त नहीं होता? क्या राज्यव्यवस्था को जातियों में बांटा जाएगा? क्या समाज को जातियों में बांट कर राष्ट्रीय एकता, एकात्मता, का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा? क्या एकता और आतंकवाद से संघर्ष कर पाना सम्भव है?

राष्ट्रपति चुनाव ही नहीं बोधगया के संदर्भ में भी यही किया गया। विश्वनाथ प्रताप जैसे नेता तथा जनता दल सरीखे दल ने उसका समर्थन किया। बोधगया साम्प्रदायिक और कर्मकाण्डिक सह-अस्तित्व का एक अप्रतिम प्रतीक और प्रमाण है। वहां प्रतिष्ठित गौतम बुद्ध की पूजा सनातनी अपनी पद्धति से और बौद्ध अपनी पद्धति से करते आए हैं। इस परम्परा का बारह-तेरह सौ वर्षों का ज्ञात इतिहास है। गौतम बुद्ध को हिन्दू समाज ने भगवान के केवल दशावतारों में ही नहीं अपने संकल्प-मंत्र में भी शामिल किया है। जैसे पितामह भीष्म को पिण्डदान दिए बिना पितरों का श्राद्ध फलित होना नहीं माना जाता, ठीक उसी प्रकार बुद्ध भगवान का उच्चारण किए बिना संकल्प-मंत्र पूर्ण नहीं होता। किन्तु गत 16 मई, 1992 को भगवान बुद्ध के कुछ नव-भक्त महाराष्ट्र से बोधगया गए, वहां तोड़फोड़ की और यह घोषणा की कि इस मन्दिर में केवल बौद्धों को ही पूजा करने का अधिकार होना चाहिए, हिन्दुओं को कोई अधिकार नहीं है कि वे यहां आए, पूजा करें, प्रसाद और दक्षिणा लें।

यह घटना एकदम नवीन लग रही होगी, किन्तु नवीन है नहीं। इसके पीछे भी वही राजनीतिक कुटिलता और षड्यन्त्र है जिसके कारण 1947 में भारत का विभाजन हुआ था। घटना सन् 1919 की है। अंग्रेजों ने श्रीलंका के बौद्ध भिक्षु अनागृक को बोधगया बुलाया। उनके नेतृत्व में महाबोध सोसायटी का गठन कराया। सारनाथ में भी एक कुटी बनवाई। भिक्षु अनागृक के नेतृत्व में आन्दोलन चलवाया कि बोधगया केवल बौद्धों का है, अतएव इस पर केवल बौद्धों का ही अधिकार होना चाहिए। सन् 1919 से 1921 तक यह आन्दोलन चला। फलस्वरूप, सर्वसम्मति से आठ व्यक्तियों की एक समिति बनी, जिसमें चार सनातनी हिन्दू और चार बौद्ध भिक्षु हिन्दू शामिल किए गए। इस प्रकार लगभग सात सौ वर्षों से चले आ रहे सनातनी बौद्ध सह-अस्तित्व को बचा लिया गया। सनातनी पूजा और बौद्ध अर्चना अलग-अलग पद्धति से साथ-साथ चलती रही। अब पुनः आन्दोलन प्रारम्भ किया गया है कि बोध

गया स्थित बुद्ध मन्दिर में हिन्दुओं का प्रवेश वर्जित घोषित किया जाए । यह मांग कर रहे हैं महाराष्ट्र के जातिवादी और राजनीतिक नवबौद्ध, और इसका सर्मथन किया वोटवादी विश्वनाथ प्रताप एवं लालू यादव सहित उन समस्त सेकुलरिस्टों ने जो मजहब और कर्मकाण्ड, जाति और सम्प्रदाय निरपेक्ष राज्य-राष्ट्र का निर्माण करने की दिन-रात जागते-सोते शपथ लेते रहते हैं। इनको बोधगया में कर्मकाण्डीय और सनातनी-बौद्ध सह-अस्तित्व रास नहीं आता लेकिन अयोध्या में मन्दिर-मस्जिद की साझी दीवार होने की वकालत करते नहीं थकते। मन्दिर-मस्जिद की दीवार एक होना ये लोग सांप्रदायिक सद्भाव के लिए आवश्यक मानते हैं, किन्तु जहां बौद्ध और सनातनी सैकड़ों वर्षों से साथ-साथ पूजा करते आ रहे हैं उसे एक जाति और पंथ विशेष को सौंपने के घातक आन्दोलन का ये लोग विरोध नहीं करते।

उदार मुस्लिमों का अपराध

इसी प्रकार का उदाहरण है जामिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हसन, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के याह्या खां और पटना के खुदाबख्श पुस्कालय के निदेशक का। क्या अपराध किया है इन मुस्लिम प्राध्यापकों एवं बुद्धिजीवियों ने। यही कि पहले का कहना था कि सलमान रुश्दी के उपान्यास 'शैतान की आयतों' पर प्रतिबन्ध न लगाकर यदि उसे सबके लिए उपलब्ध कराया गया होता तो अच्छा रहता,तो इतनी गलतफहमी न फैलती। दूसरे ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की कार्यशैली पर निराशा व्यक्त करते हुए कहा था कि यदि इसे सुधारा न गया तो यह महान संस्था नष्ट हो जाएगी और तीसरे का कहना था कि कुरान में लिखे गए 'काफिर' शब्द का सही-सही अर्थ नहीं किया जाता या किया गया है। बस, मात्र इतना ही उनकी मौत और विश्वविद्यालय से निष्कासन का फतवा जारी करने के लिए पर्याप्त था। केवल इसी कारण विश्वविद्यालय के मुस्लिम छात्रों ने सिर पर कफन बांध लिया कि या तो इन प्राध्यापकों को विश्वविद्यालय से निकाल दिया जाए अन्यथा वे विश्वविद्यालय चलने नहीं देंगे। काफिर शब्द की परिभाषा और अर्थ के यथार्थ को लेकर मुस्लिम मुल्लावाद इतना मुखर हुआ कि बेचारे निदेशक को कहना पड़ा कि उनके कहने का अर्थ यह नहीं, वह था, ऐसा नहीं, वैसा था। जामिया मिलिया के मामले में विश्वनाथ प्रताप ने अपना राजनीति छौंक लगाया कि प्रोफेसर हसन के त्याग पत्र देने से ही यह समस्या सुलझ सकती है। विश्वनाथ प्रताप सिंह से पूर्व अब्दुला बुखारी का फरमान था कि प्रोफेसर हसन को इस्लाम की तौहीन करने की सजा मिलनी ही चाहिए। बुखारी की इस घोषणा का सर्मथन विश्वनाथ प्रताप ने ही नहीं, नरसिंह राव सरकार के वाणिज्य उप-मंत्री सलमान खुर्शीद ने भी किया। जामिया मिलियां की इस घटना के संदर्भ में आयोजित एक गोष्ठी में उन्होंने घोषणा की कि, 'प्रोफेसर हसन को अपनी 'उदारता' की सजा भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

प्रोफेसर याह्या खां को अलीगढ़ विश्वविद्यालय से त्यागपत्र देना पड़ा और पता नहीं मुस्लिम मुल्लावाद संतुष्ट हुआ कि नहीं, किन्तु पुस्तकालय के निदेशक को माफी मांगने और सफाई देने के लिए झुकना पड़ा।

मुस्लिम कठमुल्लापन, कट्टरपंथिता और मजहबी आतंकवाद पर आमतौर से मौन रहने और विश्वनाथ प्रताप सरीखों का विशेषतौर से उसके पक्ष में मुखर होने का अर्थ क्या है? क्या यह सम्प्रदाय निरपेक्ष राष्ट्र-राज्य को बल प्रदान करने की नीयत या प्रयास का प्रमाण है?

अंग्रेजों का पाठ

स्पष्ट है, देश की आजादी के पैंतालीस वर्ष बाद भी कांग्रेसी बीज से और कांग्रेस वंश में जन्मे राजनेता और राजनीतिक दल अभी तक अपने मानस पिता अंग्रेजों द्वारा पढ़ाया गया पाठ ही रट रहे हैं। अभी तक उन्होंने भारत के राष्ट्र जीवन के महाकाव्य के सर्ग पढ़ना प्रारम्भ ही नहीं किया। उनका ज्ञान अभी तक अंग्रेजों की किताबों तक सीमित है। अंग्रेजों द्वारा बनाई गई फाइलें पढ़-पढ़कर ही ये लोग भारत को परखने, पहचानने और उसकी एकता एकात्मता का सूत्र तलाशने का प्रयास करते हैं। इनकी सेकुलरिटी अपने भारत के तपोवन के तपःपूत ज्ञान और अनुभूति में से नहीं, गोरी चमड़ी वालों के चर्च और उसके संघर्षों के समरभूमि से पैदा हुई है। जातीय कटुता और मजहबी शत्रुता, अंग्रेजी राज्य की मुख्य भूमि थी। कांग्रेसी राजनीति भी इसी भूमि में उपजी है, वहां की हर उपज साम्प्रदायिक विद्वेष और जातिवादी जहर से मिली होती है।

भारत राष्ट्र और समाज की विकृतियों को दूर करने का प्रत्येक प्रयास स्वागत योग्य है। सिद्धार्थ-गौतम के पूर्व और उनके पश्चात् तक सामाजिक सुधार के जितने भी आन्दोलन और अनुष्ठान किए गए हैं, सभी का लक्ष्य हिन्दू समाज को ही शुद्ध करने और सुधारने का रहा है। सामाजिक विकृतियों को दूर करने के लिए सामाजिक क्रांति की अन्तर्धारा हिन्दू समाज में अटूट है। भारत को सुधारने और बलवान बनाने का तरीका वह नहीं है जो विश्वनाथ प्रताप, लालू यादव, अर्जुन सिंह, नरसिंह राव या कांग्रेसी प्रसूति गृह में जन्मे-पले और बढ़े लोग अपनाते हैं। इसका तरीका है सभी का असंदिग्ध निष्ठावाले किसी ऐसे केन्द्र का निर्माण,जिसे किसी शर्त, किसी स्वार्थ, किसी समय या संधि का शिकार न बनाया जा सके। निश्चित ही यह केन्द्र कोई एक मजहब, कोई एक व्यक्ति, कोई एक पुस्तक, कोई एक व्यवस्था, कोई एक जाति, पंथ, सम्प्रदाय, क्षेत्र या कोई दल विशेष नहीं हो सकता। इस एकान्तिक श्रद्धा का एकमेव केन्द्र यदि कोई है, यदि किसी को यह केन्द्र बनाया जा सकता है तो वह है हमारी भारतमाता। देवपुरुष विवेकानन्द और महर्षि श्री अरविन्द ने जिस जीवित-जाग्रत मां भगवती का साक्षात् दर्शन किया था, उसी भारत माता को अपनी श्रद्धा के सिंहासन

पर प्रतिष्ठित करके उसके प्रति सर्वभावेन समर्पित हुए बिना राष्ट्रीय सहोदरता की, समरसता की, एकता-एकात्मता की अनुभूति कर पाना सर्वथा असम्भव है।

अपनी जननी की गोद को ठुकराकर, अपनी मां को मां न मानकर, हम किसी कुलटा की गोद में बैठने का जो कपूत कार्य करते आ रहे हैं उसी का परिणाम है बोधगया। यही है हमारे सह-अस्तित्व पर किए गए आक्रमण का मर्म, इसी कारण हम गौतम बुद्ध की प्रतिमा पर जाति-जहर का लेपन करके सामाजिक न्याय करने का संतोष मान रहे हैं।

अपनी जन्मदात्री के प्रति सहोदरों की उदासीनता और माता-संतान सम्बन्धों की विस्मृति हमसे श्रीराम मन्दिर पर मस्जिद बनी रहने या मन्दिर-मस्जिद की दीवारें साझी बनाने और हिन्दू मुस्लिम सह-अस्तित्व की आवश्यकता की घोषणाएं करवाती है, बिना यह जाने-परखे-पूछे कि दोनों (हिन्दू-मुस्लिम) क्या एक साथ, एक ही समय, अथवा अलग-अलग समय भी एक ही भूमि पर अपने-अपने आराध्य की आराधना करने के लिए सहमत होंगे? हिन्दू समाज सम्भवतः मुहम्मद साहब को ग्यारहवां अवतार स्वीकार कर लेगा, किन्तु क्या मुसलमानों में भारत के श्रीराम को दूसरा पैगम्बर मानने का साहस अथवा तैयारी है? जहां-जहां और जिस-जिस स्तर पर भारत का राष्ट्रीय समाज एक ओर एकात्म है, भावना और भौतिकता की जिस-जिस भूमि पर वह सदियों से साथ-साथ सहज भाव से रहता आ रहा है, उस भूमि को मोड़कर गड्ढा बना देने का अर्थ क्या है ?

यह सोच और कार्यशैली देश और समाज को तोड़ तो सकती है किन्तु किसी समरस, एकात्म, समता और ममता से भरे भारत का निर्माण नहीं कर सकती। यह सोच विभाजन की भूमि में से जन्मी फसल का विषान्न है, इसमें राष्ट्रीय चिति, भावात्मक, भौतिक और भौमिक संवेदना का प्राणतत्व नहीं है। दलीय और निजी स्वार्थ में पगा यह सोच सत्तावादी वोट राजनीति की समय साक्षेप मंजिल तक तो ले जा सकता है किन्तु किसी काल निरपेक्ष चिरन्तन राष्ट्र की सिद्धि नहीं कर सकता।

भारत में अलगाव और आतंकवाद का ज्वालामुखी इस देश की सहज प्रवृत्ति के कारण नहीं उपरोक्त नेताओं और कांग्रेस के वंशजों की प्रवृति के कारण दहक रहा है। कांग्रेसी कूड़े में पल रहे कीड़ों ने ही देश को कतर-कतर कर पोला बनाया है, वही कीड़े अपना पेट भरने, अपना स्वार्थ साधने के लिए देशमाता को काटते रहते हैं। इसीलिए डा० राममनोहर लोहिया के इन शब्दों को साक्षी मान लेने का मन करता है कि, 'इस देश को भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता, अनैतिकता, विश्वासघात, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, दंगा-फसाद, भाषावाद और अलगाववाद के कीड़ों से मुक्त करना है तो कांग्रेसी कूड़े को उठाकर या तो समुद्र में फेंक देना पड़ेगा, या इसे इतना गाड़ना पड़ेगा कि फिर कभी उसका रेशा ऊपर न आ सके।'

कांग्रेसी संस्कृति

अतएव यह अनुभव का निष्कर्ष है कि जब तक कांग्रेस की राजनीतिक संस्कृति, कांग्रेसवंशी राजनीतिक दल और नेता रहेंगे, तब तक देश की एकता, एकात्मता, सामाजिक, सांप्रदायिक समरसता और अखण्डता पर प्रश्न चिन्ह लगा रहेगा। कांग्रेसी, कांग्रेसी संस्कृति और विश्वनाथ प्रताप सिंह जैसे सेकुलरिस्टों का प्राणतत्व देश को जाति, सम्प्रदाय, भाषा और क्षेत्र तोड़ते रहने की प्रक्रिया में निवास करता है। गलती उनकी नहीं है, वे तो अपना परम्परागत सहज कर्म कर रहे हैं। गलती और अपराध उनका है जो इस धारा से भिन्न विधाता द्वारा प्रदत्त भारत के प्राण तत्व से जुड़े हैं, जिन्होंने भारत की मनीषा के अनुरूप आज से सर्वथा भिन्न एक वैकल्पिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक धारा का निर्माण करने का संकल्प धारण किया है। इसे ऐसा समझें कि यदि शेर गाय का शिकार करके उसका मांस खाए या कसाई गोहत्या करे तो उसको पाप नहीं लगता, गोहत्या का पाप केवल गोभक्तों को ही लगता है। दोनों के सहज कर्म और स्वभाव भिन्न होते हैं। स्वभाव से विपरीत, विरुद्ध या विरत होना अपराध और पाप है। भारत माता को काटने-बांटने का पाप कांग्रेसी कुनबे को नहीं लगेगा, वह तो पाप की भूमि में ही फलता-फूलता आ रहा है, पापी वे हैं और होंगे, जो स्वयं को भारतमाता की सन्तान मानते हैं, जिन्हें मातृभूमि की जीवित जाग्रत अखण्ड सत्ता में विश्वास है, जिन्होंने मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग करने का संकल्प ले रखा है और जो फिर भी अपनी मां को अपमानित होते मौन मन एवं क्लीव भाव से देखते रहते हैं।

21 जून 1992

विश्वास और विश्वसनीयता का संकट

उत्तर प्रदेश के प्रशासनिक अधिकारी अपनी प्रतिष्ठा के 'गृह्युद्ध' में उलझे हुए हैं। बात केवल अधिकार-सीमा या प्रामाणिकता की ही नहीं,, विश्वसनीयता की भी है। पुलिस प्रशासन को नीचा दिखाने के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों ने तुरूप चाल चली। सन् 1990 में श्री लाल कृष्ण आडवाणी की सोमनाथ से अयोध्या रथ यात्रा के पहले और बाद में हुए दंगों का दोषी तलाशने के लिए मुलायम सिंह सरकार ने गुप्तचर विभाग से जांच कराने का आदेश दिया था। पता चला कि गुप्तचर विभाग ने सरकार के विचारार्थ रपट प्रस्तुत की। चर्चित रपट पर अभी विचार हुआ भी नहीं था कि वह समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गई कि दंगे श्री आडवाणी की रथयात्रा के कारण भड़के थे।

विवाद का मुद्दा रपट का दंगा-जनित निष्कर्ष नहीं, रपट का प्रकाशन बना कि उक्त गोपनीय रपट को किसने प्रकाशित कराया ? विवाद प्रशासनिक और राजनीतिक सीमा से बाहर निकलकर न्यायालय में चला गया। जिस समाचार पत्र में उक्त रपट के अंश प्रकाशित हुए थे, उससे न्यायालय में जवाब-तलब किया जाएगा कि वह रपट से सम्बन्धित अपने समाचार का स्रोत और सूत्र बताए कि दोषी का पता चले और उसे दण्डित किया जा सके।

यह मामला न्यायालय में से लाकर पुलिस महानिदेशक ने केवल समाचार पत्र के सम्पादक और सम्वाददाता को ही नहीं, मुख्यमन्त्री सहित भारतीय प्रशासनिक सेवा के उन समस्त अधिकारियों को कटघरे में खड़ा कर दिया है जो मुख्यमंत्री के अंतरंग एवं विश्वस्त समझे और माने ही नहीं जाते, विश्वस्त भी है। पुलिस महानिदेशक ने केवल अपना पक्ष स्पष्ट करना चाहा है किन्तु इस प्रक्रिया में कई चेहरे उघड़ सकते हैं, कई रहस्योद्घाटन हो सकते हैं।

रहस्योद्घाटन हो, भारतीय प्रशासनिक सेवा और पुलिस प्रशासन के अधिकारियों के चेहरे उजागर हों, यह आवश्यक है, किन्तु इस प्रक्रिया में किसी समाचार पत्र, किसी सम्पादक और किसी सम्वाददाता को निशाना बनाया जाना सर्वथा अनुचित है। समाचार का लेखन और प्रकाशन करना अपराध नहीं, अभिनन्दनीय कार्य है। सरकारी गोपनीयता के लौह कवच का भेदन करने के साहस और कौशल के लिए तत्सम्बन्धी सम्वाददाता दण्ड का नहीं, साधुवाद का अधिकारी है। दण्ड के अधिकारी हैं वे, जिनके

कारण शासन के न चाहते हुए भी वह रपट सम्वाददाता को मिली। इसका पता लगाने के लिए किसी समाचार पत्र को न्यायालय में घसीटने की आवश्यकता नहीं थी।

विवाद का व्याप

उत्तर प्रदेश में उभरा यह विवाद केवल लखनऊ तक ही सीमित नहीं है, इसमें केवल कुछ प्रशासनिक अधिकारियों और राजनीतिक नेतृत्व के सम्बन्धों और कार्य प्रणाली का प्रश्न भी निहित है। यह विवाद उस सरकारी गोपनीयता अधिनियम की भी शव-परीक्षा किए जाने के लिए प्रेरित करता है जिसके कारण देश उन अनेक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने से वंचित रह जाता है, जिन्हें उसे जानना चाहिए। यह अधिनियम भारत के राष्ट्रीय विवेक पर अविश्वास का परिचायक है। देश की सुरक्षा और प्रतिरक्षा का दायित्व केवल सरकार का, केवल राजनीतिक नेतृत्व का या केवल सरकारी अधिकारियों और सेना का ही नहीं, देश की जनता का भी है। देशवासियों को आमतौर से अपने इस दायित्व का बोध है कि राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित तथ्यों को गोपनीय ही रखना होता है, किन्तु यह कैसी गोपनीयता है जो देशवासियों, अपने देश और समाज के दुश्मनों एवं अपराधियों की जानकारी नहीं होने देती, जो साम्प्रदायिक सद्भाव को नष्ट करने वालों के चेहरों पर नकाब डालने का कार्य करती है, जो दंगाइयों को संरक्षण देती है, जो अकाल और सूखे में मर गए लोगों की मौत का कारण छिपाती है और जिसका उपयोग अपने प्रतिद्वन्द्वियों का भयादोहन करने के लिए किया जाता है।

यदि गुप्तचर विभाग ने 1990 में हुए दंगों का कारण श्री आडवाणी की रथयात्रा माना था तो इसे छिपाने की आवश्यकता नहीं थी, आवश्यकता थी और आज भी है इस पर सार्वजनिक बहस करने की। उत्तर प्रदेश और देश में दंगे पहली बार 1990 में नहीं हुए थे, दंगों के पीछे एक लम्बा सिलसिला, एक विशिष्ट मजहबी मानसिकता, एक विशिष्ट राजनीतिक योग है। देश की आजादी के समय हुए दंगे और रक्तपात के समय किस आडवाणी ने कहां से कहां तक की रथयात्रा की थी ? किस आडवाणी या किस जनसंघ या किस भाजपा, किस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, किस विश्व हिन्दू परिषद्, किस बजरंग दल या किस कार सेवा अभियान ने सुहरावर्दी को बंगाल में सीधी कार्रवाई की धमकी देने और रक्तपात कराने के लिए उकसाया था ? किस राम आन्दोलन ने जिन्ना और मुस्लिम लीग को देश का विभाजन कराकर एक अलग सार्वभौम मुस्लिम राष्ट्र बनाने के लिए खंजर और खून की राजनीति को बल प्रदान किया था। यदि 1990 में हुए दंगों की रपट सामने आ जाती तो उसके कारण कोई भूचाल नहीं आने वाला था। उसके कारण होता यह कि प्रशासन और राजनीतिक नेतृत्व का चरित्र उजागर हो जाता और प्रशासन तथा शासन की बपौती तोड़कर तथ्यों की तलाश में देश का आम आदमी भी शामिल हो जाता।

यह एक शुभ संकेत है कि सरकारी गोपनीयता अधिनियम की सार्थकता और निरर्थकता का प्रश्न एक बार पुनः उभरा और उस भारतीय जनता पार्टी द्वारा शासित राज्य में उभरा जिसके नेता इस अधिनियम में संशोधन किए जाने की मांग करते आए हैं। लोकसभा में विपक्ष के नेता श्री लालकृष्ण आडवाणी एक बार नहीं, अनेक बार यह घोषणा कर चुके हैं कि जानकारी प्राप्त करने का अधिकार संविधान के मौलिक अधिकारों में शामिल किया जाना चाहिए। फिर उत्तर प्रदेश में यह चीखपुकार, मुकदमेबाजी और प्रशासनिक प्रतिद्वन्द्विता क्यों ?

उत्तर कहीं और

इस प्रश्न का उत्तर कहीं और है और वहां तक कोई, विशेषकर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री और दूसरे नेता जाना नहीं चाहते। गोपनीयता अधिनियम की समाप्ति अथवा उसमें संशोधन करना राज्य सरकार की अधिकार सीमा में नहीं है तो भी उसमें इतना राजनीतिक विवेक तो है ही और होना भी चाहिए कि क्या छिपाया जाए और क्या बताया जाए ? लोकतंत्र किसी एक व्यक्ति के 'मैं' अर्थात् अहं अर्थात् जिद्द से नहीं, सबके 'हम' अर्थात् सामूहिक विवेक से चलता है। लोकतंत्र का आधार केवल तर्क ही नहीं, अनुभव भी है, केवल बुद्धि ही नहीं, बोध, नीति और सिद्धान्त भी है। किसी एक दल के बहुमत का अर्थ यह नहीं होता कि वह दूसरे दलों के साथ दादागिरी करे और उसका नेतृत्व अपने सहयोगियों को बौना बना दे। लोकतंत्र की मूल धुरी है विश्वास। सत्ता पक्ष, प्रतिपक्ष, प्रशासन के बीच पूर्ण विश्वास का तालमेल। विश्वासघात, चाहे प्रशासनिक स्तर पर हो या राजनीतिक स्तर पर, लोकतंत्र के लिए घातक है।

उत्तर प्रदेश में उभरे विवाद की नींव में है विश्वास और विश्वसनीयता का संकट। यह कार्य सत्तापक्ष के राजनीतिक नेतृत्व अर्थात् मुख्यमन्त्री का है कि वह अपने विश्वस्त अधिकारियों की कपड़छान करें। केवल अपने ही तर्क और अपने अनुभवों को ही नहीं, अन्य के वस्तुपरक अनुभवों और सुझावों को भी इस कपड़छान का आधार बनाएं। केवल अपनी पसन्द और नापसन्द से काम न लेकर सर्वजन के संतोष और संताप के मर्म की जानकारी करना भी जरूरी होता है। और यदि लोकतंत्र में निहित सामूहिक दायित्व, सह-चिन्तन और अनुभव को कपछ़छान का आधार बनाया जाए तो स्वतः उन व्यक्तियों के पास पहुंचा जा सकता है जो भाजपा शासन का अन्तर्ध्वंस कर रहे हैं। वे व्यक्ति मुख्यमन्त्री के आसपास ही मिल जाएंगे जो विश्वासघात करने के अपराधी हैं।

किसी सरकारी रपट या दस्तावेज का प्रसारण और प्रकाशन उतना चिन्ताजनक और अपराधपूर्ण नहीं है जितना चिन्ताजनक है मुख्यन्त्री की इच्छा के विरूद्ध और समय से पूर्व उसका प्रसारण एवं प्रकाशन। यह कार्य कैसे हुआ, किसने किया, और

किस हेतु से किया, यह सर्वज्ञात है। यदि मुख्यमन्त्री जी इसके कारणों से अनभिज्ञता व्यक्त करते हों तो यह उनकी राजनीतिक चतुराई हो सकती है किन्तु मुख्यतः वे दया के पात्र हैं।

चर्चित गुप्तचरीय रपट के कुछ अंशों को समाचार बनाने वाले सम्वाददाता और मुख्यमन्त्री कार्यालय के एक प्रमुख अधिकारी के सम्बन्ध जग जाहिर हैं। यह सम्वाददाता उस अधिकारी के 'दत्तक पुत्र' के रूप में जाना पहचाना जाता है। मुलायम सिंह के शासन काल में भी वह इस अधिकारी की नाक का बाल था और कल्याण सिंह के काल में भी उसे वही विश्वास प्राप्त है। चर्चित अधिकारी और सम्वाददाता के सम्बन्ध पूर्ववत् हैं, परिवर्तन केवल राजनीतिक नेतृत्व में हुआ है, उक्त अधिकारी की कार्य प्रणाली और पद में नहीं। यह तिथि भी सर्वज्ञात है कि भाजपा के शासन में कई ऐसे अंतरंग अधिकारी हैं जिनकी निष्ठा मुख्यमंत्री और वर्तमान शासन के प्रति नहीं, किसी और में और कहीं और है। यदि मुख्मंत्री इस तथ्य को नकारते हों या इससे अनभिज्ञता प्रगट करते हों तो इसका कारण या तो उनका भोलापन हो सकता है या कोई राजनीतिक विवशता अथवा कोई दूरगामी रणनीति। किन्तु यह तथ्य है और इसे अनुभव का आधार प्राप्त है कि मुख्यमंत्री सचिवालय में कई ऐसे अधिकारी हैं जो मिथ्या निष्ठा और नकली स्वामिभक्ति का मुखौटा लगाकर, सुनियोजित ढंग से भाजपा शासन को बदनाम करने की साजिश करने में संलग्न हैं। जो अधिकारी मुख्यमन्त्री का विश्वास भाजन बनने के लिए अपनी चरित्र पत्रिका में दर्ज विपरीत टिप्पणी का प्रकाशन कराने में भी कोई संकोच नहीं करते, वे यदि किसी गुप्तचरीय रपट का कोई अंश समाचार पत्रों को दे दें तो क्या यह जांच का विषय नहीं बनता है ? जिन तथ्यों को सभी जानते हैं, उनको जांच के जाल में उलझा देना, विश्वासघात और छल को बल प्रदान करेगा। इसे ही राजनीतिक पाखण्ड कहा जाता है।

कार्य-व्यवहार में सुधार अपेक्षित

देश के चार राज्यों में भाजपा का शासन है, संसद में वह मान्यता प्राप्त विपक्ष है, कांग्रेस और दूसरे दलों के सामने वह भविष्य की चुनौती के रूप में खड़ी है। किसी भी संकट या राजनीतिक परिर्वतन की घड़ी में देशवासी भाजपा को अपनाने का मन बना रहे हैं, देशवासियों के मन में यह विश्वास अभी पूरी तरह बैठना और बिठाना शेष है कि सिद्धान्त, नीति और नेतृत्व के स्तर पर ही नहीं, क्रियान्वयन के स्तर पर भी भाजपा दूसरे दलों से भिन्न है।

क्या अभी वह समय नहीं आया है कि भाजपा के मुख्यमन्त्री और केन्द्रीय नेतृत्व इस कसौटी पर अपनी कार्यशैली, नीतियों और सिद्धान्तों को परखें और अब तक के अनुभवों के आधार पर अपनी कार्यप्रणाली में यथोचित एवं सार्थक परिवर्तन तथा

संशोधन करें ?

गत पैंतालीस वर्षों में देश की जनता कांग्रेस सहित सभी दलों को कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में साझे और अकेले परख चुकी थी। सन् 1990 के चुनाव के समय भाजपा ने जनता से निवेदन किया था कि 'सबको परखा बार-बार हमको परखो एक बार'। यह नारा जितना लुभावना था, उससे अधिक खतरनाक कि यदि एक बार परख कर भाजपा को नकार देने की नौबत आ गई तो ? तो होगा यह कि इसके बाद चुनाव लड़ना भाजपा के लिए विकल्प और परिर्वतन का अभियान नहीं, केवल राजनीतिक कर्मकाण्ड रह जाएगा।

देश की वर्तमान दुर्दशा के लिए देशवासी शायद सबको क्षमा कर दें, सम्भवतः उठापटक, घपलेबाजी, वायदा खिलाफी, तुष्टीकरण और ढीलेपन को दूसरे दलों का सहज चरित्र मानकर उन्हें क्षमादान देकर सहज भाव से पुनः अपना लें लेकिन वे भाजपा को यह अवसर और अधिकार नहीं देंगे, केवल इसलिए कि उसका राजनीतिक कुल आरै चरित्र इनसे भिन्न है और अपनी इस भिन्नता का प्रमाण देने का उसने वचन दे रखा है।

उपरिलिखित गोपनीयता और प्रशासनिक प्रसंग केवल आडवाणी जी की रथ-यात्रा और दंगे का ही प्रसंग नहीं है, यह भाजपा के सम्पूर्ण राजनीति परिदृश्य से जुड़ा प्रसंग है कि भाजपा का राजनीतिक नेतृत्व देश की राजनीतिक कार्यप्रणाली और चरित्र ही नहीं, नौकरशाही का चरित्र और कार्यप्रणाली भी कैसे बदलेगी, बदल भी रही है कि नहीं, बदल पा रही है कि नहीं ? भाजपा शासित चार राज्य भाजपा के केन्द्रीय शासन में जाने का राजमार्ग है। वह यह नहीं कह सकती कि यदि जनता ने हमें दिल्ली का शासन सौंपा होता तो हमने परख कराने के लिए अपनी परीक्षा दी होती। स्मरण रहे प्रारम्भिक परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना अंतिम परीक्षा का अवसर नहीं मिलता।

'प्रशासकीय गृहयुद्ध' की इस छोटी सी घटना में इतना बड़ा और आयामी प्रसंग और परिणाम निहित हैं। प्रशासनिक अधिकारियों का यह गृहयुद्ध भाजपा को डुबा सकता है, औ डकार भी सकता है। भाजपा नेतृत्व का प्रशासनिक कौशल, कसौटी है, उसकी राजनीतिक प्रज्ञा और प्रतिभा की परीक्षा है यह।

28 जून, 1992

नरसिंह राव, कौरव कुल के बीच

एक साल बीत गया कैसी नजरों से देख रहा है पूरा देश ? ऐसे, जैसे दया करना चाहता हो। बूढ़ा-पुराना आदमी है। कौन जानता था कि न इधर का रह जाएगा, न उधर का। बेचारा। मेरे जिस भाग्य को सराहते थे, अब लगता है कि पछताते होंगे। खूब ज़ान-समझ रहा हूं। मैं खुद भी तो यही सोचता था कि देर आयद, दुरुस्त आयद। हक मिला है, इसलिए कि मिलना चाहिए। पर यह घर तो बड़े ना-शुकरों का हो गया था। न मैंने सोचा, न उन्होंने सोचा जिन्होंने प्रधानमंत्री पद की गद्दीनशीनी के वक्त खुशी जाहिर की थी। कांग्रेस-कुल में यही एक भीष्म है जो राजा बनकर नहीं,ख्वाजा बनकर देश-दुखों के साथ-साथ कुल के सारे कलंक धो डालेगा।

लम्बा जमाना जो देखा था सत्ता के शौचालय से लेकर भोजनालय का। हर गली-राह जानी पहचानी। हर कुलवंशी की कुलांचों का अनुमान। कौन कितना बिगड़ा हुआ है, कहां कितनी गन्दगी है, कोष-कचहरी का क्या हाल है ? बोफोर्स जैसे कोक्रोचों ने कितने सोफे और फर्श या तो छेद-छिदारे कर दिए हैं या फिर लगभग कुतर डाले हैं। छोटे-बड़े काले-सफेद तोंदिल चूहों का किन-किन कमरों में जमघट है। वगैरा-वगैरा। बुढ़ापे में ही सही, पर शालीनता का फ्लिट और मिठास का फिनायल लेकर सब कुछ साफ कर दूंगा। उत्पाती छोकरों को समझा-बुझाकर या मौके-बेमौके मीठी-कड़वी झिड़कियां लगाकर समझा दूंगा कि पुराने मकान की दरोदीवारों को सलामत रहने दें। खानदानी मकान गिरा तो सिर छुपाने को जगह नहीं मिलेगी।

मौका आया तो डरा भी दूंगा। पड़ोस में भी भरा-पूरा कुनबा है, पर मजाल है कि बर्तन तोड़ना तो दूर, चिक गिरने की आवाज आती हो? कुछ सबक ले लो कि कमाऊ पूत हों तो नया घर कैसे बना-सजा लेते हैं? देख लो बीजेपी वालों को। धरम-करम, तौर तरीके और लिहाजों ने सारा घर बांध रखा है। मजाल है कि कोई कुलवंशी कोई कारस्तानी कर पाए। पर नहीं, इन कौरवों को कुछ नहीं दिखा। दिखा या समझ में आया तो बस इतना कि बूढ़ा हूं, बकता हूं। एक दिन तो जाना ही है मुझे। एसे कुलांगारी विचारों ने न तो अंकुश रखा एकता का, न गुंडई से गुरेज किया। नतीजा यह कि मेरा साल बुढ़ापे में काजल-कोठरी की यात्रा बनकर रह गया। बाहर

निकलूं तो कितने दाग लग चुके होंगे, मुझे खुद ही मालूम नहीं।

बुढ़ापे में बुरी गत

यह बिना चूने पलस्तर का खोखला घर तो उसी दिन गिर गया होता, जिस दिन लोकसभा में वित्त विधेयक पेश हुआ था और मेरे अपने कांग्रेस-कुल के पूरे तीस कौरव-योद्धा रणक्षेत्र से अनुपस्थित रहकर मेरे बुढ़ापे का बरगद गिरता देखने के लिए गायब हो गए थे। उस दिन पड़ोसी मदद न करते तो गली में मुंह दिखाने लायक न रहता। पूरा गांव कहने लगता कि इस बूढ़े को क्या पड़ी थी बुढ़ापे में माटी खराब करवाने की। पर खल्क खुदा का, राज पड़ोसी का—बच गयी मेरी लाज। अब भी उस दिन की कल्पना से सिहर उठता हूं। क्या होता अगर गांव में गली-गली, द्वारे-द्वारे गांधी की टेर देता और कटोरा लिए घूमता कि जो वोट दे, उसका भी भला और जो न दे, उसका भी भला! सब कहते कि देखो तो इस बुढ़ापे में क्या गत बनवायी ?क्यों नहीं बदरी-केदार की तरफ पांव बढ़ाए।

पर भला हो सबका। दाता की कृपा। पड़ोसी के जरिए ही सही, इज्जत-आबरू रह गई। धीरज धरना बुढ़ापे का काम, सो धर लिया। अब इस सागर-यात्रा के पुराने जहाज में जितनी दरारें पड़ी हैं, वैमनस्य, पदलोलुपता, भ्रष्टाचार, दुराचार और असभ्यता बर्बरता आदि की—सब भर लूंगा। पड़ोसी सुसंस्कृत। सम्मान से देखते रहे हैं वृद्धावस्था और संस्कार को। मदद मिलेगी, अच्छा नहीं लगेगा मन को, फिर भी काम तो चलाना है। एक तो घर टूटा-फूटा, तिस पर नालायक, नामुराद औलाद। पहले नौ-दस महीने राजकाज संभाला, जन-सहानुभूति, दया और बुढ़ापे को मिली जनकृपा के भरोसे। सबसे मीठे बोलो, पास-पड़ोसी ही काम आते हैं और खास तौर से वे, जो समर्थ हों। अपनी असमर्थता और उनकी सामर्थ्य जुटा-बटोरकर इस घर की दीवारें सलामत रखूंगा। बड़ी झंझटें थीं—एक तरफ मंडल की दीमक, दूसरी तरफ मन्दिर का भूकम्प। इस सबके साथ-साथ घर का हर बर्तन खाली। न विदेशी मुद्रा का जल, न घर से मिला अनाज। इसके बिना इतना बड़ा देश-कुनबा चले कैसे ? जो था, इन्हीं कुलांगारों ने अपनी-अपनी औरत या आरजुओं में औने पौने बेच डाला। पर घर तो चलाना है। सब तरफ आस-पड़ोस में झगड़े और नफरतों के कांटे उगा रखे थे कम्बखतों ने। चालीस-बयालीस साल में बबूल बन गए। सोचा इन बबूलों को तो पड़ोस से जारी नेह-प्रयास और भाईबन्दी की शुरूआत सम्हाले रहेगी, उस बीच घर का दाना-पानी सहेजूं।

तिरुपति बालाजी के यहां परिवार को लेकर मनौती करने गया। जैसे तू सबको सम्हालता है हमको भी सम्हाल। प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो ! पर उस समदर्शी को भी नहीं छोड़ा मेरे कुलांगारों ने। वहां तीर्थ पर जो ताण्डव मचाया, नतीजा यह कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सब कुल-सदस्यों का इस्तीफा। कुतर्क यह कि हमारे

साथ-साथ वे क्यों नहीं हैं—एस० सी० / एस० टी०। बहुत समझाया कि बच्चों वे कोई अलग नहीं हैं। उनके होने न होने से कुल में तो अन्तर आएगा नहीं। बस, पड़ोसी पत्तल छोड़कर उठ गए। जा बैठे अपने-अपने कोप भवन में। आधों ने कहा कि ठीक है, अगर वे कोप भवन चले जाते हैं तो दादाजी हम तुम्हारे साथ हैं, आप जिसे चाहो परोसी पत्तल देदो। मैंने सोचा—ठीक है, यूं ही सही। इन उद्दण्डों को सबक तो मिले। परवाह नहीं की उनके कोप और बालफकेरु भवन की। मंजूर कर लिए खाने से उनके इस्तीफे। मत बनो कांग्रेस वर्किंग कमेटी के मेम्बर। अर्जुन सिंह और पवार जैसे सुयोधन और सुशासनों को दिखा दी उनकी जगह। छोड़ दिया बालाजी भरोसे।

पर उन लोगों ने घर के भीतर चूहा कुरेदन मचाया कि झाड़ू मारकर अपने बुढ़ापे की खातिर उन्हें फिर वर्किंग कमेटी का सदस्य मनोनीत करना पड़ा। अब हालत यह है कि कुल यानी पार्टी के पार्लियामेंटरी बोर्ड का गठन करना अभी स्थगित पड़ा है। सबने कहा कि क्या हुआ बाबा, कुछ संभल नहीं रहा ? अपनी इज्जत बचाने को कहलवा रहा हूं बाकी कौरवसुतों से कि पहले बाबा कांग्रेस वर्किंग कमेटी का ठीक तरह निर्माण करना चाहते हैं, इसीलिए पार्लियामेंटरी बोर्ड को दोयम दरर्जे पर रख छोड़ा। पर जानता हूं कि यह झूठ बहुत दिन गली-गांव सह नहीं पाएंगे। आखिर पाप का ठीकरा किसी दिन तो जन-चौराहे पर फूटेगा ही ?

बात धीमे-धीमे कानाफूसी लेती हुई फैल चुकी है कि बड़ा बुरा लगता है जब किसी को यह कहते सुनता हूं कि बाबा अब बुढ़ापे का धैर्य, शान्ति और संयम सब त्यागकर उपदेशों के अमृत-जल छिड़कने के बजाय कुल-कौरव को गाहेबगाहे पीटने पर लाचार हो रहे हैं। उपद्रवियों में बूढ़ा ही सही,मैं भी शुमार होने लगा हूं। अनुशासन रखने की जो प्रेमल डींगें मारता था, अब वह विदुर-भाव लुप्त होने लगा है। क्या होगा ? क्या मुझे भी कांग्रेस-कुल की कलयुगी परम्परा में गिना जाएगा ? हाय रे भाग्य, तूने विदुर को धृतराष्ट्र में बदल दिया। सत्ता की कांग्रेस कला का वह त्रिबन्दर मेरे भीतर भी जाग उठा है, जो न बुरा देखता है, न बुरा सुनता है और न बुरा कर पाता है। डण्डा परम्परा ने एक बार पुनः इस कुल को सम्हालने का इकलौता तरीका बना दिया है, जो इसकी परम्परा रही है। तू मुझे चिऊंटी काट, मैं तुझे मुंह चिढ़ाऊंगा, गाली बकूंगा या कांपते हाथों ही सही तुझे पीट-पीटकर ठीक कर दूंगा। जो गीता पढ़ी और ज्ञान-प्रतियां अनुवादित कीं, वे इतिहास हो गई हैं मेरा। वर्त्तमान से उनका कोई संबंध सूत्र नहीं बचा। क्या मैंने जो कमाया था, वह खो जाएगा ? क्या मेरा यह ढोंग लोग समझ जाएंगे कि कांगेस-कुल वैसा ही है, जैसा सदा रहा ? अनुशासन के नाम पर केवल शासन रह जाएगा ? ...

घर वाले अच्छे न माने, बाहर वाले तो खुश रहें। यही सोच रियो में नवाज शरीफ के होटल में कुंडा खड़काया। कहा, भइये, हमारे राजनयिकों को तुमने कराची

में पीटा, कोई बात नहीं तुम साउथ ब्लाक में आकर उन्हें डपट दो, फिर भी हम बुरा थोड़े ही मानेंगे। तुमने कश्मीर में नमाज अदा करने की ख्वाहिश जाहिर की थी। भइए, तुम दिल्ली में नमाज पढ़ो। पर एक बार मेरी तारीफ कर दो। हें हें हें—तुम तो अपने हो। चलो सचिव-सचिव की वार्ता का खेल फिर खेलते हैं। पट्ठे नवाज शरीफ ने जरा भी मुसकान नहीं दिखाई बस बोला—ठीक है। चलो कुछ दिन पाकिस्तान से दोस्ती के लिए हम कितने उतावले हैं—यह देख दुनिया हमारी शांतिप्रियता को ले प्रशंसा करेगी। हम पिट सकते हैं पर शांति नहीं छोड़ सकते।

पर ये बीजेपी वालों को कैसे दबाएं। हद ही कर दी। बड़ी मलाई चटाई सर्वानुमति की। चम्मच तक छिल गया। पर ऐन मौके पर तड़क गए। बोले उपराष्ट्रपति विपक्ष का होना चाहिए। अब देश में पक्ष-विपक्ष की बात क्यों की जाती है, समझ नहीं आता। भइए, हमने तो जनम से यही सुना कि एक ही पक्ष होता है जो सरकार चलावे बस। बाकी तो अपनी-अपनी पार्टियां चलावे हैं। पर मेरी सर्वानुमति की मलाई का भंडा यूं सरेआम बीजेपी ने संसद मार्ग के चौराहे पर फोड़ कर उसमें भरे कीड़े मकौड़े बाहर सबको दिखा दिया। हाय री किस्मत। अब वही कीट पतंगे मुझे सपने में आते हैं। सर्वानुमति का तो सपना भी नहीं देख सकता अब।

फिर गया जापान। सोचा एक बड़े देश जाकर वहां आवभगत करवा आऊं तो घरेलू अखबारों में जरा ठीक चोखटा फिट हो सकेगा। पर वहां भी शनि और राहु की कुचाल ने पीछा न छोड़ा। हवाई अड्डे पर प्रधानमंत्री तक अगवानी करने न आया—एक ठठुआ सा वैलकम अफसर भेज दियरा। लोग मुंह बिचकाने लगे—इतना बड़ा भारत, उसके प्रधानमंत्री का यूं किया जाता है स्वागत ! पर क्या करूं ? भीख का कटोरा हाथ में धरने वाले शर्तें नहीं रख सकते।

बचने का नहीं मार्ग

सब भौंचक्की निगाहें यही कह रही हैं। बस उनके बोलने की देर है कि बूढ़ा चला था कुल-संवारने, खुद बिगड़ गया ! छिः छिः !

कैसी विडम्बना है ? घर का दाना-पानी जुटे, सो तो एक तरफ—बैंकें कंगली हो रही हैं। घर के आंगन की धरती तीन बीघा कुछ मुस्कानों के बदले दान करने की विदेश नीति स्वीकार करना होगी ? वातावरण-पर्यावाण सम्हालने के लिए जिस कुलकुमार को कमल समझकर देशकाज सौंपा था, वह ऊर्जा शक्ति के संयोजक कुलबन्धु कल्पनाथ पर कोप कर रहे हैं। विभागीय कार्य सम्हालने के बजाय एक-दूसरे के कमरों में सेंधें लगा रहे यह मेरे कौरव कितने दिन इस कुल को रहने देंगे ? इस कुल-बचाव के चक्कर में मैं चिमनभाई जैसे चिमटों से घर की आग बनने वाले अंगारें समेटने को तैयार हुआ हूं—अपने पर रोऊं या कुल पर हंसूं ? यह मेरा कांग्रेस कोठरी का साल, कितना कजियारा है—काश मैं पहले जान पाता ? अब तो निकलना भी कठिन ! इस उम्र में कालिख लगा मुंह लेकर गांव-देश की कौन सी गली है, जिससे बच निकलूंगा। इस नए साल में भईया, तुम ही बता दो ?

5 जुलाई, 1992

पट्टावादी राजनीति की मंजिल और खतरे

कई हजार बंदी बना लिए गए। कई दर्जन घायल हुए। कई व्यक्ति मार दिए गए। कई हजार अपना घरबार छोड़कर विस्थापित या शरणार्थी बनने के लिए विवश कर दिए गए।

किसने इन हजारों लोगों को बंदी बनाया ? किसने दर्जनों लोगों को घायल किया? किसने उन्हें गोली से मार दिया ? किस कारण कई हजार लोगों को विस्थापित होने के लिए विवश होना पड़ा ? कौन थे, नहीं कौन हैं ये लोग ?

क्या कर रहे थे वे ? या क्या गुनाह किया था उन सबने कि उनमें से कुछ को अपने प्राण गंवाने पड़े। सैकड़ों लोगों को कम्युनिस्ट गुंडों और बंगलादेशी घुसपैठियों की तलवारों, छुरियों और लोहे की छड़ों का शिकार बनना पड़ा और अपने ही सुरक्षाबलों द्वारा मार दिए गए।

कुछ नहीं, वे देशमाता के प्रति केवल अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे। भारत माता की भक्ति कर रहे थे। मातृभूमि का नमक और कर्ज उतार रहे थे। देश बांधवों की पीड़ा को मुखर कर रहे थे। कह रहे थे कि "भारत माता को किसी पड़ोसी देश को बूटों से कुचलने का कानूनी अधिकार देना, मातृद्रोह है। यह अपनी "मां" को भेड़िए के सामने फेंक देने जैसा क्रूर कर्म है। इतना ही नहीं यह अपनी मातृभूमि का शीलहरण करने की छूट देना है, इसलिए हम इसे रोकेंगे, हम ऐसा नहीं होने देंगे, प्राण देंगे, लेकिन अपनी मातृभूमि का बाल तक नहीं छूने देंगे।"

उनका अपराध केवल यह था कि वे अपने भारत राष्ट्र को मात्र-भूमि नहीं, मातृभूमि जीवित जागृत मां—मानते हैं।

कहां घटी यह घटना ? कहां किया गया भारत माता का यह चीरहरण ? किसने देशवासियों के साथ छल कर देशमाता को पट्टे पर बेचा ?

यह घटना घटी भारत-बंगलादेश की सीमा पर। वह भूमि थी तीन बीघा। चीरहरण करने वाले थे वही जाने-पहचाने चेहरे—कांग्रेसी और कम्युनिस्ट। सौदागर भी पुराने थे जिन्होंने कभी पाकिस्तान खरीदा था। देशभूमि को 999वर्ष के शाश्वत पट्टे पर केवल इसलिए दिया गया कि पड़ोसी बंगलादेश खुश रहे। इस पड़ोसी को खुश रखना भी केवल इसलिए नहीं आवश्यक माना गया कि वह पड़ोसी है, अपितु तीन

बीघा उसे केवल इसलिए सौंपा गया कि भारत स्थित उसका 'बिरादराने इस्लाम' खुश रहे और पश्चिमी बंगाल में कम्युनिस्टों और शेष देश में कांग्रेसियों की चुनाव पेटियों को मतदाता बनकर भरता रहे।

मैं तीन बीघा गया था। वहां स्थित देशमाता की संतानों का संताप मैंने स्वयं देखा और अनुभव किया। भूमि और भावना का अटूट संबंध वहां समूर्त्त था। तीन बीघा के उस पार कुचलीबाड़ी के चौबीस भारतीय गांवों में सन्नाटा था। उस सन्नाटे, की सतह के नीचे भयंकर विनाश का हा-हाकार स्पष्ट सुनाई देता था। माताएं अपना घर-आंगन छोड़कर चली गई थीं। बहुएं अपने सुहाग से दूर जाकर अपने शील की रक्षा करने के लिए त्राण शिविरों में शरणार्थी बन गई थीं। बहनें अपनी रीती आंखों और भरे मन से अपने भाइयों के लिए मंगल कामना करती इतस्ततः झांक रही थीं कि शेष भारत का कोई अपना पितामह, कोई रक्त-बन्धु या कोई अपना उनकी खबर लेने आएगा जरूर ? कई युवक आगंतुकों के पावों से लिपट गए। गिड़गिड़ाए कि 'तीन बीघा का हस्तान्तरण रोक कर हमें बचाइए। बंगलादेशी भेड़िए हमें खा जाएंगे।"

वे और हम ?

कई समाचार खोजी पत्रकारों को मैंने विह्वल होते देखा, तो कइयों के रूप में क्रूरता और कुटिलता सशरीर घूमती दिखाई दी। इनमें स्वदेशी भी थे और विदेशी भी। कुछ स्वदेशी पत्रकार ऐसे थे जो तीन बीघा का मर्म समझने की जरूरत भी नहीं समझते थे। वे वहां 'दूसरी अयोध्या' की खोज और प्रतीक्षा में थे। जो विदेशी पत्रकार 'तीन बीघा' आन्दोलन को अनावश्यक मानते थे, उनमें बी० बी० सी० के संवाददाता हैलन भी थे। हम तीन बीघा की भूपट्टी पर खड़े थे कि वह मुस्कराया। बोला—"जमीन की इस छोटी सी पट्टी के लिए इतना शोरशराबा क्यों ? इसे बंगलादेश को दे देना चाहिए।" मैंने पूछा—"मिस्टर। आप पत्रकार हैं कि बंगलादेश के एजेंट ?" वह भड़क उठे—"मैं पत्रकार हूं। बी० बी० सी० का प्रतिनिधि हूं।"

"एक बात पूछूं"—मैंने अनुमति लेकर पूछा—"क्या आप अपने इंग्लैंड की भूमि का इसका चौथाई टुकड़ा मुझे या किसी देश को पट्टे पर दे या दिला सकते हैं ?"

वह तड़पकर बोले—"क्यों ? क्या मूर्खता की बात करते हैं आप। अपनी एक सेंटीमीटर भूमि भी हम किसी को नहीं देने देंगे।"

"क्यों ?"

"मेरे इस उत्तर पर 'क्यों' का प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता। कह दिया न कि नहीं देंगे तो नहीं देंगे। यह विवाद का विषय नहीं है।"

"और भारत का यह तीन बीघा ?"

मेरे इस प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही वह हंसते हुए दूसरी ओर चले गए और मैं सोचता रह गया कि यह क्या और कैसा अन्तर है हमारी और उसकी सोच में और

क्यों है ?

राजनीतिक गुणा-भाग

भारत के पत्रकारों की बात विस्तार भय से यहां नहीं करता। यह एक अलग विषय है। वे समस्या की गंभीरता और भारत देश का भविष्य देखकर नहीं दल और व्यक्ति सापेक्ष समाचार लिखते हैं। यथार्थ लेखन नहीं अपने मन का तानाबाना बुनते हैं। प्रत्येक प्रसंग में दलीय या राजनीतिक लाभालाभ का तलपट बनाते हैं। घटनाओं का कीर्तिमान बनानें का प्रयास करते है। कइयों ने कहा—"गोली चल जाए तो मजा आ जाए। कोई अच्छा समाचार, कोई अच्छी कापी तो बने।" कुछ खुशफुश करते कि 'कुचलीबाड़ी संग्राम समिति और भाजपा का तीन बीघा बचाओ समर्थन अभियान असफल हो जाए तो आनन्द आ जाए।' वे यह जायजा लग रहे थे कि, "इस आन्दोलन की सफलता-असफलता के कारण किस दल को लाभ या हानि होगी। तीन बीघा बंगलादेश को देकर ज्योति बसु और नरसिंह राव को क्या राजनीतिक फायदे होंगे। आदि-आदि।" स्वदेशी पत्रकार दलीय राजनीतिक लाभालाभ के गणित में जितना व्यस्त दिखे, देश की हानि-लाभ से वे उतना चिन्तित नहीं थे। अपवाद हर जगह होते हैं, यहां भी थे। यह अपवाद बहुमत में न सही किन्तु अच्छी संख्या में था।

जो लोग बार-बार यह प्रश्न दोहराते आए हैं और कभी-कभी अत्यन्त कटुतापूर्ण ढंग से पूछते रहे हैं कि आज से पैंतालिस वर्ष पूर्व देश का विभाजन हुआ तो यह या वह संस्था कहां थी ? लोग क्यों नहीं बोले ? विभाजन के विरोध में क्यों नहीं अंगद का पांव जमा दिया गया ? तीन बीघा प्रकरण उनके इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर है। यदि देशवासी चाहते हैं कि उनकी देशभूमि कोई सरकार पड़ोसी को न सौंप दे तो तीन बीघा के प्रश्न पर कश्मीर से कन्याकुमारी तक देशवासी चुप क्यों रहे? क्या यह कार्य केवल किसी एक दल, किन्हीं एक-दो नेताओं, किन्हीं मुट्ठी भर लोगों का ही है और यदि कुछ नेता, कुछ दल या कोई संस्था तीन बीघा बचाने के लिए सक्रिय हुई। आन्दोलन और आह्वान किया तो देशवासियों ने उसका भरपूर प्रतिसाद क्यों नहीं दिया ? केवल पश्चिमी बंगाल के लोग ही क्यों जूझते रहे ? 'तीन बीघा' के प्रतीक के माध्यम से भारत के सम्मान की रक्षा का युद्ध केवल 'कुचलीबाड़ी संग्राम समिति' को ही क्यों लड़ना पड़ा ? केवल भाजपा, केवल जतीन चक्रवर्ती, केवल कमल गुहा, केवल विद्यार्थी परिषद् और केवल बजरंग दल आदि से जुड़े लोग ही उनके समर्थन में क्यों आगे आए ? और वे आगे आए तो उन्हें बदनाम करने के प्रयासों को देशवासियों ने रोका क्यों नहीं ? दिल्ली, मुम्बई, तिरुअनन्तपुरम, मद्रास, हैदराबाद, गांधी नगर आदि के निवासी क्यों यह प्रश्न पूछते रह गए कि 'क्या है तीन बीघा ?' क्या मात्र इतनी ही जानकारी पर्याप्त नहीं थी या है कि 'तीन बीघा' अपनी भारत माता है, भारतभूमि का अंश है और उसे बंगलादेश को पट्टे की धोखेधड़ी से,

चक्रांकित तिरंगे की छाया में, सौपा जा रहा है।

और हुआ क्या ? और उस समय (15 अगस्त, 1947 को) क्या होता, यदि भारत विभाजन के विरुद्ध कोई अंगद का पांव जमाकर खड़ा हो जाता ? वही होता जो 26 जून, 1992 और उसके पूर्व तीन बीघा में हुआ ?

और वह खूनी क्षण

हुआ यह कि भारत का सशस्त्र सुरक्षाबल अपनी संगीनें ताने तीन बीघा क्षेत्र को घेरे हुए केवल इसलिए खड़ा था कि कोई भारत भक्त तीन बीघा हस्तांतरण के विरूद्ध उधर कदम बढ़ाए तो वह उसे गोली मार दे। उसका सीना छलनी कर दे। भारत की संप्रभुता और भौगोलिक अखण्डता की रक्षा करने के लिए प्रशिक्षित और सन्नद्ध सुरक्षा बलों को उस दिन स्वदेश भक्तों की हत्या और विदेशी बंगलादेशियों का स्वागत करते देखा गया। हमारे देश के प्रशासनिक अधिकारियों ने देशवासियों को अपमानित किया। अपने ही सुरक्षाबलों की सहायता से सगीनों की छाया में स्वदेश की भूमि विदेशी को पट्टे पर दान देने का यह एकमेव उदाहरण है। अब तक के इतिहास में केवल डेन्जिन का भूगलियारा दिया गया था और वह विश्व युद्ध में सहायक बना था। अपने ही सुरक्षा बलों ने अपने ही राष्ट्र के बन्धुओं की हत्या केवल इसलिए की कि वे अपनी भूमि बचाने के लिए बेचैन थे। वे नहीं चाहते थे कि यह पट्टा देकर देश के हजारों नागरिकों को बंगलादेशी भेड़ियों की दया पर जीने के लिए विवश छोड़ दिया जाए।

यदि 15 अगस्त, 1947 को देश-विभाजन के समय कोई संस्था या समूह विरोध के लिए बढ़ता तो क्या उसका सामना अपनी ही सेना या सैनिकों से नहीं होता ? क्या वे सभी अपने ही सुरक्षाबलों की गोलियों से मारे न जाते ? क्या विभाजन रोकने के लिए किया गया यह सम्भावित या कल्पित संघर्ष पाकिस्तानियों के साथ हो पाता ? यह सम्भव नहीं था ? तीन बीघा कहता है कि हमारी ही सेना, हमारे ही सैनिक, हमारी ही हत्या करती और यदि वह ऐसा न करती तो बचा हुआ देश गृहयुद्ध के कारण बहे रक्त में डूब जाता।

26 जून, 1992 को तीन बीघा की भूपट्टी हस्तांतरित किए जाने के बाद कुचलीबाड़ी सहित वे सभी चौबीस छोटे-छोटे गांव भारत की मुख्य भूमि से कट कर स्थल द्वीप बन गए। बंगलादेश स्थित भारत के 126 स्थल द्वीपों का भाग्य और भविष्य अनिश्चित ही बना रह गया। भारत की अपनी सड़क पर अपने मन से और अपनी आवश्यकतानुसार वे अपने भारत की ओर न आ सकते हैं और न लौटकर जा सकते हैं।

मैं भारत-बंगलादेश के बीच हुए तथाकथित अन्तरराष्ट्रीय समझौते का बिन्दुवार विश्लेषण नहीं करता। किन्तु यह मुख्य बिन्दु उस मुख्य समझौते में शामिल नहीं है

कि 'भारत की अनुमति के बिना बंगलादेश की सेना और टैंक उस भू-पट्टी से होकर नहीं जाएंगे। इस विषय में पूछने पर सरकार ने कहा—'अनुमति लेने की बात लिखी नहीं है, लेकिन यह दोनों पक्षों को मान्य है।'

यदि यह शर्त मान्य है तो अलिखित क्यों है ?

तीन बीघा की एक विडम्बना और है वह यह कि जिस बंगलादेश को अपने स्थल द्वीपों को जोड़ने के लिए तीन बीघा क्षेत्र में 179 मीटर लम्बी पट्टी चाहिए थी, उसके भू-प्रदेश में धान की फसल लहलहा रही थी। अपनी भूमि पर दोनों ओर अभी तक उसने कोई सड़क नहीं बनाई थी कि बीच का तीन बीघा भारतीय भूखण्ड बाधक बन रहा था। सड़क बनाई थी भारत सरकार ने। अपनी पहले से बनी सिलीगुड़ी से कुचलीबाड़ी जाने वाली पक्की सड़क की छाती पर एक नया मार्ग बना रखा था भारत ने। लाल ईंटों का लाल गलीचा बिछाकर दाहाग्राम के बंगलादेशीयों की अगवानी भारत सरकार के अधिकारियों ने की। आसपास के बंगलादेशी गांवों में रात-दिन 'खालिदा जिया जिन्दाबाद, ज्योति बसु धन्यवाद'के नारे गूंजते रहे। 'तीन बीघा दिया भारत सरकार ने, कुचलीबाड़ी ले लेंगे तकरार से' की घोषणा के बीच हम हमारे अपने सैनिकों की संगीनों पर टंगे रह गए और कांग्रेसी तथा कम्युनिस्ट सरकारों ने देश की भूमि का सौदा कर लिया।

इस हस्तांतरण में कई खतरे निहित हैं। अब भारत में आबादी संतुलन बिगाड़ने का बंगलादेश को वैध अधिकार और विधि सम्मत रास्ता प्राप्त हो गया। भारत की पट्टित भूमि को रौंदते हुए बंगलादेशी सेना को भारत में घुसने का कानूनी अधिकार मिल गया। अब सेना और आबादी का आक्रमण साथ-साथ होगा और भारत की भूमि पर से होगा। भारत पहले से ही दोहरे संकट में था। पश्चिमी सीमा पर पाकिस्तान के अणुबम का संकट और पूर्वी सीमा पर बंगलादेश की आबादी (घुसपैठ) के आक्रमण का संकट। इन संकटों में अब आबादी के आक्रमण वाले खतरे को भारत सरकार ओर ज्याति बसु ने सुविधा प्रदान कर दी और सैनिक संकट की अगवानी करने के लिए जोड़ भू-पट्टी बनाकर उसे दे दी।

बंगलादेश को भू-पट्टी सुविधा प्रदान करने की एवज में नरसिंह राव और ज्योति बसु ने खालिदा जिया से यह मांग नहीं की कि वह या तो भारत आए डेढ़ करोड़ बंगलादेशी घुसपैठियों को वापस बुला ले या उनको बसाने के लिए बंगलादेश अपनी मुख्यभूमि का वृहत् भू-भाग भारत को दे। यह मांग नरसिंह राव को करनी थी, करनी चाहिए थी। यदि यह मांग की जाती तो खालिदा जिया तीन बीघा की बात फिर कभी न करती और नेहरू-नून एवं इन्दिरा-शेख समझौते को सदा के लिए भूल जाती।

कांग्रेसी खुश थे और कम्युनिस्टों ने अपनी पीठ थपथपाई कि उन्होंने एक अन्तरराष्ट्रीय समझौते का क्रियान्वयन करके भारत की साख बचा ली। इसकी भी एक

अलग अन्तर्कथा है। ज्योति बसु के पुराने साथी और पूर्व मंत्री जतीन चक्रवर्ती ने यह रहस्योद्घाटन किया। ज्योति बसु ने इसे विधानसभा में स्वीकारा भी है। जतीन दादा के अनुसार "तीन बीघा को पट्टे पर देने के लिए ज्योति बसु की उतावली का कारण था ढाका स्थित अपनी करोड़ों रुपए की सम्पत्ति की रक्षा करना। अभी तक ज्योति बसु की उस सम्पत्ति को बंगलादेश ने 'शत्रु सम्पत्ति' घोषित नहीं किया। ज्योति बसु ने 178 मीटर की भू-पट्टी बंगलादेश को देकर अपनी करोड़ों की सम्पत्ति को बचा लिया। पानबाड़ी में बंगलादेश द्वारा विकसित किए जाने वाले चाय बगान को ज्योति बसु ने अपने पुत्र चन्दन बसु को दिए जाने का गुप्त समझौता किया है।"

नरसिंह राव की वोट राजनीति की विवशता ने तीन बीघा पट्टे पर बेचने के लिए जल्दबाजी कराई। उसके माध्यम से उन्होंने भारत के मुस्लिम मतदाताओं को यह सबल संकेत दिया है कि वे उनकी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की रक्षा और पूर्ति करेंगे। उन्होंने तुष्टीकरण का मार्ग छोड़ा नहीं है। ज्योति बसु की बात मान कर नरसिंह राव ने राष्ट्रपति के चुनाव में कम्युनिस्टों और लीगियों का समर्थन प्राप्त करके देश की गाड़ी को 1947 की पटरी पर लाकर पुनः खड़ा कर दिया।

सोचने-विचारने की बात यह भी है कि 'पट्टावाद' की इस राजनीति की मंजिल क्या हो सकती है ? जिस विवशता के कारण तीन बीघा पट्टे पर दिया गया क्या यही विवशता कभी सम्पूर्ण पश्चिमी बंगाल को पट्टे पर नहीं दिला सकती ? किसी दिन यदि अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक को अपनी 'संप्रभुता और अखण्डता बनाए रख कर' देश को भारतीय संवर्धन के अन्तर्गत और राष्ट्रीय ध्वज के नीचे पट्टे पर दे दिया जाए तो क्या आश्चर्य ? फिर तो ये लोग किसी दिन कश्मीर भी पाकिस्तान को पट्टे पर दे सकते हैं। और इस प्रकार हमारी सार्वभौम भारतीय सत्ता और हमारे झण्डे के नीचे कोई विदेशी यहां राज करने लगे तो क्या ये ही लोग हमें यह समझाते दिखाई नहीं देंगे कि इसमें हानि क्या है ? देश हमारा, प्रभुसत्ता हमारी, सेना हमारी, ध्वज हमारा, केवल धन और शासन ही तो उनका है। अर्थात् गुलामी को स्वीकार करने-कराने का यह अद्भुत तरीका ये लोग निकाल सकते हैं, निकाल लेंगे और 'हम भारत के लोग' जो बीत गया उसकी बात क्या करें, उसे हम क्यों बोलें, गड़े मुर्दे क्यों उखाड़ें, प्रश्नों के नीचे दबकर जो कुछ हो गया पूर्व की भांति क्या उसे स्वीकार नहीं कर लेंगे ?

भूमि और मातृभूमि का अन्तर

तीन बीघा का हस्तांतरण रोकने के लिए जो लोग मर गए, जिन्हें मार दिया गया और जिन्होंने उन्हें मरवाया उनके मन और मानस, उनकी अनुभूमि और आकांक्षा का अन्तर देशमाता के प्रति संवेदनाओं और अपनत्व की गहराई का अन्तर है। जिन्होंने देश की भूमि को केवल वस्तु माना उन्होंने उसे पट्टे पर बेच दिया, जो उसे मात्र-भूमि

नहीं, मातृभूमि मानते थे, जिन्होंने अपने अन्तर्मन की गहराई में देशभूमि का माता के रूप में दर्शन किया उन्होंने अपने प्राण दिए, अपने रक्त से अपनी भारत माता की अर्चना की। तीन बीघा के हस्तांतरण के समय मारने और मारे जाने के बीच यही अन्तर है और यह अन्तर बहुत बड़ा है। इतना बड़ा कि व्योम का वितान इसे ढक नहीं सकता, धरती इसे धारण नहीं कर सकती और सागर में यह समा नहीं सकता जो लोग अपने द्वार के सामने की पगडंडी, अपने खेत की मेड़, अपने पड़ोसी या अपने सगे भाई को उपयोग के लिए वैधानिक रूप से सौंपने का विरोध करते हैं, उस पर किसी का वैध अधिकार नहीं मान सकते, उन्होंने ही अत्यन्त ही निर्लज्ज, निष्करुण एवं क्रूर होकर भारत माता का एक अंश पड़ोसी देश को वैध पट्टे पर दे दिया, वह भी हजार साल के लिए। शर्म उनको नहीं आती तो न आए, लेकिन जिन्हें शर्म आती है, जो शर्मिन्दा हैं, उन्हें इस राष्ट्रीय शर्म से देश को उबारने का अनुष्ठान करते और अभियान चलाते रहना ही होगा।

वीरोचित भाव के चिन्तित चेहरे

तीन बीघा से हम वापस आ रहे थे तो बागडोगरा हवाई अड्डे के विशिष्ट कक्ष में इन्दिरा कांग्रेस के पर्यवेक्षक दल के सदस्य सर्व श्री नटवर सिंह, पवन बंसल और सौगतराय आदि से भेंट हुई। वे अन्दर से तो चिन्तित थे, किन्तु चेहरे का भाव वीरोचित था। कहने लगे, क्या रखा है उस छोटे से भूखण्ड में । बंगलादेश की दोस्ती, सीमा पर शांति और अन्तरराष्ट्रीय समझौते के सम्मान और सरकार की साख बचाने की दृष्टि से यह बहुत बड़ी बात नहीं है। श्री सौगतराय ने भाजपा पर कटाक्ष किया—अक्ष्य चिन्ह, कच्चा तिव्वू और तीन बीघा आदि भारतीय भू-भाग की बात करना, रणोद्यत (जंगजू) राष्ट्रभक्ति से देश का भला नहीं होगा। शांति बहुत बड़ी चीज है। इस प्रकार के भावनात्मक मुद्दे उछालकर देशवासियों को केवल भड़काया जा सकता है, बचाया नहीं जा सकता।

जिन्हें देश का भूगोल एवं राष्ट्र की महिमा को बचाने के प्रयास में युद्ध प्रियता तथा लड़ाकू देशभक्ति और देश दान में शांतिप्रियता दिखाई देती हो उनकी टिप्पणी पर टिप्पणी क्या करना। इसे मैं पाठकों के विवेकाधीन करता हूं।

12 जुलाई, 1992

अयोध्या-न्यायालय, निर्णय, न्याय और एकता परिषद्

अयोध्या पुनः चर्चा में है। शोर उठा है कि श्रीराम जन्मभूमि परिसर से समतलीकरण करते-करते उत्तर प्रदेश सरकार ने वहां की भूमि सतह को बारह फीट नीचा कर दिया, फलस्वरूप श्रीराम मन्दिर का ढांचा किसी टीले जैसे शिखर पर स्थित दिखाई देता है। बरसात का पानी वहां एकत्र होगा तो वह ढांचा गिर जाएगा। केन्द्र सरकार को हस्तक्षेप करके उसकी रक्षा-व्यवस्था करनी चाहिए। उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार ने ऐसा करके उच्च न्यायालय के निर्देश की अवहेलना की है, अतएव उसे बर्खास्त किया जाए।

इस शोर को जोर देने के लिए गत 23 जून, 1992 को राष्ट्रीय एकता परिषद् की स्थायी समिति की बैठक की गई। बैठक की अध्यक्षता गृह मंत्री चव्हाण ने की। यह और बात है कि उस बैठक का भाजपा ने बहिष्कार किया और दूसरे प्रमुख नेता भी किसी न किसी कारण से उक्त बैठक में शामिल नहीं हुए। बैठक पूर्ण रूप से असफल रही। शायद गृह मंत्री भी निराश हुए हैं। अब एकता परिषद् की पूर्ण बैठक बुलाई जाएगी। अयोध्या, असम, पूर्वाञ्चल, कश्मीर, पंजाब, तमिलनाडु, आन्ध्र, वनाञ्चल, झारखण्ड और उत्तरांचल आदि से जुड़ी समस्याओं पर इतना अधिक और इतनी अधिक बार शोर मचाया जा चुका है, इतनी अधिक बहस, गंभीर और राजनीति प्रेरित सतही भी, की जा चुकी है, इनके सभी पहलुओं पर इतना अधिक लेखन-विश्लेषण किया जा चुका है कि किसी भी पक्ष के पास कहने और लिखने के लिए कुछ शेष रहा ही नहीं है। बैठकों और गोष्ठियों में अब केवल पुनरावृत्ति होती है। लेख और भाषणों में केवल राजनीति प्रेरित प्रतिशोधात्मक एवं शत्रुतापूर्ण चर्चाएं ही होती हैं। समाधान की बातें सिरे इसलिए नहीं चढ़ पातीं कि समाज, इतिहास और राष्ट्र-सत्य को अपने-अपने निहित स्वार्थों के संदर्भ में देखा-परखा जाता है। अन्यथा अब तक या तो इन समस्त समस्याओं का समाधान हो गया होता अथवा इन समस्याओं का जन्म ही न हुआ होता

सत्य के हत्यारे

अयोध्या के विषय में जो शोर-शराबा हो रहा है या जो शोर मचता है उसका केवल एक पक्ष है—मुसलमान। मुसलमान का केवल एक पक्ष है कठमुल्लापन, कठमुललापन का केवल एक पक्ष है—कि मानो तो केवल मेरी मानो, जिओ तो केवल मेरे कहे के अनुसार जिओ, केवल मेरी मस्जिद, केवल मेरा कुरान और केवल मेरा पैगम्बर ही एकमेव सत्य है, शेष सब निरर्थक है, अनावश्यक है, इस्लाम के लिए चुनौती है, इसलिए उसको रहने का कोई अधिकार नहीं है। यह कठमुल्लापन भारत के भयभीत राजनेताओं को चुनौती है, इसलिए उनको रहने का कोई अधिकार नहीं है। यह कठमुल्लापन भारत के भयभीत राजनेताओं को चुनौती एवं चेतावनी भी देता रहता है कि 'खबरदार ! जो हमारा विरोध करेगा अपने थोक वोट के हथियार से

उसकी राजनीति ही नहीं शारीरिक हत्या भी कर सकते हैं। हमारे थोक वोट में सरकारें बनाने और गिराने की ताकत है। हम अपनी ताकत दिखाकर एक बार इस देश को बांटकर इसके उत्तर-पूर्व दोनों ओर दो इस्लामी राष्ट्र बना चुके हैं। यदि बहुत बक-बक किया और हमारी न मानी तो अपनी पहचान की रक्षा करने के नाम पर हम एक और इस्लामी और समानांतर राष्ट्र की मांग पूरी करने के लिए मजबूर कर देंगे। इसलिए हम जिसे इतिहास कहें, उसे इतिहास माना जाए। हम जिसे सेकुलरिटी कहें उसे सेकुलरिटी मानो। हम जिसे साम्प्रदायिकता कहें उसे ही सांप्रदायिकता मानो। हम जिसे हमारा कहें वह हमारा है, उस पर अंगुली उठाने का किसी को भी, कभी भी कोई अधिकार नहीं है।

इस कठमुल्लापन और कठमुल्ला राजनीति की इस दहशत के कारण देश के कांग्रेसवंशी ही नहीं वोट लोभी समस्त राजनेता इतिहास, समाज और राष्ट्र के सत्य की हत्या करके वही करते और कहते हैं जिसके लिए उन्हें कहा जाता है।

राष्ट्रीय एकता परिषद्, एकता परिषद् की स्थायी समिति और अल्पसंख्यक आयोग जैसे समस्त मंचों का यथार्थ राष्ट्रीय और सामाजिक संवेदना नहीं, राजनीतिक अवसरवाद होने के कारण वहां केवल मुसलमानों की तुष्टीकरण का विचार किया जाता है। स्थायी समिति की बैठक में श्रीराम भक्तों से जवाब-तलब तथा आश्वासन प्राप्त करने का प्रयास किया गया कि श्रीराम जन्मभूमि पर यथास्थिति बनाए रखने का प्रत्येक संभव प्रयास ही नहीं किया जाए अपितु हर कीमत चुकाकर तथाकथित बाबरी मस्जिद की रक्षा भी की जाए। लेकिन केवल अयोध्या ही तो एकमात्र समस्या नहीं है, समस्या और भी हैं। राष्ट्रीय एकता के वास्तविक खतरा कश्मीर, पंजाब, असम, पूर्वांचल, झारखण्ड, तमिलनाडु और आंध्र के अलगाव, आतंक, हत्या और हिंसा की ओर ध्यान देने की आवश्यकता अनुभव नहीं की जाती। कश्मीर में राष्ट्रीय एकता दम तोड़ चुकी है, पंजाब पाकिस्तानी आतंकवाद की आग में ही नहीं जल रहा है अपितु वहां राष्ट्रीय, ऐतिहासिक और सामाजिक संबंधों को भी तोड़ने और बांटने का कुटिल प्रयास किया जा रहा है। तीन बीघा क्षेत्र बंगलादेश को पट्टे पर दे दिया गया, इस कारण उसके आसपास के भारतीय नागरिकों की जिन्दगी खतरे में पड़ गई है, किन्तु राष्ट्रीय एकता परिषद्, उसकी स्थायी समिति और संसद के पास इसका विचार करने के लिए समय और समझ नहीं है। बोधगया में हिन्दू समाज को तोड़ने और साम्प्रदायिक शत्रुता के सशस्त्र और खूनी प्रयास की ओर ध्यान देने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया गया। प्रतिशोध की आग में जल रहे महाराष्ट्र के राजनीतिक बौद्ध, गौतमबुद्ध की अहिंसक बौद्धधारा में हिंसक जातिवादी राजनीति का जहर घोल रहे हैं और तथाकथित दलित राजनीति करने वाले राजनेता उनकी सहायता कर रहे हैं। कौन रोकेगा उन्हें ? यह किसका दायित्व है? राष्ट्रीय एकता परिषद् भारत के राष्ट्रीय हिताहित को केवल हिन्दू-मुस्लिम, संदर्भों में ही क्यों देखती है। सामाजिक समीकरणों को अपने संवैधानिक और विधायी मंचों का दुरुपयोग क्यों किया जाता है।

क्योंकि इस समय अयोध्या को ही मुख्य मुद्दा बनाया गया है। इसलिए इस समय हम उसका ही विचार करें तो पाएंगे कि गत आठ वर्षों में श्रीराम जन्मभूमि प्रकरण को

लेकर जितनी बैठकें और बहसें हुई हैं वे सभी एकपक्षीय रही हैं। एकपक्षीय इस अर्थ में कि उनका हेतु केवल मुस्लिम पक्ष और हित की रक्षा करना रहा है। भारत राष्ट्र के हिताहित का वास्तविक और वस्तुपरक विचार करने का साहस केवल इसलिए नहीं किया गया या किया जाता कि मुसलमानों के नाराज हो जाने का भय सदा सामने मंडराता रहता है। श्रीराम जन्भूमि के विषय में बहस करते समय जब सभी ऐतिहासिक, धर्मिक, सामाजिक आस्थाओं एवं मान्यताओं के तर्क और तथ्य चूक जाते हैं, मुस्लिम राजनीति के सेनापति जब अपनी ही समर भूमि पर पराजित होने लगते हैं तो पवित्र गाय की तरह न्यायालय को सामने करके बहस को किसी निष्कर्ष अथवा निर्णय तक पहुंचने से रोक देते हैं। साहस का अभाव और भय का प्रभाव उन्हें निर्णय अथवा निष्कर्ष तक पहुंचने ही नहीं देता। श्रीराम जन्मभूमि को न्यायालय के कटघरे में खड़ा करने का अर्थ है भारत के हजारों वर्ष के इतिहास, परम्पराओं, प्रेरणा पुरुषों, मान्यताओं, आस्थाओं और आकांक्षाओं को कटघरे में खड़ा करके उनसे जवाब तलब करना कि बोलो तुम भारत को अपना जीवन प्राण क्यों मानते हो ? बोलो जिसे और लोग इतिहास मानते हैं उस इतिहास के पूर्व तुमने जन्म क्यों लिया ? प्रश्न यह भी है कि क्या भारत ही नहीं दुनिया के किसी भी देश के किसी भी न्यायालय या न्यायाधीश में यह क्षमता है और यह उसके अधिकार क्षेत्र में है कि वह उस देश के इतिहास के सत्यासत्य का निर्णय करे ? क्या भारत की राष्ट्रीयता एकता परिषद् के धुरन्धर झण्डावाहकों में यह साहस है कि वे भारत के इतिहास और समाज-जीवन को उसके मूल तक ले जाने और उसे समझने के लिए परिषद् की ९क लम्बी बैठक बुलाएं और पहले अपने उस भारत को पहचानें जिसे वे आज तक 'इण्डिया' के नाम से पुकारने में सभ्य होने का गौरव मानते हैं। जिन लोगों को भारत में हिन्दू शब्द नया लगता है उन्हें इण्डिया शब्द की उत्पत्ति के कालखण्ड का पता लगाना चाहिए। अगर हिन्दू शब्द और उससे जुड़ा भारत शब्द का हजारों वर्षों का अतीत, उस अतीत का अनुभव, उसमें से निर्माण हुआ इतिहास, उस इतिहास के निर्माता राष्ट्र पुत्र-महापुरुष नए हैं, वे अभी कल के हैं तो ऐसा मानना और कहना पड़ेगा कि 'इण्डिया' शब्द अभी तक जन्मा ही नहीं है। भारत के इतिहास में इण्डिया अभी केवल उस कल का है जो अभी-अभी सूर्यास्त के बाद आज से कल बना है।

जिस न्यायालय की बात करके समस्या को सुलझाने के दायित्व से बचा जाता रहता है और जो न्यायालय समय-समय पर अस्थायी निर्देश जारी करके यथास्थिति को पुष्ट करता रहता है, जिस न्यायालय में यह विवाद गत तैंतालिस वर्ष से पड़ा है और जिस विवाद के कई वादी-प्रतिवादी बिना सुनवाई, बिना न्याय प्राप्त किए ही मर गए, उस न्यायालय से इस समस्या के किसी सार्थक समाधान की अपेक्षा करना मूर्खता की सीमा तक आशावादी होना है। क्या यह न्यायिक प्रक्रिया की विडम्बना नहीं है कि न्याय स्वयं न्यायालय के अनिर्णय के कटघरे में खड़ा है और राजनेता न्यायाधीशों के साथ राजनीति करते आ रहे हैं। न्याय की जन्मभूमि है निर्णय। न्याय, निर्णय के बाद होता है। तैंतालीस वर्षों में न्यायालय अभी तक यही निर्णय नहीं कर सका कि जो मामला उनके सामने विचारार्थ प्रस्तुत है वह निर्णय और न्याय के योग्य है भी या

नहीं। न्यायालय इस मामले का निर्णय करने में सक्षम है भी कि नहीं।

यदि केवल इसी एक प्रश्न का उत्तर समय रहते उत्तर प्रदेश का उच्च और भारत का सर्वोच्च न्यायालय दे देता तो समस्या अब तक कब की सुलझ गई होती। एक कालबाह्य वाद को न्यायालय में लम्बित रखकर देश की सामाजिक, साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय सद्भावना को समाप्त करने का आधार बनाए रखना जिस सोच का कार्य है वही सोच भारत के इतिहास और उसके राष्ट्र सत्य का भी निषेध करता है।

श्रीराम जन्मभूमि का मामला सम्पति के अधिकार का मामला नहीं, इतिहास के विध्वंस और भारत राष्ट्र की महिमा का किसी आक्रणकारी के सेनापति द्वारा किए अपमान का मामला है। इतिहास की भूलों और समाज की चूकों का परिमार्जन न्यायालय में नहीं, राष्ट्र मन की प्रयोगशाला में होता है। उसकी अनुभूतियां, संवेदना और उसका संतोष उसे समाधान प्रदान करते हैं। जो लोग न्यायालय के नाम पर श्रीरामजन्मभूमि पर मंदिर निर्माण की प्रक्रिया को अवरूद्ध करने की चालबाजी में नित्य नये 'वाद' और नयी याचिकाएं न्यायालय में प्रस्तुत करते रहते हैं क्या उनमें से किसी एक में भी यह साहस है कि वह मक्का-मदीना, कुरान, इस्लाम और मुहम्मद साहब की ऐतिहासिकता का निर्णय करने के लिए न्यायालय में चले ? क्या न्यायालय यह निर्णय कर सकता है कि ईसा मसीह बिना किसी पिता के संयोग के ही किसी कुमारी कन्या से पैदा हुए थे ? यह करना तो दूर रहा ऐसा करने की इन लोगों में से कोई सोच भी नहीं सकता, क्योंकि यह सोचना ही अपनी मौत को न्यौता देना है। लेकिन भारत के इतिहास और हिन्दुओं की आस्थाओं को न्यायालय में ले जाया जा सकता है, केवल इसलिए कि हिन्दू सहन कर लेता है, उसका अन्तर्मन क्षमाशील और सर्वसमावेशी है।

गौरवशाली अतीत का सम्मान

श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर परिसर की सफाई, उसका समतलीकरण और मन्दिर निर्माण की प्रत्येक प्रक्रिया को रोकने का प्रत्येक प्रयास इतिहास के उस विध्वंस और राष्ट्रीय अपमान की यथास्थिति में अर्थात् स्थायित्व प्रदान करने का कुटिल प्रयास है जिसके कारण देश का आत्मविश्वास अभी तक बिखरा हुआ है, राष्ट्र का मन अपमानों के कारण टूटा हुआ और भूमि खण्डित एवं विभाजित है। न्यायालय का निर्णय-अनिर्णय अब न्याय-अन्याय की कसौटी पर नहीं राजनीति की चौपड़ पर आंका और परखा जाता है।

चाहे न्यायालय हो, या विधायिका, कार्यपालिका हो या राजनेता हो, शासक हो या किसी समुदाय-सम्प्रदाय के मुखिया, यह सभी का दायित्व है कि वे भारत राष्ट्र के चरित्र पर दिखाई देने वाले इस अपमानजनित कोढ़ का उपचार करने में सहायक हो। अयोध्या को विवाद और बहस का विषय बनाकर रखने का अर्थ है देश की अखण्ड राष्ट्रीय आत्मा को खण्डित करने वाली प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन।

डा० राम मनोहर लोहिया ने कहा था कि 'भारत को शिव, राम और कृष्ण ने ही हजारों वर्षों से एकजुट, अखण्ड और अटूट रखा है। शिव भारत का शीश, राम भारत का प्राण और कृष्ण भारत का प्रज्ञा हैं। अर्थात् ये ही तीनों सृष्टि का सत्यं शिवं और सुन्दर हैं। सत्य, शिव और सुन्दर ही इन तीनों का शरीर धारण करके भारत में पैदा

हुए थे। हम भारत के लोग 'राम देवता' न बन सके तो कोई हानि नहीं होगी, लेकिन हम राम मानव बनने का प्रयास तो कर ही सकते हैं। राम जब तक इस धरती पर रहे तब तक वे मनुष्य बनने का ही प्रयास करते रहे।'

अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि पर खड़े पुराने और जर्जर ढांचे को हटाकर वहां एक नवीन श्रीराम मंदिर बनाने का अनुष्ठान केवल ईंटों-पत्थरों का भवन बनाने का नहीं, मनुष्य का निर्माण करने की प्रयोगशाला बनाने का अनुष्ठान है। वहां की प्रेरणा से मनुष्य 'राम' भले ही न बन पाए किन्तु राम जैसा बनने की सोच और प्रयास तो प्रारम्भ कर ही सकता है।

अतएव यदि इस राष्ट्रीय अनुष्ठान में, मनुष्य को श्रीराम सरीखा बनाने की इस प्रेरक प्रक्रिया में कोई व्यवधान डाले, कोई इस कार्य को रोके या रोकना चाहे तो उसकी ओर ध्यान देने का अब समय नहीं रहा है। कुछ व्यक्तियों, दलों और समुदायों के अहं को राष्ट्र की महिमा का मान मर्दन करने की छूट के कारण ही भारत के शिव, राम और कृष्ण अपने जन्म और पूजित स्थलों पर अपमानित एवं तिरस्कृत हैं। उनका यह तिरस्कार और अपमान भारत देश, उसकी अस्मिता, मूल जीवन तत्व और अप्रतिहत अविरल जीवन प्रवाह को भी अपमानित एवं तिरस्कृत कर रहा है।

देश, राष्ट्र और समाज न्यायालय, न्यायाधीश, शासन और शासक के लिए नहीं न्यायालय, न्यायाधीश, शासन और शासक देश और समाज के लिए होते हैं। इसी स्तम्भ में अनेक बार इस संकट की ओर ध्यान दिलाया गया है कि ये व्यवस्थाएं यदि देश और समाज के सामूहिक राष्ट्रीय मन के विरूद्ध न गईं, उसके साथ अतिरेकी आचरण किया तो किसी दिन देशवासी चिढ़कर सम्पूर्ण व्यवस्था को अमान्य कर दे सकते हैं। पूर्वी यूरोप ओर सोवियत रूस का उदाहरण अभी कल का ताजा उदाहरण है। इन घटनाओं से बोध प्राप्त करके हम अपनी प्राथमिकताओं का निर्धारण और समस्याओं का समाधान समय पर खोजें तो समस्त जटिलताएं समाप्त हो सकती हैं। जो न्यायाधीश निर्णय नहीं कर पाते, या जिन पर राजनीतिक दबाव डालकर निर्णय नहीं करने दिया जाता वे न्याय क्या करेंगे ? जो राजनेता राष्ट्र सत्य का निषेध करते हैं वे राष्ट्रीय एकता क्या करेंगे ?

19 जुलाई, 1992

विभाजक मानसिकता और उसके ध्वजवाहक

इन दिनों एक पुराने कांग्रेसी मिले और एक स्थापित लेखक। कांग्रेसी महोदय ने अपनी बात को कांग्रेस के नेताओं से प्रारम्भ किया और कांग्रेस तक पहुंच गए। पूछा कि, 'लालबहादुर शास्त्री जैसे कांग्रेसी नेताओं के विषय में आपकी क्या राय है और कांग्रेस के भविष्य के विषय में आप क्या सोचते हैं ?'

लेखक महोदय देश की सामाजिक समस्याओं और समाज का राजनीतिकरण किए जाने को लेकर दुःखी थे। उनका प्रश्न था कि 'समाज को तोड़कर क्या देश को जोड़ा जा सकता है ?'

यह विचार-विमर्श अधिकांश समय तक एकपक्षीय ही रहा। ये दोनों अपनी-अपनी बात बोलते रहे और इन पंक्तियों का लेखक एकमेव श्रोता के रूप में श्रवण भक्ति करता रहा।

दोनों बोल चुके तो मेरी बारी आई। कांग्रेसी मित्र ने मेरी राय जानने का आग्रह किया तो मैंने कहा, 'जो नहीं रहे, उनके विषय में क्या कहें ?वह कांग्रेस भी नहीं रही। कांग्रेस के नाम से जो कुछ शेष है उस कांग्रेस की बात करें तो कांग्रेस ने जो कुछ किया है उसका नतीजा हमारे सामने है। आजादी के पूर्व ओर पश्चात् कुल मिलाकर कांग्रेस ही देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि व्यवस्थाएं करती आई है। कांग्रेस द्वारा निर्मित राजनीतिक धारा और आचरण को ही सहज रूप से भारत की राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा कहा जाता है, कम से कम कांग्रेसी ऐसा ही मानते हैं। यदि उनकी इस स्थापना को स्वीकार कर लिया जाए तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आज की देश-दशा के लिए भी कांग्रेस ही जिम्मेदार है। कांग्रेसी मित्र भड़क उठे—'ऐसा कैसे ? केवल कांग्रेस और कांग्रसी नेतृत्व को ही देश की वर्त्तमान दुर्दशा के लिए दोष देना उचित नहीं है। कांग्रेस के कारण ही देश बचा हुआ है। अन्यथा भारत नाम के किसी देश की तलाश करने के लिए आज इतिहास भटक रहा होता।'

कांग्रेसी मिथक

मेरा कहना कि 'भारत नाम के देश की तलाश में इतिहास भटक रहा होता नहीं, भटक रहा है। देश के भटकन के लिए दोषी वे ही हैं जो इसे एक प्राचीन राष्ट्र नहीं, एक बनता हुआ राष्ट्र (A nation in the making) मानते हैं। जिनका कहना है कि हम भारत के लोगों को राष्ट्र की अवधारण की अनुभूति सर्वप्रथम अंग्रेजों ने कराई। क्योंकि अंग्रेजों के पूर्व संपूर्ण भारत में कोई एकछत्र केन्द्रीय राजनीतिक सत्ता नहीं थी, इसलिए भारत एक राष्ट्र बन ही नहीं सकता था। अंग्रेजों की एक केन्द्रीय सत्ता के कारण ही भारतीयों को राष्ट्रीय एकता की अनुभूति हुई और 15 अगस्त, 1947 वास्तविक रूप में भारत राष्ट्र-राज्य बनने की प्रक्रिया में प्रविष्ट हुआ। क्या यह कांग्रेसी स्थापना अनुभव और इतिहास सिद्ध है ? क्या भारत राष्ट्र का आधार केवल

राजनीति, केवल एक अखिल भारतीय राजसत्ता और राजनीति है ? यदि हां, तो फिर एक हजार वर्ष से भी अधिक काल की राष्ट्रीय अस्मिता अक्षुण्ण कैसे बनी रही ? किस प्रेरणा से समस्त देशवासी आजादी का अनुष्ठान करने के लिए कांग्रेसी मंच पर आ बैठे थे ? वह कौन सा देश या राष्ट्र था जो लगभग बारह सौ वर्षों से गुलाम था और जिसकी मुक्ति के लिए संघर्ष और आत्मबलिदान का एक लम्बा और अटूट सिलसिला चलता रहा है ? आजादी का यह संघर्ष किसका, किससे और किसके लिए था ?

वे उत्तर नहीं दे रहे थे, केवल सुन रहे थे। मेरा कहना था कि 'यदि भारत का राष्ट्रीय समाज अपनी मातृभूमि एवं अपने राष्ट्र के प्रति अतिशय संवेदनशील न होता तो पन्द्रह अगस्त, 1947 के बाद इतिहास भारत का नहीं, कांग्रेसी का अता-पता पूछता घूम रहा होता। कांग्रेस और कांग्रेसियों को हटा या मिटा देने के लिए कांग्रेसियों द्वारा भारत माता का विभाजन स्वीकार कर लेना ही पर्याप्त था। भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण किसके विश्वासघात और पाप का परिणाम है? क्या यही एक पाप कांग्रेस को दंड देने के लिए काफी नहीं था ? था, और आज भी है, किन्तु भारत का संवेदनशील राष्ट्रीय मन यह विष केवल इसलिए पी गया कि देश को गृहयुद्ध से बचाया जा सके। देश का विभाजन रोकने के लिए उस समय देशवासी सड़कों पर आ गए होते तो क्या होता ? गृहयुद्ध। भारत माता की संतानों के सीने पर देश के सुरक्षा बलों की संगीनें तनी होतीं ओर कांग्रेस सहित वे तमाम तत्त्व देशभक्तों के विरूद्ध इस रक्तपात का नेतृत्व कर रहे होते, जो विभाजन के समर्थक थे, जिन्होंने विभाजन को अपरिहार्य बताया था। यह सब ठीक उसी प्रकार होता जैसे आज भारत का तीन बीघा क्षेत्र बंगलादेश को नौ सौ निन्यानवें वर्ष के शाश्वत पट्टे पर दिए जाने का विरोध करने वालों के सीने को छलनी करने के लिए भारत के सुरक्षाबलों को विवश किया गया।

मजहबी उन्माद का पालक

पहले मजहबी आधार पर भारत का विभाजन माना, फिर भाषाई आधार पर राज्य का निर्माण किया। भाषाई राज्यों के निर्माण ने भाषाई राष्ट्र का निर्माण किया या कराए जाने की समस्त सम्भावनाओं को जन्म दिया है। भाषाई अस्मिता और अंह को राष्ट्रीय एकता और अखण्डता पर एक दोधारी तलवार की तरह लटका दिया गया।

यह विडम्बना कांग्रेस संततियों की ही देन है कि अखण्ड भारत-पाकिस्तान महासंघ-देश की दोनों सीमाओं पर भारत के शत्रु के रूप में बने-पले दो मुस्लिम राष्ट्रों के करोड़ों मुसलमानों को भारत के साथ आने, मिलकर रहने, अपने महजबी कर्मकांड का पालन करते रहने के बाद भी भारत की साझी नागरिकता को स्वीकार करने के अनुरोध को साम्प्रदायिक, मुसलमानों का दुश्मन और मुसलमानों को अलग राष्ट्र के रूप में रहने, भारत का भू-भाग कभी बंगलादेश तो कभी पाकिस्तान को देते रहने, भारत में मजहब के आधार पर सांविधानिक अधिकार देने, मुस्लिम बहुल जिला बनाने और राष्ट्रीय अस्मिता के सवाल को हिन्दू-मुसलमान को रूप देकर उसे

मंदिर-मस्जिद में बांटने के कार्य को सेकुलर होना कहा और माना जाता है। देश के उदार और राष्ट्रीय मुसलमानों को किनारे कर कांग्रेस ने केवल मजहबी कठमुल्लों और कट्टरपंथी लीगियों को ही भारते के मुसलमानों का प्रतिनधि न माना होता तो देश न तब बंटा होता और न अब बिखराव की आग में जल रहा होता। देश में व्याप्त मजहबी उन्माद का पालक कांग्रेस नहीं तो ओर कौन है ?

यह बात यहीं तक नहीं रुकती। यह संदर्भ बहुआयामी है। कांग्रेसी राजनीति और चरित्र ने जिस तथाकथित मुख्य राजनीतिक धारा का निर्माण किया है वही जाति और सम्प्रदायवादी मगरमच्छों का आश्रय स्थल है। वस्तुओं की बढ़ती कीमतें, रुपए का गिरता मूल्य, देश का आर्थिक दिवालियापन, बहुराष्ट्रीय मुद्राकोष की आर्थिक गुलामी की काली छाया में जीने के लिए विवश भारत तथा बेरोजगारों और अपराधियों की निरन्तर वृद्धि किस दल के आर्थिक सोच और अर्थव्यवस्था का दुष्परिणाम है ?

पहले अर्थव्यवस्था का सरकारीकरण और अब विदेशियों के लिए सर्वथा मुक्त-अर्थव्यवस्था की घोषणा करके देश को आर्थिक तबाही में झोंककर भिखारी बनाने को कार्य किसने किया है ? कश्मीर का एक तिहाई भाग पाकिस्तान के जबड़े में किसने फंसा रहने दिया और शेष कश्मीर को विवाद का मुद्दा किसने बना रखा है? लाखों कश्मीरी पंडितो को भारत भक्त होने का दंड विस्थापित बनकर क्यों भुगतना पड़ रहा है, कश्मीर घाटी में गूंज रहे 'पाकिस्तान जिन्दाबाद, भारत के एजेंटों निकल जाओ, कश्मीर भारत की गुलामी नहीं करेगा' नारे किसकी नीतियों के गर्भ में पले हैं ?

पंजाब में भिण्डरावाले का जन्मदाता कौन है ? किसकी राजनीति के गर्भ गृह में आज का आतंकवाद पला और जन्मा है ? संविधान को फाड़ने, जलाने और एक अलग सार्वभौम सिख राष्ट्र बनाने का आन्दोलन चलाने का प्रोत्साहन और अवसर किसने दिया ? हिंसा और हत्या का नेतृत्व करने वाले भिण्डरावाले को 'संत' होने का प्रमाणपत्र किसने प्रदान किया ? भारत जैसे सांविधानिक गणतंत्र में समान नागरिक अधिकारों के मान्य सिद्धान्तों का उल्लघंन करके अल्पसंख्यकवाद का जन्मदाता कौन है ? और कौन हैं वह जिसने अल्पसंख्यक शब्द का अर्थ केवल मुसलमान होने तक सीमित कर दिया ? कौन हैं वे लोग जो समस्त सम्प्रदायों के सह-अस्तिव, सहचिन्तन और सहज जीवन को स्वीकार करने वाली हिन्दू अवधारणा को साम्प्रदायिक, संकुचित, अवैज्ञानिक और राष्ट्रघाती घोषित करते हैं और उसके छाते के नीचे पल रहे सम्प्रदायों में अलगाव बोध जगाने को राष्ट्रीय एकता निर्माण करना मानते हैं ? एक देश के समस्त नागरिकों के लिए समान नागरिक कानून, अल्पसंख्यक आयोग के स्थान पर मानवाधिकार आयोग का गठन, गरीबी और पिछड़ापन मिटाने के लिए जाति और मजहब निरपेक्ष अभियान चलाने एवं योजना का निर्माण करने की मांग करने वालों को सामाजिक न्याय का दुश्मन तथा ग्राम सभापति से लेकर राष्ट्रपति तक को जाति एवं मजहब में बांटते रहने को सामाजिक न्याय का ध्वजवाहक होने का अर्थ किसने प्रदान किया ? इस सबका यह अर्थ कौन कर रहा है ?

ये और इसी प्रकार के उन समस्त कार्यों के लिए क्या केवल कांग्रेस, उसके नेता और उसके कुल में पैदा एवं पले लोग ही नहीं है ? शेष राजनीतिक दल इसी कांग्रेसी धारा के इस या उस तट पर बने रहने के लिए विवश हैं कि कांग्रेस की राजनीतिक तकनीक से काम न लेंगे तो चुनाव में उनका एक भी उम्मीदवार न जीतेगा, क्या इसी कारण दूसरे दल भी मतदाताओं से लेकर प्रत्याशियों, विधायकों और सांसदों तक का क्रय-विक्रय और दलबदल की कांग्रेसी तकनीक का उपयोग करने के लिए विवश नहीं हैं। सिद्धान्त और नीतियों के आधार पर चुनाव लड़ने और जीतने की कामना करना, कर पाना कठिन ही नहीं असंभव क्यों हो गया है ? जिस कांग्रेस के कारण भारत राष्ट्रकी अस्मिता पर संकट मंडरा रहा है, जिसके कारण देश बिखर और बंट जाने की मर्मान्तक पीड़ा भोग रहा है, उसी को राष्ट्रीय एकता और भारत को बचाकर रखने का सम्मान प्रदान करना आत्मदाहक प्रवंचना नहीं तो और क्या है ?

विश्वासघातियों का नाटक

अब बारी थी हिन्दी के स्थापित लेखक की। देश के राष्ट्रीय समाज को राजनीति के चाकू से काटकर टुकड़े-टुकड़े करके सामाजिक समरसता और सामाजिक न्याय का अभियान चलाने के पाखंड से वह बहुत ही दुःखी थे। बोले गांधी जी ने अछूतोद्धार के लिए हरिजन शब्द का प्रचलन किया। उन्होंने शब्द और सिक्के की तुलना की। कहने लगे—सिक्का टकसाल में ढलने के बाद राजकोष में जाता है, राजनीति के क्षेत्र में हरिजन शब्द को सामाजिक आयाम प्रदान करने के प्रयास को आधी शताब्दी से अधिक हो गया, किन्तु शब्दकोश में इस शब्द को स्थान नहीं मिला, साहित्य या लेखन में यह परिभाषा का मोहताज अवश्य है। हिन्दू समाज में तथाकथित अछूत वर्ग को एक ही शब्द संज्ञा प्रदान करने का प्रयास पूर्णरूप से असफल हो गया। नौकरी के लिए दिया गया कोई प्रार्थनापत्र हो, विधान सभा, लोक सभा, राज्य सभा, विधान परिषद् का प्रत्याशी बनना हो या कोई अनुदान प्राप्त करना हो, जाति के खाने में केवल हरिजन शब्द लिखना ही पर्याप्त नहीं होता। किसी हरिजन को अनुसूचित जाति, पासी, चमार, डोम, बाल्मीकि, महार आदि शब्दों से अपनी पहचान करानी होती है क्यों ?

हरिजन शब्द का तथाकथित सभी अछूतों का व्यावहारिक प्रतिनिधि शब्द न बन पाना इस शब्द को अर्थ प्रदान करने के प्रामाणिक प्रयास और इरादे का प्रश्न है। देश की राजनीति, विशेषकर वोट राजनीति, प्रत्येक मोड़ पर, प्रत्येक प्रसंग पर, भारत के राष्ट्रीय समाज को तोड़ने और काटने का योजनाबद्ध प्रयास करती आ रही है। ये सभी हमले सभी ओर से केवल हिन्दू समाज पर हो रहे और किए जा रहे हैं। इस सर्वसमावेशी राष्ट्रीय समाज की छाया में जन्मे, पले, बढ़े और प्रतिष्ठित हुए विचारों, सम्प्रदायों और कर्मकांडों की अलग-अलग पहचान के नाम पर उनका अहंभाव केवल इसलिए जगाया जाता रहा है कि उनका 'वोट बैंक' बनाया जा सके। इनकी समझ यह इतिहास और अनुभव स्वीकार करने से इनकार कर देती है कि हिन्दू समाज का सद्गुण और विकृतियाँ भारत की राष्ट्रीय विकृतियों के रूप में जानी-पहचानी जाती हैं। यहां के समस्त मत पंथ-संप्रदायों, साधु-संत आचार्यों ने हिन्दू समाज को सुधारने,

उसे संस्कारित करने का आन्दोलन केवल इस तथ्य को ध्यान में रखकर चलाया था कि इससे भारत राष्ट्र सुधरेगा और संस्कारित होगा।

कुछ नया और भिन्न विकल्प

इस प्रकार के आन्दोलन हिन्दू समाज के अन्दर चलती रहने वाली प्रक्रिया है। कई सहस्राब्दियों से यह प्रक्रिया सतत् चली आ रही है, आज भी चल रही है। इस प्रक्रिया में केवल वे समूह और सम्प्रदाय शामिल नहीं होते जिनके प्रेरणा स्रोत एवं प्रेरणा पुरुष यहां नहीं, कहीं और हैं, और जो किसी एक पुस्तक और किसी एक पैगम्बर के गुलाम हैं।

एकात्म और सम्पूर्ण हिन्दू समाज को अमूर्त्त मानकर जिस प्रकार उसे जातियों में बांटा जाता है, जातियों को ही हिन्दू समाज और हिन्दू दर्शन माना जाता है, जातीय विकृतियों को ही उसकी प्रकृति और प्रवृत्ति माना जाता है, ठीक उसी प्रकार हरिजन शब्द को संपूर्ण 'अछूतों' का प्रतिनिधि न मानकर उसे चमार, पासी, डोम, दलित, बाल्मीकि और महार आदि में बांट कर, तोड़कर परिभाषित ही नहीं व्यव्हृत भी किया जाता है और इससे अब कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा। समाज से लेकर सरकार तक के सभी स्तरों पर यह जाति जहर प्रविष्ट हो चुका है। गांधी जी भी हरिजन को अर्थ देकर उसे सामाजिक एकात्मता एवं समरसता के गुणवाचक विशेषण और सामाजिक संज्ञा से अभिषिक्त नहीं कर सके। उनके अनुयायियों के व्यवहार से इस शब्द को जो अर्थ प्राप्त हुआ उसके कारण वह समाज तोड़क ही नहीं प्रतीक भी बन गया है।

जब मैंने पूछा कि यह किसके किए का परिणाम है ? तो वे तत्काल नहीं बोले, केवल मुस्कराए। थोड़ी देर बाद ही कहा, क्या यह भी बताने की आवश्यकता है। अभी तक जो कुछ कहा गया है उसका भी संदर्भ वही है। अभी देश में कुछ नया उससे कुछ भिन्न, कुछ वैकल्पिक प्रारम्भ नहीं हुआ है, प्रारम्भ करना है, और जो कुछ प्रारम्भ करने का हो रहा अथवा हुआ है, उस ओर ध्यान दिया जाना है।

26 जुलाई, 1992

भारत, केवल भारत के बूते की बात

एक लोककथा है। सार्वकालिक है। बोधप्रद भी है।

एक राजा अपने राज्य की स्थिति का पता लगाने के लिए छद्मवेश में घूम रहा था। नगरों-गांवों, खेतों-खलिहानों में घूमते-घूमते उसे प्यास लगी। इधर-उधर देखा तो एक वृद्धा ईख का गट्ठर बांधती दिखाई दी। वह उसके पास गया। बोला—'मां ! प्यासा हूं। मुझे जल चाहिए।' स्त्री की ममता जगी। उसने उसी समय अपने हंसिये से ईख छीला, कूट-कूट कर ईख से रस निकाला और अपनी रोटी वाले खाली कटोरे में रस भर कर अतिथि के सामने रख दिया।

राजा आश्चर्यचकित कि एक गन्ने में इतना रस। इतना अच्छा रस और इतने गन्ने ! ये किसान बहुत धनवान होंगे। इनसे अधिक लगान लेना चाहिए।

थोड़ी देर सुस्ताने के पश्चात् राजा की इच्छा हुई कि चलने से पूर्व थोड़ा रस और पी ले कि जल्दी प्यास न लगे। वह उस वृद्धा के पास गया। बोला—'मां और थोड़ा रस पिलाओगी।'

वृद्धा प्रसन्न मन से बोली—'क्यों नहीं बेटा, अवश्य पिलाऊंगी।' इस बार उसने बार-बार प्रयास किया किन्तु आश्चर्य कि गन्नों से एक बूंद भी रस नहीं निकला। राजा ने पूछा—'क्यों मां क्या हुआ ? गन्ने से रस क्यों नहीं निकल रहा है।'

दुखी मन वृद्धा बोली—'कुछ नहीं बेटा, या तो मेरे भगवान मुझसे नाराज हैं या हमारे राजा की नीयत में कुछ खोट आ गया है, उसकी बुद्धि बिगड़ गई है। पिता की भांति प्रजा की भलाई की न सोच कर हमारा राजा शायद प्रजा का शोषण और उस पर अत्याचार करने की सोच रहा होगा।'

नीयत का सम्बन्ध

किसान के गन्ने का रस क्यों सूखा ? यह प्रश्न राजा अर्थात् व्यवस्था की नीयत के साथ सम्बद्ध है। यह प्रश्न नेता, नेतृत्व, नीयत और नीति की सार्थकता-निरर्थकता और प्रामाणिकता की ओर संकेत करता है। इसमें व्यवस्था का आचरण, जनता का श्रम, समाज और प्रशासन के चरित्र का उत्तर निहित है ? हम एक नए भारत का निर्माण और एक आधुनिक भारत की पुनर्रचना के अनुष्ठान में लगे हैं। हमारा हर पग

भौतिक और भाविक शिखर की ओर उठना और बढ़ना चाहिए था। हमारा प्रत्येक आचरण समरसता और सद्भाव से भरा हुआ होना चाहिए था। हमारे देश के प्रत्येक नागरिक की तृप्ति होनी चाहिए थी। हमारा विश्वास अटल और हमारी आस्था अक्षुण्ण बनी रहनी चाहिए थी। हमारी सम्पूर्ण मानवी सत्ता और शक्ति अपने राष्ट्र के गौरव के रूप में चरितार्थ होनी चाहिए थी। हमारी अपनी निजता हमारे राष्ट्र को समर्पित हो जानी चाहिए थी। अपने राष्ट्रीय विराट की ज्योतिर्मय और अभिव्यक्त अभिलाषा की पूर्ति के लिए हमें असंदिग्ध भाव से सन्नद्ध हो जाना चाहिए था। अपनी देशमाता के आनन्द में अपनी समस्त कामनाओं और संवेगों को व्याप्त करके मां, केवल मां की कामना की पूर्ति को ही अपनी कामना की पूर्ति मानना चाहिए था।

किन्तु ऐसा हुआ नहीं, ऐसा हो नहीं पाया, हमने ऐसा किया नहीं। हमने अपनी निजी कामनाओं, स्वार्थों और संवेगों को राष्ट्रमाता की कामना माना। परिणाम में वृद्धा के गन्ने की तरह हमारे अपने ही नहीं राष्ट्र के जीवन का रस भी सूख गया। हम सबकी नीयत बिगड़ी तो कुल मिलाकर सम्पूर्ण राष्ट्र की नियति बिगड़ी दिखाई देने लगी। एक-एक ने अलग-अलग जीना प्रारम्भ किया। देखादेखी सभी ने लूट-खसोट, विश्वासघात, चरित्रहीनता और भ्रष्टचार किया तो उसका योग बना एक भ्रष्ट राष्ट्र। 'हम भारत के लोग' अपने स्वार्थ के लिए तिल-तिल जलने और क्षण-क्षण मरने लगे हैं तो ऐसा आभास होने लगा है कि केवल हम ही नहीं समस्त देश और सम्पूर्ण संसार मरण के कगार पर खड़ा है। सभी ऊंचे शिखर पर आत्महत्या करने की मुद्रा और मनोदशा में खड़े दिखाई दे रहे हैं।

किन्तु ऐसा होगा नहीं। क्यों ? इसलिए कि यह भारत का यथार्थ नहीं है। 'हम भारत के लोग' दुनिया के दूसरे देशों की तरह नहीं हैं। हमारा प्राण-पिण्ड केवल भौतिक समृद्धि और राजसत्ता या राजनीति नहीं है। हम राज्य की छाया, सफलता असफलता, अस्तित्व या विनाश में जन्मते-मरते नहीं। हमारा देश किसी 'इस' या किसी 'उस'की निजी आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन नहीं सर्वशक्तिमान परमेश्वर की अमूर्त्त सनातन सत्ता का मूर्त्त रूप है। केवल रोटी उपजाने और खाने के लिए सृष्टिकर्ता ने इसकी सृष्टि नहीं की है। इसका निधन असंभव है। क्योंकि अभी तक इसने अपना अंतिम वाक्य नहीं बोला है। निधन का अर्थ ही है अपने लक्ष्य की पूर्ति। सांसों का शांत और संतुष्ट हो जाना। हमारी प्राण वायु जिस अखंड अविनाशी सत्ता के साथ संबद्ध है उसका निर्देश अभी नहीं आया है कि हम अपनी अंतिम बात बोलकर और अंतिम सांस लेकर अपना बोरिया-बिस्तर समेट लें। बोरिया-बिस्तर समेटते हैं वे, समेटना पड़ता है उनको जो केवल निशा में जीते हैं। जो प्रभात के पुत्र हैं उनकी यात्रा का अन्त नहीं है। जिसकी यात्रा का अंत या कोई छोर ही नहीं है, उसका निधन सर्वथा असंभव है। उसे कालचक्र प्रभावित नहीं करता, प्रभावित कर भी नहीं सकता।

सनातन सत्ता का रूप

जिन लोगों और देशों को वर्त्तमान में भारत के गन्ने का रस सूख गया दिखाई देता है वे अपनी नीयत, अपने आचरण और चरित्र का विचार करें। भारत का जीवन रस किसी ढबरे का पानी नहीं है कि वह सूर्यताप से सूख जाय। श्री अरविंद इस स्थापना की पुष्टि करते हैं कि 'युगों पुराना भारत न तो मरा है, न वह अपने अंतिम सृजनात्मक शब्द बोल चुका है। वह जीवित-जाग्रत है और उसे भी अपने लिए और मानव जाति के लिए कुछ करना है। भारत अंग्रेजियत में डूबी प्रजा या पश्चिम का आज्ञाकारी शिष्य नहीं है कि पश्चिम की सफलताओं और असफलताओं के चक्र को दोहराने के लिए बाध्य है। यह परिस्थिति सापेक्ष या विवशताओं में से जन्मी व्यवस्था या शक्ति नहीं, अपितु यह उस अव्यक्त चिर पुरातन और सनातन सत्ता का व्यक्त रूप है जो अपनी गंभीरतम सत्ता को पुनः प्राप्त कर रही है। भारतमाता जाग, केवल जाग ही नहीं रही है, बल्कि वह अपना सिर ऊंचा उठाकर प्रकाश और शक्ति के चरम उत्स तक धर्म के पूर्ण अर्थ और वृहत्तर स्वरूप को खोजने के लिए 'प्रवृत्त' भी है।'

यदि हम अपनी नियति को समझते हों, समझना चाहते हों तो यह भी समझ लें कि हमारे 'मैं' को हमारे 'हम' पर बोझ न बनने दें। देशमाता 'मैं' नहीं 'हम' हैं और हम हैं कि उस पर अपनी 'मैं' का 'पैतृक अधिकार' जमाने का हर संभव प्रयास करते आ रहे हैं। हमारे 'मैं' का हमारे 'हम' पर सवारी गांठ लेने का ही परिणाम है जातिवाद, मजहबी और साम्प्रदायिक पहचानों को राष्ट्रीय अस्मिता में परिवर्तित कर समानान्तर राष्ट्रों की अवधारणा को प्रोत्साहन। इसी हमारे 'मैं' का परिणाम है कि हम एकचित्त और एक प्राण होकर न साथ-साथ चल पा रहे हैं और न अपने राष्ट्र की चिरंतनता और चिति के साथ अपना चैतन्य ही जोड़ पा रहे हैं।

यही 'मैं', हमें, 'हम भारत के लोगों' को, अपने इस ऋषि निर्देश का पालन नहीं करने दे रहा है कि 'एकात्म होकर समान भाव धारा में रच-बस कर समान विचार बोलो, पुरा देवों की तरह अपने मनों को एक ही ज्ञान पर केन्द्रित करो और फिर अपना-अपना भाग 'यज्ञ शेष' प्राप्त करो। अर्थात् **'संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भाग यथा पूर्वे संजानाना उपासते।'** साथ-साथ रहना, साथ-साथ कर्म करना और साथ-साथ समान रूप से अपने कर्म-फल का भाग प्राप्त करना एवं उसका त्यागभाव से उपभोग करना ही राष्ट्र की उपासना और सर्वशक्तिमान की साधना का सहज तथा मान्द मार्ग है। इसी प्रेरणा में से राष्ट्र के हितार्थ अपनी प्राणाहुति देने का भाव जन्मा। इसी में से उपजी प्रेरणा ने उस बलिदान यज्ञ का सृजन किया जिसके प्रकाश से भारतमाता का आंगन सदैव ज्योतित-जाग्रत रहता आया है। भारतमाता के प्रति हमारी कृतज्ञता भौतिक व्यावसायिकता नहीं, एक ऐसा आध्यात्मिक समर्पण है जहां कुछ लेना शेष रहता ही नहीं।

गहरे निर्णय का समय

हमारे ऋषि, देश के अगुआ, हम सबके अग्रज समय-समय पर हमें सावधान करते आए हैं। वर्त्तमान स्थिति अनजानी, अनसोची या अकल्पित नहीं है। हम सामान्य जन नहीं जान पाए होंगे, पर जिन्होंने जाना था, वे बता गए हैं कि 'इस समय भारत के लिए गहरे निर्णय का विषय उपस्थित है। अगर भारत इस समय अपनी आध्यात्मिक विरासत को ठीक उसी क्षण बाहर फेंक दे जब शेष संसार उसकी आध्यात्मिक सहायता और उद्धारक प्रकाश की ओर दिन-प्रतिदिन अधिक से अधिक मुड़ रहा है तो यह नियति का एक अतीव क्रूर व्यंग्य होगा। ऐसा नहीं होना चाहिए और निश्चय ही ऐसा नहीं होने दिया जाएगा। किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि यह खतरा नहीं है। अवश्य अन्य बहुत सी कठिन समस्याओं का सामना यह राष्ट्र कर रहा है या शीघ्र ही उसे उनका सामना करना पड़ेगा, परन्तु यह बात निस्संदेह है कि हमारी विजय होगी। लेकिन अगर हमें भारत की सच्ची नियति को चरितार्थ करना है तो हमें अपने आपसे इस तथ्य को छिपाना नहीं चाहिए कि बहुत वर्षों की पराधीनता, उसके जकड़ने वाले, दुर्बल करने वाले प्रभाव के बाद आंतरिक और बाह्य मुक्ति और परिवर्तन एवं महान आंतरिक और बाह्य प्रगति आवश्यक है।'

विकल्प क्या हो ?

'इस असंदिग्ध परिस्थिति में दो में से एक ही परिणाम आ सकता है—या तो भारत का बौद्धिक और औद्योगिक ऐसा हो कि भारत की पहचान असंभव हो जाए और भारत भारत ही न रहे या फिर संसार के एक चरण में वह विश्व का नेता होगा। अपने उदाहरण और सांस्कृतिक व्याप से पश्चिम की नई प्रवृत्तियों की सहायता करेगा और मानव जाति को आध्यात्मिक बना देगा। यही मूलभूत और मार्मिक प्रश्न है। क्या यह आध्यात्मिक उद्देश्य, जिसका भारत प्रतिनिधित्व करता है, यूरोप को जीत पाएगा या फिर यूरोपीय बौद्धिकवाद और वाणिज्यवाद सदा-सर्वदा के लिए भारत और भारतीय संस्कृति का अन्त कर देगा ?'

यह प्रश्न हमें दूसरों से नहीं अपने आपसे पूछना है। और विडम्बना यह है कि हमने अपने आपसे बात करना बंद कर रखा है। यदि अपने सामूहिक संदर्भ और परिवेश से अपने आपको जोड़कर हम अपने आपसे बात करते होते तो घर से बाहर तक के प्रत्येक क्षेत्र में केवल भौतिक तथा व्यावसायिक बुद्धि से काम न लेते और न आज की इस दुर्दशा का हमें सामना ही करना पड़ता। हमारे राष्ट्र की नियति हमारी नीयत के साथ सम्बद्ध है। हमारी नीयत इतनी बिगड़ी हुई और बदबूदार हो गई है कि केवल हमारे खेतों के गन्नों का रस ही नहीं सूख गया है, हमारे राष्ट्र जीवन का भी रस सूखता जा रहा है। हम अपने स्वस्थ सामूहिक मन का निर्माण कर पाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं तो केवल इसलिए कि हम अपना मन और चरित्र अपने भारत

के मन और चरित्र तरह नहीं, यूरोप के मन और चरित्र तरह बनाने के लिए बेचैन हैं। 'हम भारत के लोग' अपने राष्ट्र के नागरिक की तरह नहीं भीड़ की तरह रह रहे हैं। हमारा सामूहिक मानस भी अन्य राष्ट्रों की भीड़ की तरह अत्यंत निचले स्तर का है।

भीड़ का स्वर

अग्नि शिखा की सम्पादिका अनु बहन ने इसका अत्यन्त सार्थक विवेचन किया है कि भीड़ की मानसिकता बहुत ही भयानक और मारक होती है। उनका कहना है कि 'जो कार्य व्यक्ति अकेला करने की सोच भी नहीं सकता वही घिनौना कार्य वह भीड़ में बिना सोचे-समझे कर लेता है। यह तो समूह का बदतर रूप है। किन्तु इसी भीड़ का एक अन्य रूप भी है, जिसमें कायर भी वीर बन जाता है और बाद में अपनी वीरता पर स्वयं ही आश्चर्य करने लगता है। इस भिन्नता के कारण होते हैं लोगों के इकट्ठा होने के हेतु और उसका नेतृत्व। एक सचेतन नागरिक के रूप में हम इस भीड़ से बच नहीं सकते और न हमें इससे बचना ही चाहिए। क्योंकि तब उस भीड़ में असामाजिक तत्त्व घुसकर जनता द्वारा हानिकर कार्य करवा लेंगे। समूह में प्रचण्ड शक्ति होती है, जन कल्याण के लिए उसका उपयोग किया जाना चाहिए।'

किन्तु भीड़ के, सामूहिक मन की इस भिन्नता के कारण परिणाम की भिन्नता में परिवर्तित होते रहने को जानकर भी हम अनजान बने रहने में अपना हित मानते हैं। हम मन्थरा मानस से पीड़ित हैं कि कुछ भी हो मुझे क्या करना है, मेरा घर तो बचा ही है। इसे ही कहते हैं जीवन रस का सूख जाना। यही है सामूहिक मन का बंजर और वीरान हो जाना।

एक राजा की नीयत बिगड़ी थी, तो वृद्धा के गन्ने का रस सूख गया था। वह राजतंत्र का समय था। यह लोकतंत्र का समय है। तब व्यक्ति के मन पर व्यवस्था निर्भर थी अब समूह का मन व्यवस्था का निर्माण करता है। राजा का प्रभाव सीमित होता था, सामूहिक और सामाजिक मन का प्रभाव व्यापक और गंभीर होता है। देश का जीवन रस न सूखे, उसके जीवन की सरिता का सलिल सदा प्रवाहित रहे इसके लिए सामूहिक मन का सरस होना अतीव आवश्यक है। इसके लिए सामूहिक और निजी नीयत का स्वस्थ होना और स्वस्थ रहना जरूरी है। राजतंत्र के एक राजा और लोकतंत्र के अनेक मंत्रियों की नीयत के बनने-बिगड़ने के परिणामों की तुलनात्मक भयंकरता का अनुमान लगा पाना असम्भव नहीं है। जो कुछ आज हो रहा है, उसकी जन्भूमि हैं हम, उसके कारण हैं केवल हम। हमारे, अर्थात् हमारे सामूहिक मन के सद्गुणों का व्याप और विस्तार जितना घना होगा, हमारी गिरावटों का, समस्याओं और सद्गुणों का भी व्याप और विस्तार भी उतना ही घना होगा और है भी।

एक बात और। हम अपने राष्ट्र का और अपना विचार संसार से अलग-थलग होकर न करें। विचारकों और चिन्तकों का कहना है कि आज एक राष्ट्र की वैज्ञानिक

खोज क्षण भर में ही अन्य राष्ट्रों की भी उपलब्धि बन जाती है। एक राष्ट्र का आर्थिक पतन संसार के सभी राष्ट्रों के लिए खतरे की घण्टी बजा देता है। एक राष्ट्र की राजनीतिक उठापटक दूसरे राष्ट्रों में हलचल पैदा कर देती है। यह उपलब्धि वैश्विक एकता की ओर बढ़ रहा हमारा कदम है। किन्तु यह कदम अपने लक्ष्य तक तभी पहुंचेगा जब संसार केवल 'पेट' तक ही सीमित न रहकर गन्दे, अधम, अपरिष्कृत, अंधे, स्वार्थपूर्ण और अज्ञान भरे पूर्वागृहों से मुक्त होकर व्यापक क्षितिज पर उभरे।

और यह क्षितिज पर उभरना संसार के दूसरे देशों के नहीं, केवल भारत के बूते की बात है। यह केवल भारत की ही नियति है। यह दायित्व सर्वशक्तिमान ने केवल भारत को ही सौंपा है। अतएव इसका निर्वाह और इसकी पूर्ति केवल भारत को ही करनी है और उस परमशक्ति का अंतिम वचन केवल भारत को ही बोलना है। हम अपनी नीयत को भारत की नियति अर्थात् सनातन सत्ता की इच्छा के साथ जोड़ें तो सरसता का निर्माण स्वतः हो जाएगा और केवल गन्ने का ही नहीं हमारे राष्ट्र और विश्व के भी जीवन रस के सूखने का संकट कभी पैदा ही नहीं होगा।

2 अगस्त, 1992

कांग्रेस की काफिराना राजनीति

अयोध्या में निर्माण-कार्य चल रहा है। श्रीराम मन्दिर का जीर्णोद्धार उस ऐतिहासिक क्षण के सत्य का साक्षात्कार, जिसके लिए सम्पूर्ण राष्ट्र की आहत आत्मा सदियों से छटपटा रही थी। बहुसंख्य भारतपुत्रों की भुजाएं अकुला रही थीं। पर केन्द्रीय सत्तासीन कांग्रेस की 'फिरंगी राजनीति' आज भी वही दोगला खेल खेलने पर आमादा है, जिसने सदा ही भारत माता को क्षतविक्षत किया। पंजाब में कांटे बोकर देश को आम खिलाने का धोखा दिया, बंगाल में मां के आंचल को तीन बीघे के भाव बेचा और कश्मीर में नेहरू की अन्तरराष्ट्रीय छवि बनाने की कीमत पर वेदभूमि को आतंक के अंधेरे में डुबो दिया। सत्य, न्याय, अहिंसा आदि पवित्र शब्दों की ओट लेकर भोले-भाले और निर्दोष बहुसंख्यकों-अल्पसंख्यकों को अर्धशती तक छला। इस राष्ट्र की यह विडम्बना ही रही है कि यहां मेघनादों और शकुनियों के साथ-साथ शिखंडियों की भी कमी नहीं रही। वे अनेक नाम-रूप लेकर विविध कालखंडों में जनमते रहे हैं और उन्होंने कितने ही रावणों और कितने ही दुर्योधनों, दुःशासनों को अपनी ही मातृभूमि का हरण और चीर हरण करने में सहायता दी, कितने ही सत्यव्रतियों का निर्लज्जतापूर्ण वध करने में भी वे सहायक हुए । किन्तु यह भी नहीं भूलना होगा कि यही राष्ट्र-शक्ति है, जिसने हर समय देशघातियों को पहचानकर उनके केवल मुखौटे ही नहीं उतारे, बल्कि उनका नाश भी कर डाला।

एक बार फिर वही अवसर आया है। सत्य-क्षण के उसी तेज विस्फुरण का समय। भगवान श्रीराम की जन्मभूमि पर मन्दिर जीर्णोद्धार के बहाने समूचे राष्ट्र के देशप्रेमियों और देशछलियों को पहचानने का स्वर्णावसर। ऐसे स्वर्णावसर यूं ही नहीं आते। राष्ट्रोद्धार राजमहलों में बैठकर चीखते रहने भर से नहीं हुआ करता, बल्कि मातृभूमि की अस्मिता रक्षा के लिए खुले आकाश के नीचे रक्तदान की पूजा से हुआ करता है। यह पूजा-क्रम अयोध्या के श्रीराम मन्दिर की देहरी से विश्व हिन्दू परिषद् के आह्वान पर वर्षों पूर्व प्रारम्भ हुआ था और आज हवन की अन्तिम आहुतियों के क्षण में असंख्य भारत संतानें मन्दिर के सिंहद्वार पर पुनः आ खड़ी हुई हैं। हुंकारकर वे उन छद्म पंथनिरपेक्षियों और समाजतोड़क मेघनादों को चुनौती दे रही हैं—आओ,

देखो और जो सूझे-सो कर गुजरो। मन्दिर 'बनेगा (?) नहीं, बन रहा है, बनता रहेगा और बनकर ही रहेगा।...

रक्तदान की सिद्धता

केन्द्र में बैठी नहसिंह राव सरकार क्या अब भी उसी फार्मूले से काम लेगी, जिसके तहत उनकी कांग्रेस ने 1947 में विभाजन करवाया था ? क्या कांग्रेस फिर उसी दोगली नीति पर चलेगी, जिसके चलते उसने पंजाव के गुरु-संतों को आतंकवाद की राजनीतिक ज्वाला में झोंका ? क्या कांग्रेस फिर से तुष्टीकरण की अपनी वोट राजनीति से राम जन्मभूमि मन्दिर का वही सौदा करना चाहती है, जो अभी बंगलादेश को तीन बीघा देकर किया है ? क्या देश का नक्शा और राष्ट्रगौरव, अयोध्या के श्रीराम मन्दिर जीर्णोद्धार पर कांग्रेस के लिए कश्मीर की वादियों को चीखों, करुणक्रंदनों और रक्तनदों का राजनीतिक खेल-मैदान बनाएगा ? जन कामनाओं का संविधान के नाम पर शोषण होगा ? उस संविधान के नाम पर जिसकी पवित्रता को अल्पसंख्यी वोट पाकर राजमहलों में जब भी चाहा तब बदला, संशोधित किया जाता रहा है? इतिहास और प्रमाण अविश्वसनीय बनाए गए हैं ? सत्य को सदा सत्ता-शक्ति के क्रूर हाथों में सौंपकर घुटने मरने के लिए छोड़ दिया गया है ? करोड़ों निगाहें टिकी हुई हैं कांग्रेस की उस काफिराना राजनीति पर जो न पंथ सापेक्ष हैं, न पंथ-निरपेक्ष —केवल सत्ता सापेक्ष हैं। आज पूरा देश अयोध्या के असंख्य निहत्थे कारसेवकों के राष्ट्रीय अस्मिता संघर्ष और कांग्रेस के सत्ता संघर्ष का वही जघन्य दृश्य देखने के लिए स्तब्ध है, जो उसने भारतीय स्वाधीनता के दौर में फिरंगी की संगीन और देशभक्तों की नंगी छातियों के बीच देखा था। खोखले वायदों, झूठी घोषणाओं, ब्रोदे तर्कों और झूठी पंथ-निरपेक्षता की कालिख से राष्ट्रसूर्य को काला करने के जमाने लद चुके हैं। अब राम-नाम के साथ हिन्दू जागा है, वह इस धोखे के मृग से छला नहीं जा सकेगा, न दलालों के स्वर्ष से बनी कांग्रेसपुरी उसे आतंकित कर सकेगी। वह अयोध्या के राम मन्दिर पर पुनः राष्ट्रमाता का राज्याभिषेक करेगा। हवन-पूजन चल रहा है, यज्ञवेदी की रचना हो चुकी है, राष्ट्राहुतियों के लिए सरयू में जितना जल है, उतना रक्त दान करने करोड़ों तैयार हैं।

रामयज्ञ के पवित्र श्लोकोच्चारों ने बहुतेरे राक्षसी चेहरों को जनता-जनार्दन के सामने नंगा कर दिया है। कांग्रेस चरित्र की देन दसियों धृतराष्ट्रों को लोग साफ-साफ देख पा रहे हैं। सारा राष्ट्र देख रहा है कि मन्दिर तोड़कर बनाई गई आक्रामक बाबर की बाबरी मस्जिद की बुनियादें मूर्तियों और मन्दिर-शिल्प के अनेक प्रमाणों को बुनियाद उत्खनन के साथ सामने ले आई हैं। सारा देश देख रहा है कि न्यायालय की आड़ में चालीस वर्ष मामले को लटकाये रखकर समूचे भारत को यही धोखा दिया जाता रहा है कि 'निर्णय होगा बस होने को है।' और न्यायालय उसी दुविधा से

दो-चार हो रहे हैं जिससे कभी धर्मराज को अश्वत्थामा-वध हेतु होना पड़ा **था।** विशेषकर उस स्थिति में, जिस स्थिति का खुलासा न्यायमूर्ति श्री वी० आर० **कृष्णा** अय्यर ने हाल में इन शब्दों के साथ किया था...'व्हाई दि कोर्ट्स फार ए चेन्ज, **शुड** सिट इन जजमेंट आन देयर ओन परफारमेंस।'

जनता की सरकार

केन्द्र की कांग्रेस सरकार राष्ट्रीय प्रश्न को 'वोट-चश्मे' से देखने में व्यस्त है। वह सदा की तरह शाब्दिक धुंआ उगलकर हिन्दुओं को राम मन्दिर का आश्वासन दिए हुए पिछले चालीस सालों की तरह उलझाए रखना चाहती है और मुस्लिमों को बाबरी मस्जिद की जस की तस स्थिति दिखाकर, उनसे भी धोखादेही और आंख मिचौनी की राजनीति जारी रखना चाहती है। रोज-रोज गृहमंत्री चव्हाण के बदलने वाले वक्तव्य, धमकी भरी भाषा, उत्तर प्रदेश सरकार पर लगाए जाने वाले असत्य लांछन, भाजपा को कोसना, साधु-संतों के विश्वास को निरन्तर आहत करते जाना आदि नए-नए तौर-तरीके उपयोग किए जा रहे हैं। बहुसंख्य हिन्दू और देशभक्त नागरिक इस दोमुंही कांग्रेसी राजनीति को अब स्पष्टः देख पा रहे हैं। धोखा-धड़ी की इतनी परतें राम मन्दिर की बुनियाद पड़ते-पड़ते उघड़कर आज करोड़ों देशवासियों के सामने आ चुकी हैं कि कांग्रेस को अपनी ही गद्दी खिसकती नजर आ रही है। अब न्यायालय का बहाना बनाकर धोखे की आड़ से सारी राजनीति खेलने की तैयारी शुरू हुई है।

इसकी ताजा मिसाल है उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री कल्याण सिंह की सरकार पर यह आरोप कि उसने संविधान विरुद्ध कार्य किया है। प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या भारतीय संविधान जनता-जर्नादन से छल के लिए बनाया गया है ? क्या संविधान केन्द्र शासन को यह अधिकार देता है कि वह झूठे और बेतुके आरोप लगाकर किसी विपक्षी दल की राज्य सरकार को भंग कर दे ? क्या संविधान किसी राजनीतिक दल को यह अधिकार देता है कि जनादेश के विरुद्ध कार्य करे ? क्या उत्तर प्रदेश सरकार को प्रदेश पर शासनाधिकार उ० प्र० की जनता ने इसलिए नहीं दिया था कि वह राम मन्दिर के जीर्णोद्धार में आने वाली हर रुकावट को दूर करेगी ? और जब कल्याण सिंह सरकार इसी आधार पर उत्तर प्रदेश में जनता ने बनाई है तो केन्द्र उसे अपनी दोमुंही नीति पर चलने के लिए बाध्य क्यों करना चाहता है? क्यों वह भारतीय जनता पार्टी से अपेक्षा करता है कि वह भी कांग्रेसी-चरित्र में ढल जाए ? कल्याण सिंह, उनकी सरकार और समूची भारतीय जनता पार्टी केन्द्र में सत्तासीन कांग्रेस पार्टी के आधीन नहीं, बल्कि भारतीय संविधान और जनतंत्र के आधीन है। उनकी जवाबदेही किसी नरसिंह राव के लिए नही, बल्कि भारत कीं जनता और संविधान के लिए है। वह राजनीतिक दुष्चक्रों के संस्कार से नहीं बनी, बल्कि उसका संस्कार भारतीयता, संस्कृति, सर्वधर्म समभाव और न्यायाश्रित व्यवस्था पर आधारित है।

यदि भाजपा अध्यक्ष डा० मुरली मनोहर जोशी यह कहते हैं कि भाजपा को उत्तर प्रदेश में जनता ने इसलिए सत्तारूढ़ किया था कि वह राम मन्दिर के निर्माण-जीर्णोद्धार में बाधक न बनकर केवल सत्य और न्याय की रक्षक रहे, तब कौन-सा तर्क देकर कांग्रेस चाहती है कि उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पर उसकी मनमानी चले ? केन्द्र की कांग्रेस पार्टी अपनी नीतियां भाजपा की राज्य सरकार पर क्यों थोपना चाहती है ? दोगली राजनीति की हामी कांग्रेस है, भाजपा क्यों हो ? कल्याण सिंह सरकार को उत्तर प्रदेश की जनता के लिए काम करना है—केन्द्र की कांग्रेस सरकार के लिए नहीं। वह जनता द्वारा चुनी गयी सरकार है, कांग्रेस पार्टी द्वारा बनायी गयी सरकार नहीं। वह जनता को धमकाने, दंगे करवाने, उत्तेजना फैलवाने और सरकार के लिए सरकार चलाने हेतु नहीं, बल्कि जन-आकांक्षाओं के अनुसार जनादेशों की पूर्ति और सर्वधर्म समभाव के लिए बनी है—उसे जनता के लिए जवाबदेह रहना है और वह है।

फिर भी यदि कांग्रेसी राजनीति राम मन्दिर को वोट विषय बनाए रखना चाहती है, तो उसे पुनः जनादेश प्राप्त करना चाहिए, पर उससे पहले कांग्रेसियों को अपने गिरहबान में झांककर यह भी देख लेना होगा कि क्या वे इस जाग्रत नागरिक शक्ति और आकांक्षाओं का सामना कर सकेंगे ? क्या श्रद्धा, इतिहास सत्य और करोड़ों नागरिकों की आस्था केन्द्र अयोध्या का राममन्दिर चालीस साल तक चलती रही भूलभुलैयों से अब मुक्त नहीं हो चुका है ? सोच लें और फिर सोच लें। उससे पूर्व यह सोच लें कि क्या इतिहास-सत्य द्वारा प्रमाणित हो चुके मन्दिर को अब भी 'पंथ निरपेक्ष' कांग्रेसी मस्जिद पुकारने की निर्लज्जता करते रहेंगे।

9 अगस्त, 1992

भानुप्रताप शुक्ल

जन्म : 7 अगस्त; 1935

जन्म स्थान : ग्राम- बंजरवा, जिला-सुलतानपुर (उ. प्र.)

जन्म के एक माह बाद ही श्री शुक्ल की मां का निधन हो गया, अतः लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा नानी की देखरेख में हुई। बाल्यावस्था में ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य बने और बाद में सम्पूर्ण जीवन समाज-समर्पित कर संघ के प्रचारक के नाते रायबरेली, फर्रुखाबाद, बाराबंकी आदि विभिन्न स्थानों पर कार्य किया। लेखन व पत्रकारीय संस्कार सर्वश्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, डॉ. सम्पूर्णानन्द, यशपाल, अमृतलाल नागर प्रभृति विभूतियों के निकट सान्निध्य से प्राप्त हुए, दूसरी ओर सर्वश्री माधव सदाशिव गोलवलकर (श्री गुरुजी), भाऊराव देवरस, पं. दीनदयाल उपाध्याय, रज्जू भैया, बापूराव मोघे और दत्तोपन्त ठेंगड़ी जैसे राष्ट्रवादी मनीषियों/विचारकों से चिन्तनधारा पायी। भानुजी हिन्दी के उन पत्रकारों में अग्रगण्य माने जाते हैं, जिनसे वर्तमान युवा पत्रकारों की एक पूरी पीढ़ी या तो बनी है, या प्रभावित हुई है।

श्री शुक्ल सन् 1961 से लेखन और पत्रकारिता के क्षेत्र में आये। उन्होंने मासिक 'राष्ट्रधर्म', साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' और हिन्दी दैनिक 'तरुण भारत' का सम्पादन किया। भानुजी द्वारा सम्पादित या लिखित अनेक वैचारिक कृतियां हिन्दी पाठकों तक पहुंच चुकी हैं, जिनमें से कुछ हैं : 'राष्ट्र की दिशा', 'सावरकर : विचार-दर्शन', 'हर रविवार', 'राष्ट्रीयता के बिसराव का आतंक', 'मृत्युंजय भारत', 'संकेतरेखा', 'लक्ष्य और कार्य', 'कल्पवृक्ष' आदि। राष्ट्रवादी चिन्तन व लेखन-धारा के शब्द-स्रोतों की अद्भुत परख भानुप्रताप शुक्ल के संपादकीय व्यक्तित्व में निहित है।

सम्प्रति : वह 'पाञ्चजन्य' के सम्पादकीय सलाहकार हैं।

भानुप्रताप शुक्ल